पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सन् १९६४ के प्रवचन

भाग ४

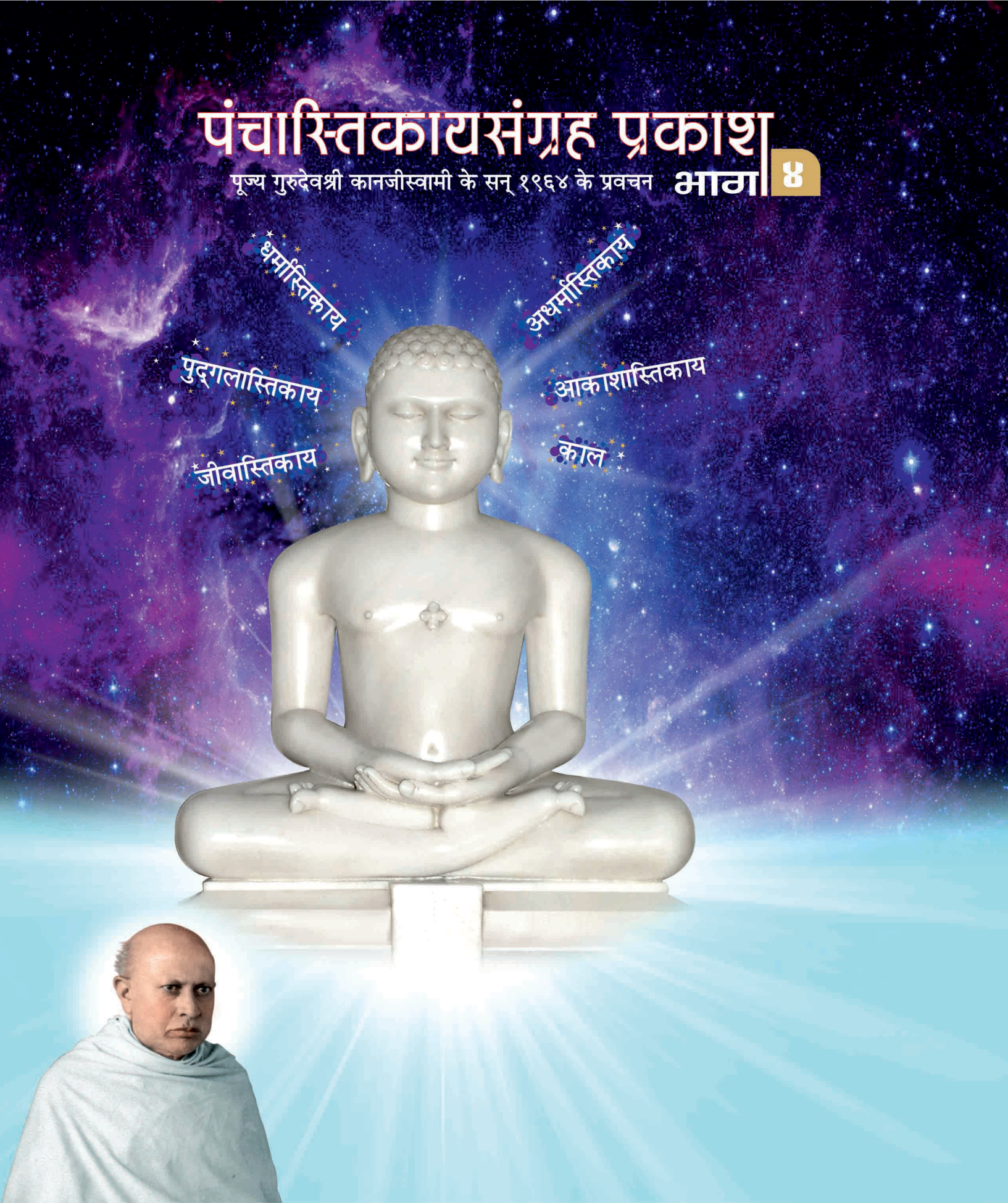

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

(भाग - 4)

(**श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव** प्रणीत **श्री पंचास्तिकायसंग्रह** परमागम पर **अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के अलग से उपलब्ध प्रवचन)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2078	2548	2022

—: प्रकाशन :—

आषाढ़ माह **अष्टाह्निका महापर्व** एवं
वीरशासन जयन्ती के उपलक्ष्य में
दिनांक 14 जुलाई 2022

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान, गौतम गणधर तत्पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करके भरत में पधारे श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं, यह जगतविदित है। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़ आदि पाँच परमागम तो प्रसिद्ध है ही परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

श्री समयसार इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नव तत्त्व का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्ध स्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम अनुसार जिनप्रवचन का सार संग्रहित है और उसे ज्ञानतत्त्व, ज्ञेयतत्त्व और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मोक्षमार्ग का सत्यार्थ निरूपण है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, उसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

पंचास्तिकायसंग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा विभिन्न गाथाओं पर हुए उपलब्ध प्रवचनों को एकत्रित कर शब्दशः ग्रन्थ लिपिबद्ध किया गया है। पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र के प्रारम्भ में ही

आचार्यदेव कहते हैं कि यह शास्त्र सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का प्रतिपादक, चतुर्गतिनाशक और निर्वाण का कारण है। चार अनुयोग में कोई भी अनुयोग हो परन्तु चारों ही अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है, ऐसा अन्त में १७२ गाथा में कहकर समस्त अनुयोग का सार कहा है। निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग की सन्धि करके अति स्पष्ट विवेचन किया गया है।

वर्तमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में जो कहा जा रहा है, उसे प्रत्यक्ष झेलनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके अनन्य भक्त, कि जिनकी विद्यमानता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विदेहगमन के समय साक्षात् थी, ऐसे प्रियवर पूज्य कहान गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का क्या कहना! जो विषय वचनगोचर नहीं, विकल्पगोचर नहीं, उसे कथंचित् वक्तव्य करना यह कहान गुरुदेवश्री की समर्थ प्रचण्ड शक्ति के दर्शन कराता है और भविष्य में ॐकार ध्वनि खिरनेवाली है, इसका सूचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उसके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाया गया तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्य जन प्राप्त करे कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ पर विभिन्न गाथाओं पर हुए उपलब्ध प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ के संकलित प्रवचन भी पूर्व में सद्गुरु प्रवचनप्रसाद (दैनिक पत्रिका) के रूप में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहेनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में पर्याप्त सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। प्रस्तुत प्रवचनों को सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स तथा प्रवचनों के प्रूफ संशोधन का कार्य श्री सुधीरभाई शाह, सूरत तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है। इस प्रवचन ग्रन्थ के हिन्दी रूपान्तरण एवं

सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। टाईपसेटिंग का कार्य श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से निवेदन करता है कि यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमारा ध्यान आकृष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में यथोचित सुधार किया जा सके।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण करे - ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

यह प्रवचन www.vitragvani.com पर उपलब्ध हैं।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

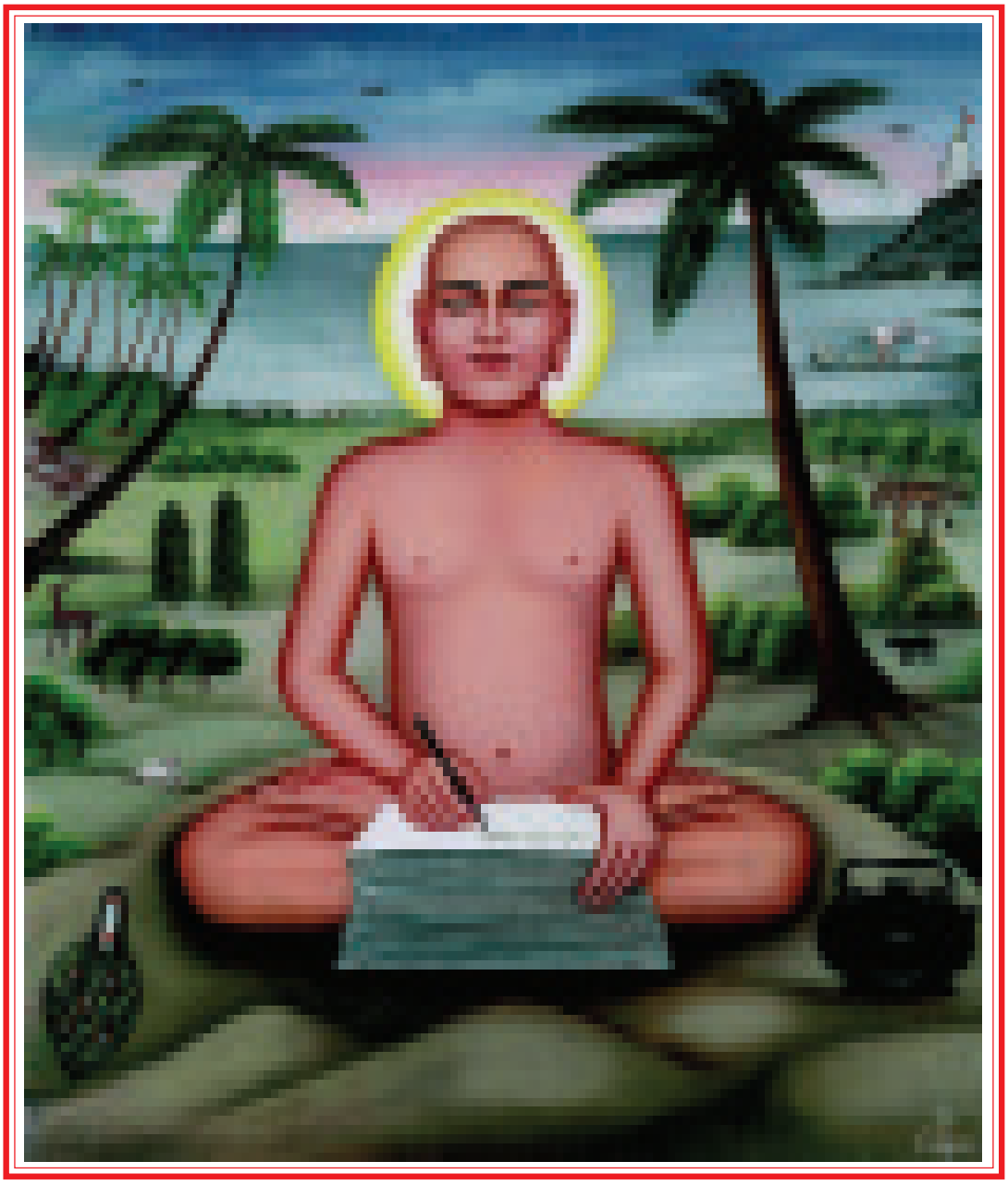

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का**

श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित

सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्र.
४	३०.०४.१९६२	१७२	००१
५	०१.०५.१९६२	१७२	०२१
६	०२.०५.१९६२	१७२	०४१
७	०३.०५.१९६२	१७२	०६१
८	०४.०५.१९६२	१७२	०८०
९	०५.०५.१९६२	१७२	०९८
१०	०६.०५.१९६२	१७२	११५
११	०७.०५.१९६२	१७२	१३४
१२	०८.०५.१९६२	१७२	१५६
१३	२१.०४.१९५२	१०३, १०४	१७८
१४	२६.१०.१९५८	१५९	१९६
१५	--	१६०	२१४
१६	१९.०६.१९५२	१७२	२२५
१८	२०.०६.१९५२	१७२	२४६
१९	२१.०६.१९५२	१७२	२६९
२०	२३.०६.१९५२	१७२	२९३
२१	२३.०३.१९६९	१६३	३१५
२२	२४.०३.१९६९	१६३	३३०

ॐ

परमात्मने नमः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

(भाग-४)

(श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रह परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६२-६३ में हुए शब्दशः प्रवचन)

नोंध - प्रवचन 1 से 3 की आवाज खराब होने
के कारण नहीं लिया गया है।

चैत्र कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक - ३०-०४-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-४

यह एक पंचास्तिकाय संग्रह नाम का शास्त्र है। सवेरे समयसार चलता था, वह भी सर्वज्ञ भगवान परमात्मा देवाधिदेव, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में ज्ञान की पर्याय इतनी निर्मल पूरी हुई, जिसमें तीन काल-तीन लोक अपने ज्ञान में ज्ञात हुए। उसमें यह पंचास्तिकाय और षट्द्रव्य, उनके ज्ञान में देखे और जाने, वैसे कहे। उसका यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज पंच अस्तिकाय अर्थात् जीव, पुद्गल, एक आकाश, धर्मास्ति और अधर्मास्ति ऐसे ये पाँच हैं। यह सब पहले सिद्ध हो गये हैं। यह तो अन्तिम गाथा १७२ लेनी है।

यह पंचास्तिकाय का बहुत स्वरूप वर्णन करके अथवा षट्द्रव्य का स्वरूप—पाँच अस्तिकाय) यह और छठवाँ काल एक पदार्थ है। काल नामक असंख्य अणु जगत में एक पदार्थ अनादि स्वतः स्वाभाविक द्रव्य है। यह सब वर्णन करके साररूप अब मोक्षमार्ग का सार क्या है? जब छह द्रव्य अर्थात् वस्तुयें और पाँच अस्तिकाय...

...आचरण अर्थात् स्थिरता, उसे मोक्षमार्गरूप से पंचास्तिकाय में पिछले अधिकार में वर्णन किया। अब उसका सार क्या है, उसका सबका तात्पर्य (क्या है), यह बात करते हैं। १७२ (गाथा)

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि॥१७२॥

यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित् ना करो।
वीतरागी बन सदा को भवजलधि से पार हो॥१७२॥

यह श्लोक है। इसका विस्तार तो बहुत-बहुत है इसमें, परन्तु यहाँ माँग हुई, लालचन्दभाई इत्यादि। इसलिए यह १७२ चले, इतनी करते हैं। नवरंगभाई!

मुमुक्षु : इसमें कोई दिक्कत नहीं, भले थोड़ी चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब इसकी टीका जरा मध्यस्थ रीति से सुननेयोग्य है। इसमें निश्चय और व्यवहार में झगड़ा है न अभी! निश्चय अर्थात् सत्यमार्ग और व्यवहार अर्थात् आरोपित मार्ग-एक उपचारिकमार्ग। भगवान आत्मा के सत्य के सत् में अन्तर्दृष्टि देकर जो शक्ति की व्यक्तता सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की निर्मल निर्विकल्प परिणति प्रगट हो; परिणति अर्थात् पर्याय, वास्तव में वह एक ही मोक्षमार्ग है परन्तु साथ में यह निश्चयमोक्षमार्ग के साथ एक पूर्ण निर्मल दशा जहाँ न प्रगटे, वहाँ साथ में व्यवहार सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कौन, उनकी श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम अथवा श्रावक के योग्य उसे बारह व्रत और भक्ति का राग तथा शास्त्र की ओर के झुकाववाला शास्त्र का ज्ञान, ऐसे राग की भूमिका निश्चयमोक्षमार्ग की अन्दर आती है। उसे भी कहीं व्यवहारमोक्षमार्गरूप से वर्णन किया है तो अब दोनों का मेल क्या है, उसका यहाँ सार कहते हैं।

टीका :- यह, साक्षात्मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार है... एक पंक्ति में... यह—वस्तु कहते हैं उसका वाच्य अन्दर। साक्षात्, ऐसा शब्द पड़ा है। साक्षात् अर्थात् तात्कालिक मोक्ष का मार्ग। साक्षात् आत्मा आनन्द शुद्ध चैतन्य की अन्तर की रमणता श्रद्धा-ज्ञानसहित, वह साक्षात् आत्मा की पूर्ण निर्मल आनन्ददशारूपी मोक्ष, आत्मा की पूर्ण निर्मल शुद्ध अवस्थारूपी मोक्ष के कारणरूप से मार्ग अर्थात् आत्मा की मोक्ष के कार्य की कारणरूप पर्याय। कनुभाई! सब सूक्ष्म पड़े, ऐसा है यह। महामुश्किल से यह कान में पड़े और जहाँ अन्यत्र जाये वहाँ दूसरा सुने। तीसरी जगह जाये वहाँ तीसरा सुने। यह बेचरभाई कहते थे। पहले एक बार शुरुआत में बेचरभाई सोनगढ़ आये थे न! तुम ऐसा कहते हो, दूसरी जगह जायें, वहाँ दूसरा कहते हैं। हमारे तो दोनों ओर थप्पड़ खाना है। यह बेचरभाई गुजर गये न, (संवत्) १९९२ के वर्ष की बात है। हीराभाई के मकान में थे और आये। यह तत्त्व की बात सत्य की कसौटी पर चढ़ाई नहीं और सत्य का क्या स्वरूप है, इसे सुनने में आया नहीं। यह तो जिसे जन्म-मरणरहित होकर अमर आत्मा की दशा प्रगट करनी हो, उसके लिये यह बात है। बाकी जिसे यह चौरासी के अवतार में स्वर्ग और सेठाई, नरक और निगोददशा और ऐसे हैरान होने के पन्थ और मार्ग तो अनादि काल से करता आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देवलोक भी यहाँ कहेंगे, कहेंगे। देखो! अन्त में आया है। देवलोक भी राग के अंगारों से सिंकी हुई दशा है देवलोक। देखो! अन्त में है। देखो! **रागरूपी अंगारों से दह्यमान हुआ...** अन्तिम लाईन १७१ गाथा की है। **अन्तर में सन्तप्त (-दुःखी, व्यथित) होता है।** क्या कहते हैं? यह सेठाई और स्वर्ग, दोनों एक जाति है। उसमें जरा कुछ अधिक पुण्य आदि। परन्तु सब पैसेवाले अरबोंपति या स्वर्ग के देव, उन्हें जो सामग्री मिली, उसके लक्ष्य से राग में सिंकते हुए। जैसे शकरकन्द भट्टी में सिंकते हैं, उसी प्रकार यह अज्ञानी राग से सिंकता हुए दुःख से संतप्त स्वर्ग में पड़े हैं। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार यह पैसेवाले या राजा और सेठिया जो कहलाते हैं पुण्य के फल, वे संयोगों में लक्ष्य करके कषाय का कण राग, मजा है हमको यह है, ऐसे कषाय के तृण से जले हुए, सुलगे हुए, जलते हुए... अभी आगे कहेंगे। धधकती

अग्नि में-राग की अग्नि में सिंकती हैं। मूलजीभाई! हें, दामोदरभाई! तुमको पैसेवाले लोग कहते हैं, लो! पैसेवाले तुम सबसे पहले थे। अब पैसा बढ़ गया दूसरे बहुत (हो गये)। कहो, समझ में आया? बहुत आवे तो अधिक बढ़ गये दूसरे के पास। इसलिए इनके पास जरा... दूसरे बहुत बढ़ गये बहुत इनकी अपेक्षा। करोड़पति। यह तो सब बातें हैं।

कहते हैं कि भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द के रस का कन्द है। उसमें से जितना हटता है, खिसकता है, हटता है और परपदार्थ का लक्ष्य करता है, उतना राग से सिंकता है, राग से जलता है आकुलतारूप से, परन्तु इसका उसे भान नहीं। आकुलता को किसके साथ तुलना करे। आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा यदि भान हो, तब तो उस राग की आकुलता को आनन्द के साथ मिलाने से वह दु:खदायक और यह सुखदायक, ऐसा लगे। परन्तु अनादि का अकेली आकुलता ही वेदता है। नरक में हो, आलू, शकरकन्द में हो, सेठाई में हो या स्वर्ग में हो। रागरूप अंगारों से सिंकता हुआ। यह कषायकण है। फिर पाप का भाव हो या पुण्य का, दया, दान, व्रत, तप का राग भाव हो, वह भी एक विकल्प है। वह भी एक राग है, कषाय का कण है। उससे सिंकते हुए अन्दर में संतप्त।

अन्दर में क्यों लिया है? बाहर में तो ऐसे मानो... ओहोहो! हीरा के सिंहासन पर बैठा हो। खम्मा अन्नदाता। हजारों सूर्य के तेज से भी जिसका... शरीर का प्रकाश पड़े ऐसे अन्दर। बाहर के यह दिखाव और दीदार मानो कोई ओहोहो! बैकुण्ठ... अज्ञानी का। समझ में आया? परन्तु अन्दर में यह सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा को खोकर, भूलकर, संसरण कर—उससे हटकर संसार-संसरण इति संसार:, भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु शत शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का धाम, उसमें से संसरण कर—खिसककर—हटकर जो पुण्य और पाप के विकल्प-वृत्ति उठाता है, वह अंगारों से सिंकता है। समझ में आया? उसे मूर्ख सुखी कहते हैं। जो पागल के अस्पताल में हों, वे पागल पागल की महिमा करते हैं। समझ में आया? भाई! पागल के अस्पताल में हो, एक पागल दूसरे को कहे, ओहो! तुम्हारी चतुराई बहुत लगती है, ऐसे पागल के अस्पताल में सब पागल की महिमा (करे) शामजीभाई!

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं और ऐसा है। प्रभुभाई! तुम्हारे

गायन में नहीं आया था उसमें? गायन पहले बोले थे। कौन जाने किसने... मैंने देखा अवश्य था। प्रभुभाई ने रखा या उसने रखा, यह खबर नहीं पड़ी। यह तो तुम्हारे उसके... ऐ... रतिभाई! उसमें 'वाह वाह रे अमीरी सन्तन की, वाह वाह रे अमीरी सन्तन की, वाह वाह रे अमीरी ज्ञानभक्तन की...' उन्होंने तो हरि भक्त की कही है। समझ में आया? अमीरी तो उसे कहते हैं। यह अमीरी नहीं है। इस धूल की अमीरी में आकुलता से जल गये हैं। भगवान आनन्द और शुद्धचिदानन्द की मूर्ति प्रभु, उसमें अन्दर गहरे उतरकर मारकर जो अन्दर पाताल में थाह लावे (वह अमीर है)। समझ में आया? यह कुँए में नहीं पड़ते लोग? चन्दुभाई! यहाँ तो तुम्हारे शरीर में कम हो, हमारे गाँव में बहुत होता है। लड़का ऐसे खड़े सीधे पड़े। ऐसा कहा जाये उसे। जैसे कोश पड़े न कुँए में? वैसे पड़े। सीधे। थाह ले आया या नहीं? नीचे से थाह ले आवे। हाथ निकालकर बतावे, देखो! यह नीचे की रेत।

मुमुक्षु : बालू भर आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बालू भर आवे। यह गाँव में होता है।

इसी प्रकार यह आत्मा चैतन्य की शक्ति का सत्व आनन्द शुद्ध है, उसे वर्तमानदशा में एकाकार अन्दर में होकर थाह ले आवे। आत्मा अनाकुल और आनन्द का धाम है। एक अंश की प्रगटता, आनन्द और शुद्धता की एक अंश की प्रगटता, वह ऐसा आत्मा त्रिकाल पूर्णानन्द और शुद्ध है, ऐसा उसकी थाह लावे, वह पर्याय की अमीरी कही जाती है। वह अमीरी है। बाकी तो सब रंकाई और भिखारीपना है। समझ में आया? भिखारी कहा, भानुभाई! पचास-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ रुपये। रंक-भिखारी। बड़ा भिखारी है।

कहा था एक बार। कृष्णकुमार आये थे न? कृष्णकुमार हैं न? सोनगढ़ आये थे। कहा, थोड़ा माँगे, वह छोटा भिखारी; अधिक माँगे, वह बड़ा भिखारी। जिसे बारह महीने में पचास हजार चाहिए हो, वह छोटा भिखारी; पाँच लाख चाहिए हो, वह बड़ा भिखारी। कान्तिभाई! माँगता है, चाहिए है, चाहिए है। नहीं चाहिए। मेरी पूँजी मेरे पास है। मैं सच्चिदानन्द प्रभु हूँ। मेरी शान्ति का सागर अन्तर से श्रद्धा-ज्ञान करते हुए

उछलता है। यह उसे भिखारी नहीं परन्तु अमीर कहा जाता है। समझ में आया?

ऐसी अमीरी अर्थात् कि साक्षात् मोक्षमार्ग। समझ में आया? जिसके फल में केवलज्ञान और अनन्त आनन्द। जो पीपर पचास पहरी हुई, शक्ति में चौसठ (पहरी) थी और प्रगट होकर चौसठ (पहरी) जब पूर्ण हो, तब उसका पूर्ण फल आया कहलाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के राग को छोड़कर अन्तर चैतन्य के सागर को सम्हालने जाये और तब उसकी अन्तर में शान्तरस का कन्द प्रभु, उसमें से अविकारी शान्ति की दशा जो पर्याय में-अवस्था में श्रद्धा, ज्ञान और रमणतारूप जिसकी दशा होती है, उसे साक्षात् मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? साक्षात् शब्द क्यों पड़ा है? साथ में अभी, पूर्ण वीतराग और पूर्ण केवलज्ञान न हो, वहाँ आगे एक विकल्प ऐसी वृत्ति सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान, उनकी श्रद्धा (होती है)। परन्तु वह निश्चय हो तो। परस्पर सापेक्ष है व्यवहार से। भाई! व्यवहार से सापेक्ष। निश्चय से सापेक्ष नहीं। सुनो। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने चैतन्य की शुद्धश्रद्धा, ज्ञान की कला में आया, वह अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और रमणता—रमना—चरना, वह साक्षात् तत्कालिक कार्य के कारणरूप होकर परिणम रहा है, परन्तु उसके स्थान में ऐसा तत्त्व जिसने पूर्ण जाना, पूर्ण प्राप्त किया, पूर्ण अनुभव किया—ऐसे देव को माने, वह भी एक शुभराग और विकल्प का स्थान है। उसके साधक सन्तों को भी माने, वह भी एक शुभविकल्प का भाग और स्थान है। उनके कहे हुए, सर्वज्ञ के कहे हुए ऐसे पन्थ को पाकर कहे हुए उनके शास्त्र को परसन्मुख होकर यह सच्चे, ऐसा जाने और माने, वह भी एक शुभराग की वृत्तिरूप वृत्ति है। उसे उपचार से, आरोप से, निमित्त से मोक्षमार्ग है—ऐसा कहा जाता है। है वह बन्धमार्ग। वह राग का विकल्प है बन्धमार्ग। परन्तु इस मोक्षमार्ग को ऐसे जहाँ अन्तरआत्मा में नजर करके श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति के निर्विकल्प अर्थात् रागरहित आत्मा की परिणति अर्थात् पर्याय अर्थात् दशा शुरु हुई, उसके साथ निमित्त ऐसा राग होने से आत्मा में इस निमित्त को व्यवहार से गिनने से इसे मोक्षमार्ग का आरोप दिया है। वास्तव में यह मोक्षमार्ग है नहीं, परन्तु ऐसी मोक्षमार्ग की भूमिका जहाँ सच्ची प्रगट हुई है, तब

व्यवहार आवे तो ऐसा ही होता है। सच्चे सन्त, सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, उन्होंने कहे हुए सच्चे तत्त्व, उन्होंने कहे हुए सच्चे द्रव्य, उन्होंने कहे हुए मार्ग के भेद का विकल्प और शुभराग उसे आये बिना रहता नहीं। परन्तु है तो वह अंगारा। अरे! कठिन भाई! समझ में आया? अरे! उसके चैतन्य के पन्थ-राह इसने साधु होकर, त्यागी होकर, हजारों रानी छोड़कर नहीं जाना। समझ में आया?

श्रीमद् में आता है न एक? नहीं आता श्रीमद् में?

यम नियम संयम आप कियो
पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो
वनवास रह्यो मुख मौन रह्यो
दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।

मुख मौन रहा, दृढ़ आसन पद्म लगाय दिया। पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये, नियम पालन किये।

सब शास्त्रन के नय धारि हिये,
मत मण्डन खण्डन भेद लिये,
वह साधन बार अनन्त कियो
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।
जप भेद जपे तप त्योंहि तपे
उरसे ही उदासी लही सबपै

उर से उदास, परन्तु यह अस्ति तत्त्व चिदानन्द की भूमिका क्या है, उसे पहुँचा नहीं।

वह साधन बार अनन्त कियो
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।
अब क्यों न विचारत है मन से
कछु और रहा उन साधन से?

यह सब साधन नहीं। यहाँ साधन कहेंगे, हों! निमित्त से। परन्तु वह वास्तव में साधन नहीं है।

'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि...' व्रत, नियम, भक्ति, पूजा, दान, दया, करुणा और कोमलता के भाव अनन्त बार किये। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। उस देव के मिथ्यादृष्टि के शुभ परिणाम की पराकाष्ठा का एक फल है, वहाँ भी प्रत्येक प्राणी अनन्त बार गया है। परन्तु उसे जन्म-मरण का अन्त आया नहीं। समझ में आया?

यह बात यहाँ आचार्यदेव (कहते हैं)। साक्षात् मोक्षमार्ग। वह विकल्प था, उसके साथ। वह तो-अज्ञानी को तो अकेला विकल्प था। वह शुभराग में ही धर्म और मोक्ष मानकर उसमें अनादि से चिपटा था। परन्तु धर्मी जीव को जो आत्मा के स्वभाव का अन्तर्मुख का भान, श्रद्धान और रमण (हुए), वह साक्षात् मोक्षमार्ग (हुआ) जो आत्मा की पूर्ण आनन्द की दशा का कारण हो। मार्ग कहो, कारण कहो, उपाय कहो। उसका सार, उसका सार, उसका सूचन। साक्षात् मोक्षमार्ग का सार का सूचन। इस **सूचन द्वारा शास्त्रतात्पर्यरूप...** शास्त्र का तात्पर्य क्या है? हजारों, लाखों, करोड़ों शास्त्र निकले, भगवान ने कहे। द्रव्यानुयोग कहे, चरणानुयोग कहे। द्रव्यानुयोग अर्थात् जिसमें अध्यात्म और तत्त्व की बात होती है, उसका कहा। जिसमें आचरण पुण्य क्या और पाप छोड़ना क्या, उसे कहा। पुण्य-पाप के फल प्रथमानुयोग में वर्णन किये और करणानुयोग सूक्ष्म प्रत्येक पदार्थ की परिणति अर्थात् पर्याय अर्थात् अवस्था का जिसमें बहुत साक्षात् भगवान ने देखा, उसका कथन (जिसे हो), उसे करणानुयोग (कहते हैं) परन्तु सबका तात्पर्य क्या? उसका सार क्या? दही को बिलोते-बिलोते उसका सार क्या? कहते हैं कि मोक्षमार्ग का सार, उसके सूचन द्वारा। सूचन तो यह करेंगे यहाँ।

शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार है... शास्त्र के तात्पर्य का यहाँ उपसंहार अर्थात् छोर लाये हैं। **(अर्थात् यहाँ साक्षात्मोक्षमार्ग का सार क्या है, उसके कथन द्वारा शास्त्र का तात्पर्य कहनेरूप उपसंहार किया है।)** इस शास्त्र को यहाँ कहकर पूरा किया है। अब कहते हैं, देखो! समझ में आया इसमें कुछ?

साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है। यह शब्द उठाया है। साक्षात् आत्मा की पूर्णानन्द दशारूपी मोक्ष।

मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ,
समझाया संक्षेप में, सकल मार्ग निर्ग्रन्थ॥

भगवान सर्वज्ञ वीतरागदेव देवाधिदेव परमात्मा ने निर्ग्रन्थ पन्थ में राग की रुचि छोड़कर, राग की अस्थिरता छोड़ने के पन्थ में जो सर्वस्व मार्ग बतलाया, वह 'मोक्ष कहा निज शुद्धता।' अपनी पूर्ण शक्ति की पूर्ण प्रगटता, इसका नाम मोक्ष। 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ।' ऐसी पूर्ण दशा को जिस कारण से पाया जाये, उसे मोक्ष का मार्ग कहो, पन्थ कहो, कारण कहो, उपाय कहो। उस साक्षात् मोक्षमार्ग में अग्रणी कौन है, सामने कौन है, तब वह पीछे-पीछे है, ऐसा। व्यवहारमोक्षमार्ग की बात की है। वह है बन्धमार्ग, परन्तु निमित्त देखकर पीछे-पीछे उसकी बात थोड़ी समझायी है कि उस भूमिका में अविरोध रीति से निश्चय के साथ व्यवहार का भाग विकल्प की जाति कैसी होती है, इतना। आदरणीय नहीं। समझ में आया? परन्तु बहुत सूक्ष्म। निश्चय व्यवहारनय में जगत भरमाया है। निश्चय और व्यवहार में भ्रमणा अनादि काल की। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप, व्यवहार है। व्यवहार करते-करते (होता है)। क्योंकि उसे साधन कहा है और निश्चय को साध्य कहा है; इसलिए करते-करते होगा, (ऐसी) भ्रमणा में अनादि से अज्ञानी पड़ा है।

साधन तो व्यवहार से कहा अर्थात् अभूतार्थदृष्टि से कहा है। ऐसे साधन तो अनन्त बार किये, तथापि साध्य को पाया नहीं, इसलिए वह साधन है नहीं। समझ में आया? भारी परन्तु...! खाली हो जाना पड़े इसे, हों! आता भले है। बारदान चावल में तोला गया। कहा था न? चार मण और ढाई सेर चावल तोले गये। चावल थे चार मण और ढाई सेर था बारदान। परन्तु वह जो भाव हो, उस भाव से साथ में तोला जाता है। पाँच रुपये का। पहले तो ढाई के और दो के चावल थे मण के। पूरी बोरी तोले तो वह बोरी सहित तोले। वह मजदूर बोले। हमारे यहाँ दुकान के साथ में था न! एक दुकान थी। वहाँ मजदूर बोलते, चार मण और ढाई सेर। कहा, यह तो बारदान सहित तोलते लगते हैं। खाने में चार मण काम आवे और ढाई सेर टूटे। चार मण पकाये, परन्तु था चार मण और ढाई सेर। ढाई सेर तो बारदान था। वह कहीं चावल की जगह पकाया नहीं जाता। इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता वह तो चावल है। यह उसके साथ ऐसा व्यवहार का विकल्प उठता है, वह बारदान है। दोनों को तोला कि दोनों मोक्षमार्ग है—एक व्यवहार और (एक) निश्चय। समझ में

आया? ज्ञान ने दोनों का माप किया कि यह निश्चय है और यह व्यवहार है, ऐसा माप किया—सम्यक् प्रमाण किया। प्र-माण—प्र-विशेष, माण—माप—ज्ञान किया कि यह निश्चय और व्यवहार। परन्तु यह व्यवहार बारदान है। चावल कम पड़े तो बारदान पकाया नहीं जाता। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं, साक्षात् मोक्षमार्ग। ओहोहो! परमात्म अपना स्वरूप, उसका जो मार्ग पूर्ण दशा को प्राप्त करने का, उसमें अग्रेसर—अग्र मुख्य ईश्वर। वास्तव में वीतरागभाव है। विकल्प की वृत्ति का भाव, वह मोक्षमार्ग का अग्रेसर नहीं है। स्वभाव शुद्ध चैतन्य की ओर की जितनी वीतरागी दृष्टि, अकषाय स्वभाव त्रिकाल है, ऐसी अकषाय दृष्टि, अकषाय ज्ञान, अकषाय रमणता, यह एक ही मोक्षमार्ग में साक्षात् अग्रेसर वीतरागपना है। वीतराग अर्थात् निर्विकारी परिणति, निर्विकारीदशा। निर्विकार जैसा स्वभाव है, वैसी दशा अन्दर में निर्विकारी प्रगट हो, वह एक ही मोक्ष का मार्ग साक्षात् है। चन्दुभाई!

इसलिए वास्तव में अर्हंतादिगत राग को... देखो, आया। उसमें आया, डाला वापस। अरहन्तादिकगत राग को। अभी आत्मा की परिणति—अवस्था शुद्ध चैतन्य के सन्मुख होकर अविकारी अर्थात् वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता हो, वह अग्रेसर मोक्षमार्ग। परन्तु उसके साथ जब तक कैवल्य प्राप्त न हो, तब तक अरिहन्तादिगत... अरहन्तादि (गत) राग, अरहन्तादि—अरहन्त का, सिद्ध का, पाँच पद का, पाँच नवकार पद का, नीचे इसका अर्थ है। **अर्हंतादिगत राग = अर्हंतादि की ओर का राग;...** पंच परमेष्ठी परमेश्वर के प्रति प्रेम। **अरहन्तादि विषयक राग...** पंच परमेष्ठी को लक्ष्य में लेकर उत्पन्न होता राग। **अरहन्तादि का राग...** यह पंच परमेष्ठी का और दया आदि का राग। **[जिस प्रकार चन्दनवृक्ष की अग्नि भी उग्ररूप से जलाती है, ...चन्दन उसी प्रकार अर्हंतादि का राग भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है।]** कठिन बात की है जरा। नवरंगभाई!

आत्मा विज्ञानघन अविकारी वीतरागस्वरूप है। वीतराग अर्थात् जिसमें जरा भी दोष नहीं, कषाय नहीं, पुण्य नहीं, ऐसा चैतन्य। ऐसे चैतन्यधाम की रमणता, श्रद्धा और

ज्ञान। यह एक ही साक्षात् मोक्ष की पर्याय का कारण है। मार्ग एक ही है। परन्तु बीच में यह आता है। **अर्हंतादिगत राग को भी, चन्दनवृक्षसंगत...** क्या कहते हैं ? आत्मा का स्वभाव ऐसी शीतलता, श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो अन्तरस्वभाव के आश्रय से प्रगट होती है, वह तो शीतल... शीतल... चन्दन जैसा है। परन्तु साथ में विकल्प उठता है, वह व्यवहार जिसे कहे, देव-गुरु और शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के भाव, यह भक्ति, पूजा, दान, दया और यात्रा की वृत्ति जो उठती है, वह चन्दन के वृक्ष में अग्नि प्रविष्ट है। है न? देखो! **चन्दनवृक्षसंगत...** अर्थात् चन्दन के वृक्ष में मिली हुई अग्नि। **अग्नि की भाँति, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति...** ऐसे शुभभाव द्वारा स्वर्गादि और धूल आदि मिले, यह सेठाई आदि मिले।

अग्नि की भाँति, देवलोकादि... देवलोक आदि क्यों कहा ? कोई राजा हो, कोई चक्रवर्ती हो। पुण्य के फलरूप से देव, बलदेव हो, वासुदेव हो। कहते हैं कि वह शुभभाव जो बीच में आया, पंच परमेष्ठी का स्मरण, भक्ति, पूजा, दान, दया और व्रतादि का भाव, वह चन्दन वृक्ष में राग का अंगारा प्रविष्ट है, कहते हैं। बाबूभाई! यह जरा कठिन बात है। पुराने कान में सुनकर... रखा हो न, वह अन्दर से हटना... केरोसिन की बोतल होती है न ? बीच में नहीं ऐसे गहरा ? साफ करते-करते देरी लगे। क्योंकि उसमें तो तेजाब डाले तो (गन्ध जाये)। वह होता है न ऐसा ? उभरा हुआ हो। अब उसे उभरा हुआ के चारों ओर केरोसिन चिपटा हो। वह जरा भी निकले नहीं गर्म पानी डाले तो भी। उसे तो तेजाब अन्दर जब पड़े एकदम, तब गन्ध जाती है। कान्तिभाई! क्या यह दृष्टान्त, क्या होगा यह ? सिद्धान्त क्या परन्तु अब इसका।

जो ऐसे पकड़ रखा है न कि यह राग से धर्म होगा, पुण्य से धर्म होगा, इस क्रिया से धर्म होगा और व्रत पालते-पालते (धर्म होगा)। ऐसी जो अन्दर मिथ्यात्व की गन्ध घुसी है। समझ में आया ? उसे चाहे जितने उपदेश के सिर पर झपट्टे पानी के गिरें, वह निकालता नहीं। समझ में आया ? शामजीभाई! वह अम्बाजी-बम्बाजी तो कहीं रह गयी, हों! उसकी तो बात भी नहीं होती यहाँ तो। वह मानो कि पैसे दे कोई। बहुतों को

ऐसा होता है न? देवी दे देगी और सूरधन दे देंगे। धूल भी नहीं। चार गति में भटकता जीव है। अरे! भगवान! तुझे तेरी दिव्यशक्ति की खबर नहीं।

दिव्य ऐसा देव प्रभु आत्मा, वह दिव्यशक्ति जिसे प्रगट हुई, उसकी श्रद्धा, ज्ञान के झुकाव में रहे तो भी निश्चयसहित के भानवाला जीव परन्तु ऐसा राग, वह अंगारे के समान है। आहाहा! लोगों को बहुत कठिन पड़ता है। प्रभुभाई! क्या होगा? कहाँ गये रतिभाई? यह तो कहते हैं, राग पुण्य है, वह अंगारा है—ऐसा कहते हैं। फल नहीं। वह जिसके कारण से मिला, ऐसा शुभराग। विकल्प उठे ऐसे दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, नाम के स्मरण का, जप का... आहाहा! एकाकार लीन हो गया हो मानो... ऐसे के ऐसे विकल्प... विकल्प... विकल्प... गुण-गुणी के भेद आदि का विकल्प राग।

कहते हैं कि यह चन्दन वृक्ष संगत अग्नि की भाँति। देवलोक और मनुष्य आदि के **क्लेश की प्राप्ति द्वारा...** यह क्लेश मिला। स्वर्ग मिला अर्थात् क्लेश मिला। आहाहा! पूरी दृष्टिफेर। वह कहता है कि पैसा मिला। एक व्यक्ति कहता था, परन्तु महाराज! तुम ऐसा कहने की अपेक्षा पुण्य से मिलेगा, बीच में स्वर्ग में सुखी होगा और फिर मोक्ष जायेगा।

मुमुक्षु : भगवान के पास जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कौन से भगवान के पास? रंक होकर निगोद में जायेगा। सुन न! भगवान के पास कहाँ जाता था यह? और बाहर के भगवान के पास जाये तो समवसरण में अनन्त बार जा आया। परन्तु यह विकल्प-राग उठता है, उसे साधन मानकर, रुचि मानकर लिपटा है वहाँ। जायेगा लिपटकर निगोद में। एक शरीर में अनन्त आत्मायें और जिसका वेदन केवली जाने और यह वेदे। यह वेदे और केवली जाने, इतनी पराधीन दशा। आलू, शक्करकन्द, काई के जीव अनन्त हैं, उनकी दुःख की दशा भगवान जाने और यह वेदे।

जिसे राग के विकल्प की वृत्ति, उससे धर्म और संवर, निर्जरा और शुद्धि होगी, ऐसा माननेवाले मिथ्यात्व का सेवन करके, विपरीत अभिप्राय का सेवन करके, विपरीत अभिप्राय का फल-तात्पर्य अन्त में निगोद है। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं, अरे! ऐसे देवलोक और स्वर्गादि के क्लेश की प्राप्ति... यह बात किसके सामने है? मिथ्यादृष्टि की नहीं। मुनि भावलिंगी सन्त है या सम्यग्दृष्टि चौथे, पाँचवे में, उन्हें आत्मा का भान खिला है। चैतन्य का साक्षात्कार हुआ है। कला ख्याल में आ गयी है कि यह चेतनप्रभु परमात्मा है। इसमें स्थिर होने से परमात्मा प्रगट हो सकेगा।—ऐसा भान हुआ, परन्तु जहाँ इसे राग का उत्पन्न होना, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का पठन, ऐसा राग आता अवश्य है, आये बिना रहता नहीं, परन्तु है अंगारे जैसा। भारी कठिन। यह अंगारा आत्मा की शीतलता को सहायक हो... समझ में आया? उसे कभी चैतन्य के विश्वास में क्या भाव है, चैतन्य क्या है, उसका निर्लेपपना त्रिकाल क्या है, कभी सुना नहीं और इसे जँचा नहीं। फिर मर जाये साधु होकर पंच महाव्रत पालकर। यह तो अभी पंच महाव्रत भी कहाँ थे! पहले नौवें ग्रैवेयक में द्रव्यलिंगी साधु होकर गया, तब जो शुभभाव था, वैसा शुभभाव अभी किसी को हो नहीं सकता। समझ में आया? उसके पालन में जो शुभभाव था पुण्य का, उसने कुछ आत्मा को प्राप्त नहीं कराया। इस राग के अंगारों ने प्राप्त नहीं कराया। जिससे आत्मा निर्विकल्प दृष्टि से प्राप्त हो, उसे ऐसा राग आवे, उसकी बात चलती है। समझ में आया? आये बिना रहता नहीं और लाभदायक जरा भी नहीं। क्योंकि कितने ही वापस निश्चयाभासी ऐसा समझ जाये कि बस, अपने यह नहीं... नहीं... नहीं। वह मूढ़ जीव है। वह मिथ्यात्व को सेवन कर रहा है। और विकल्प आवे और माने कि यह मुझे संवर, निर्जरा और शुद्धि का कारण है, धर्म होगा, वह भी मिथ्या-विपरीत मान्यता को घोंट रहा है। समझ में आया? दुर्गादासजी! क्या है? देखो! हो जाओ साधु और हो जाओ त्यागी। पंच महाव्रत धारण करो। ओघा और पात्र लो। अरे.. भगवान! अभी तो ओघा, पात्र किसे नहीं होते और किसे होते हैं और साधु, यह बात दूर रही। अभी यह बातें तो कहीं आगे रही-दूर रही। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन की भूमिका में मुनिपने की दशा कैसी होती है, केवल (ज्ञान) की दशा कैसी होती है, उनके संयोग में कैसे निमित्त होते हैं और उस प्रकार के शुभराग की जाति उसे कैसी होती है, इसकी भी जिसे श्रद्धा और ज्ञान की खबर नहीं, उसकी तो यहाँ बात लेते नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु, जिसकी प्रभुता-परमेश्वरता जो शक्ति के गर्भ में पड़ी है, उसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा जन्मे अर्थात् कि केवलज्ञान की उत्पत्ति हो। जन्में अर्थात् केवलज्ञान की उत्पत्ति। उसका कारणरूप साक्षात् स्वभाव का, चैतन्य के द्रव्य-गुण की शुद्धि की श्रद्धा, ज्ञान और परिणति हो, वह तो मोक्ष का साक्षात् कारण है। साथ में राग रहे, उसकी बात करते हैं।

अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर,... धर्मी जीव ने... पहले इसका ख्याल तो करे, ख्याल तो करे। दूसरा कहे, यह धर्मी की बात है। हमारे क्या? परन्तु इस प्रकार मार्ग है, ऐसा तुझे समझनेयोग्य है। समझ में आया? कहते हैं, ऐसा पंच परमेष्ठी... यह बात हो गयी थी एक बार चोडी की बात की थी। नहीं भाई? (संवत्) २०१६ के वर्ष में। २०१६ में चोडी गये थे न? चोडी। यह चोडी है न? वहाँ। वडिया के पास चोडी। वहाँ गये थे तब सब आये थे। बगसरावाले नरभेराम सेठ और सब बहुत थे। दोपहर में बात बहुत हुई। सब किसान थे। स्वामी नारायण। खेत में थे। रात्रि में पुस्तक लेकर आये। अघातगति नामक पुस्तक। उसमें ऐसा लिखा था। पढ़े परन्तु समझ में नहीं आवे। उसमें ऐसा लिखा हुआ है कि यह भक्ति करो, पूजा करो, व्रत पालो, नियम करो, स्मरण करो, भगवान के जाप करो, भागवत पढ़ो और सुने और उसके व्रत और नियम पालन करो, इसका फल संसार है। इसका फल संसार परिभ्रमण है। वे माने कि हम भगवान की भक्ति करते हैं न, हमको बैठता नहीं। परन्तु पढ़ो, कहा, बराबर पढ़ो। अपने को कुछ खबर नहीं। अघातगति, यह पुस्तक का नाम।

अरे! तेरी अघातगति प्रभु! ऐसे विकल्प के शुभराग भक्ति, व्रत, नियम और बहुत नाम लिखे थे। नामस्मरण, जाप और भक्ति और दया, दान... इन सबका फल यहाँ है। यहाँ है अर्थात् मुक्ति बिना का परिभ्रमण फल उसे है। समझ में आया? ओहोहो! ऐसा हमारे में? कहा, दोपहर में कहा गया था। तुम नहीं थे। वे तो किसान थे न! उसमें बाहर खेत में पड़े थे। यह बनियों को सुनने को मिलता नहीं। कनुभाई!

कहते हैं, अरे... भगवान! भगवान कहते हैं, अरे.. भगवान! चैतन्य के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के भान में रहा हुआ जीव भी जब तक इन पंच परमेष्ठी के

प्रति, नौ तत्त्व के भेद के प्रति.. है न? उसके पहले यह सब आ गया है। समझ में आया? १७१ में आ गया है।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि।।१७१।।

इसके पहले १७० में आया है। '**सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स। दूरतरं णिव्वाणं**' १७० में आया है। नौ पदार्थ भगवान ने जो कहे... १७० गाथा, तीर्थंकर को मानना, तीन लोक के नाथ केवली को मानना '**अभिगदबुद्धि**' उसकी ओर बुद्धि का झुकाव, श्रुतरुचि—उनके कहे हुए शास्त्रों की, उन्होंने कहे हुए शास्त्र। जो परम्परा से चले आये, उनकी रुचि '**दूरतरं णिव्वाणं**' उसे निर्वाण (नहीं होता)। जब तक ऐसा राग है, तब तक मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? नवरंगभाई! परन्तु यह तुमने माँगा है। १७२ गाथा। उसमें से आता है।

आहाहा! अरे... प्रभु! तेरे पन्थ की श्रद्धा तो सम्यक् कर और उसमें गड़बड़ करने से तेरा (भटकने का) अन्त कभी आयेगा नहीं। दुनिया मानेंगी, हों! दुनिया कहेंगी कि ओहोहो! परन्तु क्या धर्मी! समझ में आया? ऐसे व्रत पाले, पूरी जिन्दगी का (आजीवन) ब्रह्मचर्य पाले और जीव को दुःख न हो, ऐसा भाव रखे और... आहाहा! क्या यह मनुष्य भगत है, भगत है! सुन रे सुन बापू! यह तुझे राग हुआ, इससे धर्म माने, बड़ा ठग है। प्रभु का भगत तू नहीं है।

यहाँ तो उसकी बात नहीं ली। मात्र मिथ्यादृष्टि राग और पुण्य को धर्म माननेवाला, उसकी बात याद नहीं की। परन्तु धर्मी जीव को राग बीच में स्वभाव का आश्रय लिया होने पर भी, राग आता है, वह राग अन्तरदाह का कारण है, अन्तर ज्वलन का कारण है। अब ज्वलन कहाँ से माने? अन्तरदाह का कारण किसलिए लिया है? बाहर ऐसे देखो तो ओहोहो! साता मिले, पुण्य के फल ऐसे देखो तो खम्मा... खम्मा! ऐसे माँगे वहाँ इक्कीस। धूल। ऐसे रागी जीव को कहते हैं कि अरे! सम्यग्दृष्टि जीव और तुझे ऐसा राग हो, वह अन्तरदाह का कारण है, हों! आहाहा! गजब बात! यह कफ गले उतारना। इसने अनन्त काल में यह उतारा नहीं। और इस प्रकार कहनेवाले सच्चे देव-

गुरु-शास्त्र कौन, उन्हें भी इसने पहिचाना नहीं। और दूसरे प्रकार से माने और मनावे, उनकी बातें रखकर यह बात सुने, उसकी बात रखकर सुने तो कहीं मिलान खाये नहीं। समझ में आया? माल में मिलावट नहीं करते? बनिये चावल में क्या डालते हैं? कण। चावल में डालते हैं कण, मिर्ची में डाले... मिर्ची होती है न मिर्ची की थैलियाँ, उसमें बीच में डाले अधमण बीज। बीज डाले। वह फाड़े... परन्तु अन्दर बीज डाले हों अधमण। चार मण की बोरी हो मिर्ची की, बोरी खोले वहाँ अधमण बीज (निकले)। बनिया बराबर माल लेने आया हो न... हो न उसकी? क्या कहलाती है? बम्बी। इस बम्बी को बीच में ऐसे-ऐसे मारे। वह आवडतवाला सही न! इसलिए ऐसे मारे तो ऐसे-ऐसे छाँटे तो पूरे चावल छंट जाये। देखो, यह चावल। मोहनभाई! वह होशियार हो न दूसरा, वह आड़ी बम्बी मारे ऐसे। इसलिए जैसा हो वैसा निकले, आधे कण और आधे चावल। परन्तु तुमने यह बताया न? तुमने बताया होगा। वहाँ ऐसा होगा, यह जरा ऐसा होगा। सर्वत्र ऐसा है, सुन न। तेरी बम्बी में ऐसे-ऐसे छाँटता था, तू ऐसे-ऐसे करता था अन्दर। बम्बी मारी ऐसे आड़ी और ऐसे-ऐसे छाँटता था। इसलिए कणी नहीं आती और चावल छँटकर आवे। देखो, यह चावल। ऐसे मारकर आया वहाँ आधी कणी और आधे चावल।

इसी प्रकार अज्ञानी को यह वक्रता करके हमारी बात सच्ची है और यह भी सच्ची है, ऐसा मानकर तू सब सच्ची खतौनी करता है। परन्तु जहाँ बराबर देखने जाये उसकी बम्बी मारकर सीधा सीधी रीति से (तो) उसकी उल्टी श्रद्धा और उल्टे ज्ञान में यह श्रद्धा का कहीं मिलान आवे नहीं। कण का खींचड़ा। यह तो कण कहा, बाकी कंकर का खींचड़ा है। समझ में आया? क्या हो? वह भी परमेश्वर है न! उसकी अशुद्धता भी बड़ी। ऐसा आचार्य कहते हैं। अरे! अशुद्धता भी बड़ी कि अनन्त तीर्थंकर आवे तो न समझे। और तेरी शुद्धता भी बड़ी कि अनन्त प्रतिकूल परीषह पड़े तो नहीं डिगे। तेरी क्या बात। समझ में आया?

भगवान आत्मा... यह उल्टा पड़ा। सुल्टे पड़े हुए तीर्थंकर के समीप में जाये (तो भी) छोड़े नहीं। ताकतवाला है न? मकोड़ा है वह चिपके तो जमकर चिपक जाए और दोनों पृथक् पड़े तो भी छोड़े नहीं। इसी प्रकार अनादि काल का अज्ञानी अपनी मानी

हुई बात को टूट जाये चौरासी में मरकर। नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। कुछ तो होगा, हों! यह सब बात। यह सब लाखों, करोड़ों मानते होंगे तो कहीं सब मिथ्या होंगे?

मुमुक्षु : विचारनेयोग्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : विचारना क्या, चींटी के नगरा बहुत होते हैं। वह नगरा मनुष्य के नहीं कहलाते। चींटी के नगरा में... नगरा समझ में आता है? क्या समझते हो? ऐ... दुर्गादासजी! चींटी के नगरा समझते हो? चींटियाँ नहीं निकलती, चींटियाँ? लाखों, करोड़ों चींटियाँ निकलती है न! मनुष्य इतने नहीं होते। चींटियाँ मनुष्य हो जायेगी? संख्या बहुत है। भगवान आत्मा के मार्ग के सत्य के अतिरिक्त विपरीत मार्ग की चींटियाँ उभरी है। समझ में आया? उसने कभी सत्य के मार्ग की राह, क्या सत्य है, उसने श्रद्धा और ज्ञान में कभी लिया नहीं।

आचार्य कहते हैं, अरे! धर्मी जीवों ने यह पंच परमेष्ठी और नौ पदार्थ के प्रति राग **अन्तर्दाह का कारण समझकर, साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी...** देखो! अब क्या कहते हैं? **साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन...** वीरजीभाई! यह महाजन शब्द कहा था एक बार। (संवत्) १९८५ के चातुर्मास में। लाठी आये थे। यह महाजन शब्द पड़ा है न? महाजन। हे महाजन! यह जीवराजजी महाजन कहलाये न? इस शब्द को लक्ष्य कर एक बार बात की थी उन्होंने। यह महाजन है। दूसरा महाजन नहीं। हे बड़े आत्मा! **मोक्ष का अभिलाषी महाजन सभी की ओर से राग को छोड़कर,...** पहले राग होता अवश्य है, परन्तु छोड़नेयोग्य है, हेय है, जहर है, आदरणीय नहीं, ऐसी श्रद्धा को निर्मल करके और फिर ज्ञान में जाने कि यह हेय है और चारित्र के लिये उसे छोड़कर स्थिर हो। समझ में आया?

उन **सभी की ओर से...** सबमें क्या बाकी रहा? सबके प्रति के राग को छोड़कर। सभी अर्थात्? परन्तु यह तो सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, उसे कहते हैं कि तुझे जो अभी राग होता है, श्रद्धा में तो छोड़नेयोग्य जाना है, ज्ञान में परज्ञेयरूप से जाना है, अब चारित्ररूप से स्थिर होने के लिये उसे छोड़कर स्थिर हो। उत्कृष्ट बात मुनि की ली है न! मुनि को लक्ष्य करके मुख्य बात है। उसके गौण गर्भित में सब सम्यग्दृष्टि आदि आ जाते हैं।

कहते हैं कि सभी के प्रति। परन्तु भाई! यह राग तो कुछ ठीक है, इतना तो कहो। मूलजीभाई! पिता का राग छोड़ना, स्त्री का छोड़ना, व्यापार का छोड़ना। परन्तु पंच परमेष्ठी और नौ पदार्थ का राग? परन्तु परमेश्वर भगवान को स्वमुख से ग्रास रुचता नहीं? लोग कहते हैं न कि भाई, खानेवाले को मुख के सामने ग्रास आवे, पहले कहीं ऐसे नहीं जाता। भगवान कहते हैं कि हमारी भक्ति तो तुझे लाभदायक है, ऐसा कह? नहीं। राग आवे अवश्य, भक्ति आवे सही, प्रेम आवे अवश्य, परन्तु उस राग को छोड़कर स्वरूप में स्थिरता करेगा, तब तेरा कल्याण है। इस राग से कल्याण जरा भी नहीं। नहीं तो ऐसा कहे, छोड़ पैसा तेरा कल्याण होगा, हमको जिमायेगा तो तेरा कल्याण होगा। हमारे पेट में तेरा अन्न डाल। सीधा, यह सीधा नहीं करते? लड्डू, पाव सेर घी और अमुक गुड़... धूल भी नहीं। सुन न अब। तेरा अन्न तो धूल है। सन्तों को, धर्मात्मा सन्तों को सम्यग्ज्ञानी सन्तों को, निर्ग्रन्थ मुनियों को आहार देने का विकल्प भी राग और अंगारे जैसा है। होता है। आहाहा! ऐसे मिथ्यादृष्टि को पोषण का भाव, वह तो महामिथ्यात्व का घूँट और अफीम का कसुंबा है। कसुंबा समझ में आता है? अफीम होती है न, उसे घोले भले प्रकार से। मनुभाई! सब काठी और जमींदार बैठे हों न? लो, बापू, लो बापू! थोडुा कसुंबा। कसुंबा मानो क्या होगा? वह घोलकर सरीखा करे। चाँदी की राब। सस्ता मिले न। सब सुना हुआ है, हों!... एक बाबा बोलता था, चाँदी की राब, भाई! यह क्या कहता है यह? यह रीबडा है न? रीबडा नहीं बीच में (आता)? (संवत्) १९७१ के वर्ष की बात है। एक बाबा था वृद्ध, मर गया बेचारा। चाँदी की राब। परन्तु यदि उसे ऐसा कहे कि अफीम उतर गया, तो सीधा उतर जाये। चढ़ा, चढ़ा, चढ़ा ऐसा जो कहे तो अफीम चढ़े। यह भारी बात। भगवान आत्मा यह चैतन्य के स्वभाव के सन्मुख दृष्टि और अनुभव होने पर भी अनुभवी पंच परमेष्ठी और नौ तत्त्व के कहे हुए शास्त्र की रूचि करता है, इतना भी राग है। आहाहा!

साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी... अर्थात्? मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है परन्तु अभिलाषा अब एकदम पूर्ण होने के लिये है। ऐसे महाजन को **सभी की ओर से राग को छोड़कर, अत्यन्त वीतराग होकर,...** यह विकल्प जो चारित्र के दोषरूप परसमय की प्रवृत्ति है, वह स्वस्वभाव की प्रवृत्ति नहीं। चारित्रवन्त को—सन्त को छठवी भूमिका में गुणस्थान

में मुनि वर्तता हो, आत्मानुभव (हो)। राग को हेय जानकर कण को छोड़ना चाहता है, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता प्रगट हुई है, उसे कहते हैं कि अरे! आत्मा! तेरी पूर्ण मुक्तदशा यदि तेरी चाहिए हो तो यह राग को छोड़ दे। छोड़े कब? छोड़े अर्थात् कि यह राग छोडूँ, ऐसे छूटेगा? **अत्यन्त वीतराग होकर,...** ऐसा। स्वभाव सन्मुख वीतराग की अविकारी परिणति में ढलते हुए छूट जायेगा। उसमें रखने की बुद्धि तो है नहीं, परन्तु अस्थिरता आयी, वह स्वभाव में स्थिरता होने पर छूट जायेगा। ऐसा कर तो साक्षात् तेरा मोक्ष होगा। नहीं तो मोक्ष होगा नहीं। समझ में आया? यह तो पंचास्तिकाय के १७२ का सार है न पूरा सब। सब शास्त्रों का सार। लाख, करोड़ शास्त्र कहे हों भगवान के मुख से। परन्तु सबका सार—यह त्रिकाल चैतन्य की ओर ढलना और राग तथा निमित्त की उपेक्षा करना। पश्चात् महाव्रत और पंच परमेष्ठी का राग हो तो भी उपेक्षा करना और स्वभाव की अपेक्षा करना। यह वीतरागरूप से ढलना और राग को छोड़ना, यह सर्व शास्त्रों का सार है। समझ में आया? इस प्रकार जाने नहीं, माने नहीं, पहिचाने नहीं, उसे स्थिरता का तीन काल में नहीं हो सकता।

जिसमें **अत्यन्त वीतराग होकर,...** क्या कहते हैं? अकषायी होकर। श्रद्धा-ज्ञान में अकषायी हुआ, स्वरूप से अकषायी होकर **जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं...** आहाहा! समझ में आया? देखो, भवसागर। चौरासी के अवतार। फिर देव का अवतार हो तो भी उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोल उछलती है, अंगारे उछलते हैं, स्वर्ग और सेठाई में। **और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त,...** है। जिसका फल कर्म और उसकी अग्नि द्वारा जले हुए हैं, **खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है,...** खलबलाहट। जैसे पानी में कल्लोल उठे न, फिर खलबलाते... पड़े न। **खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है, ऐसे भवसागर को...** यह भवसागर की व्याख्या की। उसे **पार उतरकर...** जा। ऐसे पहले ज्ञान और श्रद्धा में निर्णय कर। समझ में आया? अभी तो भव करना है और उसके भाव। भले एकाध भव अधिक हो परन्तु दूसरे का कल्याण कर दूँ, कल्याण कर दूँ। अभी इसे भव की वासना मिथ्यात्व की पड़ी है।

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि को भव नहीं, तथापि थोड़ा राग रहता है, कहते हैं कि उस

राग के फलरूप से खलबलाते दुख-दु:ख की कल्लोल उछलती है। दु:ख-सुख की कल्लोल। सुख अर्थात् यह लोगों की कल्पना का सुख, हों! वहाँ आनन्द की बात नहीं है। हम सुखी हैं, यह खलबलाता कल्पना का विकल्प उठता है और दु:खी नरक और निगोद। अतिशयता से और कर्माग्नि द्वारा जले हुए **खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से...** अतिशय अर्थात् विशेषता **भयंकर...** खलबलाहट जिसमें-जलसमूह में पड़ी है। कर्मागिन द्वारा तप्त अर्थात् पानी जैसे अग्नि से तपा हो, वैसे कर्माग्नि द्वारा यह संसार तप रहा है। **ऐसे भवसागर को पार उतरकर, शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर,...** यह तो नास्ति से बात की। वहाँ से हटकर भगवान शुद्धस्वरूप परमामृत— परम अमृत का धाम ऐसे समुद्र में प्रवेश कर **शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।** ऐसे जीव अल्प काल में केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त दशा को पाते हैं। परन्तु इस प्रकार से प्राप्त और ज्ञान, श्रद्धा और स्थिरता करे, उसे (प्राप्त होती है), दूसरे प्रकार से वह प्राप्त नहीं होती.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक - ०१-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-५

यह पंचास्तिकाय - समयसार शास्त्र है। पंचास्तिकाय-समयसार शास्त्र। समय अर्थात् आत्मपदार्थ की व्याख्या अथवा समय अर्थात् छहों द्रव्य और पंचास्तिकाय की जिसमें व्याख्या है, उसे पंचास्तिकाय कहा जाता है।

१७२ गाथा में सार वर्णन करते हैं कि इस सब शास्त्र का सार क्या है? अनेक शास्त्र कहे, रचे, सुनाये... उसका सार क्या? यह कहते हैं कि वीतराग होकर... अन्तिम आया है। है न अन्दर? **अत्यन्त वीतराग होकर,...** आत्मा में जो त्रिकाल आनन्द और शुद्धता पूर्ण भरपूर अन्दर शक्तिरूप से पड़ी है, उसे संयोग का आश्रय छोड़कर, पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग का आश्रय, लक्ष्य, अवलम्बन छोड़कर, चिदानन्द प्रभु भगवान पूर्णानन्द से भरपूर आत्मा निजपद है, उसे अवलम्बकर जो कुछ निर्विकल्पता अर्थात् वीतरागी अविकारी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता होती है, वह मोक्षमार्ग और सर्व शास्त्रों का सार है। विकार और संयोगी निमित्त चीज़, उसकी उपेक्षा कराकर और एक ओर चैतन्य दीवार आनन्दकन्द ध्रुव भगवान का अवलम्बन लिवाकर, उसमें वीतरागता प्रगट हो, वह मोक्षमार्ग है और वह सर्व शास्त्र का सार है। समझ में आया? ऊपर आ गया था।

अत्यन्त वीतराग होकर,... शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाहकर, शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है। यह बात आ गयी है। —**विस्तार से बस हो।** अब आचार्य जरा विस्तार करना चाहते तो हैं... भाई! विस्तार करना चाहते हैं, परन्तु विस्तार से वश होओ अर्थात् कि अब कहा है, उसका संक्षिप्त कहूँगा, इससे अधिक विस्तार से वश होओ। **जयवन्त वर्ते वीतरागता...** अर्थात् जिसमें भगवान आत्मा अकेला ज्ञान में भासित हो, श्रद्धा में प्रतीति में आये और दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभराग से पृथक् होकर स्वरूप की रमणतारूप वीतरागता की पर्याय प्रगट करे, वह वीतरागपना जयवन्त वर्तो। समझ में आया?

जो कि साक्षात्मोक्षमार्ग का सार होने से... जो साक्षात् मोक्ष अर्थात् पूर्ण आत्मा

की निर्मल आनन्ददशा को प्राप्त करने का यह स्वभाव वीतरागीदशा, उसे प्राप्त करने का एक ही मार्ग और सार है। बीच में पूर्ण होने से पहले दया, दान, व्रतादि के उसे अविरोधरूप से ऐसे विकल्प होते हैं, यह आगे आयेगा। समझ में आया? उसे निमित्तरूप से अनुकूलता के वह विकल्प हों, परन्तु वह कहीं मूल सार नहीं है। उससे प्राप्त नहीं होता। चैतन्यबिम्ब गोला आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु अन्तर्मुख की दृष्टि से जो प्रतीति में आया, ज्ञान में आया और रमणता हुई, वह एक ही वीतरागीदशा, एक ही मोक्ष का मार्ग और सर्व शास्त्रों का वह तात्पर्य है। समझ में आया?

यह **वीतरागता जो कि साक्षात्मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्रतात्पर्यभूत है।** यह शास्त्र का सार है। शास्त्र का तात्पर्य यह है कि चैतन्य के वीतरागीभाव के प्रति उसकी प्रगट दशा हो और प्रगट रमणता हो, वह एक ही शास्त्र को कहना है और तात्पर्य है। अब तात्पर्य शब्द आया, इसलिए तात्पर्य दो प्रकार के हैं।

तात्पर्य द्विविध होता है : दो प्रकार से हैं, सार दो प्रकार से हैं। **सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य।** सूत्र... नीचे है (फुटनोट में) दो है। **प्रत्येक गाथासूत्र का तात्पर्य, सो सूत्रतात्पर्य है और सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य, सो शास्त्रतात्पर्य है।** सूत्र तात्पर्य—एक-एक गाथा में कहा हो कि पंच परमेष्ठी के प्रति का राग, वह चन्दनवृक्ष में जैसे अग्नि लगावे और वह जले, उसका अर्थ यह कि वह राग छोड़नेयोग्य है, ऐसा प्रत्येक गाथा में तो कहा था। परन्तु अब सर्व सूत्र के तात्पर्यरूप से कहते हैं कि सूत्रतात्पर्य... **सूत्रतात्पर्य प्रत्येक सूत्र में (प्रत्येक गाथा में) प्रतिपादित किया गया है; शास्त्रतात्पर्य अब प्रतिपादित किया जाता है :—** देखो! पूरा गाथा का विस्तार अब।

सर्व पुरुषार्थों में सारभूत ऐसे मोक्षतत्त्व का प्रतिपादन करने के लिये... हेतु तो यह। **सर्व पुरुषार्थों में सारभूत...** पुरुष + अर्थ अर्थात् आत्मा का प्रयोजन। पुरुषों के चार विभाग हैं—पुरुषार्थ के। नीचे है। धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् लक्ष्मी, काम अर्थात् विषय और चौथा मोक्ष। यह चार प्रकार का पुरुषार्थ है। वीर्य स्फुरित करता है चार में, ऐसा। परन्तु सर्व पुरुष के प्रयोजन में मोक्ष सारभूत है, तात्त्विक पुरुष अर्थात् आत्मा का अर्थ अर्थात् प्रयोजन है। पुण्य का पुरुषार्थ वह तो आत्मा को नुकसानकर्ता है। शुभभाव

का पुरुषार्थ। समझ में आया? जिसे धर्म पुरुषार्थ लोग कहते हैं, व्यवहारधर्म। निश्चय आत्मा के शुद्ध ज्ञानानन्द की, स्वसंवेदनज्ञान होने पर उसकी पूर्ण वीतरागता-अविकारता प्रगट नहीं हुई; इसलिए साथ में शुभराग होता है। वह शुभराग पुण्यपुरुषार्थ है। वह आत्मा को प्रयोजन है नहीं। वह प्रयोजन नहीं। लक्ष्मी का पुरुषार्थ कि कमाऊँ, ऐसा करूँ, ऐसे कमाऊँ, वह पापपुरुषार्थ है। शान्तिभाई। वह पापपुरुषार्थ है। दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख पैदा करे और माने कि आहा..! हमने पुरुषार्थ (किया)। यह वृत्ति उठती है कि ऐसे लक्ष्मी को कमाऊँ, वह पापपुरुषार्थ है। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति के परिणाम, वह पुण्यपुरुषार्थ है। दोनों निन्दनीक है।

और तीसरा विषयभोग की वासना का पुरुषार्थ, वह भी पापपुरुषार्थ है। अर्थात् अर्थ और काम दो अशुभभाव के पुरुषार्थ है और दया, दान, व्रत, तप के विकल्प, वह शुभभाव का पुरुषार्थ है। परन्तु ये तीनों ही हीन हैं। इस आत्मा का वह प्रयोजन सिद्ध नहीं करता। चौथा पुरुषार्थ मोक्ष कि जो आत्मा की पूर्ण वीतरागता और पूर्ण आनन्द के प्रयोजन को, आनन्द की दशा के (प्रयोजन को सिद्ध करता है)। प्रत्येक प्राणी सुख को चाहता है और दुःख से डरता है। जब उसे सुख की-पूर्णानन्द की प्राप्ति ऐसा जो मोक्ष, वही आत्मा का वास्तविक पुरुष का प्रयोजन और अर्थ है। समझ में आया इसमें कुछ? यह पैसे का पुरुषार्थ कहते हैं... कहाँ गये? ऐ... रतिभाई! पैसे का पुरुषार्थ कहते हैं या प्रयोजन नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब मुनि की बात कहाँ! यह तो आत्मा का हित करना हो उसे। आत्मा का हित करना हो, उसे भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति है, सुखानन्द स्वरूप है उसका, जिसे सुख की प्राप्ति का प्रयोजन हो उसे धर्म, अर्थ और काम, वह वास्तव में प्रयोजनभूत नहीं है। प्रभुभाई! बराबर होगा यह? मोहनभाई! तथापि वहाँ ही लगे हैं अधिक।

यहाँ तो कहते हैं कि पहले समझण के धोरण को तू स्पष्ट कर। समझण के धोरण को तू स्पष्ट कर। कि जो शुभ परिणाम दया, दान, व्रत, तप के आवे... यह आगे कहेंगे,

हों! यह आत्मा का वास्तविक प्रयोजन नहीं है। पैसे को पैदा करने का भाव... पैदा भाव से करता है या नहीं, यह प्रश्न अभी नहीं है। यह तो पुण्य हो, तत्प्रमाण मिलता है। परन्तु इस पुरुषार्थ की गति राग में जाती है, ऐसे सट्टा करूँ और अमुक करूँ और यह अमुक करूँ। रतिभाई! गति तो राग की (ओर) जाती है या नहीं? वहाँ विकल्प उठता है इसलिए। यह राग, वह पापराग है और वह आत्मा का प्रयोजन नहीं है, हों! उसमें तो फोड़ा होता है, कहते हैं। रोग का बड़ा फोड़ा होता है। भरनिंगळ। कभी उसका अन्त आवे नहीं। ऐसे पाप का पुरुषार्थ, पैसे का और भोग का और तीसरा पुण्य का—धर्म का। धर्म अर्थात् पुण्य। यह तीनों पुरुषार्थ से आत्मा का वास्तविक प्रयोजन है नहीं।

मोक्ष, वह पुरुष-अर्थ, पुरुष का वास्तविक प्रयोजन। मोक्ष ही सारभूत और तात्त्विक पुरुष अर्थात् आत्मा का अर्थ अर्थात् प्रयोजन है। यह **सर्व पुरुषार्थों में...** सर्व अर्थात् चार लिये, उनमें **सारभूत ऐसे मोक्षतत्त्व का प्रतिपादन करने के लिये...** हम तो आत्मा को पूर्णानन्द की प्राप्ति कैसे हो, ऐसे तत्त्व का प्रतिपादन करने के कारण से यह प्रतिपादन करते हैं। **जिसमें पंचास्तिकाय...** यह वर्णन करते हुए जिसमें आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश ऐसे पंचास्तिकाय का स्वरूप—स्वभाव क्या, यह कहा। **षड्द्रव्य के स्वरूप के प्रतिपादन...** कहा। छह द्रव्य। इसके **द्वारा समस्त वस्तु का स्वभाव दर्शाया गया है,...** छह वस्तु। आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति (आदि) यह अभी सिद्ध नहीं होगा। सब बात पहले कही जा चुकी है। लॉजिक, न्याय-युक्ति से सब बात कही जा चुकी है। उन सब द्रव्यों का-पदार्थों का स्वतः स्वभाव क्या है, यह सब कही जा चुकी बात है।

अब कहते हैं, **नव पदार्थों के विस्तृत कथन द्वारा...** इसमें नौ तत्त्व की बात की है। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, (ये) दो मिलकर आस्रव, स्वभाव अटके उसे बन्ध, द्रव्यबन्ध जड़ और इसकी शुद्धता की स्वभाव में से एकाग्रता प्रगट हो, शुद्धता की (वह) संवर, शुद्धता की वृद्धि अर्थात् धर्म हो, वह संवर शुद्धता का, उसकी वृद्धि हो, वह निर्जरा, उसकी पूर्णता हो वह मोक्ष। ऐसे नव तत्त्व के विस्तार से कथन कहा गया है, उसमें **बन्ध-मोक्ष के सम्बन्धी (स्वामी),...** का वर्णन कहा गया है। समझ में आया? बन्ध-मोक्ष का सम्बन्ध। बन्ध का स्वामी कौन? पुण्य और पाप, ऐसा भावबन्ध जो विकार,

उसका स्वामी चैतन्य है। उसके सम्बन्ध में यह होता है। और जड़बन्ध जो होता है कर्म का, उसका स्वामी जड़ है, उसका स्वामी चैतन्य नहीं है। समझ में आया इसमें?

यह विस्तार तो जरा पूरे पंचास्तिकाय को समयसार कहा गया है और उसका सार इसमें वीतरागरूप से वर्णन किया गया है। इसलिए कहते हैं, नव तत्त्व के पदार्थ का विस्तृत कथन द्वारा जिसमें बन्ध-मोक्ष के स्वामी वर्णन किये, अकेला आत्मा अनादि से मोक्षस्वरूप ही है, ऐसा नहीं। उसकी पर्याय में—हालत में राग और विषय कषाय ऐसे जो भ्रमणा के परिणाम, उसमें अटका हुआ, वह बन्धभाव है, भावबन्ध है। वह भावबन्ध चैतन्य के अधिकार से होता है, उसमें जड़ का अधिकार नहीं है। समझ में आया? यह निमित्त को पाकर कर्म के रजकण जड़रूप से बँधते हैं, उस जड़ की अवस्था का स्वामी जड़ है। ऐसे कथन बन्ध और मोक्ष के स्वामी के कथन आ गये हैं। ....भाई!

बन्ध-मोक्ष के आयतन... आयतन है न पाठ में तो? ठिकाना अर्थात् कि भाव। बन्ध और मोक्ष के भाव। वह बन्ध-मोक्ष के स्वामी की बात हो गयी। भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, तथापि पुण्य-पाप के, दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम में अटका, वह भावबन्ध का स्वामी चैतन्य है। और जड़बन्ध की निमित्त दशा जो हो, उस जड़ की अवस्था का स्वामी जड़, उसका स्वामी आत्मा नहीं। ऐसे भिन्न-भिन्न व्याख्या पहले कही जा चुकी है। वापस संक्षिप्त इसका कहे गये का कर डालते हैं।

बन्ध-मोक्ष के भाव। बन्ध-मोक्ष के आयतन, बन्ध-मोक्ष का ठिकाना। ठिकाना अर्थात् कहाँ रहता है मोक्ष, वह यहाँ बात नहीं है। उसका भाव उसका ठिकाना। बन्ध, उसका विकार भाव, वह उसका स्थान और भाव है तथा मोक्ष की निर्मलदशा पूर्णानन्दी मोक्ष का भाव और मोक्ष का आयतन है और मोक्ष का स्थान है। समझ में आया? मोक्ष का स्थान मुक्तिशिला पर रहता है, वह यहाँ बात नहीं है। बन्धवाले जीव निगोद में रहते हैं और नीचे रहते हैं और वे ऊपर रहते हैं, ऐसा नहीं। यहाँ तो आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है। उसकी भावदशा, भावकलंक प्रचुर विकारदशा मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव, शुभ-अशुभभाव वह उसका बन्धभाव है। वह बन्धभाव है और उससे छूटकर आत्मा पूर्णानन्द की पूर्ण शुद्धता को प्राप्त करे, वह आत्मा का मोक्षभाव है। क्या कहा... भाई? किसमें आनन्द? अनन्त आनन्द है न! अनन्त आनन्द है।

मुमुक्षु : कलंक....

पूज्य गुरुदेवश्री : कलंक, हाँ ठीक। अरे! विकारभाव तो कलंक है या नहीं? विकारभाव तो कलंक है न! एकेन्द्रिय जीव जो आलू, शक्करकन्द में पड़े हैं। भगवान गोम्मटसार में कहते हैं, भावकलंक पहुरा। वह आत्मा तो भगवानस्वरूप है, परन्तु उसके भान बिना भूला हुआ भगवान, वह विकार की वृत्तियाँ शुभ और अशुभ की एकत्वबुद्धि से पड़ा हुआ भावकलंक प्रचुर है। कलंक है। भगवान आत्मा के ऊपर विकारभाव, वह कलंक है। उस कलंक की प्रचुरता के कारण, वह निगोद की दशा सेवन कर रहा है। कर्म के कारण से नहीं। जड़ जड़ में है, उसके कारण से आत्मा में नहीं। परन्तु इस बात में तो बहुत सिद्धान्त निश्चित कराते हैं। परन्तु अपने थोड़ा-थोड़ा ले जाना है न! समझ में आया?

ऐसी पर्याय हल्की है, हल्की दशा में ऐसा विकार भावबन्धरूप से है। वह भावबन्ध, वह इसका भाव और आयतन और ठिकाना है। उसका ठिकाना कर्म में और जड़ में रहा नहीं। इस भावबन्धन को गुलाँट मारकर अबद्धस्पृष्ट आत्मा प्रभु विराजता है, ऐसी दृष्टि और स्थिरता द्वारा जो पूर्णानन्द की प्राप्ति हो, वह आत्मा का मोक्ष—भावमोक्ष, पर्यायमोक्ष, मोक्षरूपी आयतन मोक्ष ठिकाना-मोक्षस्थान। यह मोक्षस्थान है। मुक्तिशिला और ऊपर, वह तो फिर रहने की निमित्त की (बातें हैं)। समझ में आया?

और बन्ध-मोक्ष के विकल्प (भेद) प्रगट किए गए हैं,... तीन बातें ली हैं बन्ध-मोक्ष में। पहले में बन्ध और मोक्ष। दो पर्यायों के बन्ध-मोक्ष के स्वामी कौन? फिर बन्ध-मोक्ष के भाव कौन? और बन्ध-मोक्ष के भेद कितने? बन्ध के द्रव्य और भाव दो भेद हैं। एक जड़बन्ध है परमाणुओं का, एक विकारी भावबन्ध है। उसके मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद इत्यादि अन्तर्भेद होते हैं। मोक्ष के भेद—एक द्रव्यमोक्ष, (एक) भावमोक्ष। परमाणु कर्म से छूटे, वह द्रव्यमोक्ष कहलाता है। आत्मा अशुद्धता से छूटकर पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति करे, उसे भावमोक्ष कहा जाता है। यह मोक्ष के भेद वर्णन किये। पंचास्तिकाय में इसका बहुत सब वर्णन आ गया है।

अब आया जो वर्णन करना है वह। यह वर्णन किया तो है, कहते हैं। **निश्चय**-

व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है... निश्चयमोक्षमार्ग अर्थात् आत्मा में पूर्णानन्द के ओर की जो पुरुषार्थ की गति, ऐसा जो स्वभाव, उसमें ढला है भाव—श्रद्धा, ज्ञान और अविकारी दशा, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। और उसमें बीच में सच्चे सन्त, गुरु, देव और शास्त्र ऐसी श्रद्धा आदि का राग... यह आयेगा विस्तार, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग के उपचाररूप से कथन आ गया है। **जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है...** सच्चा व्यवहार और सच्चा निश्चय। सच्चा व्यवहार और सच्चा निश्चय। इसका कथन किया गया है। यह अविरुद्ध में इसका अर्थ विशेष लेंगे।

साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागपने में जिसका समस्त हृदय स्थित है... भगवान की वाणी त्रिलोकनाथ के जितने शास्त्र, उनका हृदय—पेट अकेला अविकारी भाव आत्मा में प्रगट करना और विकार से हटना, यह पूरे सर्व शास्त्र का केवलियों का और शास्त्र का यह हार्द अर्थात् पेट है। आहाहा! समझ में आया? पहले बात की है कि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप सम्यक् निरूपण करने में आया। परन्तु साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागता अकषायदशा। अकषाय अर्थात् विकाररहित जैसा उसका स्वरूप है, ऐसी जिसकी शक्ति की व्यक्तता-प्रगटता, अविकारी वीतरागदशा प्रगट हो, वही साक्षात् समस्त वीतराग ने कहे हुए शास्त्रों का हृदय है। यह उसका हृदय है। अब वे लोग कहते हैं कि व्यवहार बीच में आवे, वह उनका हृदय है। मूलजीभाई! बापू! आवे, यह तो बराबर सिद्ध करेंगे। देखो! आवे, यह तो बराबर सिद्ध करेंगे। परन्तु वह कहीं हृदय नहीं है। यदि हृदय हो तो सर्वज्ञ वीतराग अल्पज्ञ और सराग छोड़कर सर्वज्ञ और वीतराग क्यों हुए? परमात्मपद को प्राप्त हुए, वह अल्पज्ञ और राग का अभाव करके सर्वज्ञ और वीतराग अविकारी पूर्णानन्द को प्राप्त हुए। यह बात ही जगत के पास प्रसिद्ध करके उनका हृदय वीतरागी विज्ञानघन था। वही वीतराग और विज्ञानघन में उन्मुख करने के लिये उनका पूरा हृदय शास्त्र की चाबी। अनेक हजार, लाख शास्त्र के कथन हों।

चार प्रकार के कथन हैं। एक अध्यात्म का कथन, एक चरण, करणानुयोग, चरण का अर्थात् कि पुण्य-पाप का कथन, उसके फल का कथन और एक सूक्ष्म प्रत्येक तत्त्व के वर्तमान परिणाम कैसे होते हैं, त्रिकाल कैसे होते हैं, उसका कथन, इन

सबका तात्पर्य, शास्त्र का हार्द आत्मा को पर से विमुख करके इस स्वभाव के सन्मुख झुकाना, वह इसका हार्द है। समझ में आया?

ऐसे इस यथार्थ पारमेश्वर शास्त्र का,... देखो! यह भागवत वाँचन होता है। समझ में आया? यह परमेश्वर शास्त्र। देखो! नीचे अर्थ किया है। पारमेश्वर, ऐसा है न? परमेश्वर के बदले पारमेश्वर (कहा)। यह परमेश्वर का शास्त्र है। यह परमेश्वर का शास्त्र है। वीतराग भगवान का शास्त्र, यह भागवत् शास्त्र है। दैवी और पवित्र शास्त्र है। इसके इतने नाम हैं। समझ में आया? आत्मा की सर्वज्ञशक्ति जो अन्दर में पड़ी है, उसे प्रगट करने की दशा का जिसमें वर्णन है, ऐसे पारमेश्वर भागवत शास्त्र इसे कहा जाता है। समझ में आया?

परमार्थ से वीतरागपना ही तात्पर्य है। वास्तव में मुनि और परमात्मा और केवलियों ने यह सब विकल्प की दशायें और निमित्त के संग का लक्ष्य छुड़ाकर त्रिकाल भगवान आनन्द की ओर के लक्ष्य में जुड़ाकर श्रद्धा करके स्थिरता और वीतरागभाव प्रगट करे, वह एक ही इसका हार्द और पेट है। चार अनुयोग को खोजो तो इस दृष्टि से शास्त्र का हृदय वीतरागता इसमें से निकलेगी। उसमें दूसरा राग करना और ऐसा निकलेगा नहीं। राग आवे, उसकी अनुकूलता का ज्ञान करने का निकलेगा। परन्तु कहीं राग करना और पुण्य करना और यह करना, ऐसा शास्त्र के हृदय में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सो इस वीतरागपने... अब आया, देखो! **व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है,...** अब आचार्य जरा (कहते हैं), भगवान आत्मा वह शुद्ध ज्ञानानन्द की मूर्ति जिस प्रकार सर्वज्ञ ने देखा, वैसा आत्मा दृष्टि में लिया, प्रतीति में लिया, उसका ज्ञान किया और उसमें रमणता की वीतरागी चारित्रदशा हुई। वह तो निश्चय। उस वीतरागपने को ऐसा जो वीतरागभाव उसे **व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है,...** क्या कहते हैं? अब जरा आचार्य अलौकिक रीति से बात (करते हैं)। निमित्त कैसा होता है और विकल्प की जाति वहाँ कैसी होती है, यह वर्णन करते हैं।

भगवान आत्मा जब सर्वज्ञपद के भाव को प्राप्त करने के लिये सर्वज्ञपद शक्ति में

ढला, शक्ति की ओर ढला, वहाँ सम्यग्दर्शन और चारित्र के अंश नाम हुए, वह तो निश्चयमोक्षमार्ग है। उसके साथ अविरोधरूप से व्यवहार मार्ग होना चाहिए। अर्थात्? कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो, पूरे चैतन्यतत्त्व की प्रतीति, अनुभव और ज्ञान (हो) और उसकी श्रद्धा में कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा का राग आवे, रहे, इन दोनों का मेल नहीं है। तो उसे निश्चय रहेगा नहीं और व्यवहार उसका है नहीं। समझ में आया?

केसर लेने जाये तो उसके डिब्बे और बरनियाँ होती हैं, बोरियाँ नहीं होती। इतना निमित्त में अन्तर पड़ता है। इसी प्रकार जिसे भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध जैसा सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा, ऐसी जिसे श्रद्धा हुई, ज्ञान हुआ, ऐसा जो निश्चयमोक्षमार्ग हुआ तो उसे विरोध न आवे ऐसा अविरोधी व्यवहार होता है। कोई कहे कि हमको सम्यग्दर्शन हुआ और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानता है और उनका राग हो, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे निश्चय का भान नहीं और उसे व्यवहार हो नहीं सकता। न्यालचन्दभाई! समझ में आया? निश्चय की दृष्टि और ज्ञान की जहाँ सच्ची दशा हुई तो सत्य जो स्वयप है पूर्णानन्द, उसकी जहाँ दृष्टि और ज्ञान हुए तो सत्य परमेश्वर ने जो एक समय में त्रिकाल ज्ञान वीतराग परमात्मा निर्दोष परमात्मा को श्रद्धा करने का उसे राग होता है। परन्तु जो कुदेव, जिसने अल्प ज्ञान में सर्वज्ञ मनाया हो, राग की दशा वर्तती हो और वीतराग अथवा निर्दोषता मनवाते हों, उनकी भी श्रद्धा का राग साथ में हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। समझ में आया?

अथवा इस सच्ची श्रद्धा का ज्ञान और भान हुआ तो कुशास्त्र कि जिसमें एकान्त तत्त्व का कथन है, जिसमें वास्तविक अनेकान्तस्वरूप की गन्ध है नहीं, ऐसे शास्त्र को भी सच्चे मानता हो और निश्चय सम्यग्दर्शन हो तो इन दो को अविरोध कहलायेगा? तीन काल में (कहलाये) नहीं। समझ में आया? यह तो भाई, १७२वीं गाथा में विशेष निश्चय और व्यवहार की सन्धि का अविरोधपना क्या है, उसे यदि समझे तो उसको सच्ची वीतरागता होती है और वह राग का भाग है, उसे व्यवहार से जाननेयोग्य है, ऐसा जानने में आता है। समझ में आया इसमें?

पंचास्तिकाय कहा था न? छह द्रव्य कहे थे न? ऐसे कहनेवाले और ऐसे

जाननेवाले जो सर्वज्ञ हैं और ऐसे स्वरूप को जानकर स्वरूप के साधनेवाले गुरु हैं, ऐसे शास्त्र जिन्होंने स्वतन्त्रता के जिस प्रकार से अनेकान्त है, उसे ढिंढ़ोरा पीटकर कहा है, यह शास्त्र को मानने का भाग, यह गुरु को और देव को मानने का राग निमित्तरूप से निश्चय के भान के काल में अविरोधरूप से ऐसा राग उसे होता है। परन्तु उसके राग में कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र भी सच्चे और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र भी सच्चे—ऐसा विकल्प और मान्यता होवे और कहे कि हमारा व्यवहार ऐसा। निमित्त ऐसा चाहे जिस प्रकार का हो, निश्चय में हमारे भूल नहीं है। तो कहते हैं कि वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। उसे निश्चय और व्यवहार के अविरोध की खबर नहीं। समझ में आया इसमें? अमरचन्दभाई! बहुत कठिन बात! इसमें तो बहुत समझना पड़ेगा। समझना... समझना। परन्तु तू है कौन? समझण का पिण्ड, वह तू। परन्तु तू है कौन? समझण का सत्त्व वह आत्मा। अर्थात् उसे समझने की ही क्रिया बाकी रहती है, बाकी कुछ उसका होता नहीं। परन्तु वह समझण की सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान में ऐसा कहे कि हमको निश्चय सम्यग्दर्शन तो है, परन्तु अभी हमको चाहे जिस सम्प्रदाय में हमें सर्वज्ञ के अतिरिक्त के सच्चे तत्त्व कहनेवाले के अतिरिक्त या उनके कुशास्त्र हों, उनकी भी हमें श्रद्धा तो है, उसमें भी श्रद्धा तो हमको है। मूलजीभाई! व्यवहार चाहिए न? व्यवहार चाहिए न? वह व्यवहार है हमारे पास।

मुमुक्षु : वह व्यवहार ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार नहीं और ऐसा हो वहाँ अन्दर निश्चय नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? यह सूक्ष्म तो पड़े, ऐसा है, भाई! परन्तु अब बात तो जो हो, वह आयेगी। नहीं हो, वह कहीं आवे, ऐसी नहीं है। समझ में आया?

यह **वीतरागपने को...** अर्थात् सम्यग्दृष्टि ऐसा जो आत्मा का भाव और सम्यग्ज्ञान ऐसा जो आत्मा का भाव, और स्वरूप की रमणता ऐसा चारित्रभाव उसे और व्यवहार को अविरोध है। यह तो चौथे गुणस्थान की बात की है। पाँचवाँ गुणस्थान जब आत्मा की विशेष दशा हो तब... नीचे कहा है। भाई ने—पण्डितजी ने अर्थ किया है। देखो नीचे (फुटनोट में)। दो, अविरोध के अर्थ में कहा है। **छठवें गुणस्थान में मुनियोग्य...** छठवाँ गुणस्थान अर्थात्? आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन अनुभव हुआ। यह आत्मा पूर्णानन्द

प्रभु ऐसा साक्षात्कार प्रतीति में आया ज्ञान द्वारा। उसमें तदुपरान्त स्वरूप की स्थिरता की शान्ति का अंश भी उग्र बढ़ा। उसे पंचम भूमिका, गुणस्थान की पाँचवीं भूमिका कहते हैं। रतिभाई! श्रावक की (भूमिका कहते हैं)। यह सब श्रावक होंगे न पाँचवें गुणस्थानवाले?

मुमुक्षु : व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से धूल भी नहीं। व्यवहार कैसा? उसके साथ तो लगता है यह। निश्चय बिना का व्यवहार नहीं और निश्चय में व्यवहार अनुकूल हो तो ऐसा ही हो, यह वर्णन करने के लिये पूरी यह गाथा है। गाथा में तो वीतरागपना वर्णन किया है, परन्तु अमृतचन्द्राचार्य निश्चय की वीतराग श्रद्धा और वीतरागी गुणस्थान आंशिक पंचम प्रगट हुआ तो उसे और मुनिपना प्रगट हुआ अन्दर—छठी भूमिका, स्वरूप की दशा के आरोहण में आनन्द की उग्रता की लहरें अन्दर आयी, भूमिका छठी सन्त की-मुनि की। जिसके आत्मा में आनन्द भरा है। एकाकार होकर लहरें पर्याय में किनारे आयी आनन्द की। ऐसी छठे गुणस्थान में मुनियोग्य शुद्ध परिणति। देखो! छठवें गुणस्थानवाले सन्त को मुनि योग्य शुद्ध परिणति अर्थात् वीतरागी आनन्द की दशा होती है।

निरन्तर होना तथा... यह निश्चय। **महाव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का...** उसे तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ऐसा ही विकल्प उठता है। समझ में आया? अहिंसा—छह काय के जीव को न मारूँ और छह काय के जीव की दया का विकल्प उठे, बस इतना। पालन कर सकूँ, यह प्रश्न नहीं। परन्तु यह छह काय की दया का विकल्प उठे, वह अविरोधरूप से छठवें गुणस्थान का व्यवहार है। और भगवान ने कहे हुए षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय, नौ पदार्थ को प्ररूपित करे, कहे, उसे जाने, ऐसे ज्ञान का भाग, वह निश्चय ज्ञान की भूमिका में अनुकूलरूप से शुभभाव का भाव, उसे यह अनुकूल है। इससे दूसरे ज्ञान उल्टे माने हों, परन्तु यह सच्चा, यह भी सच्चा और व्यवहार, वह सब रागमार्ग है और उससे निश्चय प्राप्त होता है, उसके तो व्यवहार और निश्चय दोनों झूठे हैं। नवरंगभाई! यह सूक्ष्म है इसमें। भानुभाई! ऐसा कुछ पता खाये,

ऐसा नहीं। वे पैसे झट आ गये, ऐसे यह नहीं मिले ऐसा। पैसा तो मुफ्त में ही मिले, ऐसा है बहुतों को। समझ में आया इसमें? हमारे एक गोकुलभाई हैं। है न चूडावाले। गोकुलदास शिवलाल। अभी पचास-साठ लाख पैसे (रुपये) हो गये। पहले एकदम हो गये थे, थोड़े में से एकदम बीस लाख। फिर महिलाओं ने कहा दोनों को, यहाँ सोनगढ़ आनेवाले न, महाराज धर्म का कहते हैं। कुछ धर्म तो करो। पैसा कहाँ मैं लेने गया था? पैसे कैसे आ पड़े? उसी प्रकार धर्म कर्म में होगा तो आ पड़ेगा। इसके बाद मेरे पास बात की कि ऐसा बोलते हैं यह तो। अब धूल में... धर्म, कर्म में लिखा है? कर्म की मिट्टी पड़ी है, वह निमित्त तो किसे हो? पैसा आवे, जाये, स्त्री-पुत्र आवे, जाये, उसमें निमित्त होते हैं। धर्म-बर्म कहाँ कर्म में लिखा था?

धर्म तो आत्मा के पुरुषार्थ के प्रयत्न परायण से प्रगट होता है। वह कहीं कर्म में लिखा हो और हमारे कर्म में होगा तो धर्म होगा। मूढ़ है। कर्म तो मिट्टी-धूल पड़ी है। उसमें तो पड़ी है पुण्य-पाप के रस देने की शक्ति। यह संयोग मिले और टले, उसमें निमित्त होता है। उसमें धर्म देने की शक्ति पड़ी है, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है।

आचार्य कहते हैं, अहो! अमृतचन्द्राचार्य वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में अमृत के झूले में झूलते हुए सातवीं भूमिका घड़ीक में आती है, अप्रमत्त दशा। घड़ीक में विकल्प उठता है तो छठवें में (आते हैं)। वे कहते हैं कि भूमिका को अविरोध उसका व्यवहार होता है। नवरंगभाई! होता है, उसकी बात है, हों! आदरणीय या यह प्रश्न अभी यहाँ नहीं है। सम्यग्दृष्टि नाम धरावे और सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने कहे हुए शास्त्र, उन्होंने कहे हुए देव और उन्होंने कहे हुए गुर सन्त मुनि निर्ग्रन्थ उनके बिना मान्यता दूसरी हो और यहाँ निश्चय समकित हो, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। समझ में आया?

ऐसा जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का शुभराग और उन्होंने कहे हुए शास्त्र के पठन का विकल्प शुभभाव और उन्होंने कहे हुए महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। एक भी वस्त्र-पात्र लेने की वृत्ति नहीं उठती और नग्नपना

आदि रहे, ऐसा शुभ विकल्प उठे, वह निश्चय की भूमिका के योग्य यह व्यवहार है। समझ में आया? वह निश्चय की अकेली बात हो तो अच्छी लगे। उसके साथ व्यवहार के कैसे विकल्प की जाति होती है, ऐसा यहाँ बतलाना चाहते हैं। उस जाति में-भात में अन्तर हो और कहे कि हमको छठवाँ गुणस्थान है, हम मुनि हैं या श्रावक हैं और सम्यग्दृष्टि हैं, भ्रम में पड़ा हुआ भ्रम के झूले में झुलनेवाला है। दामोदरभाई! यह क्या कहा जाता है? दामोदरभाई! अविरोध। निश्चय और व्यवहार अविरोध होगा? है तो विरोध। निश्चय से तो विरोध, परन्तु यह भूमिका जहाँ मुनि की अन्तर्दशा छठवीं भूमिका वर्ते उसे **महाव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का यथायोग्यरूप से होना, वह निश्चयव्यवहार के अविरोध का (सुमेल का) उदाहरण है।** इसका मेल इतना है। वहाँ ऐसे ही राग का भाग होता है। महाव्रतादि आदि शब्द है न? उसमें यह सब विकल्प—वस्त्र लेना, पात्र लेना, छोड़ना, रखना, यह मुनि की दशा में उस विकल्प का अभाव होता है। ऐसी दशा में वह विकल्प नहीं होता तीन काल-तीन लोक में। चन्दुभाई! भारी कठिन! अकेला माल वर्णन करे तो ठीक पड़े परन्तु बारदान भी मालवाला हो तो बारदान ऐसा होता है। केसर का कोई यह बारदान बोरिया किसकी? शण की, शण की बोरियों में केसर लेने जाता होगा कोई? और शण की बोरी कहीं केसर की कीमत में गिनी जाती होगी? इसी प्रकार भगवान आत्मा केसर समान शुद्ध चैतन्य दृष्टि, ज्ञान और रमणता के साथ व्यवहार का अविरोध अर्थात् मेल हो तो ऐसे विकल्प का अहिंसा पूर्ण, पर की दया का विकल्प, सत्य का यथार्थ स्थापन या बोलना, असत्य का छोड़ना, ऐसे विकल्प उसे होते हैं। परिग्रह का त्याग, अपरिग्रहरूप से नग्न आदिरूप से रहना, ऐसी छठवीं भूमिका की शुद्धपरिणति की दशा हो, उसे ऐसा शुभभाव सुसंगत और व्यवहार से मेलवाला है। गजब समझने का। परन्तु उसमें कितना समझना? सवेरे की बातों का पार नहीं। दोपहर में कितने प्रकार। रतिभाई! पकड़ में आवे ऐसी सब बात? पकड़ में आती होगी? हाँ करते हैं। पहले से तो अच्छा किया। पकड़ में आये ऐसी है। समझ में आये ऐसी नहीं, ऐसी किसकी? परन्तु यह तो हाँ किया, पहले से हाँ किया। प्रभुभाई! समझ में आये ऐसी है या नहीं? समझ में आये ऐसा है। समझ में आये ऐसा है, वह समझाया जाता है। समझ में आये ऐसा न हो, वह समझाया जाये?

यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य उसकी निश्चय-निश्चय की बातें करनेवाले तो बहुत हुए हैं अभी। समझ में आया? कि निश्चय इसे कहा जाता है। चन्दुभाई! पुस्तकें इतनी सब (बाहर) प्रकाशित हो गयी हैं, तीन लाख, सवा तीन लाख। एक-एक बात का फोड़ पाड़कर। और पढ़-पढ़कर बातें करनेवाले बहुत निकले परन्तु निश्चय के साथ व्यवहार के मेल की खबर न हो, उसका निश्चय भी खोटा है। समझ में आया?

कहते हैं, आत्मा की पवित्र दशा ऐसा जो अविकारी भाव, जो आंशिक प्रगट हुआ, उसकी छठवीं भूमिका मुनि की उसके साथ सुसंगत मेलवाला तो अहिंसा आदि का भाव, झूठ न बोलना और परिग्रह न रखना, वस्त्र आदि न रखना, निर्दोष आहार लेने की वृत्ति का विकल्प ऐसे शुभराग का शुद्धपरिणति के साथ मोक्षमार्ग निश्चय के साथ ऐसे राग की भूमिका का मेल है। इससे दूसरा राग माने कि ऐसा राग भी होता है, चाहे जिस प्रकार का निमित्त होता है, (ऐसा नहीं है)। यह निमित्त कहो या व्यवहार कहो। समझ में आया? शुद्ध उपादान की परिणति जब इतनी चले, तब उसे निमित्त में ऐसा ही शुभराग होता है, यह निश्चय और व्यवहार का सुसंगत अविरोध भाव है। इससे विरोधभाव करे व्यवहार में कि व्यवहार चाहे जिस प्रकार का हो, निश्चय ऐसा हो, (वह) मूढ़ है। समझ में आया? कठिन बात भाई! पक्ष की बात तो नहीं नहीं होगी न यह? अरे.. भगवान! सत्य की बात इतनी... इतनी हो, उसमें व्यवहार कैसा होता है, उसमें पक्ष की बात खतावे तो तुझे सत् की भी खबर नहीं। समझ में आया इसमें? यह व्यवहार के सुमेल का उदाहरण है मुनि को। निर्ग्रन्थ मुनिदशा हो जाये। बाह्य में निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा हो जाये। अन्दर का विकल्प उस प्रकार का शुभ हो, नग्न हो। उस दशा का विकल्प, ऐसे विकल्प को और निश्चय शुद्ध परिणति को व्यवहार के साथ में मेल है। दूसरे के साथ मेल नहीं है। तीन काल-तीन लोक में दूसरे प्रकार से निश्चय और व्यवहार का मेल नहीं हो सकता। समझ में आया? नीचे दूसरा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब किसकी बात चलती है यह? सब समझना पड़ेगा। वह निश्चय की बातें आवे तब कहे, आहाहा! परन्तु निश्चय के साथ व्यवहार कैसा होता

है, उसका मेल न हो तो वह निश्चय ही नहीं है। वह मूढ़ है। उसके सत्य के पक्ष में चढ़ा हुआ परम सत्य परमेश्वर ऐसा परमात्मस्वभाव भगवान आत्मा का उसके पक्ष में चढ़ा हुआ, राग के पक्ष से हट गया परन्तु पूर्ण पक्ष में आया नहीं तब उसके व्यवहार के विकल्प किस प्रकार के होते हैं, उसका वर्णन भगवान अमृतचन्द्राचार्य, सर्वज्ञ के शास्त्र और सर्वज्ञ के भाव अनुसार करते हैं। समझ में आया इसमें? यह गजब बात। जरा बहुत परन्तु अन्दर गहरे उतरे और विचार करे तब इसका मेल खाये ऐसा है।

नीचे (फुटनोट में) दूसरा। **पाँचवें गुणस्थान में उस गुणस्थान के योग्य...** श्रावक। श्रावक अर्थात् वाड़ा की पद्धति नहीं। भगवान चैतन्यमूर्ति के आनन्द को पकड़कर अनुभव हुआ सम्यग्दर्शन का, तदुपरान्त दूसरी कषाय (चौकड़ी) का अभाव करके स्वरूप की स्थिरता की शान्ति का, आनन्द का भाग जिसे अन्दर प्रगट हुआ उसे पंचम गुणस्थान की शुद्धपरिणति-दशा कहते हैं। उसे **शुद्धपरिणति निरन्तर होना...** वापस निरन्तर। उसके साथ **देशव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों...** बारह व्रत कहलाते हैं न? उसका शुभभाव। छह काय, पाँच इन्द्रियाँ और मन, इन बारह को रोकने का और उसे पालने के लिये अव्रत को छोड़कर व्रत पालने का जो शुभ विकल्प है, उसकी मर्यादा प्रमाण, उसकी हदवाला वह शुभराग, उसे निश्चय के साथ ऐसा सुसंगत होता है। दूसरा ऐसा कहे कि हमको पंचम गुणस्थान हुआ और हमें कषाय बकरे काटते हैं, क्योंकि वह तो जड़ की क्रिया है। हमारे और उसे क्या सम्बन्ध है? आत्मा पर को स्पर्शता भी नहीं। सुन, सुन! समझ में आया? ऐसी क्रिया के निमित्त के संग में जो राग तीव्र है, ऐसे राग को और निश्चय सम्यग्दर्शन को तीन काल में मेल नहीं हो सकता। ऐसा क्रिया उसके निमित्त सम्बन्ध में भी नहीं हो सकती। समझ में आया? उसके कारण से नहीं होती। राग, राग के कारण से नहीं होता। परन्तु राग हो तो इस प्रकार का होता है। कसाई भी हो, बकरे काटता हो और भगवान का भगत! समझ में आया? यह बात तीन काल में नहीं हो सकती।

भगवान ऐसा आत्मा, उसका भगत अर्थात् सम्यग्दृष्टि हो, उसे ऐसे विकल्प की माँस खाने की, शराब पीने की... समझ में आया? शिकार करने की, माँस बेचने की ऐसी वृत्ति का वहाँ अन्दर सहजरूप से अभाव ही होता है। होवे तो बारह व्रतादि के

भावों के शुभराग की वृत्ति होती है। परन्तु किसे? वह निश्चय हो तो। निश्चय न हो और अकेले बारह व्रत के विकल्प भी उस निश्चय के बिना वृथा-व्यर्थ है। उसे चार गति में भटकाने के लिये है और निश्चय का भान हुआ, वहाँ ऐसा शुभराग पंचम गुणस्थान के योग्य उसे होता ही है। आड़ा-टेढ़ा दूसरा नहीं होता। यह बात सिद्ध करने के लिये यह बात ली गयी है। समझ में आया? मूलजीभाई!

वह भी निश्चय-व्यवहार के अविरोध का उदाहरण है। दृष्टान्त है। यह कहते हैं कि हमको तो मुनिपना आया है। मुनिपना? किसे मानते हो? तेरे गुरु कौन थे? गुरु चाहे जैसे हों, हमारे मुनिपना आया है। कुछ मूढ़ है। ठगाई लगा रखी लगती है कुछ। इसके गुरु भी वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रवाले हों, उनकी श्रद्धा का इसे राग और भक्ति का भाव हो और आत्मा का भान हो तो व्यवहार और निश्चय को सुमेल है। नहीं तो मेल है नहीं। मेल नहीं तो दोनों (खोटे हैं)। दही मिलता है न? यह दही नहीं मिलता? मेलवण। नहीं तो अकेला पानी हो जाये। इसी प्रकार निश्चय के साथ ऐसे व्यवहार का मेल न हो तो हो जाये अकेला पानी—मिथ्यादृष्टिपना। उसे दृष्टि सच्ची रहे नहीं और उसके व्यवहार तो हो नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन कहे और अनन्त ज्ञानी की असातना करता हो। सर्वज्ञ मार्ग की, सर्वज्ञ पन्थ में गमनशील सन्तों का अनादर, असातना करने का राग हो और सम्यग्दर्शन हो, दोनों बातों का तीन काल में मेल है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे की जवाबदारी नहीं मानते? पैसे इतने रखना और लड़के को... मोटर इतनी रखना और अमुक रखना और फलाना... सम्हालना, ध्यान रखना। हमारे सेठ था, वह शाम को जाये तो... दुकान किराये से दी हो, परन्तु दिवाली में खुली रखना नहीं। वह सुलगे तो घर-मकान साथ में सुलग जाये तो? चूहें-बूहें वहाँ है या नहीं तेरे घर में? दियासलाई रखना नहीं। दियासलाई बाक्स ऐसे सुलग जाये तो घर सुलगेगा, हमारा घर सुलगेगा साथ में। किराये से मकान दे, उसे सम्हाल करने का कहता जाये। भानुभाई! नवरंगभाई! दिया हो किराये से। साथ में अपना घर हो। तेरे

व्यापार क्या है ? दियासलाई का और सबका। परन्तु दियासलाई खुल्ली न रह जाये, ध्यान रखना। रात्रि में कोई चूहा आकर ऐसे काटेगा और आग उठी कागज की तो सुलगेगा तेरा भी, साथ में हमारा। इतनी जवाबदारी किरायेवाले के लिये भी समझते हैं। यहाँ कुछ नहीं होती। वह तो फक्कड़बाज। निश्चय ऐसा है और व्यवहार ऐसा है और अमुक ऐसा है और अमुक ऐसा है।

अरे! सुन रे सुन! गृहीत मिथ्यादृष्टि। जिसे गृहीत मिथ्यादृष्टि अर्थात् अनादि का मिथ्यात्व तो पड़ा है, परन्तु व्यवहार, निश्चय के साथ कैसा होता है, उसकी श्रद्धा का भान नहीं, वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? गृहीत अर्थात् ? मिथ्यात्व को पुष्ट करनेवाला है। गृहीत अर्थात् क्या ? मिथ्याभाव को पुष्ट करनेवाला है। सम्यक् भाव-बाव उसके पास है नहीं। भगवान अमृतचन्द्राचार्य सर्वज्ञ के पेट (अभिप्राय) और शास्त्र के हार्द खोलकर निश्चय जिसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता हो, उसके योग्य ही उसे राग की मन्दता के शुभभाव आते हैं। आवे सही, होवें सही, न हो—ऐसा माने तो भी मूढ़ है। और आवे उसे दूसरे प्रकार के आवें, तो भी मूढ़ है। और आवे, उसे उपादेय माने तो भी मूढ़ है। बहुत प्रकार परन्तु इसमें। याद कितने रखना इसमें ? छगनभाई!

भगवान! तुझमें तो ताकत कितनी है! कितन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के संयोगों में आया। वह सब स्मृति में अन्दर पड़ा है, लो! यह जातिस्मरण आदि होते हैं, यह कहाँ से होते हैं ? यह स्मृति में (पड़ा है)। ऐसे अन्दर जाये वहाँ एकदम... यहाँ था, इस क्षेत्र में, इस द्रव्य में, इस स्थिति में, इस संयोग में। ऐसी ताकत याद (शक्ति) की है। केवलज्ञान प्रगट करने की ताकत है और यह यादगिरी की ताकत नहीं, वह तो अपनी मान्यता से मानकर बैठा है।

आचार्य कहते हैं, व्यवहार और निश्चय। निश्चय अर्थात् सच्चा। मोक्षमार्ग का स्वरूप अन्दर शुद्धता। व्यवहार अर्थात् आरोपित राग। परन्तु इन दोनों को अनारोप और आरोप का मेल होना चाहिए। समझ में आया ? इस द्वारा **अनुसरण किया जाए तभी इच्छित की सिद्धि होती है,...** देखो! समझ में आया ? भगवान आत्मा सर्वज्ञपद में विराजमान स्वरूप की दृष्टि और ज्ञान की रमणता हुई, ऐसे निश्चय के साथ उसके योग्य

ही व्यवहार हो तो उसे इष्ट की सिद्धि होती है। नहीं तो अनिष्ट की सिद्धि होती है। समझ में आया इसमें? भाई, हम सम्यग्दृष्टि तो हैं परन्तु हम कैसे अमुक को मानें, हनुमान को माने, अम्बाजी को माने, शिकोतेर को माने, हमारा पुत्र हो, ऐसा माने, शीतला के पास जाकर मानें। ऐसी मान्यता का राग हो और हमारे धर्म की श्रद्धा है, (ऐसा माने तो) मूढ़ है। उसकी उसे धर्म की श्रद्धा का निश्चय भान उसमें व्यवहार कैसा होता है, इसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया?

वह बारदान लेकर आया हो तो मिर्च लेकर आया होगा ऐसा माने। केसर लेकर आया होगा, ऐसा माने? यह बारदान सिर पर नहीं उठाते? बारदान करे न? गाँव में पहले बारदान करते थे। मिर्ची बेचते न? मिर्ची का बारदान करे। ... करते थे। तब तो चार-छह पैसे में, दो आना में बहुत (आता था)। कोई बारदान लेकर आवे तो व्यक्ति क्या मानता होगा? मिर्ची होगी। हरी होगी या सूखी होगी या सब्जी लेकर आया होगा। परन्तु केसर लेकर आया होगा, ऐसा होगा? इसी प्रकार जिसके वर्तमान व्यवहार में सत्यमार्ग से विरुद्ध श्रद्धा, व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार के आचरण के राग का अन्तर है, वह कहीं निश्चय की केसर लेकर आया है, ऐसा कोई मान नहीं सकता। समझ में आया? परन्तु कठिन बात, भाई! ऐसी बात लालचन्दभाई ने माँगी कि हमारे यह सुनना है। भले चन्दुभाई ने कहा होगा। समझ में आया इसमें?

बापू! अरे! सब्जी कटती हो तो छुरी निमित्त होती है। डण्डा निमित्त होगा? डण्डे से कहीं ऐसा होगा? चूरा होगा। वह कहीं कटकर टुकड़े होंगे? बारीक-बारीक करने हों ऐसे सरीखे। यह लौकी के और करते हैं न? टिंडोरा के गोल चक्कर डण्डे से होते होंगे? कार्य तो होता है वहाँ, परन्तु निमित्त हो इस जाति का कि जिसमें इस जाति का हो उसे अनुकूल निमित्त होता है। डण्डा निमित्त हो और चूरा हो, बारीक टुकड़े समरूप हों, ऐसा हो नहीं सकता। शान्तिभाई! समझ में आया इसमें? इसमें समझ में आता है इतना वह सब छोड़कर यह दूसरी बात है कुछ, ऐसा। आहाहा!

प्रभु! तेरे पन्थ में पड़ना हो, उसे तो सत्य के पन्थ को चढ़नेवाला, उसे सत्य के ही निमित्तों के विकल्प आते हैं। सच्चे देव की भक्ति, सच्चे गुरु की श्रद्धा, सच्चे शास्त्र का बहुमान, सच्चे शास्त्र का बहुमान, मिथ्या शास्त्र और मिथ्या देव-गुरु का बहुमान

वर्ते और कहे कि हमको सम्यग्दर्शन है, महामूढ़ जीव है। मिथ्यादृष्टि गृहीत मिथ्यात्व को सेवन करनेवाला है। न्यालभाई! राजकोट में ऐसी छनावट पहले नहीं आयी थी, हों! सब निश्चय की बातें आवे, इसलिए सब अच्छी लगे ऐसे सीधे। हमारे एक कहता था, वह बाबरावाला है न? नरभेरामभाई। निश्चय की बात अच्छी। दोपहर में दान की बात आवे न, पैसा निकालना, राग (घटाना), यह बराबर ठीक पड़ता नहीं। निश्चय की बात आवे न, अपने और पैसे को कुछ सम्बन्ध नहीं है। राग को सम्बन्ध नहीं है। अब अपने को पैसा किसलिए खर्च करना? रखो। दोपहर में कहा जाता है कि राग घटावे। जिसे अरागी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान हो, उसे कषाय का कण नहीं, उसकी प्रतीति आती है, उसे राग की मन्दता दानादि में हुए बिना नहीं रहती। समझ में आया? दोपहर की यह बात कठिन पड़ती है। बातूनी है न जरा इसलिए... सवेरे की बात अच्छी? कुछ करना (नहीं), देना-लेना नहीं, देने-लेने का भाव भी आत्मा का नहीं। यह बहुत अच्छी बात है। अरे... भगवान! आहाहा!

चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि ऐसे मुनि को देखते हैं, ऐसे झुक जाते हैं, आहाहा! भरत चक्रवर्ती छह खण्ड के स्वामी। जिनके घर में (राज्य में) छियानवें करोड़ गाँव, छियानवें हजार स्त्रियाँ। स्वर्ण के ऐसे वे डाले हों। हीरा-माणेक की तो जिन्हें जूतियाँ ऐसे चलती हों। चमक... चमक... बिजली की पड़ती हो ऐसे। ऐसे खाने का अवसर हो, सम्यग्दृष्टि आत्मा का भान है, अरे! कोई मुनि हमारे घर (पधारे)। अरे! यह ग्रास इस पेट में जाये, इसकी अपेक्षा मुनि हमारे (आँगन में पधारे)। यह भाव वीतरागी की भक्ति का आये बिना नहीं रहता। खबर है कि हम चरमशरीरी हैं। इस भव में हमारा मोक्ष है। भगवान ने कहा और हमें खबर है। हम मोक्षगामी (हैं) और हमारे यह अन्तिम देह है, तथापि जब तक साधकदशा की अपूर्ण दशा में थे, उन्हें ऐसा राग भक्ति का (आये बिना नहीं रहता)। अरे! यह तो शुभभाव है, यह तो पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु कौन इनकार करता है, सुन न! परन्तु यह आये बिना रहता नहीं। और यदि न आवे तो अन्दर मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यह अन्दर में मिथ्यात्व को घोंट रहा है। शुभराग की मर्यादा ऐसे व्यवहार की न हो और मान बैठे कि हम सम्यग्दृष्टि हैं, वह दूसरे रास्ते चढ़ गया है। समझ में आया इसमें?

इसलिए कहते हैं, बहुत सरस बात ली है। ओहोहो! निश्चय के अनुकूल व्यवहार वहाँ होता है। प्रतिकूल, उसकी दशा की भूमिका से विरुद्ध भाव तीन काल में होता नहीं। विरुद्ध भाव हो तो वहाँ दृष्टि सच्ची नहीं रहती। मुनि की दशा में भी वस्त्र आदि बाह्य पदार्थों को लेने की वृत्ति हो, और छठवें गुणस्थान की शुद्ध परिणति रहे, तीन काल में नहीं रहती। और माने तो वह मिथ्यादृष्टि के मिथ्याभाव को घूंट रहा है। समझ में आया? न्यालचन्दभाई! ओहो!

इस व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही। वापस ऐसा (कहा)। **अनुसरण किया जाए तभी इच्छित की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती।** अस्ति-नास्ति की है। **व्यवहार और निश्चय की सुसंगतता रहे, इस प्रकार वीतरागपने का अनुसरण किया जाए तभी इच्छित की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती।** अब इस निश्चय और व्यवहार की सन्धि का बड़ा विस्तार करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक - ०२-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-६

यह पंचास्तिकाय-समयसार एक शास्त्र है। अध्यात्म शास्त्र। इसमें आत्मा का हित करनेवाले की दृष्टि, उसका ज्ञान, उसके सत्य वर्तन कैसा होता है और सत्य की परिपूर्ण प्राप्ति न हुई हो, वहाँ तक उसे बीच में भक्ति, दया, दान, व्रतादि के विकल्प की जाति, राग की जाति कैसी होती है, उसका यह योगफल में दोनों के साररूप यह कथन चलता है। सूक्ष्म तो पड़े ऐसा है। अनादि काल से इसने कभी परिचय और अभ्यास किया नहीं। यह सम्प्रदाय में जन्मकर त्यागी होकर भी मूल तत्त्व क्या है, उसे समझे बिना उसकी शान्ति और शान्ति में भी जहाँ तक पूर्ण शान्ति न हो, तब बीच में उसे शुभराग, शुभराग की वासित बुद्धि किस प्रकार की कितनी होती है, उसका व्यवहारिक ज्ञान और त्रिकाली चैतन्य भगवान की शुद्धता को अवलम्ब कर जो निर्मल श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के अंश वीतरागी निर्दोष प्रगट हों, वह निश्चय सत्य है और बीच में जो रागादि भक्ति की वासना आदि आवे, वह व्यवहाररूप उपचार है। परन्तु वह व्यवहार कैसा होना चाहिए और निश्चय कैसा हो तो उसे व्यवहार कहा जाये, वह यह अधिकार चलता है। समझ में आया?

अपने यहाँ तक आ गया है। आत्मा का जो स्वभाव शुद्ध वीतरागी-विज्ञानघन आनन्द उसका स्वरूप है। उसकी दशा में विकार की वृत्तियाँ शुभाशुभभाव की है, उसकी रुचि छोड़कर, जिसने भगवान आत्मा का अन्तर साक्षात्कार किया शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान द्वारा... समझ में आया? ऐसी जो वीतराग श्रद्धा और ज्ञानदशा, वह सब शास्त्र का सार है। सब शास्त्र सर्वज्ञ के कहे हुए त्रिलोकनाथ देवाधिदेव के मुख में से वाणी निकली, उन सब शास्त्रों का एक सार (यह है कि) संयोग से हटकर, पुण्य-पाप के विकल्प की राग की वृत्तियों से हटकर और ज्ञानानन्दस्वरूप पूर्ण चिद्घन है, उसकी लपेट में उसमें एकाकार होना अर्थात् कि वहाँ निर्दोष श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र अर्थात् वीतरागता प्रगट करना, वह सर्व शास्त्रों का सार है।

परन्तु ऐसा चैतन्यतत्त्व जो है, वस्तु स्वभाव शुद्ध और आनन्द, उसकी अन्तर्दृष्टि हुई अभेद, अभेद अर्थात् कि जो ज्ञान की वर्तमान दशा मात्र पुण्य और पाप के राग में

भेदवासित थी, मिथ्यात्ववासित बुद्धि थी, उस बुद्धि को—वर्तमान ज्ञान की दशा को अन्तर चैतन्य के सन्मुख झुकाकर अभेदपना जैसी शक्ति-वस्तु है, उसकी ओर एकाकार करके पुण्य और पाप के विकल्प की रुचि का नाश करके रुचि स्वभाव के साथ अभेद हुई, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन और धर्म की शुरुआत कहा जाता है। व्याख्या भी बहुत सूक्ष्म, भाई! शर्तें भी बहुत वापस इसमें। यह डॉक्टर ऐसा कहते होंगे न? आँख में ऐसी शर्त है और अमुक है और अमुक है। इसमें यह है। मोतिया इतने दिन का है। फिर पकेगा तब उतारेंगे, अमुक है। अभी तो यद्यपि कच्चा भी उतारते हैं। प्रवीणभाई! यहाँ तो कच्चे का कच्चा काट डालने की बात है।

भगवान चैतन्यमूर्ति को अनादि का पुण्य और पाप और परपदार्थ की एकताबुद्धि, ऐसी लगी है कि जिसे उसमें से हटना अनन्त काल में अनन्त बार त्याग किया, मुनिपना लिया, साधु हुआ बाह्य क्रियाकाण्ड का परन्तु उस राग से बहिर्मुख से वृत्ति जो शुभ और अशुभ वृत्ति उठती है, उससे हटकर ज्ञानानन्दस्वभाव में एकाग्र होना, वह इसने एक सेकेण्ड भी अनन्त काल में किया नहीं।

अब किया हो इसने परन्तु... समझ में आया? यह निश्चय भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु का अन्तर्दृष्टि से साक्षात्कार किया, स्वरूप का भान हुआ, दशा में स्वरूप का अनुभव हुआ परन्तु अभी वर्तमान ज्ञान की दशा राग की वृत्ति से सर्वथा छूटी नहीं है। राग और विकार की रुचि से छूटी, परन्तु राग की अस्थिरता के अंश अभी पूर्ण निर्दोषता प्रगट नहीं की, इसलिए उसे राग की वासना उत्पन्न होती है। वह चारित्रदोष है। परन्तु वह राग की वासना चैतन्यस्वभाव की अभेद अनुभव की दृष्टि होने पर भी कैसी राग की वृत्ति हो कि जिससे वस्तु की दृष्टि का निश्चय और उसके साथ उस-उस भूमिका के योग्य राग की वृत्ति की उत्पत्ति, दोनों का सुमेल कैसा होता है, उसका यह कथन चलता है। समझ में आया?

यह बात कही कि वीतरागता, वह शास्त्र का तात्पर्य है। स्वरूप आनन्दकन्द में झूलना, अन्दर दृष्टि करना और स्थिरता करना, वह सर्व शास्त्र का सार है। परन्तु वह वीतरागता प्रगट होने पर भी, स्वभाव का भान होने पर भी, निश्चय के साथ व्यवहार की वृत्ति कैसी होती है, उसका यदि सुमेल न साधे तो उसका निश्चय रहता नहीं और

उसका व्यवहार भी सच्चा हो नहीं सकता। समझ में आया? तब कहते हैं कि **(उपरोक्त बात विशेष समझाई जाती है: —)** अविरोध। निश्चय दृष्टि आत्मा की, कि मैं ज्ञानानन्द -स्वरूप हूँ। रागादि मेरी चीज़ में नहीं। परवस्तु तो पृथक् ही काम कर रही है। इस प्रकार चैतन्य को भेदज्ञान द्वारा राग से, पुण्य के विकल्प से पृथक् पड़कर चैतन्य के साथ में लीनता दृष्टि की, ज्ञान की की है, तथापि अस्थिरता का-राग का मेल उसके साथ कैसा होता है, यह भगवान यहाँ समझाते हैं।

अनादि काल से... पहला शब्द पड़ा है। सामने तुलना करे, तब बहियाँ सामने रखते हैं न दोनों तेरे लिखे, उसमें मेरे लिखे ऐसा निकलता है और तेरा लिखा ऐसा निकलता है। देख तो सही। भानुभाई! वहाँ निर्णय करे, परन्तु यहाँ निर्णय करना हो कि सर्वज्ञ परमात्मा के शास्त्र में क्या मेल है और मेरी दृष्टि के साथ राग की कैसी जाति, उसका सुमेल है, उसका इसने विचार किया नहीं। **अनादि काल से...** भगवान आत्मा **भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** क्या कहते हैं? अनादि काल से प्रभु चैतन्य को ज्ञान की वर्तमान दशा में भेद है, भेद पड़ा है, राग और पुण्य और विकल्प ऐसा भेद। चैतन्य-सन्मुख की अभेदता दृष्टि होने पर भी अनादि काल की अभी अस्थिरता की भेदबुद्धि अन्दर पड़ी है। और यह क्या? क्या कहा, समझ में आया इसमें?

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण... भेदवासित बुद्धि होने के कारण, इसका अर्थ क्या? कि ज्ञानमूर्ति प्रभु के ज्ञान की वर्तमान दशा में अनादि काल से राग की अस्थिरता का भाव अनादि से चला आता है। समझ में आया? पुण्य और पाप के विकल्प की वृत्ति, उसकी वर्तमान दशा में अनादि काल से चली आती है। ऐसे भेदवासित बुद्धि होने के कारण। यह कारण दिया। **प्राथमिक जीव...** अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि जीव। मुनि कहो या सम्यग्दृष्टि कहो। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि प्राथमिक जीव अर्थात् कि छठे गुणस्थानवाले मुनि भी प्राथमिक दशा में कहे जाते हैं। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा... यहाँ मुनि की प्रधानता से कथन है। वस्तु तो सम्यग्दर्शन पाया कि राग से भिन्न और पुण्य-पाप के क्रियाकाण्ड से चैतन्य प्राप्त हो, यह तीन काल में नहीं होता, ऐसे आत्मा को वर्तमान दशा से त्रिकाल को एकाकार करके अनुभव और

प्रतीति हुई परन्तु उसे अभी व्यवहार कैसा होता है? क्योंकि अनादि से दृष्टि तो छूटी, परन्तु राग की अस्थिरता अभी छूटी नहीं। यदि राग की अस्थिरता छूटे तो पूर्ण सर्वज्ञ हो जाये। इसलिए सर्वज्ञ परमात्मा होने से पहले उसकी प्राथमिक भूमिकावाले। चौथे सम्यग्दृष्टिवाले, पाँचवेंवाले या छठवेंवाले। यहाँ मुनि की प्रधानता से मुनि का कथन (चलता है)।

प्राथमिक जीव... अर्थात् कि जिन्हें अन्तर वीतरागी अविकारी दशा पूर्ण हुई नहीं और अविकारी दृष्टि, ज्ञान और रमणता के अंश प्रगट हुए हैं। समझ में आया? यह गजब बात! किस प्रकार की यह बात! धर्म में तो या तू ऐसा कर कि पूजा करो, व्रत करो, दान करो, मन्दिर दो, पाँच, दस बँधा दो, जाओ कल्याण (हो जायेगा)। धूल में भी नहीं, सुन न अब। लाख, करोड़ मन्दिर बने, वह तो उसके कारण से बनते हैं। वह जड़ है। वह तो परवस्तु है। परवस्तु को क्या आत्मा बना सकता है तीन काल में? बनने के काल में वह स्थिति खड़ी हो जाती है। उस समय के जीव का शुभराग कैसा था, उसका ज्ञान कराने को ऐसा कहा जाता है कि इसने यह बनाया। बनावे-बनावे कोई तीन काल में पर अवस्था को बना सकता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, वह तो एक ओर बात रही, परन्तु राग और पुण्य के दया, दान, व्रत, तप के विकल्प की वासना, वह वासना और जैसे चैतन्य की दशा को एक माना है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ धर्म के पहले रास्ते भी आया नहीं। अब यहाँ तो कहते हैं, धर्म के पहले रास्ते आया हुआ है, उसे व्यवहार कैसा होता है, उसकी सुसंगतता निश्चय के साथ व्यवहार का सुसंगत—सुसंगतता का मेल कैसा होता है, उसका यह कथन किया जाता है।

प्राथमिक जीव... अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि अथवा छठवें गुणस्थानवाले सन्त, जिन्हें आत्मा के आनन्द की दशा का व्यक्तपने का आनन्द वेदन में स्व-आश्रय के अनुभव से आया है। **व्यवहारनय से...** उस जीव को व्यवहार अर्थात् वर्तमान ज्ञान का अंश जो वर्तमान में भेद उठता है राग का, उसे जाननेवाले नय की अपेक्षा से। भाई! ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। यह तो मक्खन की चीज़, रटने से कहीं चले, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें पूर्ण वीतरागता-अविकारता, निर्दोषता प्रगट हुई। उन्हें विकल्प अर्थात् रागरहित वाणी खिर गयी, ध्वनि उठ गयी। ॐध्वनि उठी और उसके कारण से शास्त्र उसमें से बारह अंग रच गये। इन बारह अंगों के अन्दर भगवान ऐसा कहते हैं कि हे जीव! जब आत्मा सर्वज्ञ ने कहा हुआ और जैसा है, वैसा एकरूप चैतन्य भगवान अभेद दृष्टि की। परन्तु अभेद दृष्टि की, किन्तु पूर्ण अभेद हुआ नहीं। ऐसी **भेदवासित बुद्धि होने से...** कारण, धर्मीजीव को—सम्यग्दृष्टि जीव को, मुनि को भावलिंगी सन्त को, जिन्हें आत्मा के छठवीं-सातवीं दशायें-भूमिका होती है। झूला झूलते हैं झूले में। क्षण में अप्रमत्त का आनन्द, क्षण में विकल्प उठता है, श्रवण करूँ या कहूँ, ऐसी जो दशा मुनि की-सन्त की, उसे भी अभी भेदवासित बुद्धि रह गयी है। भेदवासित बुद्धि अर्थात् दृष्टि नहीं। समझ में आया? दृष्टि तो तोड़ डाली है। राग और स्वभाव दोनों एक, ऐसा जो माना था... राग अर्थात् आस्रव, फिर दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा का विकल्प-राग उठता है, वह तो आस्रव है। आस्रव अर्थात् जिसके द्वारा नये आवरण आते हैं, वह कहीं धर्म नहीं है। ऐसे राग के भाग को अरागी चैतन्य के अन्तर्मुख होकर जिसने एकता तोड़कर भेदज्ञान किया है, परन्तु अभी सर्वथा भेदवासित बुद्धि हुई नहीं।

भेदवासित अर्थात्? अभी अस्थिरता के, चारित्र की रमणता के अन्दर कमी के अंश के कारण और वह भी भाई! अपनी प्रभुता की शक्ति स्फुरित की है। इसके पहले आ गया है, देखो! १७० में है न? १७० गाथा में है। **जो जीव...** १७० (गाथा)। यहाँ यह कहना है। इसलिए वह वासना रह गयी है, ऐसा। वासना क्यों रही है? **जो जीव वास्तव में मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ,...** भगवान आत्मा के आनन्द में प्रयत्न परायण होता हुआ **अचिन्त्य संयमतपभार सम्प्राप्त किया होने पर भी...** अचिन्त्य स्वरूप की रमणता और शान्ति का संयम धारण किया होने पर भी **परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** कर्म के कारण नहीं। यह भेदवासित बुद्धि रही है, वह कर्म के कारण नहीं। अपनी प्रभुशक्ति जो है, उसे **परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** क्या कहा?

भगवान आत्मा अपने आनन्द को स्पर्श गया—वेदन को। सम्यग्दर्शन के अनुभव के भान में, परन्तु परमवैराग्य आरोहण स्वरूप में जो स्थिर होना चाहिए, ऐसे परम वैराग्य परायण जो प्रभुत्वशक्ति इतनी प्रगट की नहीं होने के कारण। समझ में आया? उसे राग का भाग उत्पन्न होता है। धर्मी को, मुनि को और सम्यग्दृष्टि को। चन्दुभाई! कर्म का कारण नहीं। है न? स्पष्टीकरण भाई ने किया है। देखो! नीचे प्रभुशक्ति की व्याख्या की है। अर्थात् क्या कहा? प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने के कारण। भान हुआ सम्यक् चैतन्य का, परन्तु प्रभुत्वशक्ति की आरोहण वैराग्य, परम वैराग्य उदास होकर अन्दर स्थिर होना चाहिए, वह प्रगट शक्ति की नहीं, इसलिए '**धुनकी को चिपकी हुई रुई' के न्याय...** पींजण-पींजण। यह पींजण क्या कहलाती है? पींजरा, उसकी रग होती है न? उसमें जरा रुई का पुंज हो तो ठीक से रुई व्यवस्थित न हो। उसका वह तार होता है न? टांक, टांक। तुम्हारी भाषा हमको बराबर कहाँ से याद रहे? उसकी टांक में रुई डालकर ऐसे-ऐसे करे न। फिर उसकी... तो होवे न। ऐसे मारे। परन्तु उसके साथ जरा रुई चली गयी हो, चिपकी हो तो रुई साफ नहीं होती। वह तार साफ नहीं होता और तार चोख्खा नहीं होता तो रुई भी साफ नहीं निकलती। इसलिए जरा कमीवाली निकलती है। है न न्याय?

'**धुनकी को चिपकी हुई रुई' के न्याय...** ऐसे नौ पदार्थ का विकल्प उठता है। जीव इसे कहा जाता है, अजीव इसे कहा जाता है, दया, दान के विकल्प को पुण्य कहा जाता है। यह हिंसा, झूठा, विषय के भाव को पाप कहा जाता है। ऐसी राग की वृत्ति सम्यग्दृष्टि को भी पूर्ण प्रभुता की प्रगट शक्ति की नहीं, इसलिए उसे उठती है। और पंच परमेष्ठी की प्रीति—सच्चे अरिहन्त, सिद्ध भगवान, आचार्य, उपाध्याय, सन्त इन पाँच के प्रति प्रीति की वृत्ति का राग, वह जीव की प्रभुत्वशक्ति इसने प्रगट नहीं की, इसलिए यह राग की वृत्ति उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। उसे पंच परमेष्ठी परमात्मा के प्रति प्रेम उछलता है, परन्तु वह है राग। समझ में आया? वह राग है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु वह राग प्रभुत्वशक्ति जितनी पर्याय में-अवस्था में वैराग्य से अन्तर में आरोहण होना चाहिए, उतना किया नहीं; इसलिए आये बिना रहती नहीं। समझ में आया? वह यह बात करते हैं, यहाँ देखो!

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि... अनादि काल का ऐसा अर्थ नहीं लेना कि मिथ्यादृष्टि की बात चलती है। यहाँ तो अनादि काल की राग से सर्वथा एकता टूटकर अकेला विहाररहित हो गया, ऐसा है नहीं। समझ में आया? **प्राथमिक जीव...** अर्थात् कि आत्मा के ज्ञान में आये, वह आत्मा का धर्म प्रगट हुआ, परन्तु अभी अनादि काल की राग में अस्थिरता का भाग जो पड़ा है, उसे छोड़ने को अभी समर्थ नहीं है, सामर्थ्य इतनी नहीं है, इसलिए उसे **भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** भिन्नसाध्यसाधनभाव को अवलम्बकर। सब भाषा ग्रीक-लेटिन (अटपटी) जैसी लगे, ऐसी है। अब अर्थ आता है। क्या कहते हैं?

धर्मी जीव भी आत्मा के शुद्ध चैतन्य का भान, अनुभव और साक्षात्कार सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि स्वरूप की विशेष चारित्रदशा भी कितनी ही प्रगट होने पर भी उसे भिन्नसाध्यसाधनभाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। भिन्नसाध्यसाधन अर्थात्? नीचे अर्थ है, देखो! तीन है न, तिगड़ा। उस दो का कहाँ गया? ऊपर गया होगा। अविरोधपने है न यह तो? दो का कल गया। अब तीसरा आया है। **मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को...** नीचे नोट। **मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को...** अर्थात्? कि विकार की रुचि के पन्थ में पड़ा हुआ वह तो मात्र बन्धमार्ग के पन्थ में चला गया है। उसे मोक्षमार्ग है नहीं। परन्तु विकार की पुण्य-पाप की, दया, दान, व्रतादि की वृत्ति की रुचि छोड़कर मुक्तस्वभाव आत्मा का, उसकी रुचि, दृष्टि करके और मोक्ष के मार्ग-छूटने के पन्थ में प्रयत्न परायण हुआ, ऐसे जीव को **प्राथमिक भूमिका में...** पूर्ण निर्दोष प्रगट होने के पहले के काल में **साध्य तो परिपूर्ण शुद्धतारूप से परिणत आत्मा है...** उसके ध्येय में क्या है? अभी ध्येय द्रव्य, ऐसा नहीं लेना अभी। द्रव्य ध्येय जो सम्यग्दर्शन का है, वह बात अभी नहीं है। अभी निर्मल पूर्ण दशा हुई नहीं, वह पूर्ण निर्मल दशा, उसका साध्य है। मूलजीभाई!

सम्यग्दर्शन का साध्य और ध्येय तो द्रव्य है—वस्तु है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' (समयसार, गाथा ११)। भूतार्थ चैतन्य त्रिकाल ज्ञान की मूर्ति स्वभाव का सागर एकरूप, वह सम्यग्दर्शन का आश्रय और सम्यग्दर्शन का ध्येय है और वह सम्यग्दर्शन का साध्य है। यह बात अभी नहीं कहना है। वह साध्य तो प्रगट हुआ है परन्तु पूर्ण साध्य जो निर्मल मोक्षदशा, केवलज्ञान की दशा, वह साध्य जो समकिती

को है, मुनि को, वह दशा अभी प्रगट नहीं हुई, तथापि वह **साध्य तो परिपूर्ण शुद्धतारूप से परिणत...** परिणत अर्थात् अवस्था में हुआ **आत्मा है...** शुद्धदशा से परिणमित आत्मा, वह साध्य समकिती को है—ज्ञानी को है **और उसका साधन...** उसका साधन। यह भिन्नसाध्यसाधन का अर्थ चलता है। **व्यवहारनय से...** व्यवहारनय से साधन अर्थात् कि उपचार से-आरोप से साधन। वास्तविक साधन नहीं। दामोदरभाई! कितने बोल इसमें समझना। धर्म को समझने के लिये इतना? अरे.. प्रभु! परन्तु इतनी भूल के पन्थ में पड़ा है न, उन सब भूलों को टालने के लिये यह प्रकार इसे समझे बिना टलेंगे नहीं। इतने भूल के खिंचड़े किये हैं कि धर्म प्राप्त जीव को भी फिर कहेंगे, चाहे जैसा व्यवहार हो, चाहे जैसा राग हो, चाहे जैसा निमित्त हो। अरे! सुन न! तुझे धर्म प्राप्त कौन और उसे साधन क्या, इसकी तुझे खबर नहीं।

कहते हैं कि जिसे हम साधन कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव को, आत्मज्ञानी जीव को साध्य तो पूर्ण अरागी दशा है, परन्तु उसका व्यवहार से साधन, उपचार से साधन, निमित्तरूप से साधन, आरोप से साधन **(आंशिक शुद्धि के साथ-साथ रहनेवाले)...** क्या कहा? भगवान आत्मा अविकारी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के अंश को प्रगट किया। उस शुद्धि के साथ-साथ रहा हुआ **भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं।** उसे व्यवहार साधन देव-गुरु, सर्वज्ञ परमात्मा, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र, उसकी श्रद्धा का विकल्प अर्थात् राग, उसे व्यवहार से निश्चय साध्य तो सर्वज्ञपद है, व्यवहार से उसका साधन उपचार से कहा जाता है। समझ में आया?

इस प्रकार उन जीवों को व्यवहारनय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गए हैं। (निश्चयनय से साध्य और साधन अभिन्न होते हैं।) अर्थात् क्या? कि निश्चय अर्थात् सत्य दृष्टि से देखें तो सम्यग्दर्शन का ध्येय तो शुद्ध द्रव्य त्रिकाल भाव है, परन्तु उसकी दशा की शुद्धता के ध्येय में यह जाता है, इसलिए इसे शुद्ध परमात्मदशा, वह उसका साध्य है और वह विकल्प उठता है दया, दान, व्रत या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह व्यवहार से उसका साधन है। निश्चय में नहीं। निश्चय अर्थात्? स्वभाव की दृष्टि हुई, तथापि पूर्ण शुद्ध का साध्य जो निश्चय से है, उसका निश्चय साधन वह स्वभाव-सन्मुख की अरागी वीतरागी दशा होना, वह उसका निश्चय साधन है। परन्तु

ऐसे साधन की भूमिका में उसे ऐसे ही विकल्प सच्चे होते हैं। सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र। नौ पदार्थ भगवान ने कहे हुए, उनके भेद का विकल्प, विचार चले, उसे व्यवहार से, पूर्ण शुद्ध साध्य ऐसा सिद्धपद उसे व्यवहार से साधन उपचार से कहा जाता है। वास्तविक साधन तो रागरहित अन्तर के शुद्ध अवलम्बन से निर्मलानन्द की दशा जितनी प्रगट होती जाये, वह पूर्ण साध्य का साधन है। पक्ष भी बहुत इसमें। समझ में आया?

यह बाहर के साधन तो कहीं गये। आहाहा! परन्तु अन्दर में भगवान चैतन्य की जाति को सम्हालता हुआ, शुद्ध चैतन्य को अवलम्बता हुआ, जो धर्मदशा का भाव प्रगट हुआ। वही दशा पूर्ण साध्य सिद्धपद परमात्मपद का वह साधन है। निश्चय से, वास्तव में, यथार्थ, उचित रीति से। परन्तु अभी पूर्ण नहीं; इसलिए भेदवासित बुद्धि कही गयी है। वहाँ वासना जरा वृत्ति उठती है। वह कैसी? यह कहेंगे। उस वासना को पूर्ण साध्य का व्यवहार साधन आरोप से कहने में आता है। समझ में आया?

यह व्यवहारनय से धर्मी जीव को **भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर सुख से...** सुख से अर्थात्? नीचे अर्थ किया है, देखो! सुगमरूप से, सहजरूप से, कठिनता बिना। नीचे नोट (फुटनोट) चार (नम्बर)। **[जिन्होंने द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धानादि किए हैं...** भगवान चैतन्य एकरूप स्वभाव है न। ऐसे सामान्य ध्येय को अन्तर ऊपर पकड़कर। जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और सम्यक्ज्ञानी हुआ है, ऐसे जीवों को **तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में...** अभी उसे विकल्प उठता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, प्रेम, प्रमोद आता है। उसे यहाँ व्यवहार **तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में (मोक्षमार्गसेवन की प्रारम्भिक भूमिका में) आंशिक शुद्धि के साथ-साथ...** जितनी अरागी—राग की वासनारहित जितनी चैतन्य के शुद्धता की शक्ति को अवलम्बकर, शुद्धता, निर्मलता, निर्दोषता, परमानन्दता प्रगटी है, वह तो निश्चय। उसके साथ-साथ श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र सम्बन्धी परावलम्बी विकल्प होते हैं। उन्हें व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प देव-गुरु-शास्त्र के, सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र। उसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के विकल्प हों, वह व्यवहार भी नहीं और उसके अन्दर निश्चय भी नहीं होता। समझ में आया इसमें?

बहुत समझना पड़े परन्तु इसमें। परन्तु समझे बिना चलता होगा? सब्जी लेने

जाता होगा, वहाँ जाकर खड़ा रहे और कहे कि सब्जी देना दो रुपये की। क्या कहे वह? मूर्ख है। क्या लेने आया है? सब्जी। मेरे बापू ने कहा है कि दो रुपये की सब्जी देना। यह पच्चीस प्रकार की सब्जियाँ पड़ी हैं, परन्तु कौन सी? यह कौन सी, मुझे खबर नहीं। रतिभाई! क्या करे? मूर्ख है। सब्जी वह भी किस प्रकार की? भाई, यह ज्येष्ठ महीना चलता है, आम आया है, इसलिए मेरे पिता ने करेला कहा है। इन पच्चीस प्रकार में से। वह रस महिलायें बनावें न, इसलिए कड़वा साथ में करेला लाओ। हाँ, अब सही। सबमें से छाँटकर करेला लिया। परन्तु मूर्ख कहता है कि मुझे सब्जी देना। वह देगा वालोर। ऐ रस के साथ वालोर का मेल नहीं होता। चन्दुभाई! पच्चीस प्रकार की सब्जियाँ पड़ी हैं। मेरे पिता ने कहा है, लो! यह रुपये की सब्जी देना। पहले रुपये की होती थी। तुम्हारे तो अब बहुत महँगा पड़ता है न? पहले तो चार पैसे मिलते और दो पैसे मिलते। सब्जियाँ देना। परन्तु कौन सी? मुझे खबर नहीं। मूर्ख है? तू क्या लेने आया है? चावल लेने जाये तो किस प्रकार के? कुलफा के, वांसावड के, रंगून के? यह मुझे कुछ खबर नहीं। यह पाँच रुपये के चावल दो। क्या कहा जाये उसे? दामोदरभाई! मूर्ख कहा जाये?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि मुझे धर्म चाहिए है। कहाँ होगा और कैसे होगा और कहाँ है? यह मुझे खबर नहीं। मूर्ख लगता है। समझ में आया? समझे बिना धर्म कहाँ से होता था तेरे पास? भगवान आत्मा की दुकान जो चैतन्य आनन्दकन्द की अन्दर पड़ी है, उसका ज्ञान कर कि मुझे धर्म चाहिए है। उसके पास जा। ऐ... भानुभाई! भई, यहाँ तो बात सब आवे, हों! उपचार भी आवे कि मूढ़ है। मूर्ख। लड़के को नहीं कहता उसका बाप? समझता नहीं? मूर्ख है? इतनी-इतनी बात की, मनहर कुछ गिनता ही नहीं। इसी प्रकार सर्वज्ञ ज्ञानी जगत की दया करके कहते हैं कि अरे... आत्माओं! अरे..! अनादि काल के भटकते रेत में जैसे रजकण पृथक् पड़ेंगे, भटककर कहीं चला जायेगा। तेरा तत्त्व क्या है, उसके ज्ञान और भान बिना बाहर की प्रवृत्ति करके मर गया अनन्त काल से परन्तु सम्यग्दर्शन प्रगट किया नहीं। और कैसे होता है, कहाँ से होता है, किसमें से मिलता है, उसकी तुझे खबर नहीं होती। हमारे सम्यग्दर्शन चाहिए है। लो, कहाँ से मिलेगा? कौन जाने? दो न हमको सम्यग्दर्शन। पुस्तक दे, पुस्तक। जाओ, हम

तुम्हारे गुरु, भगवान ने कहे हुए शास्त्र, हमको मानो, यह तुम्हारा सम्यग्दर्शन। अमरचन्दभाई! पुस्तक में आदर, देख इसमें, अब मुझे बारह व्रत देना। समकित तो हो गया उसे। मूढ़, कुछ नहीं हुआ, सुन न! गुरु के पास समकित है तेरा? तेरा तो तेरे पास है। चैतन्य जाति अन्दर में पड़ी, उसे अवलम्बकर सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी तो जिसे खबर नहीं और मुझे सम्यग्दर्शन चाहिए है।

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन प्राप्त जीव भी जब तक पूर्ण वासना टलती नहीं, उसे शुद्धि के सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जिसमें से मिला—द्रव्य में से, उसके भानसहित होने पर भी अभी उसे भेदरत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का विकल्प बराबर आये बिना रहता नहीं। उसे व्यवहार साधनरूप से कहने में आता है। **क्योंकि अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित परिणति चली आ रही है...** देखो! यह हमारे पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है। यह पण्डित बैठे सामने, देखो! कहो, समझ में आया? यह पण्डितजी ऐसे छोटे हैं, पतले हैं जरा। ऐसे बैठे हैं। बुद्धि-उघाड़ बहुत है। कहो, समझ में आया?

अनादि काल से जीवों को... देखो! इन्होंने यह सब अर्थ किये हैं, टीका में से—संस्कृत में से। संस्कृत में होशियार हैं। संस्कृत, व्याकरण, अंग्रेजी, कवित्व, लेखक, वक्ता जो कहो, वह सब इनके पास है। समझ में आया? बोले तो भी वक्ता ऐसे, लिखे तो ऐसे, कवित्व करे तो ऐसे, संस्कृत में ऐसे, व्याकरण में ऐसे, अंग्रेजी पुस्तक में पढ़े तो सीधे गुजराती करे। यह तो गुजराती पढ़े तो अंग्रेजी का अर्थ करते हैं। खबर नहीं पड़ती। इन्होंने यह अर्थ किये हैं। पूर्वापर विरोधरहित सुमेल करके। समझ में आया? यह तो फिर ऐसा कहते हैं कि आपके निकट सुना था और किया है। यह फिर प्रश्न। यहाँ मेल तो इन्होंने जो शास्त्र में लिखा हुआ है, उसका मेल कैसे खाये, उसकी सन्धि की है।

अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित... वासित अर्थात् अभी राग की गन्ध है। राग की एकता टूट गयी, परन्तु राग का सर्वथा अभाव हुआ नहीं। समझ में आया? यह कस्तूरी की गन्ध बैठी है। भाई कहते थे न? वीरजीभाई। वीरजीभाई एक बार दृष्टान्त देते थे। कोई कस्तूरी रख गया हो। कितनी? सेर, डेढ़ सेर होगी। एक डिब्बा। वर्ष, दो वर्ष रही होगी। कितने वर्ष? कुछ कहते थे एक बार। सन्दूक में। लेने

आया, ले गया कस्तूरी। ले जाने के बाद पूरे सन्दूक के जितने वह... समझे न? बहियाँ हो, (उनका) पृष्ठ फिरावें वहाँ कस्तूरी की गन्ध आवे। कितना रहा होगा? वीरजीभाई! कितने वर्ष तक वहाँ कस्तूरी की (गन्ध) रह गयी। वह ले गया, वह ले गया तो भी गन्ध रह गयी। वह छह महीने। इस सन्दूक में छह महीने तक कस्तूरी कोई रख गया होगा। यह अच्छे घर हैं। परन्तु यह तो उघाड़े और गन्ध आवे।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अनादि काल का पुण्य और पाप की वासना की गन्ध ऐसी बैठी है इसे कि मिथ्यात्वदशा में यह पुण्य-पाप की क्रिया ही मेरा कार्य है, यही मेरा धर्म है। तदुपरान्त अब कस्तूरी चली गयी, थोड़ी गन्ध रह गयी। अर्थात् कि राग और पुण्य की, विकल्प की वृत्ति, वह मेरा तत्त्व नहीं, वह तो मलिन तत्त्व है। दशा मुझमें होती है। मैं निर्मल चिदानन्द हूँ। इस प्रकार पर से भेद करके स्वभाव की एकता का अभेद प्रगट किया। परन्तु तो भी अभी राग की गन्ध रह गयी है। मुनि हों, भावलिंगी सन्त ज्ञानी जंगल में बसे। जिनकी दशा में अमृत के झोला खाते हों अमृत। घड़ीक में अमृत—अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव मुनि को आवे और घड़ीक में राग का विकल्प उठे, अहो! परमात्मा की स्तुति करे, भक्ति करे जंगल में, क्योंकि अभी भेदवासित राग की वृत्ति उत्पन्न हुए बिना भूमिका रहती नहीं। वह भूमिका अभी अधूरी है। अपना पुरुषार्थ उग्र करके स्थिर नहीं हुए हैं।

भेदवासना से वासित परिणति चली आ रही है, उसका तुरन्त ही सर्वथा नाश होना कठिन है। सम्यक् भान हुआ, आत्मानुभव हुआ कि यह तो राग बिना की चीज़। यह तो ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा है। ऐसा साक्षात् सम्यग्दर्शन में हुआ और स्वरूप की रमणता भी कितनी ही मुनियों को चारित्र की हुई परन्तु अभी अचारित्र का-राग का भाग थोड़ा बाकी रहता है। उसका एकदम नाश होना पुरुषार्थ की उग्रता बिना कठिन है। इसलिए उसे राग आये बिना रहता नहीं।

सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं... है न? सुगमरूप से, सहजरूप से, ज्ञाता-दृष्टा के भास की परिणति दशा में, ऐसा राग शुभ का उसे आता है, उसे दोनों का बराबर ज्ञान करता हुआ, स्वभाव की ओर ढलता हुआ **तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं...** यह भेद के विकल्प में खड़ा है और तिरने का प्रयत्न तो अन्दर शुरु है। **(अर्थात् सुगमता से**

मोक्षमार्ग की प्रारम्भभूमिका का सेवन करते हैं)। अब दृष्टान्त देते हैं, देखो! अब सिद्ध करते हैं। उसे क्या विकल्प होता है ? किस प्रकार का राग होता है ? सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ और तदुपरान्त चारित्र की रमणता भी हुई, तथापि अभी वह राग की लार टूटी नहीं। लार अर्थात् अस्थिरता की टूटकर स्थिर होना चाहिए, वह टूटी नहीं। इसलिए उसे कैसे विकल्प सम्यग्दृष्टि को—धर्मी को आवे ? इस प्रकार के आवे, दूसरे उसे हों नहीं। ऐसा व्यवहार और निश्चय का सुसंगत मेल बताते हैं।

(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है,... यह विकल्प उठता है। क्या उठे ? है राग की वासना। भान है कि यह वासना मेरी चीज़ नहीं। तो भी विकल्प की वृत्ति में, अहो! यह नौ तत्त्व सर्वज्ञ ने कहे। यह जीव है, जड़ पर है, पुण्य-पाप आस्रव मलिन हैं, ऐसे नौ तत्त्वों में इन नव की श्रद्धा करनेयोग्य है, ऐसा विकल्प उठे। भान तो हुआ है, इन तत्त्वों का। परन्तु नव के भेद की श्रद्धा के व्यवहार श्रद्धा का राग उसे उठे बिना रहता नहीं। नव के अतिरिक्त यह एक तत्त्व श्रद्धायोग्य है, ऐसा विकल्प उसे नहीं होता। समझ में आया ? एक ही आत्मा जगत में होता है और नव (भेद) नहीं, ऐसा विकल्प होवे, तब तो वहाँ दृष्टि मिथ्यात्व है और व्यवहार भी उसे होता नहीं। ओहो! समझ में आया ? बहुत परन्तु जरा... इसका मेल जरा...

यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है,... जगत में छह वस्तुएँ हैं। इन छह द्रव्य की भी श्रद्धा का जिसे राग नहीं, छह द्रव्य का भी जिसे भान नहीं, उसे छह में से छाँटकर अकेले का भान नहीं हो सकता। छह द्रव्य को ही मानता नहीं, उसे एक तत्त्व पूरा उससे भिन्न है, उसे मानने की ताकत उसे हो नहीं सकती। क्यों ? कि उसके ज्ञान की वर्तमान दशा की भी सामर्थ्य इतनी है कि अपने को जाने और छह को जाने, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। उस सामर्थ्य को इनकार करे कि द्रव्य नहीं होते, छह वस्तुएँ नहीं होतीं। समझ में आया ? तब तो उसने एक वस्तु भी पर से निराली, उसकी श्रद्धा और ज्ञान उसे कभी हो नहीं सकते।

छह द्रव्य, वे श्रद्धायोग्य है। छह द्रव्यरूपी उसे तत्त्वार्थ कहा है मूल तो। भाई! कहा है न ? नियमसार में कहा है और इसमें भी कहा है। इसमें भी कहा है। उसमें कहीं आता है, देखो! उसमें भी आता है। किसमें आता है ? २३७ पृष्ठ में कहीं आता है।

२३७ पृष्ठ। वहाँ भी यह शब्द पड़ा है, देखो! 'अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहारमोक्ष को प्राप्त करता हुआ। यहाँ कोई कहता है कि यह भेदवासित बुद्धि है तो मिथ्यात्ववाले की है, ऐसी बात नहीं है।' २३७ पृष्ठ। 'यह आत्मा वास्तव में किसी प्रकार से अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ, धर्मादि सम्बन्धी तत्त्वार्थ अश्रद्धान के...' यह तो धर्मादि को भी तत्त्वार्थ शब्द कहा है। वहाँ नियमसार में भी कहा है। क्या कहा?

सर्वज्ञ परमात्मा ने एक समय के पूर्ण ज्ञान में जगत की छह चीज़ें देखी हैं। और उसका विस्तार करो तो जड़ और चैतन्य दो ही और उसकी संयोग से उत्पन्न होती पर्यायें- हालत पाँच, ऐसे सात। और एक आस्रव के दो भाग पृथक् कर डालो तो पुण्य और पाप। ऐसे नौ पदार्थों का अस्तित्व विद्यमान है। छह द्रव्य का अस्तित्व जगत में विद्यमान है, ऐसा प्रथम जहाँ ज्ञान न हो और उसे अकेले आत्मा का ज्ञान हो जाये, और छह द्रव्य नहीं और अकेले का ज्ञान हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? यह निश्चय की बातें सुनकर कितनों को साथ में क्या है, इसकी खबर उन्हें नहीं। समझ में आया?

एक तत्त्व का, सच्चिदानन्द प्रभु का भान होने पर भी उसकी ज्ञान की दशा पूर्ण नहीं, इसलिए उसे ऐसे विकल्प की वृत्तियाँ (आती हैं)। छह द्रव्य हैं, नौ पदार्थ हैं, वे श्रद्धा योग्य हैं। इससे विरुद्ध भाव, वह श्रद्धायोग्य नहीं, यह बाद में आयेगा, बाद में आयेगा। कहो, समझ में आया? यह श्रद्धायोग्य है, ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। क्योंकि परम तत्त्व का तत्त्व ऐसा जो आत्मा, उसका भान होने पर भी ऐसी वस्तु जगत में सत्देव, सत्गुरु, सत्शास्त्र की श्रद्धा का राग उस भूमिका में यह श्रद्धायोग्य है, यह गुरु माननेयोग्य है, ऐसा चारित्र माननेयोग्य है, ऐसा ज्ञान—केवलज्ञान माननेयोग्य है, ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? गजब बातें, भाई! कितनी परन्तु इसमें। अमरचन्दभाई! सम्यग्दर्शन बहुत जगह खोजते थे। कहते थे न? क्या होगा यह? बहुत सम्यग्दर्शन मनवाते हैं। ऐसा हुआ। भगवान हम। देव, गुरु, शास्त्र को मानो न, जाओ सम्यग्दर्शन है। धूल में भी नहीं। सुन न अब। धूल में भी नहीं अर्थात् क्या? उसे लोकोत्तर पुण्य भी नहीं बँधेगा। धूल अर्थात् लोकोत्तर पुण्य। समझ में आया?

सम्यक् चैतन्य को माननेवाले को छह वस्तु जगत में है, उन छह को न माने और

न जाने और आत्मा का ज्ञान हो जाये, ऐसा तीन काल में नहीं होता। और आत्मा का ज्ञान हो, उसे अभी छह द्रव्य के भेद को विचारने के विकल्प आये बिना रहते नहीं। समझ में आया? ऐसे विकल्प को और निश्चय दृष्टि की शुद्धता को व्यवहार से सुमेल है। व्यवहार से सुमेल है न? निश्चय से मेल नहीं। समझ में आया? ऐसा का ऐसा कोई मान ले कि अहं ब्रह्मास्मि, हम पूर्ण हो गये। जाओ! पूर्णानन्द हो गया। बनारसीदास को जरा ऐसा हो गया था न? निश्चय का बहुत हुआ। नग्न होकर कोठरी में घूमे चारों व्यक्ति। समझ में आया? हो गये मुनि। अरे! मुनिपना ऐसा नहीं होता। नग्न, वह मुनिपना हो गया? वस्त्र छोड़ दिये इसलिए? नग्न की बात तो अपने थी न (संवत्) १९९५ में बहुत हमारे एक मकनभाई थे। होंकारिया। वे यहाँ नहीं आये। होंकारिया थे वे। बहुत सुना इसलिए उन्हें हो गया। विचार में बहुत उतर जाये। चार-चार पहर। १९९५ के वर्ष में मोहनभाई के मकान में थे न जब? फिर उन्हें पावर फट गया। उन्हें पावर फटा (अभिमान चढ़ा) कि रात्रि में नग्न होकर आये मेरे पास। अरे! ऐसा नहीं होता नग्न। वह नग्न की जाति दूसरी और अन्तर की जाति दूसरी। अन्तर के भान के पश्चात् स्वरूप के आनन्द का उछाला आवे, तब सहज वस्त्र, पात्र छूटकर उसकी नग्नदशा हो जाती है। उसे व्यवहार से नग्न कहते हैं। ऐसे नग्न तो पशु भी घूमते हैं। समझ में आया? यह ९५ में बन गया बराबर, हों! बनारसीदास की कोठरी में चारों नग्न घूमें। हम हो गये साधु। परन्तु नग्न हुए इसलिए साधु हो गये? पहले वृत्ति वस्त्र की नहीं, परन्तु वृत्ति के वस्त्र, वे चैतन्य में वृत्ति नहीं, ऐसी वृत्ति को तोड़े बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता तो मुनिपना तो कहाँ से आवे? समझ में आया?

कहते हैं, यह श्रद्धायोग्य है। ऐसा विकल्प उस भूमिका में (आता है)। छह द्रव्य को श्रद्धायोग्य, दूसरा नहीं। **(२) यह अश्रद्धेय है,...** इससे विरुद्ध तत्त्वार्थ कहते हों, वस्तु कहते हों तो वह श्रद्धायोग्य नहीं है। ऐसी अस्ति-नास्ति का शुभराग उस भूमिका में उसे लायक-योग्य, शुद्ध के अंश के साथ आये बिना रहता नहीं, तथापि है वह बन्ध का कारण। है बन्ध का कारण। संवर, निर्जरा का—शुद्धता का कारण नहीं। परन्तु शुद्धता पूर्ण हुई नहीं, तब ऐसे ही ज्ञान के प्रकार के विकल्प उठते हैं, दूसरे उसे हो नहीं सकते।

(३) यह श्रद्धा करनेवाला है... देखो! चार भाग करेंगे। नौ पदार्थ, छहों द्रव्य श्रद्धायोग्य है; इससे विरुद्ध हो, वह श्रद्धायोग्य नहीं। यह दो बोल हुए। है राग। आत्मा उसका श्रद्धा करनेवाला है। यह भेद पड़ा न? आत्मा उसका श्रद्धा करनेवाला है। यह भी अभी राग हुआ। श्रद्धा करनेवाला है। **और (४) यह श्रद्धान है...** इन नौ को, छह द्रव्य को मानना, वह श्रद्धान है। वह पर्याय श्रद्धान है। ऐसे चार प्रकार के भेद पड़कर राग की वृत्ति उठती है, उसे व्यवहार श्रद्धा का विकल्प कहने में आता है। समझ में आया? भाई! इस बार तो लालचन्दभाई ने माँग की थी कि यह (लेना)। फिर यही आवे न, दूसरा क्या आवे? जो हो उसमें से आवे या नहीं? कहो, समझ में आया इसमें?

चार बोल हुए। वस्तु एक और चार पड़े, यह तो विकल्प उठा। वस्तु तो एक। दृष्टि का विषय और सम्यग्दर्शन में अकेला चैतन्यतत्त्व। परन्तु पूर्ण अभेद हुआ नहीं, पूर्ण एकाकार हुआ नहीं, इसलिए पूर्ण निर्दोष हुआ नहीं। इसलिए सदोषता के विकल्प की जाति ऐसी होती है, दूसरी उसे होती नहीं। फिर चाहे ऐसा द्रव्य हो और चाहे जैसा हो, हमारे क्या? निश्चय पाये हैं, इसलिए (हो गया)। कितने ही और यह पढ़कर ऐसा मानते हैं। समझ में आया?

एक आया था। ... लेकर। मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा। निश्चय होने के पश्चात् माँस खाना, शराब पीना या ऐसा करना या वह करना, स्त्री के परिचय में रहना, वह कहाँ अवरोधक है समकित को? अरे! सुन न अब, मर जायेगा। समझ में आया? पावर फटा उल्टा। अब हमारे क्या? निश्चय में तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कुछ करता नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को भोगता नहीं। अब अपने स्त्री के परिचय में रहें। परीक्षा करे कितने ही। स्त्री के परिचय में... अरे! मूर्ख जहर की परीक्षा नहीं होती। यह जहर मार डाले ऐसा होगा या नहीं? समझ में आया या नहीं? मार डाले ऐसा होगा? इसकी परीक्षा करनेवाला रहेगा कौन? खाये वहाँ मर जायेगा। इसी प्रकार स्त्री आदि के संग में... भगवान ने भले नौ वाड कही, परन्तु परद्रव्य नुकसानकर्ता नहीं। इसलिए उसका संग (किया जाये)। संग करने का भाव तूने किया है या किसी ने कराया है? वह संग करने के भाव की रुचि तुझे कैसे हुई? समझ में आया? मर जायेगा। यहाँ कहीं पोपाबाई का राज नहीं है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं। अब माँस खाये, शराब पीये, व्यवहार चाहे जैसा हो, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को भले मानता हो, तो उसे—समकित को क्या बाधा? मरी जायेगा अब। समकित-फमकित नहीं तेरे पास। समझ में आया? चन्दुभाई! बहुत से लोग आवे भाई, यहाँ तो बहुत लाखों (आ गये)। बाहर बात गयी, तीन लाख, सवा तीन लाख पुस्तकें (प्रकाशित हो गयीं)। कितने ही निश्चयाभासी हो गये। भान नहीं होता। और कितने ही व्यवहार से तो अनादि के पड़े हैं। व्यवहार से होगा और करते-करते होगा, वह अभव्य जैसे मूढ़ जीव हैं। परन्तु यह निश्चय की बातें सुनकर... छगनभाई! स्थानकवासी साधु थे। फिर हो गये मन्दिरमार्गी। मन्दिरमार्गी होने के पश्चात् यह पढ़ा। पढ़कर पावर फटा। मेरे पास कहने आये। निश्चय में ऐसा हो, फिर उसे व्यवहार क्या? अरे! सुन रे सुन। जिसे निश्चय का ऐसा भान हो, उसे राग की मन्दता के कितने प्रकार होते हैं। साधु होकर स्त्री का परिचय करूँ और उसे ऐसा करूँ। मर जायेगा। तेरी श्रद्धा भी खोटी और तेरा व्यवहार भी खोटा। समझ में आया? परन्तु अकेले बाहर से नौ वाड पाले और ब्रह्मचर्य पाले, इसलिए धर्म हो गया, वह भी मूढ़ और मूर्ख है। समझ में आया? दो ओर की तलवार चले। दोधारी। दोधारी नहीं, तलवार एक है दो होकर। दोधारी होकर एक है। समझ में आया?

मक्खन निकालते समय डोरी नहीं रखते? डोरी। डोरी दो नहीं होती। डोरी एक होती है। उसके छोर दो होते हैं। यह छोर खींचे, तब वह छोर ढीला रखे और यह खींचे, तब वह ढीला रखे। परन्तु दो इस प्रकार से करे तो मक्खन निकले। इसी प्रकार जहाँ व्यवहार का निषेध किया कि परद्रव्य नुकसानकर्ता नहीं है। आया न? इसमें नहीं आया? अपने समयसार में निर्जरा (अधिकार) में आ गया। अरे! ज्ञानी! परद्रव्य को भोगने से मुझे नुकसान होगा, पाप माने तो मूढ़ तेरी दृष्टि मिथ्या हो जायेगी। इसलिए भोग परद्रव्य को। ऐसा कलश में लिखा है। अरे! निर्जरा अधिकार में है। किसलिए लिखा है? तुझे खबर नहीं। यह निःशंकता परद्रव्य से भिन्नता करने के लिये लिखा है। परन्तु परद्रव्य को भोगने का भाव हो और तू कहे कि मैं परद्रव्य को भोगता हूँ तो भी पाप नहीं। मर जायेगा, कहीं छोर नहीं आयेगा तेरा। समझ में आया? कहाँ गये रतिभाई? रतिभाई, समझ में आया या नहीं यह? सब समझना पड़ेगा, सब यह। समझे बिना एक

भी अन्त आवे ऐसा नहीं है। लोहे के पैसे से कुछ मिले, ऐसा नहीं है। धूलधाणी। क्या कहा यह ?

आहाहा! चार-चार बोल लेंगे एक-एक में। छह वस्तु का विकल्प उठे, नव तत्त्व का विकल्प उठे कि श्रद्धायोग्य है। दूसरा नहीं। वह श्रद्धा करनेवाला भी मैं हूँ और श्रद्धा एक पर्याय है राग की, व्यवहार की। समझ में आया ? निश्चय त्रिकाल श्रद्धा यह है, ऐसा विकल्प उठे, वह भी व्यवहार है। आहाहा! भगवान चैतन्यज्योति है न! उसकी दृष्टि हुई, अभेद हुआ परन्तु सर्वथा अभेद नहीं हुआ, इसलिए ऐसी भेद की विकल्प की दशा उसे होती है। इसके अतिरिक्त दूसरा हो तो उसका निश्चय भी खोटा और उसका व्यवहार भी खोटा।

दूसरा बोल। **(१) यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है,...** छह वस्तु और नौ तत्त्व जाननेयोग्य हैं। वे जाननेयोग्य हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे ज्ञेय अज्ञानी ने कहे हुए, वे जाननेयोग्य हैं नहीं। भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्य परमात्मा ने जो वस्तु की स्थिति को जैसे अनेक प्रकार कहा, वही जाननेयोग्य है; इसके अतिरिक्त दूसरे जाननेयोग्य नहीं हैं। ऐसा विकल्प उठे बिना रहता नहीं। क्योंकि प्रभुत्वशक्ति अभी आत्मा में ढली नहीं। पूर्ण प्रगट हुई नहीं, इसलिए ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। ऐसा आता होगा ? वह जाननेयोग्य है और वह जाननेयोग्य नहीं। निश्चय होने के बाद क्या ? भाई! निश्चय हुआ आत्मा का भान। परन्तु अभी स्थिरता का निश्चय नहीं है। पूर्ण स्थिरता हुई नहीं, इसलिए ऐसा राग आये बिना रहता नहीं। और ऐसा कहते हैं कि ऐसा राग हमको नहीं आता, हम तो अकेली वीतरागता में रहते हैं।

एक साधु को कहा था। सुने न कि यहाँ निश्चय की बातें बहुत चलती हैं। इसलिए एक नग्न साधु आया। हम मुनियों को व्यवहार का क्या काम है ? ओहो! हमको-मुनियों को व्यवहार का क्या काम है ? कहा, इसका पावर फटा लगता है। अभी निश्चय का भान भी नहीं होता। हमारे व्यवहार का क्या काम है ? काम की कौन ना करता है ? सुन न! परन्तु आत्मा का भान होने पर भी उसकी मर्यादावाले राग का व्यवहार आये बिना नहीं रहता, तथापि वह हेय है, बन्ध का कारण है, आये बिना रहता नहीं। छोड़नेयोग्य है। क्यों नहीं छोड़ता ? सुन न अब। स्थिरता का पुरुषार्थ नहीं इसलिए नहीं

छूटता। परन्तु छोड़नेयोग्य होने पर भी ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। चन्दुभाई! गजब बात, भाई!

यह निश्चय और व्यवहार में भारी सन्धि। या अकेला निश्चय हो और या अकेला व्यवहार हो। नहीं, नहीं। ऐसा नहीं होता, भाई! अकेला निश्चय सत्य तो सर्वज्ञ को पूर्ण हो गया। अकेला व्यवहार वह मिथ्यादृष्टि को रहा। नवरंगभाई! अकेली निश्चयदृष्टि और अनुभव की स्थिरता सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त को हुई। उन्हें व्यवहार-फ्यवहार नहीं होता। नय नहीं न, उन्हें नय कहाँ है? वह तो प्रमाण हो गया। अकेला व्यवहार अनादि का मिथ्यादृष्टि को होता है। ऐसे प्रकार के विकल्प, उन्हें धर्म माने और उन्हें सर्वस्व माने। यहाँ तो आत्मा के भानसहित के निश्चय की भूमिका में ऐसे विकल्प की मर्यादा आये बिना रहती नहीं। ऐसा ही वहाँ निमित्त विकल्प का होता है। दूसरे राग की मन्दता का दूसरा विकल्प इस जाति का हो सकता नहीं।

जाननेयोग्य है... भगवान ने कहे हुए पदार्थ जाननेयोग्य है और भगवान सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरे तत्त्व अज्ञानी ने कहे, वे अज्ञेय अर्थात् जाननेयोग्य नहीं। ज्ञेयरूप से ज्ञान, वह नहीं। परन्तु जानने के लिये अर्थात् वह ठीक है, ऐसा जाननेयोग्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! भेदवासना उठे, इसलिए नौ तत्त्व का ज्ञान, शास्त्रों का ज्ञान, व्यवहार ज्ञान ऐसा अन्दर प्रयत्न उस प्रकार का शुभ में आवे। समझे कि अरे! मेरी कचास है, हों! अरे! मेरी उग्रता पुरुषार्थ की अन्दर स्थिर नहीं, हों! इस कारण से है। यह कारण कहीं कर्म का जोर है, इसलिए मुझे यह वासना विकल्प की शुभ की उठती है—ऐसा धर्मी नहीं मानता। समझ में आया? यह जाननेयोग्य नहीं।

(३) यह ज्ञाता है... आत्मा इसका जाननेवाला है। इस वस्तु को शास्त्रज्ञान को और नव को जाननेवाला आत्मा। और ज्ञात हो वह पर और जो ज्ञान, यह ज्ञान है। इसे जाने वह ज्ञान है। ऐसे भेद पड़े न? ज्ञाता आत्मा, जाने वह ज्ञान, यह जाननेयोग्य और यह जाननेयोग्य नहीं। ऐसा राग का विकल्प उठे, उसे व्यवहारज्ञान के विकल्प की वासना कहने में आता है। परन्तु किसलिए उठाना ऐसे विकल्प? अरे! सुन न? तुझे भान नहीं। मुनि छठवें गुणस्थान में आनन्द में वर्तते होते हैं। उन्हें भी ऐसे विकल्प आये बिना नहीं रहते। तू कहाँ आगे बढ़ गया गणधर से भी? वह कहे, हम तो अकेले आत्मा

में रहेंगे। हमारे विकल्प-फिकल्प का काम नहीं। बहुत अच्छी बात है। मिथ्यात्व को घूंट। समझ में आया? मिथ्या श्रद्धा को रगड़। बाकी दूसरा कुछ है नहीं। चन्दुभाई!

वस्तु की दृष्टि होने के पश्चात् भी, अरे! चारित्र की रमणता की कल्लोल में पड़ा होने पर भी ऐसा छठवें में जहाँ आया, (वहाँ) ऐसे विकल्प उठे बिना रहते नहीं। ऐसा राग आये बिना रहता नहीं। गणधर को आये बिना रहता नहीं। आहाहा! चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना जिसने अन्तर्मुहूर्त में पुरुषार्थ से की, ऐसों को भी यह विचार आये बिना रहता नहीं। भगवान की दिव्यध्वनि सुनता हो ऐसे बराबर। गणधर, हों! आहा! वाह! यह सब विकल्प की भूमिका है तो आये बिना रहे नहीं। समझ में आया? यह चार हुए ज्ञान के। परन्तु है भेद। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय—जाननेयोग्य, नहीं जाननेयोग्य। ऐसे चार का भेद विकल्प। ऐसी जाति उसे विकल्प की आती है, परन्तु दूसरी जाति आती नहीं।

अब तीसरे में चारित्र की बात के चार भेद हैं। हो गया समय...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - ०३-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-७

... भगवान आत्मा... २३७ पृष्ठ, दूसरी लाईन, गुजराती। (धर्मी) जीव को अशुद्धता भी अभी दशा में उत्पन्न होती है, वह किस प्रकार की होती है और उसे शुद्धता कैसी होती है, उसे निश्चय और व्यवहार का मेल और सुसंगत का अधिकार चलता है। समझ में आया? यह आया, अनादि काल से भेदवासित। पहले आ गया न कि **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** अर्थात्? अनादि काल का मिथ्यादृष्टि यहाँ नहीं लेना। समझ में आया? व्यवहार भी उसे आता है कि जिसे... अधिकार है यह, २३७ में है न? कहीं है। २३७ पृष्ठ पर है, देखो! अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहार मोक्षमार्ग को पाता हुआ। दूसरी लाईन है २३७ पृष्ठ। क्या कहा?

भगवान आत्मा... २३७ पृष्ठ, दूसरी लाईन, गुजराती। कैसा है आत्मा? अनादि अविद्या के नाश द्वारा। अर्थात् व्यवहार राग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, ऐसा व्यवहार अज्ञानी को होता नहीं। जिसने भगवान आत्मा में अविद्या अर्थात् अज्ञानपना। पूर्णानन्द के स्वभाव की सावधानी करके... सावधानपना अर्थात् उसके प्रति की रुचि छोड़कर, ज्ञायकमूर्ति भगवान आत्मा का आश्रय लेकर अज्ञान का जिसने नाश किया है, ऐसा ज्ञानी व्यवहारमोक्षमार्ग पाता हुआ। उसे व्यवहार होता है। समझ में आया?

जिसे अभी पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे मुझे धर्म हैं और धर्म का कारण है, ऐसी मान्यतावाले जीव तो अनादि मिथ्यादृष्टि हैं। उस प्रकार के वर्ग में पड़े हैं। उन्हें नहीं निश्चय का भान और इसलिए उसे व्यवहार भी नहीं होता। समझ में आया इसमें? सुनायी देता है? थोड़ाबहुत सुनायी देता है। अर्थात् कि इसने पहले निर्णय किया हो कि जो कोई शास्त्र, गुरु और देव जिसने इस आत्मा के परिपूर्ण स्वभाव की प्राप्ति की, प्राप्त करने को प्रयत्नशील हैं और जिसने कहा है, उसमें यह आया हो कि शुभाशुभ के रागरहित तेरी पूर्णानन्द की मूर्ति चैतन्य भिन्न है। राग भी है, संयोग भी है, स्वभाव भी है। तीन की जिसने अस्ति साबित की हो और अस्ति में से उसे पुण्य-पाप के राग से भिन्न पड़कर तेरी वस्तु को अवलोकन किया जा सकता है। ऐसी

जिसने दशा में पलटा खाकर, ऐसा किया जा सकता है, ऐसा हो सकता है, ऐसे उसमें नौ तत्त्व सिद्ध होते हैं। ऐसा कहनेवाले जो देव हों, ऐसा माननेवाले गुरु हों, ऐसा कहनेवाले शास्त्रों में यह विधि और यह रीति हो, यह पहले उसकी मान्यता में बात आ गयी होती है। चन्दुभाई!

इसके अतिरिक्त कोई विरुद्ध कहनेवाले हों, उसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र मानकर जिसने श्रद्धा में से छोड़ दिया है। समझ में आया? जो कोई ऐसा कहे कि हमारे संग के कारण तुमको धर्म होगा। तुम्हारे राग की मन्दता करते-करते, यह दया, दान, व्रत के परिणाम से तुमको कल्याण होगा, ऐसा कहनेवालों को जब तक सम्मत हो, उसे ठीक माने, उसे अनुमोदन दे, तब तक तो उसकी श्रद्धा में व्यवहार गृहीत मिथ्यात्व के सब कण खड़े हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म परन्तु इसमें। इस गृहीत मिथ्यात्व को जिसने छेदा है। क्योंकि जो धर्म प्राप्त कराने की बात कहनेवाले हों, उन्होंने इतनी तो बात पहले सत्यार्थरूप से स्वीकार की हो। पूर्ण शुद्ध चैतन्य स्वतन्त्र पदार्थ पलटा मारे, ऐसी वह चीज़ है। विकार उसमें है, संयोग भी विकार का एक निमित्त है, अन्तर। बाह्य निमित्त भी चीज़ें हैं। इन सबकी अस्ति सिद्ध करनेवाला और उस अस्ति में से भेद पड़नेवाली बात हो। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद। ऐसे अस्तिरूप से सिद्ध करके, फिर उसे भेद कराने की बात करता हो। परन्तु उसे—राग को रखकर कल्याण होगा, निमित्त के लक्ष्य से कल्याण होगा, ऐसा माननेवाले हैं, उन्हें तो अस्तिपने क्या है और भेद कैसे करना, उसकी भी उन्हें खबर नहीं है। समझ में आया? यह एक कसौटी से परीक्षा करने की एक पद्धति है। यह बात पहले आचार्यदेव सब कह गये हैं। समझ में आया?

अब जब आत्मा इस अज्ञान का नाश करके अर्थात् अनादि काल से ऐसे इसे गुरु, शास्त्र और देवरूप से कहनेवाले मिले, उसे श्रद्धारूप से उसके श्रद्धा का आश्रय छोड़ दिया इसने। समझ में आया? और जिसकी श्रद्धा में ऐसे देव, गुरु, शास्त्र की मान्यता का विकल्प है, और तो भी उस विकल्प से कल्याण नहीं, ऐसा जिसने विकल्प से भेद

किया है, ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव को—आनन्द के साधक जीव को अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान, उसे आकुलता के अंश से भिन्न करनेवाले मिले और किया स्वयं ने। परन्तु जो मिलावट करनेवाले मिले... न्याय समझ में आता है इसमें कुछ? न्यालभाई! मिलावट करनेवाले मिले, मिलावट करानेवाले शास्त्र मिले और मिलावट करनेवाले इसे कहते हैं कि यह हमारे देव ऐसा कहते हैं। ऐसी जो श्रद्धावाले हैं, उनकी तो यहाँ बात ही नहीं है। उस श्रद्धा को तो पहले इसने छोड़ दिया होता है। फिर सच्चे देव-गुरु-शास्त्र जो अस्तिरूप से सब स्थापित कर—स्वभाव, विभाव, निमित्त, बाह्य निमित्त सब है—ऐसा स्थापित कर उसमें से एकपना छाँटने की बात की है। समझ में आया?

राग के विकल्प से, संयोग से और अन्तरंग कर्म के निमित्त से भगवान आत्मा निराली चीज़ है, ऐसा जिसने शास्त्र द्वारा, गुरु की वाणी द्वारा स्वरूप से साधक किया है और सर्वज्ञ ने इस प्रकार देखकर साधक होकर सिद्ध हुए हैं, इतने विवेकी जीव को फिर अन्दर में जब राग से पृथक् पड़ा, तब आत्मा आनन्दकन्द शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है, मुझमें से ही मेरा मोक्षपद प्रगट होगा। दूसरे से होगा नहीं। ऐसा इसने अन्दर धाम में दृष्टि देकर निर्णय किया कि इसमें स्थिर होगा तो चारित्र होगा और इसमें स्थिर होगा तो केवलज्ञान होगा। ऐसा सर्वज्ञों, गुरु और शास्त्र कहना चाहते हैं, ऐसा अपने अन्दर में भास हुआ है।

ऐसे भेदज्ञानी अथवा सम्यग्दृष्टि अथवा सन्तों को निश्चय का ऐसा भान और प्रगट दशा होने पर भी उन्हें पूर्ण वीतरागी अविकारी निर्दोष दशा नहीं हुई, इसलिए बीच में ऐसे विकल्प व्यवहार के आये बिना नहीं रहते। किसके? किसके? यह श्रद्धा करनेयोग्य है, ऐसा विकल्प उसे उठता है। राग, राग की वृत्ति उठती है। वृत्ति से भिन्न हूँ, ऐसा भान वर्तता है। परन्तु अभी वृत्ति उठती है विकल्प के वासना की। अहो! पूर्णानन्द आत्मा श्रद्धा करनेयोग्य है, वह श्रद्धागत हो गया है। समझ में आया? और सच्चे देव, गुरु और शास्त्र तथा नौ तत्त्वों की, जीव और जड़ दो, और संयोग तथा वियोग से होती पाँच दशायें। पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध। आस्रव कहो तो पुण्य-पाप उसमें समा देते हैं। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। ऐसी अवस्थायें पाँच और दो वस्तु।

ऐसा जो है, वह श्रद्धा करनेयोग्य है और इसके अतिरिक्त विरुद्ध हो, वह श्रद्धायोग्य नहीं है। ऐसा उसे विकल्प इस जाति का आये बिना रहता नहीं। उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप दिया जाता है। यह भिन्नसाध्यसाधन हुआ।

अर्थात् कि आत्मा का साधन तो शुद्ध चैतन्य हूँ, उसे ओर साधता है और पूर्ण साध्य जो केवलज्ञान और परमानन्द, वह उसके ध्येय में है। परन्तु उस ध्येय में वास्तविक साधन तो शुद्धस्वभाव की ओर ढलकर एकाग्रता होना, वह है। परन्तु ऐसे विकल्प भी भिन्न साधनरूप से, भिन्न साध्य और साधनरूप से व्यवहार से कहने में आते हैं। ऐसा साधन, उसे उत्पन्न हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया? बहुत बोल, परन्तु इसमें याद रखना।

(३) यह श्रद्धा करनेवाला है... भगवान आत्मा श्रद्धा करनेवाला है। भेद पड़ा है न, भेद। आत्मा श्रद्धा करनेवाला है। यह श्रद्धा करनेयोग्य है और इससे विरुद्ध बात कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र ने कही हुई, वह स्वयं श्रद्धायोग्य नहीं है, ऐसे विकल्प की वृत्ति, पुण्य की-शुभ की, कषाय के मन्द की आवे, उसे व्यवहार से-व्यवहार से शुद्ध परमात्मदशा का साध्य का साधन कहने में आता है। गजब भाषा सब ग्रीक-लेटिन जैसी। वह तो ... तस्स मिच्छामी दुक्कडम्, जाओ। है कुछ? चन्दुभाई! एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया... त्रिइन्द्रिया... परन्तु तेरा जीविया, वहोरिया आत्मा कैसे हो, इसकी तुझे खबर है?

भगवान ज्ञानानन्द चैतन्यानन्द प्राण, उसमें राग की-शुभ की वृत्ति उठे, वह भी चैतन्य भावप्राण को घात करनेवाला हिंसाभाव है। समझ में आया? उसे जीविया वहोरिया कर रहा हो, उसे यदि जिलाना हो, उसके चैतन्य भावप्राण की सत्ता की सम्हाल करनी हो तो पहले तो अज्ञान-राग की पृथक्ता करके स्वरूप का भान हुआ, उसकी अधिक सम्हाल करने के लिये अब आगे जाता है, तब बीच में ऐसा पूर्ण शुद्धता के व्यवहार साधनरूप से निश्चय साधन तो स्वरूप की एकाग्रता होती है परन्तु व्यवहार आरोप अथवा निमित्त साधनरूप से एक ऐसे विकल्प ज्ञानी को भी इस प्रकार के होते हैं, दूसरे प्रकार के होते नहीं। ऐसा उसे विवेक करके समझाते हैं।

भगवान आत्मा नौ पदार्थ की जैसी स्थिति-स्वरूप है, सद्भाव है नौ ही, उसे

वह श्रद्धायोग्य है। उससे विरुद्ध श्रद्धायोग्य नहीं। भगवान आत्मा श्रद्धा करनेवाला है और श्रद्धान पर्याय, वह श्रद्धान है। ऐसे विकल्प की वृत्ति है पुण्यबन्ध का कारण, है बन्ध का कारण, तथापि भिन्न साध्यसाधन के व्यवहार में उसे आरोप दिया जाता है कि यह भी एक साधन है, उपचारी साधन है; वास्तविक साधन है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या माने ? धूल ? गुरु ने कहा क्या माना ? परन्तु खबर बिना। वह दे करेला और माँगे लौकी। मैं कहता हूँ वह मान। ले। परन्तु क्या ? वहाँ जाँचता है या नहीं ? नहीं, हम लौकी लेने आये हैं, करेला नहीं। कड़वा नहीं, मीठा लेने आये हैं। समझ में आया ? इसमें कहते हैं न क्या कुछ ? अमुक बहुत है और क्या कहलाता है तुम्हारे ? विटामिन और अमुक ऐसा आता है न ? क्या डॉक्टर ? इसमें विटामिन अधिक है, लौकी में ऐसा है, ढींकणा में ऐसा है। लोग बातें करे, सुनी हुई है। अपने को कहाँ बहुत खबर है। अमुक में विटामिन होता है, इसलिए लौकी की सब्जी अधिक खाना, ढींकण ऐसा करना, फलाना ऐसा करना, मेरा गोला अनेक प्रकार के डॉक्टर भी। वह कहे कि लौकी लेने आया हूँ। सवा पाँच सेर लौकी चाहिए है, दूसरी कोई चीज़ नहीं। यह परखकर लेते हैं या नहीं ? या परखे बिना ?

इसी प्रकार भाव का अन्तर गुरु कहे, सर्वज्ञ कहे, शास्त्र कहे, वह क्या कहना चाहते हैं, इस भाव का ख्याल आये बिना... यह तो अभी ही वाँचन हो गया है मोक्षमार्गप्रकाशक में। भाई! शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया है, तुम कहते हो ऐसा। मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में पीछे के भाग में। कि हम तो भगवान कहे वह सच्चा, ऐसा माने तो क्या बाधा है ? यहाँ है या नहीं ? समझ में आया ? नहीं। यह है न यह। समझ में आया ? यह मोक्षमार्गप्रकाशक है, लो। इसमें सातवें अध्ययन में आ गया है। सातवें में है न, अन्तिम। यह कहा, देखो! २६३ पृष्ठ पर है।

प्रश्नः—यदि जिनदेव अन्यथावादी नहीं... शिष्य ने प्रश्न किया। तुमने किया वैसा। **तो जैसा उनका उपदेश है, वैसा ही श्रद्धान कर ले, परीक्षा किसलिए करें ?** देखो! यह प्रश्न है। मोक्षमार्गप्रकाशक २६३ पृष्ठ। यह हजारों पुस्तकें प्रकाशित हो गयी

हैं, और अभी तीन हजार नयी प्रकाशित होनेवाली है। समझ में आया? यह कायदा देते हैं या नहीं कुछ? न्यालभाई! वकील कहे, इस जगह यह कायदा लिखा हुआ है। यह २६३ पृष्ठ, मोक्षमार्गप्रकाशक। भाई ने—मूलजीभाई ने प्रश्न किया, वैसा प्रश्न है। महाराज! भगवान कहते हैं वह सच्चा, गुरु कहते हैं वह सच्चा। हमारे परीक्षा क्या करना? सुन!

उत्तरः—परीक्षा किये बिना ऐसा तो मानना होता है कि—जिनदेव ने इस प्रकार से कहा है, वह सत्य है, परन्तु उसका भाव अपने को भासित नहीं होता... भाव भासित नहीं होता, इसलिए तेरी श्रद्धा की हुई सब खोटी है। समझ में आया? **और भाव भासित हुए बिना...** भावभासन अर्थात्? उस भाव का ज्ञान। भाव का ख्याल आवे नहीं कि यह चीज़ यह और यह चीज़ यह, ऐसे ख्याल बिना **श्रद्धान निर्मल नहीं होता,...** दृष्टान्त देते हैं। **क्योंकि जिसकी किसी के वचन द्वारा प्रतीति की हो, उसकी अन्य के वचन द्वारा अन्यथा भी प्रतीति हो जाती है,...** दूसरा कहे तो दूसरा हो जाये, तीसरा कहे तो तीसरा हो जाये। यह **वचन द्वारा की हुई प्रतीति शक्ति अपेक्षा से अप्रतीति समान ही है...** समझ में आया? ऐई! भानुभाई! यह पुस्तक, यह बहियों के नामा के, कायदा। अरे! कायदा त्रिकाल सत्य सिद्ध हो गये हैं। ऐसा नहीं चलता। वचन की प्रतीति दूसरा वचन दूसरा कहे वहाँ बदल जाये। शक्ति अपेक्षा से उसके ज्ञान के ख्याल में आये बिना यह प्रतीति, अप्रतीति ही है। उसे प्रतीति कहने में नहीं आता। समझ में आया? उन्होंने बहुत बात ली है। **जिसका भाव भासित हुआ हो, उसे अनेक प्रकार द्वारा भी अन्यथा माने नहीं, इसलिए भावभासन सहित जो प्रतीति होती है, वही सच्ची प्रतीति है।**

तब और दूसरा प्रश्न (करता है), अभी तुमने कहा वह। **यहाँ कहेगा कि—पुरुष की प्रमाणता से वचन की प्रमाणता करते हैं।** सच्चे गुरु और उनका वचन प्रमाण। **परन्तु पुरुष की प्रमाणता भी स्वयं तो होती नहीं, पहले उसके कितने ही वचनों की परीक्षा कर लें, तब पुरुष की प्रमाणता होती है।** दूसरे से यह सच्चा, किस प्रकार तूने निर्णय किया? उसके वचन के भाव में दूसरे की अपेक्षा अन्तर कहाँ है? और सच्ची श्रद्धा का क्या स्वरूप कहता है? ऐसे वचन के प्रमाण में प्रतीति आये बिना पुरुष प्रमाण वचन (प्रमाण) यह भी निश्चित नहीं होता। समझ में आया? यह

मोक्षमार्गप्रकाशक बहुत... अभी यहाँ तो नहीं न अपने? कैसे? लाल। चार रुपये के। यहाँ नहीं लाये? एकाध पुस्तक का नमूना लाना था बतलाने को। कहाँ है? चार रुपये की एक पुस्तक दो रुपये में विक्रय होती है। किसी भी प्रकार से प्रचार सत्य क्या है लोग पढ़े। ऐसे देखो तो पुस्तक ऐसी लगती है कि इसका बाईंडिंग का सवा रुपया बैठेगा। ऐसी पुस्तक। लोगों को... ग्यारह सौ प्रकाशित हैं... एकदम खप गये हैं। मूलजीभाई! वह साढ़े तीन की पुस्तक थी तो पौने दो में गयी थी एक बार। समयसार। याद है? फिर मैंने उल्हाना दिया था थोड़ा सा। खबर है? सेठियाओं तुम सब आधी कीमत में ले जाते हो? यह (संवत्) १९९४ के वर्ष। ऐ... दामोदरभाई! ९४ के मागसर शुक्ल १०, स्वाध्यायमन्दिर का मुहूर्त हुआ न? फिर अस्सी पुस्तकें वहाँ से मँगायी थी। श्रीमद् राजचन्द्र... क्या कहलाता है वह? मणिलाल रेवाशंकर। उसकी ओर से अस्सी बाकी थी उनकी पास। दो मुफ्त भेजे और अस्सी साढ़े तीन रुपये में भेजे थे। पौने दो में विक्रय किये। साधारण तो ले, मूलजीभाई ने पौने दो में लिया। समझ में आया? परन्तु खबर तो हो या नहीं उस दिन की? चन्दुभाई! यह पड़ा होगा वहाँ इसके घर में।

यहाँ कहते हैं कि घर का गहना लेने जाये, लड़की का या स्त्री के लिये, तो एक गहना पाँच बहुओं में चलता हो? पाँचों के अलग-अलग रखते हैं। यह तो एक पुस्तक रखो अपने घर में, सस्ती मिले वह। देखो, कीमत इसे। पाँच लड़कों की पाँच बहुयें हो तो पाँचों के गहने अलग। वे गहने सामूहिक न रखे। नरभेरामभाई! यह पुस्तक सत्य इसकी कीमत कितनी इसे? यह एक लाओ। आधी कीमत में मिलती है। यह दो रुपये की पुस्तक। देखो, यह मोक्षमार्गप्रकाशक का आधार दिया न! २६३ पृष्ठ में है यह। चार रुपये की पुस्तक, दो रुपये में ग्यारह सौ एकदम चली गयी। तीन हजार नये प्रकाशित करनेवाले हैं। यह वस्तु क्या है, मार्ग क्या है, पढ़े, विचारे, कुछ गुरुगम करे तो उसे खबर पड़े। यह तो न देखना बहियाँ, न पढ़ना और जय नारायण! भगवान कहे वह सच्चा और गुरु कहे वह सच्चा, ऐसा नहीं चलता। परीक्षा करके तत्त्वों को कसौटी में चढ़ाना चाहिए। समझ में आया? यह तो जरा तुमको ख्याल आवे। ओहो! यह दो रुपये की! अंग्रेजी हो तो पन्द्रह में भी यह न मिले, भाई! इसके पृष्ठ देखो, बाईंडिंग देखो यह। सवा का तो यह होगा और दो रुपये में (विक्रय किया है)। एकदम चले गये

ग्यारह सौ और नवनीतभाई कहे दूसरे प्रकाशित करो। आधी कीमत में, हम पैसे देंगे। समझ में आया? यह बात आयी इसमें इकट्ठी सब। कीमत है न इसे कीमत। कितनी कीमत? ओहोहो!

श्रीमद् राजचन्द्र को जब पहले समयसार मिला, समयसार मिला... वे भाई कहते थे। नहीं? वे मनसुखभाई। मनसुखभाई नहीं परन्तु गिरधरभाई। गिरधर मनसुख। गिरधरभाई नहीं? वे कहते थे कि वहाँ मेरे पिताजी उपस्थित थे। उनके पिताजी। ऐसे समयसार मिला, ऐसे जहाँ पृष्ठ देखा। ऐ.. रुपयों की थाली भरकर लाओ। थाली भरकर रुपये लाओ। कितने? यह तो बहुत वर्ष की बात है न! उस दिन तो सस्ता था न। एक थाली भरकर रुपये लाओ। रुपया बड़ा हो गया। तब तो बड़ा था। अभी छोटा हो गया। अब छोटा इतना तीन आने का। खोखा भरकर... कितनी कीमत? प्रश्न नहीं। चीज़ ऐसी सत्य जिसमें परोसी गयी, भगवान त्रिलोकनाथ का पेट जिसमें खोलकर रखा, खोबा भरकर उसको (रुपये दिये)। समझ में आया?

जिसे सत्य चाहिए है, उसे सत्य के निमित्त शास्त्र आदि की भी उसे पूज्यबुद्धि-बहुमान होना चाहिए। कुशास्त्र और कु... का बहुमान उसे छूट जाना चाहिए। सम्यग्दृष्टि जीव अपनी ज्ञान की पर्याय में विचार करता है कि अरे! ऐसे सत्य को जानना चाहिए। नौ तत्त्वों का बराबर ज्ञान करना चाहिए। छह द्रव्य का बराबर ज्ञान करना चाहिए। ऐसा विकल्प। यह ज्ञेय से विरुद्ध हो, वह जाननेयोग्य नहीं, ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। वह ज्ञाता भगवान आत्मा जाननेवाला है और उसका यह ज्ञान है। यह सब भेद से विचार करता है, उसे राग के अंश को, त्रिकाल शुद्ध साध्य है, उसे यह व्यवहार से भिन्न साधन कहने में आता है। ऐसे उपचार के कथनों में ऐसे ही विकल्प होते हैं। समझ में आया? यहाँ तक आया है।

अब यहाँ, **यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है,...** ऐसा विकल्प उठता है। धर्मी को भान हुआ आत्मज्ञान, तथापि अभी वीतरागदशा पूर्ण नहीं हुई, इसलिए अन्दर, अरे! आत्मा के आनन्द में आचरण करनेयोग्य है। ऐसा विकल्प। अथवा पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प व्यवहार से आचरणयोग्य है, ऐसा विकल्प

सम्यग्दृष्टि अथवा मुनियों को भी आये बिना रहता नहीं। **यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है,...** ज्ञानाचार, दर्शनाचार, ज्ञान का बहुमान, दर्शन का बहुमान, चारित्र का बहुमान, तप का बहुमान। सच्चा तप तो स्वरूप में रमणता आनन्द करना, वह है। परन्तु उसे विकल्प में ऐसा आता है कि अहो! स्वरूप के तपन में रहना, वह तप है। ऐसा विकल्प भी उसे आये बिना रहता नहीं। वह विकल्प में ऐसा मानता है कि अहो! स्वरूप में स्थिर होनेयोग्य है। भेद पाड़कर विकल्प करता है। विषय के आगे नीचे कहेंगे। यहाँ भेद पाड़कर विचार करता है। विषय-व्यवहार विषय बाद में कहेंगे। भिन्न विषयवाले, बाद में कहेंगे।

यह आचरणयोग्य नहीं है। **(२) यह अनाचरणीय है,...** भाई! ऐसा विकल्प आता है। अरे! पाप के भाव आदरनेयोग्य नहीं है और सर्वज्ञ के अतिरिक्त अज्ञानी ने कहे हुए आचरण, वे आचरणयोग्य नहीं हैं। ओहो! दुर्गादासजी! यह नोळी कर्म और अमुक कर्म को करते हैं न लोग? यह करे तो ऐसा होगा और ऐसा करेगा तो— प्राणायाम करेगा तो मन स्थिर होगा। धूल भी नहीं स्थिर होगा, सुन न! समझ में आया? यह सब इसने किया है। घोटाला। कहते हैं कि भगवान आत्मा प्राप्त श्रद्धा-ज्ञान में प्राप्त किया, तथापि और अभी पूर्ण रमणता न हो, तब अमुक प्रकार के आचरण में अज्ञानी कहते हैं, वह आचरनेयोग्य नहीं है और ज्ञानियों ने कहा हुआ आत्मा का स्वभाव, उसके साथ शुभराग आदि आचरनेयोग्य है, ऐसा विकल्प आये बिना नहीं रहता। अथवा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को भी ऐसा विकल्प आता है, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के विरह में परमात्मा की मूर्ति, उसकी पूज्यबुद्धि - ऐसा विकल्प उसे आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? उससे विरुद्ध बात कहनेवाला हो तो वह बात आचरनेयोग्य नहीं है। ऐसा विकल्प सम्यग्दृष्टि को अन्तर की भान की भूमिका में आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

(३) यह आचरण करनेवाला है... आचरण करनेवाला तो आत्मा है। स्वरूप की स्थिरता, उसका आचरण करनेवाला भी आत्मा और विकल्प की वृत्ति ऐसी आवे व्यवहार से, उसका आचरण करनेवाला भी आत्मा है। उसका आचरण करनेवाला कोई दूसरा नहीं है। दूसरा आचरण करानेवाला नहीं है। यह तो बहुत सूत्र संक्षिप्त कहे हैं न!

शास्त्र का जितना व्यवहार है—श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का और उससे विरुद्ध का दोनों का इसमें विवेक करके विकल्प ऐसा आवे, ऐसा बतलाया है।

(४) यह आचरण है;.... अरे! स्वरूप में आनन्द में रहना, वह निश्चय आचरण है। और उसमें न स्थिर हो सके, तब पंच महाव्रत के विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण की विरतियाँ, भक्ति का भाव, वह व्यवहार से आचरण के योग्य है, वह आचरण है, ऐसा विकल्प धर्मी को आये बिना नहीं रहता। इससे विरुद्ध प्रकार के आवें, वह तो नहीं उसे व्यवहार, नहीं उसे निश्चय। दामोदरभाई! कठिन बात, भाई! बहुत परन्तु इसमें संक्षिप्त पड़े। संसार का भी पढ़ने जाये तो सात कक्षा, एम.ए., बी.ए., एल.एल.बी. भी पढ़ते हैं या नहीं? या पढ़े बिना हो जाता होगा सीधे वकील? न्यालभाई! पढ़े बिना हो जाता होगा? यह तो धूल की शिक्षा है। अनादि काल से ऐसी शिक्षा सीखता आया है।

भगवान को शिक्षा में डालना अन्दर में... आहाहा! कहते हैं, प्रभु! तेरी जाति की भात पड़ी भान में, परन्तु उसकी जाति की भात के काल में ऐसे विकल्पों की जाति उसे आये बिना नहीं रहती। आहाहा! यह किसकी बात चलती है? भिन्नसाध्यसाधन। अर्थात् कि राग है, वह पूर्ण शुद्धता में भिन्न है। इसलिए भिन्न साधन को साध्य जो निर्मल शुद्ध, उससे अलग जाति है। यह उसे साध्य का साधन है, ऐसा कहना, वह भिन्नसाध्यसाधन व्यवहार से कहने में आता है। अरे! व्यवहार और निश्चय कहाँ कहीं मेल नहीं मिलता।

इसी प्रकार **(१) कर्तव्य (करनेयोग्य),...** है। यह करनेयोग्य है। वास्तव में तो आत्मा के सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निश्चय से करनेयोग्य है। नियमसार में आता है न? भाई! क्या आता है? '**णियमेण च जं कज्जं**'। नियम से करनेयोग्य है। मूल पाठ में नियमसार के एक पद में इतना आता है। भगवान आत्मा अखण्डानन्द की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, यह नियम से करनेयोग्य है। करता है, परन्तु करनेयोग्य है, ऐसा विकल्प भेद में उठे बिना रहता नहीं। समझ में आया? ओहोहो! बहुत समझना पड़े परन्तु इसमें। करनेयोग्य है। इस भूमिका के योग्य आचरण में भगवान की भक्ति, पूजा, दान, दया ऊपर भूमिका में जाये तो व्रत इत्यादि के विकल्प व्यवहार से करनेयोग्य है। निश्चय

से स्वरूप के आचरण में आनन्द में रहना, वह करनेयोग्य है, ऐसा विकल्प उठता है।

(२) अकर्तव्य... है। अरे! आत्मा को इस भूमिका में तीव्र रागादि की, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा अकर्तव्य है। वह कर्तव्य है नहीं। **(३) कर्ता...** आत्मा कर्ता है। भेद पड़ा। करनेयोग्य और नहीं करनेयोग्य तथा कर्ता मैं, यह भेद का विचार आवे, वह विकल्प का स्थान है। राग की उत्थान की वृत्ति है, उसे यहाँ भिन्न साधनरूप से कहने में आता है। ऐसे विकल्प अज्ञानी को नहीं होते और ऐसे विकल्प केवली को नहीं होते। विकल्प समझ में आया? राग की वृत्ति। ऐसी वृत्ति इस भूमिका में आये बिना नहीं रहती। यह निश्चय और व्यवहार का सुसंगत, सुमेल कराना चाहते हैं। कहो, दामोदरभाई! ओहोहो! इसे गुरु का विनय होता है। 'वह तो प्रभु ने ही दिया' ऐसा बोले। आहाहा! प्रभु ने मुझे आत्मा दिया। ऐसा विकल्प में गुरु और ज्ञानी के प्रति बहुमान आये बिना रहता नहीं। ऐसा विकल्प उसे आये बिना रहता नहीं। झूठ बोलता होगा? वह चैतन्य के उग्र भान में जहाँ आया, उसे ओहो!

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती गोम्मटसार में (कहते हैं), महामुनि भावलिंगी सन्त, भावलिंगी अर्थात्? केवलज्ञान के कारणरूप जहाँ आत्मा के आनन्द के चिह्न अन्तर में प्रगट हुए हैं। शुद्ध आनन्द की चारित्रदशा जहाँ प्रगट हुई है। है, ऐसा एकबार विकल्प से बोलते हैं। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। गोम्मटसार। इतने बड़े अक्षर का। क्या हुआ उस गोम्मटसार का फिर क्या हुआ? गोम्मटसार मिला या नहीं? नहीं? तुम्हारे घर में भी नहीं? इतना बड़ा। वह तो देखना था। शुद्धाशुद्ध देश का... सार। नहीं होगा। ऐसे शहर में न हो। तब क्या तुम पैसेवाले सेठिया...? ऐ... रतिभाई! मोटी पुस्तक आती है। इतनी-इतनी पाँच पुस्तकें आती हैं। तब सौ रुपये की मिलती थी, हों! इतने बड़े अक्षर का। उसमें यह श्लोक है।

मुनि स्वयं कहते हैं कि अहो! धन्य गुरु! अभयदेव है न कुछ? अभयदेव, अभयदेव। अभयदेव, ऐसा कुछ है। अभयनन्दि। हे गुरु! आपके प्रताप से हम इस संसारसमुद्र को पार उतर गये हैं। चन्दुभाई! है न? अभयनन्दि नाम? अभिनन्दन, अभिनन्दन। यह होगा कुछ भाषा चाहे जो, परन्तु यह मूल पाठ में है। मूल श्लोक। इतने

बड़े अक्षर, इतने इतने। हे गुरु! वह मुनि स्वयं गुरु आचार्य, तेरे प्रताप से हे नाथ! संसारसमुद्र से पार हो गया हूँ। अब हमारे संसार है नहीं। ऐसा विकल्प उस भूमिका में स्वभाव का साधन करने की दशा में ऐसा बहुमान आये बिना रहता नहीं। और एक ओर कहते हैं कि किसी से तिरा नहीं जाता। गुरु की आज्ञा से भी कुछ तिरा नहीं जाता। एक ओर ऐसा कहे। सुन न! यह तो स्वभाव का आश्रय किये बिना तीन काल में तिरा नहीं जाता। परन्तु जब तिरा, तब निमित्त कौन था, उसके बहुमान का विकल्प आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? श्रीमद् ने कहा नहीं?

मानादिक शत्रु महा निज छंदे न मराय,
जाते सद्गुरु शरण में अल्प प्रयास से जाये॥

समझ में आया? 'मानादिक निज शत्रु वे निज छंदे न मराय, परन्तु जाते सद्गुरु शरण में...' हे प्रभु! आत्मा दिया, नाथ! हमको इस आत्मा की खबर नहीं थी, यह खबर करायी। हम तिरे। प्रभु! तुम तारणतरण। ऐसा कहकर पूरा आत्मा दिया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुमान का विकल्प उठने पर मान गल जाता है। इसके बिना मान गलता नहीं, अभिमान गलता नहीं, क्रोध टलता नहीं, माया जाती नहीं, लोभ का चूरा होता नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, अहो! धर्मीजीव को यह कर्तव्य है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि या स्वरूप की स्थिरता आदि। अकर्तव्य है तीव्र विकार आदि अकर्तव्य है। निश्चय में विकार भी कर्तव्य नहीं, व्यवहार से कर्तव्य है। कर्ता भगवान आत्मा है इस परिणाम का। शुभ और शुद्ध का कर्ता आत्मा है, दूसरा कोई कर्ता नहीं। और कर्मरूप... कर्म अर्थात् कार्य, कर्म अर्थात् कार्य। करनेयोग्य भाव, नहीं करनेयोग्य भाव, उसका मेल करते हैं। और मैं कर्ता और यह मेरा निर्मल शुद्ध श्रद्धा, ज्ञानादि कार्य। अथवा व्यवहार से पंच महाव्रत के परिणाम आदि दया, दानादि रूप शुभभाव, वह मेरा व्यवहार से कर्म। कर्म अर्थात् कार्य।

चार भेद पड़ गये। एक कर्तव्य, एक अकर्तव्य, एक कर्ता मैं, दूसरा कोई नहीं। आहाहा! इस शुभभाव का भी कर्ता मैं और शुद्ध का कर्ता भी मैं। कर्म कर्ता नहीं और

दूसरा कोई कर्ता नहीं। ऐसे विकल्प ज्ञानी को आये बिना रहते नहीं। समझ में आया? ऐसे कर्मरूप **विभागों के अवलोकन द्वारा...** चार। करनेयोग्य, नहीं करनेयोग्य, कर्ता और कर्म तथा ऊपर कहे वे सब बोल—विभाग। इन सबकी विभाजनरूप अवलोकन द्वारा अन्दर देखे, अपने ज्ञान की दशा और विकल्प ऐसे उठते हैं। उसके द्वारा जिसे सुन्दर **उत्साह उल्लसित होता है...** तीक्ष्ण शब्द है न? भाई! सुन्दर। तीक्ष्ण का अर्थ निकालकर सुन्दर। पाठ में '**पेशलोत्साहाः**' है संस्कृत। '**पेशलोत्साहाः**' अर्थात् '**पेशल**' का अर्थ तीक्ष्ण किया है। ऐसा नहीं परन्तु '**पेशल**' अर्थात् सुन्दर उत्साह। समझ में आया? '**पेशल**' संस्कृत में शब्द है, इसका अर्थ मनोहर या सुन्दर शब्द होता है।

कहते हैं, धर्मी जीव ऐसे विकल्प की वृत्ति में खड़ा है। निर्विकल्प दृष्टि और अनुभव हुआ है, तथापि ऐसे राग की भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, अश्रद्धा के विकल्प उठते हैं। सुन्दर उत्साह उल्लसित होता है। सुन्दर उल्लास उल्लसित होता है। भगवान के प्रति, गुरु के प्रति, शास्त्र के प्रति, सत्य मार्ग के प्रति उसे उल्लास आता है। ओहोहो! समझ में आया? है विकल्प, है राग की वृत्ति का उत्थान। परन्तु वह स्वभाव के भान के काल में, वह पूर्ण न हो, तब तक ऐसा नहीं आता—ऐसा माने, वह भी मूढ़ है। और ऐसा आता है, उसे धर्म माने तो भी मूढ़ है। और ऐसा आवे, उसे न जाने तो भी मूढ़ है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसे ही भाव होते हैं, बराबर ज्ञानी जानता है। जाने बिना रहता नहीं। कठिन बातें, भाई! परन्तु इसमें कितनी बात याद रखना? घर की दुकान में पाँच हजार चीज़ें हों तो तीन गुने और चार गुने भाव इसे ख्याल में होते हैं। क्या? यह पाँच वर्ष पहले पच्चीस बोरी इलायची की आयी थी। उसमें की तीन पड़ी हैं, देखो उस गोदाम में। वह इस आने की सेर आयी थी। अभी यह भाव चलता है, महँगाई यह है। अब इस भाव बेचनी है। एक-एक की तीन-चार पट भाव इसे लक्ष्य में होते हैं। दुकान में पाँच हजार चीज़ हों तो सबके भाव की खबर इसे होती है। भानुभाई! धूल में व्यापार ठीक से चलता नहीं। यह तो पुण्य हो तो चलता है। परन्तु इसे गरज में ज्ञान में यह आये बिना रहता नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा का जिसे व्यापार करना है, उसे सब पहलू निश्चय

के, व्यवहार के, उपादान के, निमित्त के, पर्याय—हालत के, द्रव्य के, गुण के, किस-किस प्रकार किस भूमिका में हो, उसका सब इसे ज्ञान करना पड़ेगा। नहीं तो गड़बड़ उठेगी और सच्चापन प्राप्त होगा नहीं।

यह सुन्दर **उत्साह उल्लसित होता है, ऐसे वे (प्राथमिक जीव)...** प्राथमिक अर्थात् सम्यग्दृष्टि अथवा मुनि भावलिंगी छठवें गुणस्थान में प्राथमिक कहे हैं। क्या कहा? अभी स्वरूप में स्थिर नहीं न निर्विकल्परूप से, वीतरागरूप से इसलिए उन्हें प्राथमिक सम्यक् आत्मा का भान, स्वरूप का ज्ञान, स्वरूप की चारित्र की रमणता अपूर्ण, ऐसे चारित्रवन्त को प्राथमिक जीव कहा है। उसमें था न शुरुआत में? **भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव...** पहले था, पहली लाईन। और यहाँ वापस समझाने के लिये पण्डितजी ने बीच में स्पष्टीकरण किया। प्राथमिक अर्थात् मिथ्यादृष्टि नहीं। प्राथमिक अर्थात् कि अभी अन्तर स्वरूप की साधनदशा में पूर्ण साधन हुआ नहीं, ऐसे जीव को, ऐसे भाव **धीरे-धीरे मोहमल्ल को (रागादि को) उखाड़ते जाते हैं;...** धीरे-धीरे अशुभराग टलता जाता है और शुभराग उत्पन्न होता जाता है। एक यह अर्थ। दूसरा—ऐसे शुभ विकल्प के काल में यह अन्तर में शुद्धता की वृद्धि स्वभाव के आश्रय से होती है। उसमें निमित्त पड़े, इसलिए उससे उघड़ता जाता है, ऐसा आरोप से कथन किया गया है। यह क्या और वापस? पढ़ने में भी समझना पड़े।

कहते हैं, यह शुभराग वह धीरे-धीरे मोहमल्ल... मोहमल्ल शब्द से यहाँ मिथ्यात्व की बात नहीं है। मोहमल्ल शब्द से यहाँ राग और द्वेष के विकल्प हैं, उन्हें व्यहार से धीरे-धीरे वह रागादि को उखेड़ता (जाता है), व्यवहार द्वारा उखेड़ता है, ऐसा जो कथन किया है, वह स्वरूप की एकाग्रता द्वारा पूर्ण को साध रहा है। वास्तव में तो उसे पूर्ण को अन्दर शुद्धि की वृद्धि स्थापित करते हैं परन्तु साथ में यह छठी भूमिका मुनि की होती है, उसे इस प्रकार के विकल्प होते हैं, उस विकल्प से पहिचाना जाता है कि ऐसी इसकी शुद्ध परिणति होती है। ऐसी पहिचान करानेवाला निमित्त है। उस निमित्त से उखड़ता है, ऐसा आरोप से कथन किया जाता है। कठिन बात परन्तु भाई।

शुद्धि तो स्वभाव चैतन्य में जितना झुलता है, एकाग्रता से शुद्धि हुई, वृद्धि हुई,

पूर्ण शुद्धतारूप मोक्ष को साध रहा है, परन्तु ऐसी शुद्धि इस भूमिका में है, उसे यह विकल्प ऐसे होते हैं, अट्ठाईस मूलगुण, एक बार आहार, खड़े-खड़े आहार, नग्नपना दशा इत्यादि। यह विकल्प ऐसा बतलाते हैं निमित्त, कि वहाँ नैमित्तिक ऐसी चीज़ है, ऐसा निमित्त प्रसिद्ध करता है। निमित्त प्रसिद्ध करता है, उसे निमित्त से राग उखेड़ता है, ऐसा आरोप दिया जाता है। क्या कहा परन्तु यह? गजब धर्म को समझना इसमें?

देखो! आत्मवस्तु है पदार्थ अस्ति अनादि-अनन्त चैतन्य ध्रुव है। उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। उसके अन्दर अनुभव दृष्टि हुई कि यह आत्मा। यह पुण्य-पाप भिन्न, निमित्त भिन्न, संयोग भिन्न, यह भान हुआ, उसमें जितनी अन्तर दशा में एकाग्र होता जाता है, शुद्धता, शुद्धता की वृद्धि हो जाती है, वह पूर्ण शुद्धतारूपी मोक्ष का वास्तविक साधन वह है। परन्तु उस साधन को प्रसिद्ध करने में वर्तमान इस जाति के विकल्प मुनि को होते हैं, उन्हें वस्त्र नहीं, पात्र नहीं, नग्न दशा, निर्दोष आहार, उनके लिये बनाया हुआ आहार (ले नहीं), ऐसी वृत्तियों की विकल्प की जाति, ऐसा प्रसिद्ध करते हैं कि यहाँ नैमित्तिक शुद्ध परिणति इस प्रकार की हो, वहाँ ऐसे विकल्प होते हैं। निमित्त प्रसिद्ध करता है कि ऐसी परिणति जिसे शुद्ध हो, उसे इस प्रकार के विकल्प होते हैं, ऐसी शुद्धता को प्रसिद्ध निमित्त करता है। इसलिए वास्तव में तो शुद्धता की वृद्धि साध्य को सिद्ध करती है परन्तु वह निमित्त उसे बतलाता है, इसलिए सीधे ऐसा न कहकर, उससे मोह उखड़ता जाता है, ऐसा उपचार से कथन किया है। ओहोहो! पढ़ने में भी वापस भूल स्वयं को और। उसमें किस दृष्टि से पढ़ना, यह भी वापस आँखें (दृष्टि) चाहिए, कहते हैं। समझ में आया?

एक दृष्टान्त नहीं था? उसका बाप रख गया पचास लाख। पचास लाख अब अभी कहाँ तुम्हारे... तुम नीचे रह गये, पहले तो तुम ही पैसेवाले कहलाते न। कहो, समझ में आया? परन्तु यह तो पचास लाख... अभी बड़ी-बड़ी लाखों की बातें चलती हैं। वह छोड़ गया। फिर कुछ नहीं मिलता। सब मर गये। लड़का अकेला छोटी उम्र का दस वर्ष का। फिर उसकी ट्रस्टी की हो, उस समय तो ट्रस्टी का नाम नहीं था परन्तु उसके मामा को सौंपा था या अमुक को सौंपा था। मेरे बापू ने इसमें पचास लाख रखे

हैं और उसमें लिखा है कि शंकर के मन्दिर के ऊपर गूमच होता है न? उसकी छाया पड़े, वहाँ मैंने दबाया है। ऊपर गूमच होता है न? उस गूमच में मैंने दबाये हैं। लिया मन्दिर के साथ दो लाख का, जो हो, पचास हजार का। खुदाया वहाँ। निकला नहीं। उसके पिता के मित्र के पास जाते हैं। बापूजी! मेरे पिता ने इसमें यह लिखा है, हों! हें! गुमच में दबाये हैं उन्होंने। गुमच खोदकर देखा, नीचे देखा, नहीं निकला। अरे! तेरा पिता कहीं किसी के घर में दबा जायेगा? तुझे खबर नहीं? तेरा पिता... वह मेरा मित्र था, मुझे खबर नहीं? तब बापूजी! क्या करना इसमें? बापूजी भी कहे न मित्र को। यह चैत्र शुक्ल अष्टमी लिखी है और आठ बजे गुमच में दबायें हैं, ऐसा लिखा है। यह तेरे बरामदे में इस सूर्य की धूप आठ बजे जब गुमच के प्रमाण में आवे, उसमें दबाया है, ऐसा इसमें लिखा है। तेरा पिता किसी के घर में दबाने जाता होगा? नरभेरामभाई! परन्तु समझे बिना खोदकर सब कुछ कर डाला। खोद डाला और पाई भी नहीं निकली। हैरान हो गया समूल। भाई! तेरे पिता को हम जानते हैं, वह तो चतुर था। लौकिक चतुर की बात है, हों! यह धर्म की बात नहीं। भटकने के चतुर। संसार के चतुर अर्थात् संसार में गहरे उतरने के। यहाँ कहते हैं कि चतुर था। ऐसे खोदने नहीं जाया जाता। तब क्या बापूजी! तेरा बरामदा इतना बड़ा है न। और मन्दिर ऐसे पूर्व दिशा का है और बरामदा ऐसा है। सवेरे (सूर्य) उगे तब धूप तेरे चौक के बरामदे में आती है। उसे बराबर आठ बजे कर लेना। वहाँ खोदना। खोदा और पचास लाख निकले। अर्थ भी ऐसे करना। लिखे हुए के अर्थ दूसरे।

इसी प्रकार यहाँ इस राग के कारण वीतरागता बढ़ती जाती है। खोदना नहीं राग को। समझ में आया? यहाँ तो इस जाति में शुद्धता की-आत्मा की शक्ति का भान होकर शुद्धता अन्तर में बढ़ाता जाता है, अन्तर के अवलम्बन से तब, उस दशा को पहिचानने के योग्य उसे ऐसे विकल्प की जाति होती है, उससे पहिचानना कि इसकी शुद्ध की परिणति ऐसी होनी चाहिए। यह शुद्ध परिणति को पहिचानने के निमित्त को उससे मोह उखड़ता जाता है, ऐसा आरोप दिया गया है। समझ में आया? नवरंगभाई!

मोहमल्ल का अर्थ भी राग, हों! मिथ्यात्व नहीं। धीरे-धीरे उखेड़ता जाता है

अर्थात् राग को मूल में से खोदता जाता है। राग को खोदता जाये, वह राग। विकल्प उठा वह राग को (खोदता है) ? अरे... भगवान! उससे तो कुछ होता नहीं। परन्तु निमित्त का साथ में साधन था, उससे आरोप करके यह कथन किये हैं। अब इसकी दशावाला आत्मा अपने स्वरूप के साधन में पड़ा, उसे व्यवहार साधन गिनने में आया।

कदाचित् अज्ञान के कारण... अज्ञान के कारण अर्थात्? मिथ्यात्व के कारण, ऐसा नहीं। परन्तु **(-स्वसंवेदनज्ञान के अभाव के कारण)...** आत्मा में ज्ञान का-आनन्द का उपयोग जहाँ नहीं, अपने आनन्द का उपयोग जहाँ नहीं, ऐसे आनन्द का उपयोग, हों अन्दर। रमणता नहीं, तब उसे **मद (कषाय) और प्रमाद के वश होने से...** जरा कषाय और प्रमाद के वश धर्मी भी हो जाता है। निर्बलता के कारण। देखो, यह प्रमाद और कषाय के वश होने से। कर्म ने उसे वश कराया है, ऐसा है नहीं। परन्तु इसमें बहुत समझने की बातें। धीरे-धीरे तो लेते हैं, भाई! यह एकदम तो लेते नहीं। जरा माँग की थी यहाँ लालचन्दभाई ने, फिर इसे बात तो समझनी पडेगी या नहीं? घर के लड़के को सब चतुर कहते हैं। कहो, समझ में आया?

मद (कषाय) और प्रमाद के वश होने से... अर्थात् क्या कहा? कि चैतन्यमूर्ति प्रभु ज्ञाता-दृष्टा और शुद्ध है, ऐसा अनुभव हो गया परन्तु स्वरूप की स्थिरता नहीं, इसलिए कषाय और जरा प्रमाद के वश पर्याय में हो जाता है, इतनी अपनी निर्बलता है। इतनी निर्बलता (रहने का कारण) प्रभुशक्ति इतनी स्फुरित नहीं की। पहले बात कह गये हैं। प्रभुशक्ति यदि इतनी हो गयी हो तो स्वरूप में स्थिर हो जाये। परन्तु इतनी स्थिरता की शक्ति नहीं, किन्तु भान की भूमिका में खड़ा है। वह अज्ञान के कारण मद के वश होकर **अपना आत्म-अधिकार (आत्मा में अधिकार) शिथिल हो जाने पर...** जरा राग, प्रमाद आ जाता है। स्वभाव को भूले बिना, स्वभाव को भूले बिना। स्वरूप की वीतरागता नहीं, इसलिए जरा शिथिलता आ जाती है।

अपने को न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए वे प्रचण्ड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं;... गुरु के पास जाये, प्रभु! यह प्रमाद आया, हों! यह धर्मी है। गजब बात। जरा राग के वश हो गया, प्रमाद के वश हुआ, गुरु के पास जाता है, प्रभु! मुझे दण्ड दो,

प्रायश्चित्त दो, प्रभु! मुझे पाप लगा। अरे! परन्तु क्रमबद्ध में यह कहाँ? ऐई! प्रभुभाई! क्या कहा यह? और क्रमबद्ध में यह कहाँ आया? तुम कहते हो कि क्रम-क्रम से होता है, फेरफार नहीं। और यह कहाँ से आया? अरे.. प्रभु! सुन न! यह क्रमबद्ध में ऐसा ही उसे नियम होता है कि आत्मा का भान होने पर भी रागादि को जाननेवाला रहने पर भी, राग की भूमिका में उसकी दशाप्रमाण विशेष राग आ जाये, तब उसे विकल्प भी ऐसा आवे उसके क्रम में। गुरु के पास जाकर कहे, प्रभु! मुझे दण्ड दो। मुझे दण्ड दो, न्याय से दण्ड दो। ओहोहो! सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी, सम्यक्धर्मी उसे भी अन्दर राग का भाग जरा आया, प्रमादवश हो गया। प्रभु! मुझे दण्ड दो। ऐसा उसके क्रम में, उसकी भूमिका के बढ़ाने के काल में यह स्थिति आये बिना नहीं रहती।

न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए... न्यायमार्ग अर्थात्? उस भूमिका के योग्य जो शुद्धता चाहिए, उतनी शुद्धता में से जरा सा प्रमाद कुछ आया। **न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए वे प्रचण्ड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं;...** प्रचण्ड दण्डनीति प्रभु! प्रायश्चित दो। पाँच उपवास, दस उपवास, आपको ठीक लगे वैसा। मेरी भूल हुई है। भान रहा है, परन्तु भूल हुई है। भान है कि भूल हुई है। भान है कि मैं ज्ञाता और आनन्दकन्द हूँ, परन्तु स्वरूप की स्थिरता का काल मुझे जो है, उतनी मुझे पुरुषार्थ की कमजोरी है, इसलिए यह प्रमाद है। दण्ड माँगता है दण्ड। चन्दुभाई! क्या यह सवेरे की बात के साथ...? अरे! भगवान! सब मेल है। परन्तु कुछ समझना चाहे, उसे मेल खाये न? न समझना चाहे उसे मेल नहीं खाता। इस प्रकार की विकल्प की जाति आती है, ऐसा यहाँ आचार्यदेव ज्ञान कराना चाहते हैं।

पुनः पुनः (अपने आत्मा को) दोषानुसार प्रायश्चित्त देते हुए... स्वयं प्रायश्चित ले। अरे! हमें इस भूमिका में जरा क्रोध की तीव्रता आ गयी, जरा मान का अंश आया, जरा कपट और राग हुआ प्रभु, हों! हमें यह शोभा नहीं देता, हों! ऐसा कहकर दोष के अनुसार। जैसा दोष हो उसके अनुसार **प्रायश्चित्त देते हुए वे सतत उद्यमवन्त वर्तते हैं;...** उद्यमवन्त वर्तते हैं स्वभाव में और उस प्रकार के व्यवहार के उल्लास में। गजब सन्धि भाई! यह वस्तु के मार्ग की रीति और पक्ष इस प्रकार का है। इससे आड़ी-टेढ़ी

कोई पद्धति करना चाहे तो वह नहीं समझता निश्चय को, नहीं समझता वह व्यवहार को। दोनों को जैसा है, वैसा जाने बिना उसके मार्ग की शुद्धि और स्वभाव की ओर उसका झुकाव हो नहीं सकता।

और... इतनी भेद की बात की थी। अब यह भिन्न विषयवाले श्रद्धा-ज्ञान का अधिक न्याय रखते हैं कि भिन्न विषय है। निश्चय दृष्टि और सम्यग्ज्ञान का विषय तो आत्मा है। और व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार वर्तन का विषय परवस्तु है, उसका विषय स्व किस प्रकार है, यह बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण अमावस्या, शुक्रवार, दिनांक - ०४-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-८

.....इसमें यह चलता अधिकार निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग का क्या स्वरूप है, यह कहा जाता है। चलता है? समझ में आया? सूक्ष्म बात तो है जरा। अनन्त काल से इस देह में रहा हुआ चैतन्यतत्त्व, उसके अन्दर में अनन्त आनन्द और शान्ति का स्वभाव भरपूर अन्दर भरा हुआ है। परन्तु इसने अनन्त काल में जो वर्तमान ज्ञान की दशा, प्रगट ज्ञान की अवस्था वर्तती है, उसमें इसने स्व को विषय, ज्ञान द्वारा स्व को विषय—ध्येय साध्यरूप से अनन्त काल में इसने एक सेकेण्डमात्र किया नहीं। क्या कहा?

यह देहादि, यह वस्तु तो भिन्न—पृथक् है, मिट्टी है। अन्दर एक चैतन्यतत्त्व जिसे कहते हैं—जानन तत्त्व, उस तत्त्व में भावरूप से अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव भरपूर है। यह तो बहुत बार दृष्टान्त देते हैं न! जैसे पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट पीपर के दाने-दाने में पड़ी है और हरा रंग अन्दर पड़ा है। उसी प्रकार अनन्त-अनन्त शक्तियाँ पीपर के दाने के मध्य में शक्तिरूप से—सत्त्वरूप से है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा इसके अन्तर के ध्रुव में सदृश्य शक्ति में, सामान्य स्वभाव में बेहद ज्ञान, बेहद आनन्द, अपरिमित वीर्य और बेहद अन्दर दृष्टाशक्ति पड़ी हुई है। जयन्तीभाई! समझ में आया? परन्तु उसका विषय इसने अनन्त काल में परिभ्रमण करनेवाले ने एक सेकेण्ड भी उसका विषय किया नहीं।

विषय अर्थात् क्या? जैसे शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श उसे जैसे विषय कहने में आता है। वह कैसे किसके? कि स्वयं परलक्ष जब करता है, और राग करता है, तब उन विषयों को विषय कहने में आता है। इसी प्रकार परलक्षी विषयों को लक्ष्य में लेकर पुण्य और पाप और पर में सुख है, ऐसी भ्रमणा की मान्यता अनन्त काल से करता आया है, इसलिए वह दु:खी और चौरासी के अवतार में रुल रहा है। उसे एक सेकेण्डमात्र भी जब सत् समागम पाकर यह आत्मपदार्थ वस्तु के स्वभाव से उसका स्वभाव शुद्ध चैतन्य, आनन्द आदि से भरपूर है। उसकी वर्तमान ज्ञान की दशा को वर्तमान हालत को अन्तर्मुख विषय करने से सामान्य एकरूप चैतन्य हूँ, पूर्ण आनन्द और अभेद हूँ, ऐसी

वर्तमान दशा को अन्तर में झुकाने से वह सामान्य अर्थात् चैतन्य का एकरूप जिसका विषय बने, यह विषय बनाकर जो सम्यग्दर्शन हो, उसे धर्म कहा जाता है। समझ में आया?

ऐसा विषय अनन्त काल के चौरासी के अवतार में अनेक अवतार किये। निर्धन के, सधन के, रंकाई के, राजाई के, नरक के और स्वर्ग के। उसे भव किये और उन भव के कारणरूप पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव भी अनन्त बार कर चुका परन्तु इसके दु:ख का अन्त आया नहीं। यह पैसा-बैसा मिले और यह सब साधन मिले तो दु:ख का अन्त आवे, ऐसा होगा या नहीं? मूलजीभाई! कहाँ गये? मानते हैं? अरे! धूल में भी नहीं, सुन न! तेरे पैसे के टुकड़े करके देख, कहाँ सुख है उसमें? पैसे में नहीं, शरीर में नहीं, वाणी में नहीं, यह अन्दर में पाप के भाव—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय के हों, उनमें नहीं। यह दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, जप का विकल्प और वृत्ति उठे, उसमें भी सुख नहीं। वह स्वयं ही आकुलता है। विकल्प जो उठता है—राग, वह त्रिकाल शुद्ध शक्ति परमानन्द मूर्ति की उल्टी दशा, उसे राग, द्वेष और पुण्य-पाप के भाव कहे जाते हैं। वे भाव स्वयं दु:खरूप है। उनका विषय अनन्त काल से बनाया है। परन्तु चैतन्य भगवान पूर्ण शान्ति का सागर अपने पूर्ण आत्मरस से भरपूर, उसका इसने विषय अर्थात् कि लक्ष्य अर्थात् कि ध्येय अर्थात् कि अन्तर्मुख में उसे लक्ष्य में लेना, यह बात अनन्त काल में इसने की नहीं। समझ में आया?

यह भिन्न विषय आता है न भाई जरा! इसलिए इसका यह पहले उपोद्घात होता है। समझ में आया? ऐसा आत्मा अनन्त काल में नहीं बनाया हुआ स्व को विषय, स्व को ध्येय अर्थात् वर्तमान दशा को अन्तर्मुख में झुकाकर जो परमानन्द का मूल एकरूप आत्मा है, उसे झुकाकर अनुभव किया, तब उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। तब से उसकी धर्म की शुरुआत, तब से उसे शान्ति की शुरुआत, तब से उसे स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि, तब से उसे आत्मा की प्रसिद्धि होती है। समझ में आया?

वह कैसे प्राप्त हो? वह प्राप्त हो अपने स्वरूप के सन्मुख की दृष्टि का साधन करने से होता है। बाकी किसी कारण से नहीं होता। समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा अपने ज्ञान की वर्तमान दशा को... दृष्टान्त दिया था बहुत बार। तत्त्वज्ञान तरंगिणी

का नहीं दिया था? लकड़ी और नख... इस शरीर को ठण्डा और गर्म देखना हो या कोमल और कर्कश देखना हो तो यह लकड़ी से नहीं देखा जाता। लकड़ी से नहीं खबर पड़ती कि यह कोमल और कैसा है। खबर पड़ेगी? यह बढ़े हुए नख को स्पर्श कराओ ऐसे-ऐसे तो खबर नहीं पड़ेगी कि ठण्डा या गर्म या कोमल और कर्कश है। तब इस शरीर की शीतलता या उष्णता, कोमलता या कठोरता यह इसका अवयव जो यह अँगुली है, यह उसका अवयव है, अँगुली, हाथ पूरे शरीर का एक भाग है। इस अँगुली द्वारा, अवयव द्वारा अवयवी पूरी चीज़ को अवयव द्वारा यदि ऐसे स्पर्श करेगा तो उसे ख्याल आयेगा कि यह शरीर ठण्डा है, गर्म है, कर्कश है या भारी है। नवनीतभाई! समझ में आया? यह दृष्टान्त।

अब इसका सिद्धान्त। भगवान आत्मा... जैसे यह शरीर वस्तु है, वैसे आत्मपदार्थ अनादि-अनन्त, अनन्त गुण का पिण्ड, अवयवी; अवयवी अर्थात् अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा एक अवयवी पदार्थ है। उसकी वर्तमान ज्ञान की दशा प्रगटरूप जो वर्ते, वह उसका अवयव है। इसके अतिरिक्त आत्मा को शरीर, मन, वाणी की क्रिया द्वारा आत्मा का अनुभव करना चाहे, तीन काल में नहीं कर सकता। समझ में आया? शरीर लकड़ी है यह तो। जैसे इस लकड़ी से शीत-उष्ण ख्याल में नहीं आता, उसी प्रकार शरीर द्वारा, उसकी क्रिया द्वारा, उसके रूपान्तर द्वारा आत्मा क्या चीज़ है, इसकी प्रतीति और अनुभव उसके द्वारा नहीं हो सकते।

दूसरी बात। लकड़ी से आवें नख (के ऊपर)। आत्मा में शुभ और अशुभ, दया और दान, व्रत और भक्ति, पूजा इत्यादि जो वृत्ति शुभ की उठे या हिंसा, झूठ, चोरी, अशुभ की वृत्ति हो, वह बढ़ा हुआ नख है। उस नख द्वारा भी अर्थात् शुभ और अशुभभाव द्वारा भी आत्मा कौन है, उसका इसे भान और ध्येय पकड़ नहीं सकेगा। समझ में आया? रतिभाई! भारी सूक्ष्म यह। यह सब स्वीकार करना। सट्टा में तो मजा आता है अन्दर से। एकदम... एकदम अन्दर से ऐसा होता है न... होशियार व्यक्ति कहलाये, लो! वहाँ तो चतुर व्यक्ति कहलाये। यहाँ कहते हैं कि होशियारी... वे चतुर कहते थे? एक डाह्याभाई थे न? भाई! वांकानेर के थे। वे नाटक करते थे, नहीं? वे नाटक हम

देखने गये हैं। भरुच की बात है। (संवत्) १९६६ के वर्ष की। डाह्याभाई घोळशा नाटक (करते थे)।

हमारी दुकान पालेज में थी न तो एक बार साधु भरुच में आये हुए थे। वहाँ लेने गये। समय कहाँ व्यतीत करना? तो नाटक देखने गये थे। डाह्याभाई का। (संवत्) १९६६ के वर्ष की बात है। १९६६। फावाभाई थे। कहाँ गये फावाभाई? फावाभाई साथ में थे। कहाँ गये? सुनते नहीं लगते हैं। आये नहीं? ऐसा हो? आये तो हैं इसके लिये। आये होंगे। कहीं बैठे होंगे। यह डाह्याभाई जब मरने पड़े... नाटक बहुत बनाये हुए, जब मरने का समय आया, 'डाह्या तेरा चतुरपन तब कहें कि आत्मा में एकाकार होकर समाधि आनन्द से मर तो तू चतुर कहलाये। नहीं तो तू मूर्ख है'। नवरंगभाई! डाह्या तेरा चतुरपन। तूने यह सब नाटक (प्रदर्शित किये)... आठ दिन में तीन नाटक करते थे। एक-एक नाटक के एक रात के पन्द्रह सौ, दो हजार रुपये आते थे। यह तो (संवत्) १९६६ की बात है। अभी बहुत महँगा हो गया है न सब। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा को कहते हैं कि हे चतुर आत्मा! यह तेरी चतुराई तब कहें कि यह पुण्य और पाप के विकल्प की वृत्ति, दया, दान, व्रत की, इसकी रुचि छोड़कर, यह बढ़ा हुआ नख है, इससे आत्मा का ज्ञान और आत्मा का भान नहीं हो सकेगा। शरीर की क्रिया से नहीं होगा, पुण्य-पाप के भाव से नहीं होगा। यह आत्मा वस्तु चिदानन्दमूर्ति है, उसका वर्तमान प्रगट ज्ञान का अंश है, उस अंश को अन्तर में झुकान से यह उसके अवयव को अवयवी पर ले जाने से आत्मा का साक्षात्कार और अनुभव हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा इसका उपाय नहीं है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त कोई दूसरी बातें करता हो, वह सब पाखण्ड और अज्ञान की दशा की बातें हैं। इससे धर्म होता है और अमुक से धर्म होता है, दया पालते हैं, व्रत पालते हैं, दान करें तो धर्म होगा। सर्वत्र गप्प गोला है। भानुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय से तो बात करते हैं। शुभ और अशुभ की वृत्तियाँ उठती हैं, वे तो विकार हैं, बेकार हैं। चैतन्य की शान्ति और आत्मा के अनुभव के लिये वे

बेकार हैं। भगवान आत्मा अपने ज्ञान की दशा को अन्तर्मुख झुकाकर '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण वस्तु हूँ, एकरूप हूँ, ऐसा अन्तर में सहज पर्याय को झुकाने से, पर्यायवान द्रव्य का भान हो, उसे भगवान स्वविषय बनाकर सम्यग्दर्शन प्रगट किया, स्वविषय बनाकर सम्यग्ज्ञान प्रगट किया, स्वविषय बनाकर (सम्यक्)चारित्र प्रगट किया। उसे भगवान धर्म कहते हैं। समझ में आया? जयन्तीभाई!

ऐसी दशा होने पर भी, अब उसे आत्मा के विषय के अतिरिक्त भिन्न विषय के पदार्थ का लक्ष्य होकर उसे रागादि की वासना उठती है। उसे यहाँ व्यवहाररूप से शुद्ध आत्मा के साधन में उस राग को जो स्व-पर प्रत्ययी विकार है, अपना आत्मा अटका है और कर्म का उसमें निमित्त है। ऐसी विकृतदशा का राग, उस राग का विषय परपदार्थ है। ऐसा राग धर्मीजीव को आत्मभान होने पर भी, पूर्ण वीतरागता और अरागी दशा न हो, तब उसे आत्मा विषय के अतिरिक्त परविषय का राग भी आये बिना नहीं रहता। दामोदरभाई! क्या कहते हैं? देखो! यहाँ तक आया अपने।

सतत उद्यमवन्त वर्तते हैं;... यहाँ तक आया है। धर्मीजीव... है न नीचे लाईन? २५५ पृष्ठ। गुजराती में नीचे की दो लाईन के ऊपर। नीचे नोट है, वह नहीं। बारीक अक्षर नहीं। कहते हैं, सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ऐसा फरमाते हैं और ऐसा है कि अरे! आत्मा! तेरी चीज़ पर अन्तर नजर करके जो तेरा अनुभव हो, वह श्रद्धा, ज्ञान और रमणता ने स्व को विषय बनाया है। स्व को ध्येय बनाया है, स्व को लक्ष्य में लेकर वह शुद्धदशा प्रगट हुई है। वह वास्तव में शुद्धपर्याय-दशा होती है, वही एक सच्चा मोक्ष का मार्ग है। परन्तु बीच में ऐसा एक परविषय राग आये बिना रहता नहीं। चन्दुभाई!

और... '**अथ**' शब्द इसमें पड़ा है न भाई? '**अथ**' है न '**अथ**'। '**सन्तोऽथ**'। संस्कृत में है न? भाई! हिम्मतभाई! **और भिन्नविषयवाले...** विषय तो भाई, यह तो अनादि से या अकेले निश्चय का भान किये बिना ऐसे का ऐसा मान बैठा कि हमें आत्मा समझ में आया और ज्ञान हुआ और आनन्द हुआ। यह भी एक गप्प अनादि से भ्रमणा का अन्दर चला आता है। और या दया, दान, व्रत, तप, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा, उसे

समकित मानकर परिभ्रमण कर रहा है। समझ में आया? अपने तो परमात्मा सच्चे, देव सच्चे, गुरु सच्चे, शास्त्र सच्चे। जय भगवान! त्वमेव सच्चं। तुम कहो वह सच्चा। यह अपने श्रद्धा रखो और यह श्रद्धा धर्म, ऐसा अज्ञानी ने अनादि ने काल से मान रखा है। यह धर्म नहीं है। सच्चे देव, सच्चे चारित्रवन्त गुरु और सच्चे शास्त्र की श्रद्धा का भाग भी राग का भाग है; वह धर्म नहीं। वह आत्मा की स्वतन्त्रता की शान्ति की प्रसिद्धि नहीं, वह तो विकार की प्रसिद्धि है। परन्तु जब तक आत्मा में शुद्ध चैतन्य के पूर्ण ध्येय को अन्तर एकाग्र उग्ररूप से होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति शुरुआत आनन्द की ध्येय को पकड़कर की, तथापि पूर्ण आनन्द न हो तब भिन्न विषय बीच में आये बिना रहता नहीं। नवरंगभाई!

उसमें तीन बात सिद्ध होती है कि अनादि से अज्ञानी ने राग और दया, दान, व्रत, तप के विकल्प जो होते हैं, उन्हें साधन मानकर धर्म माना है, वह भी मिथ्यादृष्टि है और आत्मा के अन्दर के निश्चय के भान बिना हम आत्मा ज्ञानी हैं, आनन्द है, हमें सम्यक् हुआ है—ऐसी कल्पना के घोड़े पर चढ़ा, वह भी मूढ़ जीव अनादि से परिभ्रमण कर रहा है। परन्तु किसी महा पल में, महा आत्मा के साधन के सम्पन्नरूप से अन्तर्मुख दृष्टि हुई और उसका तल देखा। लोक में नहीं कहते? एक बार बात की थी। हमारे गाँव में वहाँ... गाँव है न वहाँ तो उमराला, पाँच हजार की आबादी। लड़के खेलने जाये। सिर के बल कौन कूदते हैं लड़के? छोटी उम्र में, आठ-दस वर्ष की उम्र। इसलिए क्या कि नीचे से थाह ले आओ। कुँए में से तल में से थाह। अब मुँह तो बाहर निकालना मुश्किल पड़े। परन्तु ऐसे पड़ें और थाह लेकर हाथ लम्बा करे। तब मानो कि नीचे से ले आया थाह। जयन्तीभाई! तुम्हारे शहर में कहाँ था ऐसा? भाई! गाँव में ऐसा बहुत था। उभो कोशियो अर्थात् ऐसे खड़ा पड़े एकदम और ठेठ जाकर बाहर हाथ निकाले। यह तो सब किये हुए और देखे हुए हैं, हों! नजर से। वहाँ है न एक उतारा के पास बाहर। वहाँ नीचे कुँआ है। वह उतारा नहीं, अपने उतरते? भगवान को ले जाते। पहले तो (संवत्) २००० में उतारा में उतरे थे न। नीचे कुँआ है वहाँ।

इसी प्रकार चैतन्य कुँआ। भगवान आत्मा अन्तर्मुख की दृष्टि करने से यह चैतन्य

आनन्द और शुद्ध की थाह लावे। समझ में आया? उसका थाह अर्थात् उसमें शक्ति जो है, उसमें एकाग्र होने से उसके आनन्द की शक्ति में से सत्त्व का आनन्द का एक अंश बाहर आवे। आनन्द का परिणमन हो। शुद्ध श्रद्धा का परिणमन, परिणमन अर्थात् अवस्था हो। और स्वरूप की रमणता, अन्दर शुद्धता की रमणता की चारित्र की निर्मल दशा हो, उसका नाम सच्चा मोक्षमार्ग और धर्म है। समझ में आया? परन्तु अनादि से अज्ञानी, व्यवहार से निश्चय होगा, व्यवहार से निश्चय होगा, ऐसे व्यवहार की पकड़ छोड़ता नहीं। वह मूढ़ जीव है। और निश्चय के भान बिना यह व्यवहार के विकल्प भी आवे, उन्हें करता नहीं और अशुभ में जाता है, वह तो पाप की प्रवृत्ति करके नरक और निगोद में जायेगा।

यहाँ तो अब निश्चय और व्यवहार की सन्धि करते हैं। भगवान आत्मा अपने ध्येय को अन्तर्मुख होकर ध्यान द्वारा, ध्येय को ध्यान द्वारा ध्याता को पकड़ा। अरे! भारी सूक्ष्म बातें परन्तु इसमें। नवरंगभाई! भगवान आत्मा चीज... जो ईंट सोने की है पूरी, उसी प्रकार शुद्ध स्वर्ण आत्मा, स्फटिक जैसा आत्मा। जैसे स्फटिक की मूर्ति हो, आती है न? एक दृष्टान्त आता है। स्फटिक की मूर्ति। मैल निकल गया और आता है न कहीं? स्फटिक का स्तम्भ। स्फटिक के स्तम्भ का दृष्टान्त आता है, इसमें ही कहीं आता है। स्फटिक मैल बिना हो जाये। मैल ऊपर चिपटा हो और मैल बिना का हो जाये, वैसे भगवान आत्मा पुण्य और पाप के भाव, वह मैल है। चैतन्य वस्तु स्फटिक—चैतन्य स्फटिक, आनन्द स्फटिक, ऐसी देह प्रमाण चैतन्यमूर्ति है। हड्डियाँ अन्दर लक्ष्य में से निकाल डालो, पुण्य-पाप के विकल्प लक्ष्य में से निकाल डालो, अकेला चैतन्य स्फटिक आनन्दमय मूर्ति है। उसे अन्दर में पकड़ने से जो अनुभव और आनन्द आता है, उसे धर्म कहते हैं। वह स्वविषयी धर्म हुआ। परन्तु अभी परविषयवाले, उसके राग भाग रह जाते हैं। वह यह बात करते हैं, देखो!

भिन्नविषयवाले... है न? **श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र के द्वारा (-आत्मा से भिन्न जिसके विषय हैं, ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा)...** इसलिए अब इसकी व्याख्या करनी पड़ेगी। नीचे (फुटनोट) में अर्थ है, देखो! **व्यवहार-श्रद्धानज्ञानचारित्र के विषय आत्मा से भिन्न**

है;... नीचे नोट। क्या कहा? पहली जो बात की, वह निश्चय की अर्थात् सच्ची। सच्चा ज्ञान, सच्ची श्रद्धा और सच्चा अनुभव। अब यह पूर्ण अनुभव नहीं, तब उसे व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र के विषय आत्मा से भिन्न हैं। अर्थात्? **क्योंकि व्यवहारश्रद्धान का विषय नव पदार्थ हैं,...** क्या कहते हैं ध्यान रखो। वर्तमान निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय तो अभेद चैतन्य आत्मा है। अब उसमें जब नौ पदार्थ भगवान ने कहे हुए—जीव, अजीव, आस्रव, पुण्य, पाप। यह ज्ञायकभाव, वह जीव; अजीव, वह पर; दया, दान, व्रत के परिणाम, वह पुण्य; हिंसा, झूठ, चोरी के भाव वे पाप। यह वृत्तियाँ तत्त्व है। यह दो होकर आस्रवतत्त्व है। आत्मा अकेला ज्ञायकभाव। जैसे स्फटिक रंग में अटकी हुई रंगदशा दिखती है, उसी प्रकार शुद्धता में जो राग का अटकना दिखता है, वह भावबन्ध है। और आत्मा उस राग से हटकर एकाकार होकर जितनी शुद्धता का अंश प्रगट हो, वह संवर। विशेष शुद्धता हो, वह निर्जरा। पूर्ण शुद्धता हो, वह मोक्ष। यह नौ के भेद का विषय और विचार करे, तब राग भाग होता है। यह राग की श्रद्धा को यहाँ व्यवहार श्रद्धा कहते हैं। उसके विषय नौ पदार्थ हैं। क्या कहा इसमें? रतिभाई! यह तो कहे, नौ तत्त्व की श्रद्धा करो, हो गया सम्यग्दर्शन। सुन न! अभी नौ तत्त्व किसे कहना, यह नाम भी न आते हों कितनों को तो। श्रीमद् ने लिखा है कि नौ तत्त्व के नाम भी अँगुली के पोर पर गिने जायें, इतने लोग निकलेंगे। यह तो तब की बात है। साठ वर्ष पहले की। अब कुछ अलग है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, एक चैतन्य वस्तु अपने परमानन्द से...

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससौं भर्यो अनादि टेक हौं।
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है,
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है॥ ३३॥ (जीवद्वार)

ऐसे शुद्ध चेतना सिन्धु—सागर, उसकी अन्तर में दृष्टि करके स्वविषय बनाकर जो सम्यग्दर्शन हुआ, स्व को विषय बनाकर उसका सम्यग्ज्ञान हुआ और स्व में रमणता, चरने से, आनन्द करने से जो शान्ति आयी, वह तो स्वविषय को बनाकर आयी है। उसे निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं। उसे सच्चा मोक्षमार्ग कहते हैं। परन्तु उसके निमित्तरूप से

बीच में आत्मा से भिन्न विषय, वह व्यवहारश्रद्धा का विकल्प—राग उठता है, उसका विषय नौ पदार्थ है। एक नहीं। एक तत्त्व तो सम्यक् निश्चय दर्शन का विषय है। कठिन बात। क्या कहा?

यह चैतन्यमूर्ति स्फटिक जैसा भगवान पूर्णानन्द आदि-अन्त बिना की चीज़, उसमें अन्तर विषय, अन्तर्मुख... अन्तर्मुख उसके ध्येय को पकड़ने से अकेला आत्मा आता है। अकेला आवे श्रद्धा में और ज्ञान में। उसे स्वविषय किया हुआ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र कहने में आता है। अब उसे राग उठता है, तब नौ तत्त्व की श्रद्धा राग का विषय होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! चलते मार्ग में यह बीच में ऐसी बात। तह बैठना इसे कठिन पड़े। यह क्या? भाई, हम तो ऐसा का ऐसा मानते हैं कि नौ तत्त्व को माने, वह सम्यग्दर्शन। चन्दुभाई! बापू! नव अर्थात् भेद आया। यह जीव हूँ, यह अजीव है, यह दया के परिणाम पुण्य हैं, ऐसे भेद का विचार उठना, वह राग है। उस राग को व्यवहारश्रद्धा कहने में आता है। उस श्रद्धा का विषय नौ तत्त्व है। वह बन्ध का कारण है। परन्तु पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति जब तक न हो, तब तक शुद्धता के भान की भूमिका में आत्मा से भिन्न विषयवाले व्यवहार श्रद्धान का भाग आये बिना रहता नहीं। यह नौ पदार्थ, वह व्यवहार श्रद्धा का विषय है।

व्यवहार ज्ञान का विषय अंग-पूर्व। क्या कहते हैं? यह शास्त्र का ज्ञान करना। अंग अर्थात् ग्यारह अंग, बारह अंग का ज्ञान है। प्रवचनरूपी पुरुष, उसके अंग गिनने में आये हैं। समझ में आया? जैसे यह शरीर, उसके हाथ, पैर, अँगुलियाँ उसके अंग कहने में आये हैं। उसी प्रकार प्रवचनरूपी पुरुष के ग्यारह और बारह अंग—अवयव गिनने में आये हैं। ऐसे अंग और पूर्व का ज्ञान, वह जहाँ लक्ष्य में ले, वह राग का भाग, उसका विषय ग्यारह अंग और नौ पूर्व है। समझ में आया? क्या कहा इसमें?

सम्यग्ज्ञान का विषय तो स्वआत्मा है। परन्तु बीच में राग की वृत्ति उठी, शास्त्र को पढ़ने की, शास्त्र का ख्याल करने की, ऐसा राग का भाग पर विषय को बनाकर शास्त्र का अभ्यास करे, उसे व्यवहार ज्ञान कहा जाता है। जो कि पुण्यबन्धन का कारण है। उत्तमचन्दभाई! शास्त्र का पठन पुण्यबन्ध का कारण। आहाहा! तब पढ़ना नहीं न

अब ? भगवान ! ऐसा राग आये बिना रहता नहीं। पूर्ण दशा प्राप्त न हो, तब तक निश्चय के भान की भूमिका अनुभव प्रगट हुआ, तथापि चार ज्ञान के धारक, चौदह पूर्व के पाठक, ऐसे गणधर, गणधर सन्तों के धारक महा मुनि वजीर, धर्मराजा तीर्थंकर के वजीर ऐसे गणधर को भी ऐसा पढ़ने का राग उठता है। यह ग्यारह अंग भगवान ऐसे कहते हैं, छह द्रव्य कहते हैं, नौ तत्त्व कहते हैं। ऊर्ध्व में मोक्ष है, निगोद लोक में है इत्यादि-इत्यादि। ऐसे ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान, अंग और पूर्व दोनों लिये हैं, यह पर की ओर के झुकाव का झोंक, वह राग है। वह व्यवहारज्ञान है। वह बीच में आये बिना रहता नहीं। समझ में आया ? उस व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, यह यहाँ बात (ऐसी) नहीं है। तीन काल में (ऐसी) नहीं। परन्तु निश्चय के भान की भूमिका की पूर्ण दशा प्राप्त न हो, तब शास्त्र के पठन का ज्ञानी को भी गणधरदेव भगवान की वाणी छूटे त्रिलोकनाथ की ॐध्वनि उठे। समवसरण में इन्द्र उपस्थित हों। सन्तों के झुण्ड आत्मज्ञानी-ध्यानी (हों)। ध्वनि उठे ॐ।

'ॐकार सुनी ध्वनि अर्थ गणधर विचारे' यह ॐ की ध्वनि सन्त विचारते हैं। क्या कहा ? इसके पहलू इतने सब प्रगट करे, जिसमें बारह अंग की रचना करे। ऐसे ग्यारह अंग और बारह अंग के ज्ञान की ओर झुकाव, वह व्यवहार ज्ञान कहा जाता है। उस व्यवहार ज्ञान का विषय ही अंग और पूर्व है। यह विकल्प है। यह राग की वृत्ति का उत्थान है। यह उत्थान है, वह पुण्यबन्ध का कारण है परन्तु वह बीच में आये बिना रहता नहीं।

तीसरा, यह बीच में राग की वृत्ति उठे। पूर्ण वीतराग नहीं, इसलिए ऐसा स्व-पर प्रत्ययी विकार आवे। मुनि की सेवा, मुनि की वैयावृत्य, मुनि का श्रवण करना या मुनियों को सुनाना ऐसे अथवा धर्मकथा कहने का राग, समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी को भी उठता है। परन्तु वह उठता है, वह राग है; धर्म नहीं, धर्म का कारण नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। समझ में आया ? बहुत मेल करना... यहाँ तो निश्चय और व्यवहार का सुमेल करने की बात चलती है। कि निश्चय अर्थात् सच्चा तत्त्व का भान, ज्ञान और रमना। अर्थात् अन्दर चरना, उसे चारित्र कहते हैं। उसके साथ ऐसे व्यवहार— अंग और उपांग का ज्ञान आये बिना रहता नहीं।

तीसरा। **व्यवहारचारित्र का विषय आचारादिसूत्रकथित मुनि-आचार हैं।** यह पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ऐसा विकल्प उठे। किसी जीव को छह काय के जीव को न मारूँ, दूसरे की दया पालन करूँ। यह राग भाग है, धर्म नहीं। झूठ न बोलूँ, ऐसी वृत्ति उठे। सत्य बोलूँ, यह राग भाग है। यह वृत्ति का उत्थान है, उठता है। निर्विकल्प भगवान स्वरूप के भान में स्थिर नहीं होता, इसलिए उसे ऐसी वृत्ति आये बिना रहती नहीं। निमित्त को साथ गिनकर निश्चय और व्यवहार का ज्ञान करना, उसे प्रमाणज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? भाई! इस बार तो राजकोट में यह माँग की थी। लालचन्दभाई ने कि हमारे तो यह सुनना है, १७२। अमरचन्दभाई! राजकोट जैसे शहर में भी इस बात को कोई ऐसा कहता है कि यह तो बहुत सूक्ष्म पड़े, भाई! और सट्टा के व्यापार में सूक्ष्म नहीं पड़ता वहाँ कुछ। सब इकट्ठे होकर मगनभाई और रसिकभाई... करते थे या नहीं अन्दर गप्प? वहाँ सूक्ष्म विचार करे। टोन देखो, टोन देखो। यह रूख क्या है, टोन क्या है, ऐसे चिल्लाहट करे। हमारे गिरधरभाई थे न। वे टोन बहुत कहते थे। उन्हें बारह महीने में सौ रुपये चाहिए। सौ कमावे सट्टा में। सौ कमावे, सौ चाहिए। बस, इतना ही (दूसरा) कुछ नहीं। अकेले व्यक्ति थे अविवाहित। और ऐसे स्वप्न भी उन्हें आते कि यह स्वप्न आवे वैसा सट्टे में फले। स्वप्न में ऐसा आता, हों! यह रूख यह है। शिवलालभाई! वे गिरधर वोरा। टोन.. टोन बारम्बार करे। मैंने कहा, यह टोन-टोन क्या करते हो? रूख चाहिए, टोन चाहिए। कौन सा व्यापार, किस प्रकार, अमुक प्रकार। वहाँ टोन चाहिए, आत्मा में टोन कौन सा है खबर है? भगवान जाने भाई! अपना अवतार तो इस दुनिया में जरा मान और स्थान और दूसरे की अपेक्षा अधिकरूप से रहें, यह जीते जाना और मरे भी जाना। जीना भी जाना और मरकर भी जाना। जी कर जाना अर्थात् कमाकर। और मरकर जाना अर्थात् क्या? कि मरते-मरते किसी को पानी पिलाने की जरूरत पड़े नहीं, रात्रि जागरण करना पड़ा न हो कुटुम्ब को तो लोग कुटुम्ब बोले कि मरना जाना। हमारी गरज भी नहीं पड़ी। हमको जागरण नहीं कराया और मर गये पहले शीघ्र। भानुभाई! जीना भी जाना। कमा दिया, खाना, पैसा, बँगला बनाया। जीना जाना। मरना जाना, मरते हुए हमको तकलीफ नहीं दी। हार्टफेल हो गया और वह भी किस प्रकार? आहार-पानी करने के बाद।

इसलिए शाम के आहार-पानी... के बीच मरे, मरना भी जाना, भाई! किसी को एक समय भी आहार दूर नहीं किया। धूल भी जीना जाना नहीं और मरना जाना नहीं। तुझे जीवन की खबर नहीं।

जीवन की शोधन दशा भगवान परमानन्द को शोधे बिना, अन्तर्मुख के अवलोकन किये बिना तेरे जीवन में सर्वत्र शून्य लगाया है। बराबर होगा यह? कहाँ गये प्रभुभाई! ऐ... रतिभाई! आहाहा! प्रभु! प्रभु को प्रभु कहते हैं, हे प्रभु आत्मा! तेरे अन्तर्मुख की निर्विकल्पदशा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता उसे शुद्ध दशा, शुद्ध परिणति, शुद्ध अवस्था कहते हैं। यह तो वास्तव में मोक्ष का ही कारण है। बीच में ऐसी दशा के काल में भिन्न विषयवाले—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अट्ठाईस मूलगुण मुनि के, ऐसे विकल्प का राग आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह आत्मा से पर विषय है। पर को न मारूँ, इसकी दया पालन करूँ, इसे दुःख न दूँ, इसकी भक्ति करूँ, इसकी पूजा करूँ, यह सब राग का विषय परद्रव्य है। समझ में आया? और धर्म की दशा का विषय आत्मा है। दोनों भिन्न विषयवाले... यह नीचे आ गया है।

श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र के द्वारा... अर्थात् राग द्वारा, भेद द्वारा **(-आत्मा से भिन्न जिसके विषय हैं, ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा) जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं...** यह व्यवहार से कथन है। अर्थात् कि शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में संस्कार बढ़ते जाते हैं शुद्धि से और साथ में ऐसे विकल्प को देखकर, निमित्त का ज्ञान कराने के लिये यह संस्कार इससे आरोपित करते जाते हैं, ऐसा व्यवहार से कथन किया है। यह निकाला है। नीचे डाला है या नहीं? पण्डितजी ने डाला है, ऐसा है। कहाँ से कहा?

ग्यारहवीं गाथा, समयसार। जो पूरे वस्तु के तत्त्व को स्पर्श कर कथन करनेवाली (गाथा है)। '**ववहारोऽभूदत्थो**' समयसार की ११वीं गाथा। जितना परलक्ष्यी राग होता है, वह नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा का राग, वह शास्त्र के ज्ञान का राग और पंच महाव्रत के तथा अट्ठाईस मूलगुण के पूजा, भक्ति, दान, दया ऐसे परिणाम जो अभूतार्थ हैं। वह आत्मा का वास्तविक तत्त्व नहीं है और उसके आश्रय से आत्मा को धर्म नहीं होता। व्यवहार, वह असत्यार्थ है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु सुद्धणओ भूदत्थ।**' '**ववहारोभूदत्थो**

भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।' शुद्ध ज्ञान का अंश त्रिकाल वस्तु को पकड़ता है, वह एक ही सत्य और यथार्थ कहनेवाला है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' त्रिकाल भगवान आत्मा के स्वभाव का आश्रय पकड़ने पर सम्यग्दृष्टि हो सकता है। ऐसे व्यवहार को पकड़ता हुआ सम्यग्दर्शन हो नहीं सकता। यह गाथा सर्वत्र स्पर्श कर बात करना। व्यवहार असत्यार्थ है। व्यवहार के कथन अन्यथा कहनेवाले हैं। वह जरा सा छल देखकर, जरा सा निमित्त देखकर आरोप करके कथन करते हैं कि मुझसे लाभ होगा। ऐसे कहनेवाले के कथन का रहस्य, उससे है नहीं। लाभ तो अन्दर शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान से शुद्धि की वृद्धि है। परन्तु उसके प्रसंग में ऐसा जो राग आवे, उससे होता है, ऐसा अन्यथा कथन करके निमित्त का ज्ञान कराया है। समझ में आया? अरे! कितनी बातें इसमें! जगत ने धर्म की कभी धर्म की गन्ध भी सुनी नहीं, कभी समझने के पक्ष भी सेवन नहीं किये। क्या चीज़ है? ऐसे वाड़े में जन्मा, भगवान सच्चे। भगवान ने दया पालने को कहा और या त्याग करने को कहा। लो, यह सीखे। किसका त्याग? जड़ का? धूल भी चारित्र नहीं। अचारित्र मिथ्यादृष्टि है। किसका चारित्र? पर का त्याग, वह चारित्र किसने कहा? तीन काल में है नहीं। पर को आत्मा ने ग्रहण किया है? आत्मा के ज्ञान में पर वस्तु प्रविष्ठ है कि जिसे छोड़े? वह चीज़ तो पर है, यह है अरूपी। इसने पर को कभी पकड़ा नहीं कि पर को छोड़ना (आवे)। पर को छोडूँ, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। पापदृष्टि की अधर्मदृष्टि की यह दृष्टि है। ए... रतिभाई! ... मजा आया, पैसा-बैसा संग्रह करने की। छोड़ा नहीं जा सकता। ऐसा होगा? परन्तु कौन संग्रह कर सकता है तीन काल तीन लोक में? इसे विकल्प की ममता आवे कि संग्रह करूँ। इसे संग्रह होते हैं? तीन काल में नहीं। उसके कारण से लक्ष्मी आवे और उसके कारण से जाये। स्त्री उसके कारण से आवे और उसके कारण से जाये। यह रोग उसके कारण से आवे और उसके कारण से जाये। वह परवस्तु है। वह आत्मा से आवे नहीं और आत्मा उसे टाल सकता नहीं। बहुत कठिन बात।

आत्मा में पर का ग्रहण-त्याग माने तो ग्रहण करूँ और छोडूँ, ग्रहण करूँ और छोडूँ मिथ्यादृष्टिरूप से वहाँ चिपट रहा है। ग्रहण-त्याग आत्मा में है नहीं। ऐसे आत्मा के ज्ञान के भान बिना। अरे! राग को ग्रहण करूँ और राग को छोडूँ, यह भी वस्तु के

स्वरूप में नहीं है। सम्यग्दर्शन का विषय जो भगवान आत्मा, वह स्वरूप में राग को ग्रहण करूँ, रागरूप उत्पन्न होऊँ, या राग को छोड़ूँ-राग का त्याग करूँ, (यह) वस्तु में नहीं है। किसका त्याग करेगा? समझ में आया? राग के त्याग के कर्तापने का नाममात्र है। वस्तु भगवान आत्मा राग के त्याग का कर्ता भी माने, वह मिथ्यादृष्टि है, पापदृष्टि है, अधर्मदृष्टि है। उसे त्याग है—ऐसा मानना, यह बड़ा पाप भाव है। समझ में आया? क्या कहा? भगवान आत्मा...! राग का त्याग करूँ। परन्तु राग कब अन्दर घुस गया है? चैतन्यब्रह्म आनन्दमूर्ति ऐसे स्वभाव में राग का स्पर्श तीन काल में नहीं है। वह राग और स्वभाव दोनों के बीच अत्यन्त अभाव है। क्या कहा? परवस्तु का तो चैतन्य के तत्त्व में अभाव है परन्तु संसार का जो विकल्प और पुण्य-पाप का उदयभाव, उसका स्वरूप में अत्यन्त अभाव है, अत्यन्त अभाव है। ऐसी अन्तर्दृष्टि किये बिना इसे त्यागूँ और रखूँ, यह मिथ्यादृष्टि की कल्पना की भ्रमणा है। समझ में आया? भानुभाई! इसमें ध्यान तो बहुत रखे। परन्तु वह विपरीतता बहुत घुसी हो न बहुत काल की। यह सुना न हो। भानुभाई! यह सुना न हो। जो माल घर में हो न, वह समाप्त हुआ हो और वह माल हो, तब तो खाने में डाले। परन्तु खाना ही नहीं मिलता, माल नया आवे उसे डालना कहाँ? पुराना माल निकाल डाले और नये माल के खाने नये तैयार करे। समझ में आया? अरे! अनादि की अकेली उल्टी पकड़, मूल तत्त्व को भूलकर या उसके पहलू को समझाना कठिन पड़े और ऐसा कहा जाये कि अरे! परन्तु राग छोड़ना नहीं? राग छोड़ना नहीं? हाय.. हाय..! फावाभाई! कब आये? अभी दिखाई दिये। अभी याद किया था। रामजीभाई कहे, धूप के कारण नहीं आये होंगे। समझ में आया इसमें? क्या वह बात थी न? तब तुमको याद किया था। वे भरुच के डाह्याभाई घोळशा। मीराबाई का नाटक देखने नहीं गये थे हम? बाहर। भरुच के स्टेशन में चबूतरे पर सो रहे थे। वे आये थे। हम दोनों व्यक्ति साथ में थे। मीराबाई का नाटक था। कहा, चलो आज सोने के बदले वहाँ जाकर आवें। परन्तु बहुत वैराग्यवाला, हों! वैराग्य बहुत बतावे बेचारे भक्ति-बक्ति... यहाँ थे या नहीं तब? थे? ले। इतना अन्ध है न। तो यह तो सुने ही कहाँ से? बर्तन याद आये होंगे वहाँ के, वह भंगार। उस भंगार को निकालने की तो बात चलती है।

भगवान आत्मा, इस चैतन्यमूर्ति में राग का मैं त्याग करूँ, यह उसकी बुद्धि राग

पर जाती है और राग के ऊपर जाने से, अंश के ऊपर जाने से इसका त्याग करूँ, यह लाभ होगा, ऐसी मान्यता को मिथ्यादृष्टिपना और पापदृष्टि और अधर्मदृष्टि कहने में आता है। समझ में आया? परन्तु राग का त्याग कैसे होगा? कि राग बिना की मेरी चीज़ निर्मलानन्द पूर्ण है, ऐसी दृष्टि स्व के ध्येय से करके, पश्चात् स्वरूप में स्थिर हो, राग की उत्पत्ति न हो, उसने त्याग किया—ऐसा कथनमात्र कहने में आता है। समझ में आया इसमें? जयन्तीभाई! राग का त्याग करूँ, यह मान्यता भी कहते हैं गजब। तब अब यह स्त्री, पुत्र का त्याग करो, इसका त्याग करो, अब त्यागी हो गया धर्म का। धर्म का त्याग किया है, तुझे भान नहीं यह धर्म कैसे होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री छोड़ दी, इस मान्यता का फल निगोद है। मिथ्यात्व है न? मिथ्यात्व का फल निगोद है। अपनी ऋद्धि की पर्याय को हीन किया और स्वयं जीव है, ऐसी इसे खबर नहीं रहती, दूसरे (भी इसे) जीव है, ऐसा स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में जायेगा। क्यों? कि सत्य बात को आड़ दी है। सत्य को आड़ दी है। आत्मा भगवान राग का त्याग कर सकता है, ऐसी चीज़ ही उसमें नहीं है। उसमें मैं राग कर सकूँ, ऐसी मान्यता वह सत्य के स्वरूप को आड़ दी है। आड़ अर्थात् अभ्याख्यान दिया है। आड़ के फल में धीरे-धीरे ज्ञान की दशा हीन होकर यह आलू और शक्करकन्द में जानेवाला है। जिसमें इसकी-जीव की स्वीकृति इसे नहीं और दूसरे भी स्वीकार नहीं कर सकेंगे कि इसमें जीव? इसमें जीव? अरे! इसमें जीव है। समझ में आया? रतिभाई! बात तो भाई, आवे तब तो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लगे रहने का कहाँ प्रश्न है? लगा कहाँ रहता है? लगा कहाँ रहता है? मानता है कि मैं लगा हूँ। कर्म को, पर को लिपटा हूँ, ऐसा मानता है। वह कहाँ लगा है? धुँआ कहाँ हाथ में पकड़ा जाता है? पकड़ा जाता है? इसी प्रकार परचीज़ क्या पकड़ी जाती है? आवे और जावे उसके कारण से। यह तो मान्यता में चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द से भरपूर... उसे आस्रवतत्त्व का त्यागी मैं होऊँ, इसका त्याग

करूँ, ऐसी बुद्धि पर में जाने पर, अंशबुद्धि में आने पर, अंशी को खोने से मिथ्यात्वभाव होता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, ऐसे भिन्न विषयवाले राग का भाग तो धर्मी को आवे और उससे संस्कार पड़े, यह व्यवहार के कथन भी ऐसे आते हैं। **ऐसे भिन्नसाध्यसाधनभाववाले...** यह अन्तिम पद। भिन्नसाध्यसाधन अर्थात् क्या? कि ऐसा जो व्यवहार नौ तत्त्व की श्रद्धा का राग, ग्यारह अंग आदि का ज्ञान, पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग है। यह विकार वह साधन पर है और आत्मा की शुद्धि, वह निर्मल भिन्न है। निर्मल शुद्धि में मलिन परिणाम से साधन कहना, वह भिन्नसाध्यसाधनभाववाला व्यवहारनय का कथन है। समझ में आया? इसने मूल पहलू देखा नहीं। समझ में आया?

लोग हीरा की कीमत आँकते हैं। 'परख्या माणेक मोतिया, परख्या हेम कपूर पर एक न परखा आत्मा, वहाँ रहा दिग्मूढ।' मूढ़ हो गया, मूढ़ हो गया। बड़े-बड़े बेरिस्टर नाम धराते हों, वकालात नाम धराते हों, महीने-महीने के पाँच-पाँच हजार रुपये एक दिन के लेते हों। मूढ़ है, मूढ़ है। जिसने चैतन्य हीरा परखनेवाले जगत की चीज़ को परखनेवाला स्वयं, उसकी परीक्षा नहीं की तो तूने किया क्या? भानुभाई! किसका धन्धा है? सोना, चाँदी का। धूल का है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... कहते हैं कि उसने जगत के धन्धे की सब परीक्षाएँ कीं। ऐसे देखे और ऐसे देखे। समझ में आया? आत्मा क्या चीज़ है, उसकी कभी परीक्षा धार पर चढ़ी नहीं। यहाँ कहते हैं, भिन्नसाध्यसाधन। अन्तिम टुकड़ा। अर्थात् क्या? कि यह व्यवहाररत्नत्रय का जो राग कहा, है ऐसा। नौ की श्रद्धा—नौ तत्त्व की, भी विकल्प है। ग्यारह अंग का ज्ञान और दया, दान के भाव, पंच महाव्रत के भाव या बारह व्रत का राग, वह भिन्न साधन है और साध्य निर्मल भिन्न है। वह भिन्न साध्य निर्मल का यह साधन कहना, राग की पर्याय को निर्मल निर्विकारी शुद्ध पर्याय का साधन कहना, वह व्यवहारनय के कथन अभूतार्थ के कथन हैं। वे सच्चे कथन नहीं। वीरजीभाई!

अपने आत्मा में... अब जरा न्याय देते हैं। **धोबी द्वारा...** यह व्यवहाररत्नत्रय द्वारा। चन्दुभाई! **शिला की सतह पर...** शिला की सपाटी। शिला होती है न? उसकी

सपाटी पर। कोई कौने में मारता होगा? सपाटी में (मारता है)। **धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जानेवाले,...** अपनी गुजराती भाषा, सादी काठियावाड़ी भाषा। पछाड़ने में आने पर। क्या कहा? धोबी पत्थर की शिला पर वस्त्र ऐसे पछाड़ता है। नहाते समय दो पैर के बीच रखकर ऐसे पछाड़ता है या नहीं? बीच में जोर आता है उसको। इसलिए दो पैर बीच में रखकर करता है या नहीं? पत्थर न हो वहाँ क्या करे? खड़े-खड़े फिर ऐसे-ऐसे करता है या नहीं? क्या कहते हैं उसे? तुम्हारे कहाँ हो परन्तु घर में ऐसा। वह तो कुँए में नहाने जाये, वहाँ होता है। खड़े-खड़े वस्त्र को पछाड़े। इसलिए जोर पड़े तो उसमें तानाबाना में मैल हो न, वह पृथक् पड़ जाये। हेतु तो यह है। पृथक् पड़े। फिर पानी में ऐसे तरवड़े इसलिए पानी से मैल पृथक् पड़ जाये।

इसी प्रकार धोबी शिला की पाट में पछाड़ने में आता हुआ **निर्मल जल द्वारा भिगोए जानेवाले...** वापस पछाड़ने के बाद... अपनी कुछ काठियावाड़ी भाषा है। वह पानी में ऐसे करे। क्या करे? तारवे, तारवे। पानी में तारवे। मैल पृथक् पड़े न। फिर पानी में ऐसे-ऐसे तारवे। **धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जानेवाले,...** पछाड़ने में आने पर **निर्मल जल द्वारा भिगोए जानेवाले और क्षार (साबुन) लगाए जानेवाले मलिन वस्त्र की भाँति—थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके,...** यह वस्त्र में शिला पर ऐसे पछाड़े न। उसके द्वारा मानो यहाँ मलिनपना छूटता है। ऐसे व्यवहार द्वारा, छूटता है तो निश्चय द्वारा। वीरजीभाई! परन्तु भारी कथन भाई! यह उलझन का घर जगत को। उसके हार्द-हृदय देखना न आवे और वाणी को अकेली देखे परन्तु किस नय का कथन है यह (समझे नहीं)।

वह धोबी जैसे शिला पर मारे और मैल तोड़े, वैसे नौ तत्त्व की व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान अंग का, व्यवहार पंच महाव्रत के द्वारा आत्मा की थोड़ी-थोड़ी शुद्धि बढ़ाता जाये। नवनीतभाई! पाठ ऐसा है। यह व्यवहारनय से कथन है। होता है तो अपने शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान के जोर से शुद्धता होती जाती है। उसके पास रहे हुए ऐसे शुभ विकल्प से शुद्धि बढ़ती है, ऐसा व्यवहारनय के आरोपित कथन द्वारा उपचार बतलाया है। समझ में आया?

सोना, उसमें कुधातु हो, अग्नि द्वारा कुधातु पृथक् पड़ती है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो ऐसा नहीं है। सोना ही अपनी योग्यता से शुद्ध धातुरूप परिणमता हुआ कुधातु से पृथक् पड़ता जाता है, परन्तु अग्नि से पृथक् पड़ा, ऐसा व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी परम पवित्रता में एकाकार होता हुआ, शुद्धता को बढ़ाता हुआ, आनन्द की शुद्धि को बढ़ाता हुआ, उसके साथ ऐसे व्यवहार द्वारा बढ़ाता है, ऐसा निमित्त से कथन किया जाता है। समझ में आया? स्वयं से शुद्ध होता जाता है—उपादान से। अग्नि के निमित्त से नहीं।

मुमुक्षु : तेजाब।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेजाब से नहीं। उन स्वर्ण के रजकणों की पर्याय स्वयं के कारण से निर्मल होती जाती है। तेजाब-फेजाब से नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी जलाता नहीं। तेजाब स्पर्श भी नहीं करता। यह बात बहुत सूक्ष्म है, यह बातें बहुत सूक्ष्म। तेजाब एक चीज़ को दूसरी चीज़ स्पर्श करे, तीन काल में नहीं होता। यह बात सूक्ष्म है।

यहाँ तो इतना करे। अब इस व्यवहार को छोड़कर अन्तर में जाता है—स्थिर (होता है), इसका थोड़ा वर्णन है, लो...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १, शनिवार, दिनांक - ०५-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-९

यह पंचास्तिकाय समयसार शास्त्र है। पंचास्तिकाय समयसार। इसका नाम ऐसा है। इसमें १७२वीं गाथा। निश्चय और व्यवहार का सुमेल किसे कहना, यह बात चलती है। इसमें बड़े घोटाले हैं। यहाँ पढ़ने में भी इतने घोटाले किये हैं। है? देखो, २५६ पृष्ठ पर आया है। क्या कहते हैं? यहाँ तक आया। विशुद्धि प्राप्त करके। तीसरी लाईन। क्या कहा यहाँ? पहला। फिर निश्चय की बात चले। अकेला निश्चय बाद में आयेगा।

यह आत्मा जो वास्तव में शरीर, वाणी के संयोग और कर्म परपदार्थ से अत्यन्त भिन्न, त्रिकाल भिन्न और उसकी वर्तमान दशा में शुभ और अशुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप के भाव हो, उनसे भी यह पृथक्। अर्थात् कि परवस्तु के और पुण्य-पाप के भाव से शून्य और ज्ञान, दर्शन और आनन्द से भरपूर पूर्ण। समझ में आया? ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि करके जो निश्चय दृष्टि—सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव जिसे कहते हैं, ऐसी श्रद्धा और ज्ञान हुआ, तब पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति नहीं, तब तक उसे बीच में जीवादि नौ तत्त्वों के विचारों का विकल्प, शास्त्र के पठन का भाव और श्रावक अथवा मुनि के योग्य जो वहाँ बारह व्रत के भाव और पंच महाव्रत के भाव, ऐसे भाव हों, उन्हें व्यवहार, व्यवहारनय का विषय कहा जाता है। पण्डितजी! भाषा समझ में आती है न?

यह व्यवहार, निश्चय स्वरूप को प्राप्त करावे - ऐसा नहीं है। यह कथन इस प्रकार का इसमें आया है कि मानो आत्मा अपने शान्त अनाकुल चैतन्य के स्वभाव को सम्हालता हो अन्दर से, अन्तर के अवलोकन और निरीक्षण में जो आत्मा का ज्ञान और दर्शन और भान हुआ, वह तो निर्विकल्प सम्यक् शुद्ध मार्ग है। वही वास्तव में आत्मा के पूर्णानन्द की दशारूप जो मुक्तदशा, उसे प्राप्त करने का उपाय है। परन्तु बीच में राग का भाग आये बिना नहीं रहता, उस राग को व्यवहार कहकर उसके द्वारा धीरे-धीरे मानो शुद्धि को बढ़ाता हो, ऐसा यहाँ टीका में कथन आया है। समझ में आया? यह कथन व्यवहारनय का है। अर्थात् कि... नीचे है, वह सब अपने आ गया है। नीचे कथन है। देखो! २५६ पृष्ठ, नीचे नोट (फुटनोट)।

जिस प्रकार धोबी... धोबी। धोबी कहते हैं न तुम्हारे? क्या? कपड़ा धानेवाला। **पाषाणशिला, पानी और साबुन द्वारा मलिन वस्त्र की शुद्धि करता जाता है, उसी प्रकार प्राक्पदवीस्थित ज्ञानी...** प्राक् अर्थात् निचलीदशा में आत्मा का भान है कि मैं ज्ञाता-दृष्टा शुद्ध हूँ। परन्तु स्वरूप में स्थिर रह सकने की सामर्थ्य नहीं है, ऐसे जीव को प्राक्पदवीस्थित कहा जाता है। निचली पदवी में स्थित कहा जाता है। परन्तु निचली पदवी भी है तो सम्यग्ज्ञानसहित की। जो कोई अनादि से जैसे अशुभराग की क्रिया के कारण मुझे धर्म होगा, ऐसी मान्यतावाले को तो पहली पदवी कहने में आती नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि की पदवी है। वह तो पापदृष्टि की पदवी है। परन्तु भगवान आत्मा इस शुभराग की क्रिया जो अन्दर में दिखती है, उससे हटकर भगवान चैतन्य की जाति की श्रद्धा, अनुभव किया, उसे उस काल में जो यह नौ पदार्थ का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान और नौ पदार्थ की श्रद्धा ऐसे विकल्प की वृत्ति का उत्थान होता है, वह व्यवहार, व्यवहारनय से शुद्धि का कारण है, ऐसा कहने में आया है। भारी गड़बड़, भाई! थोड़ा पढ़ा, भाई! यह मासिक भाई का आया न। कोई-कोई लेख इसमें ऐसे हैं।

यह पहली पदवीस्थित धर्मी **भेदरत्नत्रय द्वारा...** भेदरत्नत्रय अर्थात्? यह जो कहा वह। स्वरूप का भान होने पर भी स्वरूप में स्थिर नहीं हुआ। निर्विकल्प अनुभव, ज्ञाता आत्मा, ज्ञेय स्व और ज्ञान अपना। ऐसे ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय त्रिपुटी को एकरूप नहीं किया हो, जहाँ तक स्थिरता में। दृष्टि में तो एक बार किया था। क्या कहा, समझ में आया? सम्यग्दर्शन की दृष्टि में पहले आत्मा ज्ञाता, उसकी ज्ञानपर्याय और आत्मा, वह ज्ञान का ज्ञेय। ऐसे तीन भेद को भी टालकर अभेद आत्मा की दृष्टि, अनुभव हुआ, उसे पहली पदवी सम्यग्दर्शन और ज्ञान की कहने में आता है। समझ में आया? परन्तु अभी अन्दर में राग की वृत्ति उठती है, उसे टालकर अकेली स्थिरता, स्वरूप चिदानन्दमूर्ति जिसके ध्यान में, जगत में क्या है और विकल्प क्या है, यह भी छूट गया है। अकेले आनन्दकन्द की केलि करता है। नवनीतभाई! आता है न छहढाला में? ज्ञाता भेद न कोई। छहढाला (इन्हें) कण्ठस्थ है। (पण्डित) दौलतरामजी की।

अर्थात् कि भगवान आत्मा का भान विकल्प अर्थात् रागरहित पहला अनुभव हुआ कि यह तो चैतन्यपिण्ड ही है। ज्ञान का पुंज ही है। ऐसा भान होनेवाले को ज्ञान

की पहली पदवी कही जाती है। इसलिए उसे अभी उसके व्यवहाररत्नत्रय का राग, व्यवहारश्रद्धा, व्यवहारज्ञान और व्यवहार महाव्रत के परिणाम आवे... आवे... होते हैं। उस **भेदरत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा में संस्कार को आरोपण करके उसकी थोड़ी-थोड़ी शुद्धि करता जाता है...** ऐसा कहा गया है। ऐसा व्यवहारनय से कहा गया है। उपचार कथन से कहा गया है। वास्तव में ऐसा है नहीं।

परमार्थ ऐसा है कि उस भेदरत्नत्रयवाले ज्ञानी जीव को शुभभावों के साथ... यह शुभ विकल्प—राग उठता है, उसके साथ **शुद्धात्मस्वरूप का आंशिक आलम्बन वर्तता,...** था। भगवान पूर्णानन्द शुद्ध ध्येय सामान्यरूप से जो एकरूप दृष्टि में वर्तता था, अवलम्बन में, वर्तमान दशा को अवलम्बन त्रिकाल का। गजब बात! वर्तमान दशा चलती है उसे अवलम्बन त्रिकाल द्रव्य का। अखण्ड ज्ञायकमूर्ति आत्मा का अवलम्बन जो वर्तता था, वह शुद्ध श्रद्धा और ज्ञान था। वह अवलम्बन उग्ररूप से अन्दर वर्ता। समझ में आया? परन्तु यह क्या बात है? किस प्रकार की यह बात? रतिभाई! कल रात्रि में खेलो माँगते थे कुछ। तुम्हारे शब्द भी हमको आते नहीं। आनन्द का अंश बताओ थोड़ा। तो फिर खेल करें। यह रुपये इकट्ठे हुए न, ऐसा कि इनका खेल करें। माँग तो अच्छी थी । यह बात बात में खोटी नहीं परन्तु बात के लिये प्रयत्न अनन्त गुणा चाहिए।

इस जगत के सभी पदार्थ मुझमें नहीं है, ऐसा भूलकर पुण्य और पाप के विकल्प उठें, उन्हें भूलकर, अन्तर आनन्द के धाम में अन्तर्मुख होकर, एकाकार होकर, स्वभाव को ध्येय करके एकाकार होकर जो आनन्द आवे, वह ज्ञान हो और जो श्रद्धा हो, उसे निश्चयरत्नत्रय, यथार्थ धर्म, मोक्ष का उपाय कहने में आता है। यह अवलम्बन बढ़ते-बढ़ते... पहले थोड़ा अवलम्बन लिया था अन्दर सामान्य का। अधिक उग्ररूप से अन्दर में स्थिर होने पर...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान से होता है। यहाँ छठे की बात चलती है। चौथे गुणस्थान से यह बात चलती है। यहाँ छठे चारित्र से बात चली।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह और चारित्रसहित। यह चारित्रसहित। समझ में आया?

पहले आत्मा में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में उसके वर्तमान ज्ञान का चलता प्रवाह, पर्याय का—हालत का—दशा का। एकाकार दृष्टि के शुद्ध उपयोग... शुद्ध उपयोग उसके योग्य शुद्ध का व्यापार अन्तर्मुख हुए बिना निश्चय सम्यग्दर्शन, सच्चा ज्ञान और स्वरूपाचरण की स्थिरता कभी अभेद के अवलम्बन बिना प्रगट नहीं होती। समझ में आया? बहुत महँगा सम्यग्दर्शन किया, ऐसा कितने ही लोग कहते हैं। परन्तु यह कहते हैं कि बहुत महँगा कर डाला। सोनगढ़ का समकित महँगा और कहीं का समकित सस्ता, ऐसे दो भाग होंगे?

भाई! इस तेरी चीज में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ऐसे चैतन्य धातु, आनन्दभाव और पूर्ण वीर्य अर्थात् बल का स्वभाव, ऐसा एकरूप अन्तर में दृष्टि के आधार बिना दृष्टि को आधार ऐसा एकाकार मिले बिना, एकपने का आधार मिले बिना एकाग्र हो नहीं और एकाग्र—एक पर लक्ष्य जाये तब होता है। उसमें पहले तीनपना रहे या मैं यह एक जाननेवाला हूँ, यह ज्ञान है, मैं स्वयं मेरी वस्तु को जाननेवाला ज्ञेयरूप से जानूँ—ऐसा भेद विकल्प है, राग है, पुण्य है; धर्म नहीं। समझ में आया? यह दृष्टि छोड़कर भगवान चैतन्य ध्रुव धातु अनादि-अनन्त ज्ञान है, वह एकरूप, उसे अवलम्ब कर ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान के तीन भाग (विकल्प) छूटकर निर्विकल्प अभेद का अनुभव हो, उसे प्रथम धर्म-सम्यग्दृष्टि की दशा कहने में आता है।

इसके पश्चात् ऐसी दशा होने पर भी उसे शुभराग की वृत्ति उठे। उससे शुद्धि हो, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। परमार्थ से ऐसा है नहीं। बहुत कठिन पड़े। इसकी अपेक्षा कुछ... नरभेरामभाई! नरभेरामभाई कहते हैं, कुछ कोमल हो, दया, दान, भक्ति करे, पैसा-बैसा खर्च करे तो इतना कोमल तो हो, तो आगे चले। बन्ध में। अनादि काल का बन्ध करता आता है, उस बन्ध में। यह तो वकील है तो स्पष्टीकरण करते हैं। स्पष्टीकरण करे न! समझ में आया? अन्दर में...

कहते हैं, पहले एक क्षण में... द्रव्यसंग्रह में ४७ गाथा में आया है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' अन्दर ध्यान... यह सिद्ध भगवान को भूल

जाये, पंच परमेष्ठी के स्मरण को भूल जाये। इन पंच परमेष्ठी की जो दशायें मेरे द्रव्य में से आती हैं, ऐसा मैं द्रव्य हूँ। ऐसे परमात्मस्वभाव पर दृष्टि पड़े, वह अभेद हो जाये, भान रहे नहीं। भान रहे नहीं और भान हो। यह और क्या कहा? इस राग और पर का भान रहे नहीं और आत्मा का भान हो। अन्तर में ज्ञान एकाकार हो, उसे भगवान अभेद दृष्टि, सम्यग्दृष्टि, सम्यक्ज्ञान और स्वरूप में कुछ स्थिर हुआ, उतना स्वरूप का आनन्द का आचरण हुआ, उसे निश्चय और सत्य पंथ कहते हैं। यह एक ही मार्ग सत्य है। परन्तु बीच में ऐसा राग आया, उससे यह शुद्धि बढ़ती है, यह व्यवहार से कहने में आता है।

परमार्थ से देखें तो शुभभाव के साथ शुद्धात्मस्वरूप का आंशिक अवलम्बन वर्तता था। क्या कहा? शुद्ध ध्येय आत्मा। उसका थोड़ा आधार और थोड़ा लक्ष्य था। वह उग्र होता हुआ विशेष शुद्धि करता जाये। अन्तर में एकाकार बढ़ता जाये। शुद्ध सामान्य पर एकाकार त्राटक करता जाये। त्राटक समझ में आता है? एक वस्तु पर लक्ष्य रखकर दूसरी कल्पना छूट जाये। त्राटक अर्थात् एकाकार। इसी प्रकार आत्मा के एक स्वरूप में इतना उग्ररूप से त्राटक करे—एकाकार हो। इसलिए वास्तव में तो शुद्धात्मस्वरूप का अवलम्बन करना, वह शुद्धि प्रगटाने का साधन है। वह अन्दर में एकाकार अधिक होना, वही शुद्धात्म प्रगट होने का साधन है। और उस अवलम्बन की उग्रता करना, वही शुद्धि की वृद्धि करने का साधन है। व्यवहार साधन तो उपचार कहने में आता है। जयन्तीभाई! समझ में आया यह?

अन्तर चैतन्य ज्ञानमूर्ति प्रभु की कला खिलना चाहिए। चन्द्र की दूज जो उगी, वह चन्द्र का एक अंश—भाग है। उसमें से तीज, चौथ, पंचम भी उस चन्द्र का भाग विकास होना चाहिए। इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य की मूर्ति प्रभु अनन्त गुण का धाम, अनन्त शक्ति का विश्राम स्वामी ऐसा आत्मा, उसकी वर्तमान दशा में अन्तर का उग्र आलम्बन ले तो शुद्धि की वृद्धि हो। **साथ रहे हुए शुभभावों को शुद्धि की वृद्धि का साधन कहना, वह तो मात्र उपचार कथन है।** मात्र व्यवहार कथन है। **शुद्धि की वृद्धि के उपचरितसाधनपने का आरोप भी उसी जीव के शुभभावों में आ सकता है कि जिस जीव ने शुद्धि की वृद्धि का यथार्थ साधन (—शुद्धात्मस्वरूप का यथोचित**

आलम्बन) प्रगट किया हो। क्या कहते हैं ? कि ऐसे शुभभाव की जो वृत्ति—नौ तत्त्व की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, अहिंसा, दान, दया के भाव, उसे भी व्यवहार का आरोप उसे आता है कि उससे रहित चैतन्य की शुद्धि की शक्ति की वृद्धि अन्दर की हो। उसने निर्मलदशा और निर्मल आनन्द की दशा प्रगट की हो, ऐसे निश्चयवन्त को उस शुभभाव में व्यवहार का आरोप आता है। अज्ञानी के शुभभाव को व्यवहार भी नहीं कहा जाता। समझ में आया इसमें ? परन्तु यह दुनिया के साथ मेल कैसे खाये ?

त्यागी और बड़े-बड़े पण्डित (ऐसा कहते हैं), नहीं, ऐसा करेंगे तो ऐसा होगा, व्यवहार करेंगे तो निश्चय प्राप्त होगा। पण्डितजी ! अरे.. भगवान ! व्यवहार तो योग की क्रिया, शुभाशुभ परिणाम की है और निश्चय तो आत्मा के शुद्धोपयोग की परिणति और उसकी क्रिया है। दोनों क्रिया की जाति ही अलग है। इसमें बहुत सूक्ष्म, हों ! भानुभाई ! वे ऐसा कहें, व्रत पालन करो, उपवास करो, यह क्या ? गया न यह ? वर्षीतप। वर्षी का तप कर और यह अपवास किये छह महीने के एकान्तरा, जाओ ! हो गयी निर्जरा। यह तेरा काल गया। निर्जरा-फिर्जरा नहीं। समझ में आया ? समूलत: मिथ्यात्व को पक्का किया है। किंचित् राग की मन्दता कदाचित् हुई हो, ऐसे अपवास के काल में (तो) पुण्य बाँधे और उसे धर्म माने। अर्थात् आस्रवतत्त्व को संवर माने। इसलिए नौ तत्त्व में एक-एक की विपरीत मान्यता इसकी। समझ में आया ? लोगों का प्रवाह ऐसा करे उसे अच्छा मानता है। और वहाँ पानी पिलाने जाये। वर्षीतप करे लिए पानी पिलाने जाये। मौसी की पुत्री, मौसी हो, बुआ-फूफा ने किसी ने कुछ किया हो तो पानी पिलाने जाये। लो, यह पानी। तुमने पाप किया उसका हम अनुमोदन देते हैं। नरभेरामभाई ! गले उतरना कठिन इसमें। कौन सा पाप ?

राग मन्द किया हो आहार में, वह पुण्य है। परन्तु उसे ऐसा मानता है कि हमको सम्यग्दर्शन है और हम धर्म करते हैं, हम चारित्र में आये। क्योंकि तप है तो सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं। इसलिए तप किया तो सम्यग्दर्शन तो होता है। ऐसा मानकर अज्ञानी उसे धर्म मानता है और उसकी पुष्टि दूसरे को देता है, तुमने बहुत अच्छा किया, अब लाओ प्रसिद्ध करें तुम्हारे तप को। पाँच-पच्चीस हजार पैसा-रुपये प्रमाण खर्चे लोग तो। दोनों मिथ्यात्व के पोषक हैं। समझ में आया ? विपरीत मान्यता जो अनन्तगुणा पाप,

सप्त व्यसन से भी मिथ्यात्व का पाप अनन्तगुणा है। सात व्यसन। सात व्यसन नहीं कहलाते? शिकार करना, परस्त्री (गमन करना) इत्यादि। इसकी अपेक्षा भी यह विपरीत मान्यता कि जो करे राग की मन्दता, आहार नहीं आवे उसके कारण से और उसे माने कि मैंने आहार छोड़ा और मेरी क्रिया धर्म की है। ऐसे माननेवाले की मिथ्याश्रद्धा का पाप, यह शिकार करनेवाले और माँस खानेवाले और परस्त्री लम्पटी के पाप से भी अनन्तगुणा पाप है यह। जयन्तीभाई! है या नहीं यह? क्या है यह?

यह मोक्षमार्गप्रकाशक में है। यह नये प्रकाशित हो गये हैं, भाई! देखो, यह नये। बात की थी न? नये मोक्षमार्गप्रकाशक दो रुपये में दिया जाता है। चार की कीमत का दो में दिया जाता है। नवनीतभाई की ओर से आधी कीमत में तीन हजार प्रकाशित होते हैं।

यहाँ देखो, लिखा है इसमें, देखो! **जैनधर्म में तो ऐसी आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया जाता है। इसलिए मिथ्यात्व को...** उल्टी मान्यता को, **सात व्यसनादि से भी महान पाप जानकर पहले छुड़ाया है।** १९८ पृष्ठ। मोक्षमार्गप्रकाशक, नया या पुराना, १९८ पृष्ठ। कायदा है यहाँ। समझ में आया? परन्तु यह कीमत नहीं। लोगों को मिथ्या विपरीत मान्यता—उसमें पूरा मेरु चैतन्य है, वह लुट जाता है, उसकी इसे कीमत नहीं। कुछ क्रियायें हुई राग की मन्दता, धर्म किया, हमने धर्म किया और वे दूसरे ने धर्म कराया। और इस धर्मकर्ता को हमने अनुमोदन दिया। समझ में आया? यह मिथ्यात्व का पाप सात व्यसन से भी अनन्तगुणा (पाप) शास्त्र में कहा है। नवरंगभाई! इसकी कीमत नहीं होती।

इसी प्रकार यहाँ व्यवहार-राग की क्रिया से करते-करते हमको कल्याण होगा, यह महामिथ्यात्व का शल्य है। यहाँ तो यह शल्य टालकर निश्चय के भान में दृष्टि और अनुभव हुआ, उसके शुभभाव को व्यवहार से आरोप से कहने में आया कि यह एक मोक्ष का मार्ग है। है बन्ध का मार्ग परन्तु व्यवहार का कथन ही अन्यथा आवे। होवे बन्ध को मोक्ष का मार्ग कहे। निश्चय वह जैसा है, वैसा कहे। निश्चय और व्यवहार। व्यवहार—एक द्रव्य के दूसरे द्रव्य को, एक द्रव्य के दूसरे भाव को, एक द्रव्य के कार्य

को दूसरे कारण से होता है, ऐसा कहना, वह अन्यथा व्यवहारनय का कथन है। और ऐसा माने तो वह महामिथ्यात्व अर्थात् आत्मा की श्रद्धा उल्टी करके आत्मा का खून कर रहा है। आत्महनो भवंति। आत्मा को घात कर रहा है। बन्ध अधिकार में है। बहुत कठिन, बहुत कठिन लोगों को।

अरे.. प्रभु! तेरा मार्ग कोई निराला है। अरे! चैतन्य! तेरे धाम में तो शान्ति और अनाकुलता है। यह वह अनाकुलता कहीं पुण्य के परिणाम से प्राप्त होती होगी? खाये लहसुन और कस्तूरी की डकार आवे, ऐसा कभी बनता होगा? बहुत लहसुन खाये, बहुत लहसुन। यह ढोकला में नहीं खाते बनिये? चावल के ढोकला बनाते हैं और उसमें लहसुन का मसाला ऊपर डालते हैं। वहाँ कहीं चाँदी का डालते होंगे। तुम्हारे सालमपाक में चाँदी के और सोने के पत्र (बर्क) डालते हैं। ढोकला में वह डालते होंगे? ढोकला में वह मसाला हो लम्बा ऊपर ऐसा ठीक सा डाला हुआ। वह गले तक खाया हो, ओ... कस्तूरी की डकार आयी। आती होगी?

इसी प्रकार राग की मन्दता के शुभभाव की दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप की क्रिया लहसुन के खाने जैसी है और उसमें से धर्म की डकार आवे, यह तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। परन्तु धर्म की दशा में आत्मा के निश्चय के ज्ञान और भान में भी वह राग की दशा ऐसी व्यवहार की, पंच महाव्रत की, दया, दान के राग का भाग आये बिना नहीं रहता। वह बन्ध का कारण है, ऐसा धर्मी जानता है।

यहाँ ऐसा कहने में आया कि उससे शुद्धि होती है। यह कथन व्यवहार का है; यह परमार्थ का कथन नहीं। अब वही **अपने आत्मा को...** तीसरी लाईन। व्यवहार का राग, उसमें अशुभ टलता है और व्यवहार से ऐसा कहने में आया कि कषाय की मन्दता, वह अकषाय दृष्टिवाले को-स्थिरतावाले को कुछ शुद्धि का कारण है, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। वास्तव में ऐसा है नहीं। अब **उसी अपने आत्मा को निश्चयनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण,...** है पण्डितजी! क्या कहते हैं? पहले निश्चय और व्यवहार दो की बात की। अब यह विकल्प का त्याग करके अभिन्न... आत्मा पूर्ण शुद्धता प्राप्त करे, वह साध्य है और स्वरूप में शुद्धता की एकागता करे, वह

साधन है। पूर्ण शुद्धता, वह साध्य और राग की मन्दता, वह साधन, इसका अभाव करता है। क्या कहा? समझ में आया?

निश्चयनय से अपने चैतन्य की जाति पर अन्तर एकाग्रता होने से **भिन्नसाध्य-साधनभाव के अभाव के कारण,...** राग की क्रिया का जो मन्द भाव था, उसे जो व्यवहार से साधन कहने में आता था, उसे छोड़कर, **दर्शनज्ञानचारित्र का समाहितपना...** भगवान आत्मा अपनी दृष्टि में आत्मा लिया, ज्ञान ने आत्मा लक्ष्य में लिया और रमणता आत्मा पर रमशील हुई। स्थिरता आत्मा के धाम में रमने लगी। उसे यहाँ समाहितपना—अभेदपना—एकपना ऐसा कहने में आता है। वह **(अभेदपना) जिसका रूप है,...** देखो! यह भाषा, भाई! वह व्यवहार साध्यसाधन इसका वास्तविक रूप नहीं था। क्या कहा? परन्तु यह बात ही किस प्रकार की? संसार में चलता नहीं, धर्मस्थान में जाये तो यह बात मिलती नहीं। नवनीतभाई! जहाँ हो वहाँ यह करो, यह करो, यह करो और यह करो। यह करो तो प्राप्त करोगे। दुकान में बैठे रहने की अपेक्षा कुछ करो न अच्छा तो होता है। ऐसे करते-करते होगा। ऐसी बातें मिले। 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवड़ा, भाव धर्म रुचि हीन, उपदेशक भी वैसे ही, क्या करे जीव नवीन?' जैसा कुँए में हो, वैसा हौज में आता है। उपदेश यह चले। जो इसे जँचा है। भाई! कुछ करो बापू! व्रत, नियम, प्रत्याख्यान, त्याग, वैराग्य कुछ करो तो धीरे-धीरे आगे जाया जायेगा। राग को करो तो धीरे-धीरे अराग में जाया जायेगा। यह बात एकदम पाखण्ड और अज्ञान की है। समझ में आया?

यहाँ धर्मी जीव को जब तक उग्र प्रभुत्वशक्ति का कार्य उग्ररूप से नहीं था, अन्तर में एकाकार होने की शक्ति नहीं थी, तब तक सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण जितनी तो एकाग्रता थी और यह साधन जो रागादि का कहा, ऐसा भाव था, उसे छोड़कर अब स्वरूप में स्थिर होता है। एकाकार होता है। पूर्ण शुद्ध को अवलम्बकर एकाकार होता है। ऐसे जीव को दर्शन, ज्ञान, चारित्र का समाहितपना। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की तीन की आत्मा में एकता करता हुआ तीन को अभेदरूप करता हुआ। चन्दुभाई! यह तुम्हारा रात्रि का नियमसार का था न? भेद उपचार में से अभेद उपचार और अभेद उपचार में से अभेद अनुपचार। वह सब यह का यह।

भगवान आत्मा यह विकल्प तो हो निचली दशा में। परन्तु अब आगे कैसे बढ़ा जाये, इसकी बात चलती है। यह भी लक्ष्य को छोड़कर जो थोड़ी एकाग्रता स्वभाव में चैतन्य के धाम में एकाग्रता थोड़ी की थी, वह अधिक एकाकार होकर और दर्शन सम्यक्, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् स्वरूप की रमणतारूप चारित्र। वेश चारित्र नहीं, पंच महाव्रत के परिणाम, वह चारित्र नहीं। **दर्शनज्ञानचारित्र का समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है,...** देखो! समझ में आया? अभी तो शास्त्र की भाषा कठिन। भगवान आत्मा अपने आत्मा का अनुभव और दृष्टि करने पर भी उसे व्यवहार का राग वर्ते, वह उसका रूप नहीं। वह दर्शन, ज्ञान का एकरूप समाधि का नहीं। वह तो कुरूप है, विकृत है। पानी में जैसे काई, पानी में जैसे काई, वैसे चैतन्य के निर्मल पानी में, जल से भरपूर भगवान में यह विकल्प उठता है, वह काई जैसा है। समझ में आया? उस काई को, पानी पीनेवाला जरा हटाकर, थोड़ा पानी तो हटाकर पीया, वैसे राग की एकता तोड़कर स्वभाव की एकता की, उतना तो अनुभव हुआ। अब आगे बढ़ने के लिये वह जो राग व्यवहार बीच में आता था, उसे छोड़कर चैतन्य के एकाकार स्वभाव में अभेद, यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र (भेद) नहीं, वह तो आत्मा की ओर में एकाकार निर्विकल्प अभेद अनुभव में गया, वह **जिसका रूप है।** वह जिसका मार्ग है।

सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण... देखो आया। पहले कहते हैं कि व्यवहार के संस्कार आरोपित होते जाते हैं। यहाँ कहते हैं कि वह व्यवहार क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। आहाहा! क्या कहा? यह निश्चय के भान की भूमिका में भी अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, व्यवहारसमिति, गुप्ति के राग की वृत्ति उठे, वह सब राग की क्रिया का आडम्बर है। ऐसे सकल क्रियाकाण्ड। शाम को प्रतिक्रमण करूँ, सवेरे यह करूँ, वह वृत्ति उठती है। वह सब क्रियाकाण्ड है। पुण्यबन्ध का कारण है। ऐसे क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति। आडम्बर, वृत्ति उठती है, वह बड़ा कषाय का आडम्बर है। यहाँ शुभभाव की क्रिया को क्रियाकाण्ड का आडम्बर कहा गया है। क्रिया को? देह की क्रिया की बात नहीं। अन्दर भाव शुभ होते हैं, पाप के भाव होते हैं, वह तो पाप ही है, परन्तु राग की मन्दता दया, दान, व्रत के भाव होते हैं, वह भी वास्तव में तो दृष्टि की अपेक्षा से वह भी पाप है। अरे! भारी कठिन।

'पाप पाप तो सब कहे, परन्तु पुण्य को पाप अनुभवीजन कहे।' आता है न? किसमें, खबर है? योगीन्द्रदेव। योगसार। पाप के परिणाम को पाप तो (सब कहते हैं)। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह तो पाप है। यह तो साधारण लोग भी कहते हैं। परन्तु अनुभवीजन—अन्तर के अनुभव में रमनेवाले आत्मा, वे पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत, तप के अहिंसा के होते हैं, वे भी आनन्द के लूटनेवाले हैं। वास्तव में वे भी पाप हैं। गजब, मस्तिष्क को कठिन पड़े इसमें। क्या कहलाता है? हुमलो, हुमलो। हुमलो कहा न भाई? क्या कहा? विप्लव विप्लव। वह तुम्हारे थे न यहाँ? दयाशंकरभाई है न? वे जूनागढ़ में। वे वहाँ अठारह दिन रहे थे, बहुत वर्ष पहले। यह तुम्हारी बात विप्लव करे ऐसी है। विप्लव सबके सामने। परन्तु बात सच्ची है। उसने कहा था। अठारह दिन सवेरे, दोपहर, रात्रि चर्चा बहुत (चली)। वेदान्त और तत्त्व और द्रव्य और पर्याय, इतनी चर्चा। दो बार व्याख्यान और रात्रि में चर्चा। बात नकार हो ऐसी नहीं है। परन्तु जगत के सामने बड़ा विप्लव है। जगत कहाँ बैठा और कहाँ मानता है, उसे उठाकर कहाँ ले जाना है, यह बात इसके कलेजे में विप्लव लगता है कि हाय... हाय..! हमको लूट लेते हैं। हम कुछ करते हैं। करे क्या? ये आये बिना रहता नहीं। तब कोई कहे, हमारे ऐसा नहीं करना? इस राग के काल में ऐसे दया, दान, व्रत के भाव आये बिना रहते नहीं, आये बिना। करे कहाँ? तथापि उस राग को पुण्यबन्ध का कारण जानकर, पहली दशा में वह आवे, इसलिए व्यवहार से करे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु फिर उसे छोड़कर स्थिर हो, तब मुक्ति को पाता है। उसके अवलम्बन से पाता है और उसके आधार से पाता है, यह तीन काल में बनता नहीं।

इसलिए कहते हैं, देखो! दर्शन, ज्ञान और चारित्र जो मोक्ष का मार्ग 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। भगवान आत्मा की अन्तर्मुख की प्रतीति, अन्तर्मुख का ज्ञान, अन्तर्मुख की रमणता, इन तीन का एकरूप हो, उसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अभेद आत्मा का उसे रूप कहा जाता है। **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण...** अन्दर के विकल्प ही हट गये। स्वरूप में जहाँ उग्र हुआ और आत्मा की श्रेणी शुद्ध और अन्दर एकाकार की, इससे उसे सर्व विकल्प, भगवान की आज्ञा के व्यवहार के विकल्प (छूट गये)। दूसरे की बात भी यहाँ नहीं। सर्वज्ञ भगवान ने जो

व्यवहार की आज्ञा का भाव कहा, वह भी अभूतार्थ है। एक अनुभूति आत्मा की करना, वह भूतार्थ की आज्ञा है। नवनीतभाई! बड़े समाज के साथ इस बात को रखना। अभी उसमें गड़बड़ की है थोड़ी कि ऐसा करने का कहते हैं, यह भी अभी व्यवहार करने का कहते हैं। करने का कहाँ, आता है, सुन न! ऐसा करके अभी सन्तोष भावे। उसमें तो और कुछ व्यवहार... व्यवहार योग की क्रिया, शुद्ध उपयोग आत्मा की क्रिया। दो की सन्धि चाहिए। दो के बिना होगा नहीं। व्यवहार से कहनेवाले हैं, वे भी निश्चय को तो समझते हैं और निश्चय के कहनेवाले व्यवहार ऐसा होता है, उसे भी समझते हैं। दोनों कहकर सबको समान लगाया है। अरे.. प्रभु! आहाहा!

उसकी पामरता के कारण जो राग भाग आवे, उसे व्यवहार कहा जाता है। परन्तु निश्चय के अन्दर में एकाकार हुए बिना उसे व्यवहार का आरोप भी नहीं दिया जा सकता। यह वह अब व्यवहार छोड़ने की बात करते हैं। जो निश्चय के भान में आया, अकेला ज्ञाता का साक्षात्कार हुआ। सम्यग्दर्शन में आत्मानुभव हुआ। केवलज्ञान वह मैं, ऐसा भान हुआ। श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ। एक समय की पर्याय और ज्ञान के अंश को मानता था, श्रद्धा में त्रिकाल मैं ज्ञानमूर्ति हूँ, ऐसा माना। श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ। ऐसे केवलज्ञान की प्रतीतिवाला सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव की दृष्टिवाला धर्मी, उस विकल्प के जो व्यवहार थे (उनसे) हटकर स्वरूप में स्थिर हुआ, इसलिए सब क्रियाकाण्ड की निवृत्ति के कारण **निस्तरंग...** वे विकल्प उठें, वह तरंग थी, तरंग। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य की वृत्ति उठे, वह तरंग थी। वह मलिन तरंग।

पहले से इसे निर्णय तो करना पड़ेगा न? कि इस आत्मा में एकाकार हो, उतना धर्म है। जितना राग भाग आवे, वह धर्म है नहीं। और उसे छोड़कर स्थिर होगा, तब तुझे चारित्र होगा। इसके बिना चारित्र भी तीन काल में हो नहीं सकता। समझ में आया? यह निस्तरंग... उसको तरंग कहा। विकल्प उठते—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के, वह वृत्ति उठती थी, वह चैतन्यमूर्ति इस चित्त के प्रसार में विस्तार पाता था (वहाँ से) हटकर अन्तर में एकाकार हो तो उसे कल्याण होता है। समझ में आया? परन्तु बात में बहुत अन्तर, हों! बाहर जाये तो दूसरे यह कहे, भगवान का मार्ग स्याद्वाद है। यह समझे नहीं स्याद्वाद में। जय भगवान! तुम्बी में कंकड़। वह तो (ऐसा जाने कि)

कंकड़ डाले हैं, सूखे बजते हैं तो रुपये होंगे अन्दर। इसी प्रकार जिसे सत्य और आरोपित कथन की खबर नहीं, (वह ऐसा जानता है कि) भगवान का मार्ग स्याद्वाद है। व्यवहार से होता और परमार्थ से होता है। अनेकान्त मार्ग वीतराग का है। अनेकान्त अर्थात्? फूदड़ीवाद? स्वरूप की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता से कल्याण होगा और राग के विकल्प-व्यवहार आवे, उससे कल्याण नहीं होगा, इसका नाम अनेकान्त, इसका नाम स्याद्वाद कथन है। बात में भारी अन्तर।

अरे! भगवान! तुझे ऐसे जन्म-मरण का अन्त लाना हो तो इस मार्ग के बिना (छुटकारा नहीं है)। बाकी लहर करनी हो दुःख में... दुःख में लहर करनी हो... तब तो सब क्या मानते हैं? शुभभाव में लहर है, ऐसा मानते हैं या नहीं? है तो आकुलता। शुभभाव हो, अशुभभाव है, वह तीव्र आकुलता, शुभभाव वह मन्द आकुलता। परन्तु मन्द आकुलता को हितकर माने, वह मिथ्यात्व की तीव्र आकुलता है। समझ में आया? यह तो सत्य की धार पर चढ़ी हुई बात है। समझ में आया? वह धार होती है न? धार। बाई हाँकती हो, वह निकाले न? ऐसे-ऐसे करती हो। और वह धार होवे न? वह छुरी-चाकू को ऐसे घिसता हुआ देखता जाये। कितना उघड़ा और कितना बाकी रहा? धार कितनी सूक्ष्म हुई? देखता है या नहीं? ऐसे धार छुरी-चाकू की आती है न?

इसी प्रकार यहाँ भगवान चैतन्य की धातु एकाकार होकर कितनी उज्ज्वल हुई और राग का भाग बाकी कितना मैल का रहा, ऐसा ज्ञानी देखता जाता है। समझ में आया? यह व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजन, ऐसा कहा है न? व्यवहार से जाना हुआ तदात्वे, स्वकाल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। जानने में बराबर आता है। जाने बिना, व्यवहार को जाने बिना अकेला निश्चय का ज्ञान करे, वह सच्चा ज्ञान नहीं है। बात तो ऊँची तो लगे, परन्तु है यह पहले नम्बर की। समझ में आया? यह पहले नम्बर के इस रास्ते चढ़े बिना एक भी शून्य बिना एक का गिनने में आयेगा नहीं। दामोदरभाई! परन्तु यह तो बड़ी बात लगे, हों! अरे.. परन्तु अभी हम...

बात उसकी चलती है कि पहला सम्यग्दर्शन प्रगट कर। पहले में पहला प्रयत्न तेरा यह होना चाहिए। दूसरा प्रयत्न बाद में। पहला भगवान आत्मा अभेद अखण्डानन्द

है, उसकी दृष्टि का अनुभव पहले करना चाहिए। यह पहले करने के बाद दशा कौन सी बढ़ती है, उसकी यहाँ बात चलती है। पश्चात् भी वह व्यवहार क्रियाकाण्ड के राग को छोड़कर, भाव को, हों! शुभ को। **निस्तरंग परमचैतन्यशाली है...** परमचैतन्यशाली। वह पुण्यशाली था व्यवहार से। निश्चय से यह धर्मशाली था। अब अकेला चैतन्यशाली हुआ। आहाहा! समझ में आया? यह भगवान ज्ञानमूर्ति आत्मा प्रकाश का पुंज अकेला। यह सूर्य चैतन्य का, उसके अन्दर में एकाकार होकर अनुभव किया, पश्चात् यह विकल्प जो उठते व्यवहार के—दया, दान, व्रत के, (उन्हें) छोड़कर अकेला चैतन्यशाली हुआ। चैतन्य... भाग्यशाली कहते हैं न लोग? पुण्यवन्त को भाग्यशाली कहे। यह तुम्हारे जैसे को लोग, पैसेवाले को। लोग कहे, ऐसा कहता हूँ न तुमको? भाग्यशाली कहे। पाँच-पच्चीस लाख हो, दस लाख हो, पैदा होते हों... ओहो! बापू! भाग्यशाली है। कहते हैं कि बापू! भाग्यशाली कर्म के कहते हैं, वैसे यहाँ विकल्परहित आत्मा की स्थिरतावाले को चैतन्यशाली कहते हैं। यह उदय आया तो धूल में आया। और उसके कारण यह धूल दिखायी दी। मिली नहीं। दिखायी दी इसके नजर में। ऐ... आयी। और जहाँ पाप का उदय आते तो फू... होकर चली जाये। करोड़ोंपति निर्धन हो गये। समझ में आया? जिसे ऐसा ऐसे धन्धे चलते कि लाखों पकते, दस-दस लाख की आमदनी। वे सब पाप के उदय आवे तो नीचे बैठ गये। उसके करने से कमाया नहीं और उसके करने से गये नहीं। वह तो पूर्व के पुण्य के कारण आवे और जाये। उसका राग जो होता है, वह बन्ध का कारण होता है। ऐसे जीव को दुनिया भाग्यशाली कहती है।

यहाँ धर्मी को उस पुण्य का विकल्प छूटकर स्वरूप की एकाग्रता हो, उसे भगवान चैतन्यशाली कहते हैं। वह चैतन्यशाली! गजब शब्द है न, देखो! परम चैतन्यशाली, भाई! ऐसा लिया। अकेला चैतन्यशाली नहीं। सम्यग्दर्शन और ज्ञान की भूमिका में राग आता था, वहाँ तक चैतन्यशाली और राग दो थे। समझ में आया? उसे छोड़कर अकेले चैतन्यगंज में पूर्ण का आनन्द का गंज प्रभु, कमल पूरा आनन्द का, उसमें एकाकार होकर वह चैतन्यशाली हुआ। आत्मज्ञानी की उग्र दशा वीतराग हो गयी। तब वह मोक्ष होने के योग्य कहलाता है। जब तक वह व्यवहार आता था, उसे कुछ लाभ हो, ऐसा तो था नहीं। समझ में आया?

परमचैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है... दो बातें। कैसा हुआ? दो बात क्यों कहते हैं? जो ज्ञान की दशा जरा रागवाली थी, व्यवहारवाली, वहाँ तक परम चैतन्यशाली नहीं था और वहाँ तक इसे निर्भर आनन्द नहीं था। थोड़ा आनन्द था। आत्मा के भान की जितनी शक्ति की व्यक्तता हुई, उतना आनन्द था और शुभभाव था, वह आकुलता थी। वह व्यवहारभाव जो था—दया, दान, व्रत का जो भाव था—वह आकुलता थी। उस विकल्प को छोड़कर जब निर्विकल्प के आनन्द में जाता है, तब परम चैतन्यशाली और निर्भर आनन्द से समृद्ध (हुआ)। पूर्ण आनन्द से समृद्धिवाला। लो, यह समृद्धि। मूलजीभाई! यह समृद्धि। धूल में भी यह बाहर समृद्धि नहीं। विष्टा के चबूतरे पर जैसे बैठाया हो, वैसे यह लक्ष्मी के ढ़ेर पर बैठा है, हम लक्ष्मीवाले हैं।

भगवान आत्मा चैतन्य की अनन्त शक्तियों के पिण्ड में प्रविष्ट हुआ,... मूलजीभाई! यह तुमको कहते थे पहले, अब पैसेवाले (दूसरे हो गये)। पहले तुमको कहते थे। ऐसा सुना हुआ है। अपने को कहाँ खबर है? मुम्बई से इतने लाख ले आये। ऐसा पहले सुना हुआ है। बात तो करे कोई। (संवत्) १९७६ के वर्ष से सुनते हैं। दोनों भाईयों को इतना पैसा पैदा हुआ... आँकड़ा कहता था। यह तो तुमको खबर होगी, हमको क्या खबर हो। लोग कहते कि सोलह लाख या अठारह लाख लेकर चले आये। सौंप दिया। दोनों ऐसे। दोनों व्यक्ति, हों! ७६ के वर्ष में। दामोदारभाई तब साथ में थे न। फिर दूसरे अधिक हुए। ऐसा कहते हैं। गुमडावाले। समझ में आया? यह सब गुमड़ा है।

भगवान आत्मा... एक कली जैसे वनस्पति की हो और खिलकर हजार पांखड़ी से खिले, वैसे भगवान आत्मा पहले कली समान खिला थोड़ा और कुछ खिलना बाकी रहा। उसमें उसके कारण अपूर्णता खिलावट की थी, जहाँ पूर्ण खिलावट हुई, वहाँ अपूर्ण जो विकल्प था, उसका नाश होकर आत्मा की पूर्ण खिलावट हुई। उस कली में जैसे पूर्णता थी, वह शक्तिरूप से थी, वह प्रगट हुई। उसे परम चैतन्यशाली कहने में आता है। वीतरागी कहने में आता है और उसे आनन्द से निर्भर-समृद्ध, ऐसा कहने में आता है। आहा! अतीन्द्रिय आनन्द की समृद्धि बढ़ गयी अब। जहाँ तक वह विकल्प था पंच महाव्रत आदि का, वह आकुलता थी। वह समृद्धि का रूप नहीं था। वह कुरूप था। समझ में आया? उससे हटकर निर्विकल्प चारित्र के आनन्द में जहाँ गया...

ऐसे भगवान आत्मा में... देखो! ऐसा भगवान आत्मा **विश्रान्ति रचते हुए...** लो, वह राग को रचता और राग जो होता था अभी पंच महाव्रत का, उतनी विश्रान्ति नहीं थी, उतना अभी थकान था। अरे.. अरे.. कठिन भाई! समझ में आया? यह संसार की विकृति की आकुलता से निकलकर जिसे विश्रान्ति लेनी हो, वह चैतन्य के धाम में प्रवेश कर विश्रान्ति मिले ऐसा है। बात कैसे आवे? परन्तु कभी प्रयास किया हो तब न। सुना साथ में लाओ... रतिभाई! इसके लिये बहुत समझण, बहुत सत्समागम, बहुत पात्रता, बहुत प्रयत्न की दिशा कहाँ झुकाना, यह सब गति इसे ख्याल में आना चाहिए। इसके बिना यह ख्याल आवे नहीं।

भगवान आचार्यदेव अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, मुनि थे। दिगम्बर सन्त जंगल में आत्मा के आनन्द में झूलते, विकल्प उठा, उसमें लिखा गया। कहते हैं कि यह विकल्प टूटकर जब स्थिर होंगे, तब आत्मा में विश्रान्ति रचेगी और थकान उतर जायेगी। किसकी थकान होगी इसमें? शुभभाव की थकान लगी, वह भी थकान है, आकुलता है। भगवान आत्मा अपने में जहाँ अन्दर गरकाव (हुआ), अनुभव उपरान्त स्थिरता में गरकाव स्थिर होता है। यहाँ तो पूर्ण बात करनी है न! शुरु से वह पूर्ण। तब **विश्रान्ति रचते हुए...** ऐसा क्यों कहा है? कि आत्मा में अभेदरूप से विश्रान्ति रचते हुए। वह विकल्प था, उससे रचते हुए, ऐसा नहीं। समझ में आया? विकल्प था व्यवहार का, इसलिए विश्रान्ति रचते हैं, ऐसा नहीं है। अपने स्वरूप में अन्तर में अनुभव में जो पहले आया था कि यह आत्मा पवित्र है—शुद्ध है, उसमें स्थिर होऊँ तो केवल (ज्ञान) होगा। ऐसा जो ख्याल में-दृष्टि में आया था, उसमें विश्रान्ति लेता हुआ। अन्दर स्थिरता की शान्ति की विश्रान्ति को रचता हुआ। अपने पुरुषार्थ से उस निर्मल शान्ति को रचता हुआ। उसमें व्यवहार के अवलम्बन से विश्रान्ति रचती है या कर्म कुछ मार्ग दे तो विश्रान्ति रचती है—ऐसा है नहीं। समझ में आया?

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के ऐक्यस्वरूप,... अभेद अर्थात् ऐक्यस्वरूप **निर्विकल्प परमचैतन्यशाली तथा भरपूर-आनन्दयुक्त ऐसे भगवान आत्मा में अपने को स्थिर करते हुए), क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है...** आहा! इस आत्मा में झूलता

हुआ; उस विकल्प से—राग से हटता हुआ क्रम-क्रम से उसमें वीतरागभाव की रचना उत्पन्न होती है। उस समतारस का—निर्विकल्परस का पान करता हुआ। विकल्प था, वह तो जहर था। अहिंसा, सत्य, अचौर्य के भाव थे, वह जहर था। उसमें से हटकर जहाँ अन्तर में एकाकार हो, तब क्रम से समरसीभाव समुत्पन्न होता था। क्रम-क्रम से अरागी, अकषायी वीतरागभाव उत्पन्न होता जाता होने से। क्रम-क्रम से शान्ति और अरागी दशा उत्पन्न होने से **परम वीतरागभाग को भाव को प्राप्त करके...** परम अकषाय वीतरागभाव को प्राप्त करके, **साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं।** लो। समझ में आया? यह सब विधि कही। सुनने में आवे नहीं। सुनते हुए भी इसमें कुछ बात है? ऐसा कहीं (सुनने को मिलता नहीं)।

एक पण्डित था। बहुत वर्ष पहले आया हुआ। वह नहीं? कहाँ का? नेमीचन्दभाई के गाँव का। किशनगढ़ का पण्डित। शास्त्र पढ़ा हुआ। पहला व्याख्यान सुना तो यह किसे सुनाते हैं? क्या कहते हैं यह? ऐसी बातें की जाती हैं? पढ़ा हुआ पण्डित, हों! पढ़ा हुआ। दूसरी बार जब दूसरा व्याख्यान सुना... यह कुछ कहते हैं। तीसरी बार सुना तब कहे, इसमें कुछ समझने जैसा लगता है। चौथी बार सुना, तब कहे हमारी धारणा अभी तक मिथ्या थी। यह नहीं, यह कुछ दूसरी बात कहते हैं।

अनन्त काल में नहीं सुना हुआ, अनन्त काल में नहीं जाना हुआ, अनन्त काल में नहीं अनुभव किया हुआ, अनन्त काल में नहीं परिचय की हुई बात, पहले महँगी (कठिन) तो लगे, परन्तु यह किये बिना, अनुभव किये बिना इसे तीन काल में शान्ति मिले, ऐसा नहीं है। बाहर से मान बैठे, इसलिए मिल जाये ऐसा तीन काल में नहीं होता। यह क्रम से आत्मा के ध्यान में शुभराग से हटकर स्थिर होता जाता है, वैसे पूर्णानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष का साक्षात् आत्मा अनुभव करता है। शुरु से लेकर पूर्णता की बात इसमें की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ३, रविवार, दिनांक - ०६-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-१०

यह पंचास्तिकाय समयसार शास्त्र है। कितनों को और यह पंचास्ति, अस्ति और काय क्या? ऐसा एक प्रश्न उठा था। यह आत्मा पदार्थ है। उसमें अनन्त-अनन्त शक्तियाँ—गुण है। उसमें असंख्य उसके प्रदेश हैं।

जैसे सोने की सांकल (चैन) होती है, उसमें सोने के मकोड़े जैसे पाँच सौ हों। वह सांकली एकरूप कहलाती है। उसके मकोड़े अंश-अंशरूप से पाँच सौ कहलाते हैं और उसका प्रत्येक मकोड़ा में सोना, चिकनाहट, वजन और सुंवाणप यह उसकी शक्ति कहलाती है। सांकल वह पदार्थ, मकोड़ा वह उसका क्षेत्र अर्थात् प्रदेश, अंश क्षेत्र का अंश और उसकी शक्ति उसके अन्दर पीलापन, चिकनाहट, वजन यह गुण और उस सांकल की वर्तमान अवस्था की पर्याय, वह उसका काल कहलाता है।

इसी प्रकार आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वस्तु—पदार्थ है। वह पदार्थ द्रव्य कहलाता है। उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि शक्ति, वह उसका भाव कहलाता है। और वह कितना चौड़ा है? एक पॉईन्ट यह परमाणु अन्तिम टुकड़ा लें, उससे उसे ऐसे माप करें तो उसके असंख्य अंशरूप प्रदेश मकोड़ा की भाँति (रहे हुए हैं)। मकोड़ा में अन्तर इतना कि एक मकोड़ा दूसरे में ऐसे जुड़ा हुआ होता है सांकल में। इसमें ऐसा नहीं है। ऐसे असंख्य अंश संकोच-विकास होता है, ऐसी शक्तिवाले असंख्य प्रदेश हैं। अभ्यास नहीं होता, इसलिए सामने प्रश्न कल उठा था। यह अस्तिकाय क्या आप (कहते हो)? पंचास्तिकाय। उसमें धर्मास्ति और अधर्मास्ति और... बहुत ऐसा लेते नहीं शब्दार्थ। क्योंकि वह सूक्ष्म पड़ता है। तात्त्विक अधिक लेते हैं। समझ में आया?

आत्मा अस्ति है। वस्तुरूप से, शक्तिरूप से, क्षेत्ररूप से और वर्तमान दशारूप से अस्ति। और उसके असंख्य प्रदेश हैं, वे काय हैं। जैसे इस शरीर के बहुत रजकणों का समुदाय, उसे काय कहते हैं। परन्तु यह रजकण पृथक् पड़ते हैं, उसका अंश पृथक् नहीं पड़ता। संकोच-विकास होता है। रबड़ को खींचें तो विकास होता है, संकोच होता है। उसी प्रकार आत्मा असंख्य अंशरूप मकोड़ा की भाँति प्रदेश एक साथ जुड़े हुए हैं। जब वह हाथी के भव में जाये, तब वह हाथी के प्रमाण में चौड़े होते हैं। चींटी

में जाये तो चींटी के प्रमाण में चौड़े होते हैं। पाँच सौ मकोड़े की सांकल बड़े के गले में गाले तो थोड़े सणा उसके होते हैं। और छोटे की गर्दन में डाले तो बहुत सणा होते हैं। वस्तु तो वह की वह है। समझ में आया?

इसी प्रकार इस जगत के अन्दर अस्ति और बहुत प्रदेश के अंशवाला तत्त्व ऐसे पाँच हैं। पाँच हैं। इतनी सब बात अभी यहाँ नहीं होती। एक-एक बात को युक्ति, लॉजिक, न्याय से सिद्ध किया जा सके, ऐसी वस्तु है। तर्क से स्पष्ट करके यह बात कैसी है (यह सिद्ध हो सकता है) परन्तु यहाँ तो रात थोड़ी और वेश अधिक। नवनीतभाई! और फिर नवरंगभाई कहते हैं यह सब अकेला व्यवहार का न रह जाये। और कुछ निश्चय की थोड़ी सन्धि हो जाये, ऐसा भी साथ में माँगते हैं। इसलिए यहाँ तो इतना अर्थ अभी है—अस्ति और काय। ऐसे दो कहने का आशय क्या है?

आत्मा है और वह एक अंश मात्र नहीं है। देखो न! यहाँ भी आत्मा, यहाँ आत्मा। अब यहाँ का भाग यहाँ नहीं और यहाँ का भाग यहाँ नहीं। ऐसे उसके सर्वज्ञ ज्ञानगम्य असंख्य अंशरूपी भाग, उसे प्रदेश कहा जाता है। वस्तु अखण्ड है। परन्तु संकोच विकास होने की सामर्थ्य में असंख्य प्रदेश इस प्रकार से है। उसे अस्तिकाय कहा जाता है। इस जगत में ऐसे अस्तिकाय पाँच हैं। और एक अस्ति है, परन्तु काय नहीं। ऐसे काल असंख्य अणु—द्रव्य है। यह छहों मिलकर जगत में छह पदार्थ भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने देखे, ऐसे हैं—ऐसा युक्ति और तर्क से स्पष्ट से न्याय से सिद्ध हो सकता है। समझ में आया? अस्तिकाय, सुना था वहाँ किसी दिन? भानुभाई!

यह बात अस्तिकाय की है। उसमें आत्मा की बात अभी चलती है। भगवान आत्मा के अन्दर मूल भाव—स्वभाव—शक्ति—गुण, वह तो बेहद आनन्दशक्ति, श्रद्धाशक्ति, चारित्रशक्ति, शान्तशक्ति ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड वस्तु है। उस स्वभाव को भूलकर उसकी वर्तमान दशा में—हालत में जो कुछ पुण्य और पाप के भाव हों, वह विकार है। शरीर और कर्म, वह चीज़ अत्यन्त भिन्न काम कर रही है। उसे आत्मा के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है।

अब यहाँ अधिकार यह आता है कि (**केवलव्यवहारावलम्बी...**) ऊपर बात

की, वह निश्चय और व्यवहार की सन्धि की की थी। अर्थात्? कि आत्मवस्तु अनन्त आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर समुद्र। वह समुद्र ऐसे दिखाई नहीं दे, हों! वह उसके अन्तर स्वभाव के न्याय के अपरिमित हद की शक्ति को उसके ज्ञान के माप में प्रमाण से देखे तो ज्ञात होता है। समझ में आया? यह मोती है न? मोती। मोती में ऐसा समुद्र उछले। देखा है कभी? ऊँचे मोती में झलक उठे, झलक। ऐसी झलक... एक बनिया था, वह कौने में मोती लेकर अलग पड़ गया और एकाध मोती कौने में बाँधकर ऐसे गाँव में चढ़ गया। वहाँ उसे ख्याल आया कि मोती यहाँ बाँधा है। पटेल को कहे, पानी लाओ। ब्राह्मण को वहाँ। तब तो सब ऐसा था न! अभी तो पटेल के भी पानी है। उस समय तो पटेल ब्राह्मण के यहाँ से पानी लावे तो बनिया पीवे। ले आये। वहाँ स्वयं ऐसे खोलकर देखने लगा बनिया। ओहो! वहाँ पटेल पानी लेकर आया। पटेल! इसमें पानी बहुत। वह झलक उठे न मोती में, झलक। झलक कहते हैं न? चमक... चमक।

मुमुक्षु : वह पानीवाला ही कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : पानीवाला कहलाये। इसलिए वह पटेल कहे, साहेब! इसमें पानी हो तो पानी मँगाया किसलिए? यह तुम्हारा वह नहीं आता? ओढ़ने का वस्त्र। क्या कहलाता है? भाई! वायल। वायल देखी है? वायल। वायल के ऐसे पतले ऐसे-ऐसे देखो तो उसमें समुद्र लहरें उठती हो। वायल देखी है या नहीं? देखी तो होगी या नहीं हमने? पतली वायल में लहरें उठती हों। उसका घट तो इतना दोरावार है, दोरावार घट है, कहीं लम्बा घट नहीं। परन्तु ऐसे समुद्र में लहरें उठे। ऐसी पतली। ऐसे-ऐसे करे तो अन्दर से। उसी प्रकार इस मोती में झलक उठे पानी की इतनी झलक। ओहो! ऊँचा मोती। मोती की तो प्रतिमायें बनती हैं बड़ी-बड़ी। बड़े मोती की प्रतिमायें। प्रतिमा, हों! भगवान की प्रतिमा बड़ी। श्रवणबेलगोला में है।

यहाँ कहते हैं, पटेल कहता है, साहेब! तब पानी क्यों मँगाया? तब वह बनिया जरा मजाक को (कहता है), अरे... पटेल! इसमें तो समुद्र उछलता है, हों! मेरी पछेड़ी का छोर डुबोऊँ और पानी दिखाई दे तो मानूँ। अरे.. पटेल! यह पछेड़ी के छोर से इसका माप नहीं होता। इसका माप आँख के ज्ञान में उसकी कीमत के प्रमाण में इसकी चमक का माप आता है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा... यह तो दृष्टान्त कहा। देह से विराजमान चैतन्य मोती देह में देह प्रमाण भिन्न तत्त्व भगवान, उसकी शक्ति अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि की चमक बेहद लहरें उठे, ऐसी उसकी चमक है। समझ में आया? परन्तु वह बहिर्बुद्धि पुण्य और पाप के क्रियाकाण्ड के और देहादि की क्रिया द्वारा उसका माप करने जाये तो पछेड़ी में जैसे मोती का माप करने जाये, ऐसा हो। समझ में आया?

भगवान चैतन्य प्रभु, देखो न! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान में भी रागवाला, ज्ञान वर्तमान दशा का व्यक्त होने पर भी वह अनादि का मैं हूँ, अनन्त काल का हूँ, इतना अनादि का ज्ञान, इसकी वर्तमान ज्ञान की व्यक्तता के अल्प ज्ञान में भी यह बात आ जाती है। शक्ति की बात अभी नहीं। शक्ति तो अन्दर पूर्ण है। प्रगट ज्ञान में प्रगट अंश जो उसकी दशा में वर्तता है, अनादि हूँ, अनन्त (काल) रहूँगा, अनन्त जगत के तत्त्व हैं, क्षेत्र अनन्त है, यह चौदह ब्रह्माण्ड, यह चौदह ब्रह्माण्ड वह तो बहुत थोड़ा अल्प है, असंख्य योजन में। चारों ओर आकाश खाली... खाली... खाली... खाली कहीं पीछे कहीं वण्डी और वाड नहीं। ऐसा का ऐसा अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप दसों दिशा में यह चौदह ब्रह्माण्ड चौदह राजूलोक कहलाता है, वह तो अनन्त खाली आकाश के अनन्तवें भाग में एक राई जितना है। चारों ओर आकाश अमाप। बाद में...? बाद में...? बाद में...? परन्तु बाद में क्या? बाद में क्या? अनन्त योजन, अनन्त योजन, अनन्त करोड़ों योजन बाद में? खाली... खाली और खाली। कहीं बाद का पिछवाड़ा आता नहीं।

ऐसे अनन्त आकाश को भी वर्तमान ज्ञान के ख्याल में रागवाला ज्ञान भी ख्याल में ले लेता है। समझ में आया? ऐसे तीन काल ऐसे वर्तते हैं। जगत के अनन्त तत्त्व हैं। एक-एक तत्त्व में अनन्त शक्तियाँ हैं। वह वर्तमान ज्ञान के प्रगट एक अंश में भी ख्याल में आ जाती है। उसके प्रगट एक अंश में इतने ख्याल की ताकत, उसके अन्तर के स्वभाव की बेहद की ताकत, वह तो अन्तर्दृष्टि से मापी जा सके, ऐसा है। समझ में आया?

ऐसे आत्मा को अपने वस्तु के स्वभाव को अन्तर अवलम्बकर त्रिकाल शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान को अन्तर में एकाकार होकर जो आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और शान्ति प्रगट होती है, उसे यहाँ निश्चय सत्य और निश्चय धर्म कहा जाता है। सत्य धर्म।

वह त्रिकाल सत्य परमात्मस्वरूप अपना, उसके आश्रय से जो शुद्धता और पवित्रता अन्तर में एकाग्र होकर जो शक्ति में से प्रगटता के अंश श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति और आनन्द के प्रगट हों, उन्हें आत्मा का निश्चयधर्म, सत्धर्म, अनुपचारी धर्म, वास्तविक धर्म, वास्तविक मोक्ष का मार्ग कहा जाता है।

ऐसे काल में अभी, आत्मा के अतिरिक्त दूसरे छह पदार्थ हैं, उनके भी विकल्प और विचार उठें, ऐसे राग को भी व्यवहारमार्ग कहने में आता है। समझ में आया? ऐसे निश्चय के भान में जो कुछ अपूर्णता के कारण राग की वृत्ति के विचार में ज्ञान रागमिश्रित ज्ञान, छह (द्रव्य) आत्मा के अतिरिक्त दूसरे, अरे! साक्षात् परमात्मा सिद्ध या अरिहन्त का विचार तक राग है। पण्डितजी! क्योंकि आत्मा ज्ञानानन्द स्वआश्रय स्वभाव से भरपूर, उसका आश्रय जितना लिया, उतनी शान्ति और उतना सत्। उसने जितना परपदार्थ का आश्रय लेकर वृत्ति उठायी, उसे राग का भाग, पुण्य का भाग, व्यवहार धर्म का भाग उसे कहा जाता है। परन्तु जिसे यह निश्चय सत् प्रगट हुआ हो, उसे उस व्यवहार को व्यवहाररूप से, उपचाररूप से धर्म कहने में आता है। वास्तव में तो वह छोड़नेयोग्य है। उसे छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, तब वह परमात्मपद को पाता है। यह बात आ गयी है। यह बात आ गयी।

[अब केवलीव्यवहारावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—] इस प्रकार जिसे वर्ते, उसे तो निश्चय और व्यवहार, सत्य और आरोपित दोनों भाव उसके पास होते हैं, उसका वह बराबर ज्ञान करता है। वह व्यवहार आवे, उसका आश्रय करके लाभ माने, ऐसे जीव की बात अब चलती है। क्या कहा ? समझ में आया? भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति सत् शाश्वत् आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा, जैसे गुड़ का रस मीठा होता है, कोल्हापुर का उत्कृष्ट सफेद और मीठा (गुड़) आता है न? बर्फी जैसा नहीं कहते तुम्हारे? बर्फी जैसा गोल है, ऐसा कहे लोग। बहुत ऊँचा हो तब थोड़ा चढ़ाते हैं। उसे चीरा लगाये तो उसमें से धूप लगे तो उसमें से गुड़ ही झरे। उसमें से कहीं वहाँ काली जीरी का चूरा झरे, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द का एक महापिण्ड है। अरे... परन्तु यह क्या? यह आनन्द का पिण्ड है, ज्ञान का पुंज है। उसमें जितनी एकाग्रता के भाव को रचे, उतना आत्मा में से आनन्द का

झरना बाह्य प्रगट होता है। समझ में आया? आहाहा! यह आत्मा जितना ज्ञान में एकाग्र हो, उतना सम्यग्ज्ञान के सामर्थ्यवाला इसकी दशा में प्रगट होता है। ऐसा प्रगट होता है और साथ में राग भी होता है, तब तो वह निश्चय और व्यवहार का उस भूमिका के प्रमाण में राग हो तो दोनों को सुमेल व्यवहार से है, ऐसा कहने में आता है।

परन्तु जो केवल व्यवहारावलम्बी (अर्थात्) अकेले राग को अवलम्बकर (प्रवर्तते हैं) **वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा...** अनादि से अज्ञानी यह राग उठे, उससे मेरा कल्याण होगा, यह राग छह पदार्थ का विचार, छह पदार्थ का ज्ञान और दया, दान के व्रत के शुभभाव को पकड़कर 'मेरा कल्याण होगा' ऐसा माननेवाले को व्यवहार के अवलम्बनवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहने में आता है। कैसे होते हैं वे? **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा...** अर्थात्? नीचे स्पष्टीकरण किया है परन्तु इसमें ऊपर से लेते हैं। यह रागभाव जो उठता है वृत्ति, वह मेरा साधन। और अन्दर में शुद्धता प्रगटे, वह उसका साध्य। ऐसे राग द्वारा मुझे साध्य शुद्धता की दशा प्रगट होगी। ऐसा अन्तर में मानता, अवलोकन करते, उसमें स्थिर होते हम धर्मी हैं, ऐसा अज्ञानी अनन्त काल से मान रहा है। समझ में आया?

यह **भिन्नसाध्यसाधनभाव के...** अर्थात्? यह वृत्ति उठती है, परपदार्थ के अवलम्बनवाली, ऐसे शुभभाव को साधन मानकर। वह शुभभाव है, पुण्यभाव है, वह करूँगा तो अन्दर में आत्मा की शान्ति और धर्म होगा। ऐसे अवलोकनवाले, ऐसा अवलोकन करनेवाले कि परमात्मा की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की, उनके भक्ति के राग से, उस भक्ति का एक राग भाग है, उससे मेरा कल्याण होगा, ऐसा माननेवाले व्यवहार के राग को अवलम्ब कर लाभ माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्या अर्थात् पापदृष्टि है, अधर्म दृष्टिवाले हैं। वे कैसे होते हैं, उसकी यह बात चलती है। नवनीतभाई! जगत के साथ (मिलान खाना मुश्किल)।

अभी झगड़े चले हैं झगड़े। और भाई शिक्षा देते हैं कि निश्चय और व्यवहार समयसार प्रमाण समझकर निर्णय करो तो पण्डित भी अवगत करेंगे कि तुम्हारी बात बराबर है। आहाहा! क्या कहलाता है निश्चय और कहाँ कहलाता है व्यवहार? चावल बिना के बारदान चावल में खपे। केसर बिना के डिब्बे केसर में खपे, उसी प्रकार

भगवान आत्मा वस्तु के सच्चिदानन्द आनन्द के स्वभाव को स्पर्श किये बिना अकेले ऐसे पुण्यभाव की क्रिया को, डिब्बा है, उसे धर्म माने वह अनादि के मूढ़, अज्ञानभाव में रुल रहे हैं। वे क्या करते हैं? अब उसकी क्रिया कैसी होती है, वह बताते हैं।

(१) पुनःपुनः धर्मादि के श्रद्धानरूप अध्यवासन में उनका चित्त लगता रहने से,... क्या कहते हैं जरा? छह द्रव्य है। उसमें धर्मास्ति, अधर्मास्ति ऐसे अरूपी द्रव्य हैं। ऐसे अनन्त आत्मायें और परमाणु हैं। उनका श्रद्धान (अर्थात्) वे छह हैं, छह हैं। ऐसे श्रद्धानरूपी अध्यवसान। राग में एकाकार होने पर उनका चित्त लगा करता है। आत्मा के ज्ञानानन्द को छोड़कर और अकेले व्यवहार के क्रियाकाण्ड के राग में छह वस्तु के श्रद्धान में चित्त लगा करता होने से। वह अशुभ से, अशुभप्रवृत्ति से बचता है परन्तु शुभ प्रवृत्ति के पुण्य परिणाम को साधन मानकर, धर्म मानकर बैठे हैं, वे भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव हैं। उन्हें आत्मा के तत्त्व के स्पर्श की खबर नहीं है। समझ में आया?

होने से... ऐसा करके आगे कहेंगे। अशुभ से निवर्तता है परन्तु शुभ प्रवृत्ति में (लगता है)। शुभ प्रवृत्ति देह की नहीं। अन्दर में उठे राग कि यह छह द्रव्य हैं, अनन्त आत्मायें हैं, सिद्ध भगवान हैं, परमात्मा हैं, पूर्णानन्द है, मुनि है, ऐसी वृत्ति परद्रव्य सन्मुख झुकाववाली, उसे भगवान शुभभाव कहते हैं। उसमें चित्त लगा करता है। उसमें अनादि से चित्त लगा करता है। समझ में आया? भगवान का स्मरण करे। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान। तेरा भगवान तो यहां है। वे भगवान तो विकल्प उठे तब याद आवे। समझ में आया? बहुत करते हैं न? जाप... जाप... जाप। ॐ... ॐ... ॐ... जाप... जाप करते-करते (हो जायेगा)। धूल में भी नहीं होगा, सुन न! जाप तो वृत्ति के राग का उत्थान है। उस राग को साधन मानकर और आत्मा के साक्षात्कार और सम्यग्दर्शन हो या धर्म हो, ऐसा माननेवाले को, वह व्यवहार के राग के अवलम्बन करनेवाले भवसागर में डूबनेवाले वर्णन किये हैं। पण्डितजी! पश्चात?

(२) बहुत श्रुत के (द्रव्यश्रुत के) संस्कारों से उठनेवाले... शास्त्र की बात को पढ़ा ही करे, पढ़ा ही करे और संकल्प, विकल्प उठा ही करे। शास्त्र के पृष्ठ फिराया करे और उस पर लक्ष्य दे। द्रव्यश्रुत—द्रव्य अर्थात् यह शास्त्र, पृष्ठ, पुस्तक के ऊपर इसका लक्ष्य (रहा करता है)। **संस्कारों से उठनेवाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों**

के जाल द्वारा... वृत्ति उठे। यह ऐसा है और यह ऐसा है, ऐसा है और ऐसा है।

सब शास्त्रन के नय धारी हिये,
मत मण्डन खण्डन भेद लिये,
वह साधन बार अनन्त कियो,
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

समझ में आया?

अब क्यों न विचारत है मन से,
कछु और रहा उन साधन से,
बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे,
मुख आगल है कह बात कहै।

परन्तु अज्ञानी को अनादि काल से ऐसे पोषक—अज्ञान के पोषक उपदेश और अज्ञान के पोषक उपदेश के करनेवाले मिले, इससे उसे ऐसा कि शास्त्र के पृष्ठ फिरायें, पढ़ें, उसमें से आत्मा का कल्याण हो जायेगा। वह शास्त्र—पृष्ठ परवस्तु है। उसकी ओर के झुकाववाला ज्ञान, वह रागवाला पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! अज्ञानी ऐसे **संस्कारों से उठनेवाले...** संस्कार क्यों कहते हैं? पढ़ा हो, उसमें धारण रहे और धारणा में विकल्प उठा ही करे। **विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल द्वारा उनकी चैतन्यवृत्ति चित्त-विचित्र होती है,...** क्या कहते हैं? चैतन्य की वृत्ति में शुभराग अनेक प्रकार के शास्त्र के पठन की ओर के झुकाववाले उठते हैं। उन्हें अज्ञानी धर्म का साधन मानता है। तब नहीं पढ़ना न अब? यह बात नहीं है। सुन न!

यहाँ तो कहते हैं, चैतन्य भगवान ज्ञाता आनन्दकन्द के आश्रय को छोड़कर अकेली ऐसी विकल्पजाल में ही कल्याण और हितकर मानकर पड़ा है, वह संसार में भटकनेवाला है। उसे आत्मा की शान्ति और स्वतन्त्रता की प्रसिद्धि होगी नहीं। धर्म का भान होकर, फिर स्थिर न हो सके तब यह छह वस्तु की श्रद्धा का विचार, शास्त्र के पठन का विकल्प आये बिना रहता नहीं। परन्तु धर्मी, उसे पुण्यबन्ध का कारण मानता है, धर्म का कारण नहीं मानता। गजब बातें परन्तु! यह तो अगमनिगम की बात। अरे! भगवान! तेरा पन्थ तो कोई (अलौकिक ही होगा न)!

अरे ! मुक्ति होना अर्थात् ? आत्मा की शक्ति में से परम आनन्द उसकी दशा में उफन कर आनन्द आना, उस अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, इसका नाम मुक्ति। और इस अतीन्द्रिय आनन्द को भूलकर ऐसे राग भाग में रहकर हम कुछ साधते हैं, ऐसा माननेवाले बन्धन की संसारदशा में पड़े हैं। परन्तु आत्मा का द्रव्यस्वभाव—वस्तुस्वभाव का आश्रय लेकर जितनी वीतरागता और निर्दोषता प्रगट हुई, वह धर्म। उसमें स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए ऐसे विकल्प आये बिना नहीं रहते। उसे ज्ञानी पुण्य मानता है। अज्ञानी उस विकल्प को धर्म का साधन मानकर, 'यह करूँगा तो धर्म प्राप्त करूँगा, यह करूँगा तो अन्तर ज्ञान स्व का होगा, यह पर का ज्ञान करूँगा तो स्व का ज्ञान होगा।'— ऐसा माननेवाले पूरी दीवार को भूलते हैं। अमरचन्दभाई ! कितने ही ठोठ विद्यार्थी हों और पढ़ना न हो, उसे यह ठीक लगे। नहीं ? यह बात आयेगी।

भाई ! यह आत्मा चैतन्य भगवान को अवलम्ब कर सम्यग्ज्ञान होता है। उस समय इसे पूर्ण केवलज्ञान नहीं है, इसलिए शास्त्र को सुने, विचार करे, मनन करे, ऐसे विकल्प उसे आये बिना रहते नहीं। परन्तु उसे वह उपेक्षा करनेयोग्य और हेयरूप से जानता है। आदरणीयरूप से जानता नहीं। अज्ञानी उसे आदरणीयरूप से जानकर पड़ा है। और निश्चयाभासवाला ऐसा विकल्प आवे तो अरे.. ! विकल्प है, अरे ! विकल्प है। नहीं होती निर्विकल्प में परिणति, नहीं होते शुभराग में शास्त्र पठन के विकल्प। मात्र उसे प्रमाद के अशुभभाव आकर इतो भ्रष्ट, ततो भ्रष्ट होकर नरक-निगोद में चला जायेगा। निश्चय से भ्रष्ट है, व्यवहार से भ्रष्ट है। दोनों से भ्रष्ट होकर पाप के परिणाम में जायेगा। उसे तो शुभभाव भी नहीं होगा।

यहाँ तो शुभभाववाला शास्त्र के पठन में रुका हुआ। परन्तु यह ज्ञानानन्द जिसमें से ज्ञान झरे, ऐसा चैतन्य हीरा, उसकी ओर के झुकाव बिना शास्त्र के पठन के पोथा का पण्डित हुआ, ऐसे धारावाही शास्त्र बोले। गाथा बोले, श्लोक बोले। परन्तु क्या है अब ? वह तो वाणी है यह तो। यह अन्दर में कदाचित् उसकी ओर के उघाड़ का भाव, वह भी परज्ञेय को पकड़ने का ज्ञान है। वह स्वज्ञेय को पकड़ने का ज्ञान नहीं। आहाहा ! भगवान ! तेरा स्वज्ञेय परमात्मपद अन्दर पड़ा है। उसे जो ज्ञान की दशा पकड़े, उस ज्ञान को सम्यक्ज्ञान कहा जाता है। और उस अधूरी दशा में शास्त्र पढ़े, वाँचन करे, पूछे,

प्रश्न करे ऐसा राग उसे आये बिना नहीं रहता। परन्तु उसे धर्मी पुण्यबन्ध का कारण जानता है। अज्ञानी उसे धर्म का कारण जानता है। यह बड़ा अन्तर। व्यवहार आवे सही, वहाँ वे लोग कहते हैं कि व्यवहार आदरणीय है। व्यवहार होवे तो वहाँ निश्चय रहता है। यह बात मिथ्या है। स्वस्वभाव के आश्रय से जो सत् प्रगट हुआ है, वह स्वस्वभाव के आश्रय से आया है। वह कहीं राग के भाग के कारण प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। भारी गहराई की बात!

नीचे लिखा है, देखो यह। **केवलव्यवहारावलम्बी जीव इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते हुए...** क्या? '**वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा**'... नोट (फुटनोट) किया है नीचे। नीचे नोट है। यह तो ऊपर से बात कह गये हैं। यह तो उस शास्त्र के पठन और छह वस्तु के विचार में प्रवीण, प्रवीण चतुर, निपुण। बस! इतना अपने हुआ, इसलिए अपना कल्याण हो गया, ऐसा माननेवाले अन्तर के निधान की दृष्टि को चूकते हैं और पर के ऊपर दृष्टि रखकर धर्म मान रहे हैं। समझ में आया?

दो बात। पहले दर्शन की कही, दूसरी ज्ञान की कही। तीसरी अब चारित्र की। **समस्त यति-आचार के...** यहाँ मुनि को लक्ष्य कर बात है न मूल तो! मुनि भावलिंगी सन्त हों, आत्मा के आनन्द में झूलते हों, अतीन्द्रिय आनन्द जिन्हें उछलता हो। आहाहा! जैसा परमात्मा को आनन्द है, वैसा आनन्द आत्मा के अन्तर स्वभाव में शक्तिरूप से सत्व है। उसे एकाकार के मध्यबिन्दु में दृष्टि देने से मध्य समुद्र से पानी आकर जैसे ज्वार आवे... समझ में आया? जब समुद्र में उस ज्वार का अवसर हो, उस समय के ११८ डिग्री की धूप उसे भाटा नहीं ला सकती। समझ में आया? और जब समुद्र में भाटा का काल हो, तब वह पचास-पचास इंच (वर्षा) एक दिन में गिरे, वह उसे... समझ में आया? ज्वार नहीं ला सकती। उसके कारण वापस जाता है और उसके कारण उछलकर आता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा। मध्यबिन्दु के ध्रुव में बेहद ज्ञान और आनन्द है। उसकी अन्तर में मध्यबिन्दु में दृष्टि देने से उसकी वर्तमान दशा में ज्वार हो आनन्द और

शान्ति का। उस समय कदाचित् शास्त्र का ज्ञान भी न हो, छह द्रव्य के विकल्प भी न हो, अन्दर शास्त्र के पठन डाले न हो। परन्तु अन्दर के मध्यबिन्दु से ज्वार आया, उसे कोई रोकने में समर्थ नहीं है। और... नवनीतभाई! यह प्रश्न का उत्तर हुआ। और यह आत्मा मध्यबिन्दु में दृष्टि न करे—ध्रुव में (और) अकेले शास्त्र पठन और बाहर के प्रवर्तन के विकल्प में रहे, उसे ज्वार आवे, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? रतिभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? कहाँ गये प्रभुभाई! यहाँ तो यह प्रभु की बात चलती है।

अरे! प्रभु! तेरी लीला, अरे...! तुझे पहिचानना नहीं आयी, हों! यहाँ राग की क्रिया में रुके और मानता है कि हम कुछ धर्म करते हैं। दूसरे की अपेक्षा बढ़ें हैं, बढ़े पण्डित हैं। संस्कृत और व्याकरण, न्याय और शास्त्र, धातु और उपधातु तथा कुधातु और उसके व्याकरण और विभक्ति सीख-सीखकर महासमुद्र मानो फटा हो। अरे! सुन न अब! यह सब परलक्ष्यी पर को जानने का विकास है। वह ज्ञान स्व को जानने में काम नहीं करता। समझ में आया? ऐसे अकेले शास्त्र के पठन के झुकाव से अन्तर के चैतन्य का झुकाव मुझे प्रगट होगा, ऐसा माननेवाले को राग के अवलम्बनवाले व्यवहारु मिथ्यादृष्टि कहा जाता है।

अनेक **आचार के समुदायरूप तप में...** तप अर्थात् उसका चारित्र, क्रिया। व्यवहार की क्रिया। यह चलता है और यह नहीं चलता, यह खाया जाता है और... आता है विशेष। ऐसे **तप में प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड की धमाल...** लो! कर्मकाण्ड की धमाल। आहाहा! आचार्य ने संसार से पार रहकर जंगल में अमृत के घूँट पीते-पीते जगत को जरा समझाया है। अरे! जगत के प्राणियों! तुम्हारे चैतन्य के निधान पर तुमने देखे बिना अकेली क्रियाकाण्ड की धमाल में ऐसा खाया जाता है और ऐसा नहीं खाया जाता, ऐसा पिया जाता है और ऐसा नहीं पिया जाता... नवरंगभाई! ऐसे पानी छाना जाता है और ऐसा नहीं छाना जाता और मोटा छन्ना चाहिए और यह चाहिए। गरणु समझ में आता है या नहीं? यह पानी छानने का। क्या कहते हैं? क्या कहते हैं तुम्हारे? छन्ना। पानी छानते हैं न कपड़े द्वारा? ऐसे चलता है, यह एकेन्द्रिय के जीव हैं, वे हमें नहीं चलते। उन्हें चमड़े का यह बाँधा हुआ है, वह आहार हमें नहीं चलता। ऐसे क्रियाकाण्ड

के राग की धमाल में पड़े हैं। राग का क्रियाकाण्ड वह सब पुण्य का भाव है। यह... है, यह कल्पे और यह न कल्पे, यह चलता है, यह सब विकल्प की जाल है। आहाहा! उसमें धमाल में पड़े हुए चौबीस घण्टे कर्मकाण्ड... कर्मकाण्ड... कर्मकाण्ड। कर्मकाण्ड अर्थात् शुभभाव। समझ में आया? और कर्मकाण्ड में ज्ञानकाण्ड देखते हुए ऐसे कर्मकाण्ड की क्रियायें धमाल... धमाल मानो। शरीर सूख जाये और यह हो जाये और पसीना उतरे... आहाहा! अठ्ठम किया हो और पानी ऐसे पेट में मिल जाये। आहाहा! बापू! हम बहुत सहन करते हैं। धूल भी नहीं, सुन न अब। उसमें जरा तुझे राग की मन्दता का भाव अपवास में हुआ हो, वह कर्मकाण्ड की धमाल है। समझ में आया? उसमें धर्म-बर्म है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिथ्यात्व का भाव विकार का बढ़े। यह यहाँ उसकी बात तो चलती है। यह राग मन्द किया हो, और उसे माने धर्म। उसे माने धर्म का कारण। तो विपरीत मान्यता का महान पाप पुष्ट हो और टिकाऊ तत्त्व हो कि अब निगोद में जाने की तैयारी (हो गयी)। उस बार नहीं कहा था? 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे एक त्रांबियाना तेर।' इस प्रकार जगत के साथ बात-बात में अन्तर है। समझ में आया?

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ देवाधिदेव और सन्त जिस भाव से अन्तर में वेद रहे हैं, जान रहे हैं, उससे जगत के भाव अत्यन्त उल्टे हैं। उस उल्टे को, धमाल को वह धर्म मान रहे हैं। समझ में आया? यह अपवास किये और फिर पसीना उतरा और फिर तीन-तीन दिन के अपवास हो, और सिर जरा दुःखे, और देखने आवे, सोंठ-बोंठ चोपड़े, चौथे काल के महीने के और अपने पंचम काल के तीन दिन के अपवास। तेरे तीन और चौथे काल को कहीं मेल नहीं है, सुन न अब। जहर के साथ अमृत का कोई मेल होगा? यह जहर का बिन्दु पाँच मण है, अमृत का एक, उससे भी बहुत गुना, परन्तु जाति को गुणाकार होगा, कुजाति को गुणाकार नहीं होगा। पुण्य की क्रिया के भाव को तू अमृत के भाव आत्मा के आनन्द के साथ, धर्म के साथ मिलाता है, ऐसे जहर को अमृत के साथ तुलना करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? भानुभाई! 'बात बात में फेर, आनन्द

कहे परमानन्दा' इस जैसा है। आनन्दमूर्ति भगवान परमानन्द त्रिकाल शक्ति को कहते हैं कि यह जितने राग के भाग हों, वे सब मुझसे अन्तर है। उससे कल्याण माननेवाले, वे सब मूढ़ और त्यागी हो तो धर्म के त्यागी हैं। वह पाप के और पुण्य के त्यागी नहीं। समझ में आया? बड़ी दृष्टि के फेर से सृष्टि अज्ञान की उत्पन्न होती है, उसकी इसे खबर नहीं पड़ी। आहाहा! ऐसा, परन्तु यह अनमेल हो जायें जगत के साथ। ऐ... कहाँ गये नेमिदासभाई? अनमेल हो जायें। क्या करना? नात-जाति में रहना और ऐसा मानने जायें तो वे सब कहें, यह तो भ्रष्ट हुए हैं। अरे... भगवान! बापू! तेरी चीज़ को सम्हाल करने से दुनिया पूरी डोल जाये उल्टे, उसे कोई अवरोध करनेवाला है?

भगवान आत्मा शान्ति का सागर है, उसकी श्रद्धा के भान में यह राग के कारण बिल्कुल धर्म नहीं होता। बड़ा सन्त-महात्मा कहलानेवाला हो तो भी उसे यहाँ व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव में, उसके—मूढ़ के वर्ग में डाला है। जैनी नहीं, अजैनी। जैन कहाँ वाड़ा था? राग को और स्वभाव को एकता माननेवाला, उसे जैन नहीं कहते। राग की क्रिया (करे) और आत्मा के निर्मल स्वभाव की वीतरागता, उसके कारण से प्रगटे (ऐसा माने), वे राग के भगत हैं, वे राग के सेवक हैं, इस राग के दासानुदास हैं। वे जैन के दास नहीं। कठोर बात लगे। नवनीतभाई! अब फिर कितना? यह एक है और दो दिन है अब। यह कहते हैं कि झट लेना। परन्तु यहाँ लिया जाये, तब लिया जाये न! किस प्रकार आवे इसमें? कहो।

यह तप के प्रवर्तन, यह अपवास के प्रवर्तन और बाह्य त्याग के राग घटाने के प्रवर्तन, उसकी धमाल में **वे अचलित रहते हैं...** शुभभाव में से चलित न हो, हों! वह भाव शुभ... शुभ। अकेला क्रियाकाण्ड करे और अन्दर शुभ भी न हो, उसकी यहाँ बात नहीं है। जिसे राग की मन्दता का विकल्प तो शुभ है, अशुभ की प्रवृत्ति से अन्दर परिणमन में घटा। यह अन्तिम है न, भाई! पीछे है। अन्तिम योगफल। यह सब इससे... इससे करके... देखो! **ऐसा करते हुए कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण—यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है तथापि—शुभकर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है...** बराबर पकड़ रखी है। अन्त में है। २५८ पृष्ठ पर अन्त में। **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई...** ज्ञानचेतना को जरा भी जानते

नहीं। समझ में आया? जगत के प्रवाह के लोढ के साथ यह लोढ तो भटके ऐसा है। भटकाव खड़ा करे, ऐसा है।

कहते हैं, ऐसे तप के बाहर के व्यवहार क्रियाकाण्ड की धमाल में तू पूरी जिन्दगी गवाँ, हराम उसके कारण धर्म होता हो तो। आहाहा! छह-छह महीने के अपवास, बारह-बारह महीने के अपवास, यह वर्षीतप करके सूख जाये। मनावे, वह तो ठीक। वह तो पाँच-दस हजार पैसे (रुपये) हों तो मनावे। मनावे कौन? वह तो राग मन्द हो न कदाचित्... यह तो कहते हैं, वह सब परलक्ष्यी क्रिया में जो राग हो, उस राग के कारण आत्मा को लाभ होता है, ऐसा (माननेवाले) जीव अनादि काल से मिथ्यादृष्टिपने को, पापदृष्टि को घूंट रहे हैं। अधर्मदृष्टि को कर रहे हैं। चिल्लाहट मचाये ऐसा है, हों! भानुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ मनाये। बाहर में कहा मनाने का था? धूल में?

भगवान आत्मा, स्वर्ण में जैसे गेरु लगकर जैसे सोना ओपता है; उसी प्रकार भगवान चिदानन्द प्रभु तपयंते विजयंते इति तप। चिदानन्द भगवान के आनन्द में एकाकार होकर उसकी दशा में जीव की विजय हो और राग का नाश हो, ऐसी आत्मा की निर्विकारी दशा को भगवान तपयंते इति तप कहने में आता है। यह तो सब लंघन है। 'कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधियते; उपवासः विज्ञेयः शेषं लंघनं क विदुः।' विषय, कषाय आहार त्याग विजयते, उपवासो ... शेष लंघन ... इसके बिना का लंघन ज्ञानी कहते हैं। विषय अर्थात् पर की ओर का लक्ष्य छूटकर राग के-पुण्य के परिणाम छूटकर अन्तर के ध्येय को-विषय को पकड़कर, निर्विकल्प आनन्द और शान्ति अविकारी अभेद दशा हो, उसे भगवान तप और तपस्या कहा जाता है। वह तप कहीं शरीर में और राग में नहीं रहता। ओहोहो! एक बार कहे, यह खड़े-खड़े लाखोंपति की बहू यह वर्षीतप करे, वह तो खड़े-खड़े मोक्ष जायेगी। यह (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। और यह कहते हैं कि लो, यह तो तप राग और इसे धर्म माने, वह मूढ़। समझ में आया? अरे... भगवान! ऐसी व्यवहार के विकल्पों की दशायें, अरे! वह तो जब नौवें

ग्रैवेयक - स्वर्ग में गया, उसके भाव की शुक्ललेश्या अर्थात् उजले शुभराग के भाव ऐसे थे कि वह अभी हो नहीं सकते। ऐसे भानवाले को भी धर्म नहीं हुआ। अरे.. प्रभु! क्या हो? किसे क्या कहें? और कौन इसे सुने? समझ में आया? परन्तु अभी काल इतना अच्छा है कि अब तो जरा सुनने को तैयार भी हुए हैं। अब जिज्ञासा का झोंक जगत को बढ़ा है कि यह क्या कहते हैं परन्तु यह? ढ़िंढ़ोरा पीटकर कहते हैं। कोई गुप्त नहीं है। तीन लाख पुस्तकें, सवा तीन लाख (पुस्तकें) बाहर प्रकाशित हो गयी हैं। तीन, सवा तीन लाख। कितने ही कहें, ऐसा व्यवहार वह राजमार्ग है। और वह राजमार्ग तो यहाँ आत्मा का ज्ञान होता है। मूढ़ में मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। समझ में आया?

वे अचलित रहते हैं... वापस अचलित। शुभभाव में तो चलित नहीं, हों! अशुभभाव में आ जाये तो उसे व्यवहार के क्रियाकाण्ड में गिना नहीं। **(१) कभी किसी को (किसी विषय की) रुचि करते हैं,...** आहाहा! क्या भगवान! क्या केवलज्ञानी! ऐसी रुचि (करे), परन्तु वह तो विकल्प है। वह भी एक राग है। **(२) कभी किसी के (किसी विषय के) विकल्प करते हैं...** और कहीं का विकल्प करे कि ओहो! क्या अमुक पुरुष हो गये और क्या अमुक क्षेत्र, तीर्थक्षेत्र! गिरनार और सम्मेदशिखर। क्या है? उसका विचार भी एक राग का विकल्प है। कभी-कभी क्यों कहा है? खण्ड-खण्ड इसे वेदन में आता है। कहीं अखण्ड पर दृष्टि नहीं है। इसलिए कभी कहीं की रुचि करे। वाह देव, वाह गुरु, वाह शास्त्र! कभी कहीं के विकल्प करे राग के। **(३) कभी कुछ आचरण करते हैं;...** लो, दर्शन, ज्ञान (चारित्र) हो गया। समझ में आया? कहीं और आचरण (करे)। ऐसा नहीं चलता, यह ले, यह देना बराबर, शुभभाव करना, बराबर आचरण करना, उसमें भेद रहे नहीं। बराबर उसमें भंग न पड़े। ऐसा सब करे, वह सब शुभभाव है। ज्ञान के लिये सामान्य दर्शन और चारित्र के लिये कहा है।

अब विशेष ज्ञान के बोल कहकर... डालते हैं। **दर्शनाचरण के लिए—वे कदाचित् प्रशमित होते हैं,...** ऐसा मानो कषाय मन्द और आँखें बन्द हो और मानो... ओहो! यह तो कषाय बहुत मन्द लगता है। परन्तु यह सब कृत्रिमता शुभराग की है। समझ में आया? यह कहीं आत्मा का प्रशमपना नहीं है। **कदाचित् संवेग को प्राप्त होते**

हैं,... संवेग। अरे रे! संसार सब खराब, हों! सब संवेग। मानो वैराग्य बतावे। परन्तु वह भी एक शुभराग है। वह आत्मा का भाव नहीं। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के अवलम्बन बिना राग के अभाव की प्रतीति उसे होती नहीं। और इस राग में संवेग करता है। कभी **अनुकम्पित होते हैं,...** अनुकम्पा। यह वे श्रद्धा के गुण लिये। अनुकम्पा। अरे! यह प्राणी दु:खी है, हों! अनुकम्पा आवे। परन्तु वह परजीव की अनुकम्पा, वह भी एक राग की वासना है। समझ में आया? परजीव को दु:खी (देखकर) कंपकंपी आवे, वह राग की वृत्ति का उत्थान है, वह शुभ है। उसे धर्म का कारण माने, वह आत्मा की हिंसा करता है। जगत के साथ कहीं मिलान खाये (ऐसा नहीं है)। बेंत की सोटी और सूत का डोरा, दो को बुनकर न? रस्सी करना हो तो उसके रस्सी नहीं होती। वह तो सूत की.. सूत की डोरी हो तो रस्सी होता है। इसी प्रकार अनादि की अज्ञानी की बहिर पदार्थ के लक्ष्य से उत्पन्न होती वृत्ति, वह बेंत की सुई। अन्तर के स्वभाव का सूत सम्यक् इसके ज्ञान को उसके साथ मिलावे, कहीं मेल खाये ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अनुकम्पा करे अनुकम्पा। आहाहा! दूसरे को लगे, वाह दया, वाह! और समकित दर्शन का वह लक्षण है। शम, संवेद, निर्वेग, अनुकम्पा और आस्था। ऐसे चार लक्षण बनाकर मानो हम सम्यग्दृष्टि हैं। अरे.. चल.. चल अब। ऐसी अनुकम्पा तो अनन्त बार अभव्य ने भी की है। वह तो राग के विकल्प का उत्थान, पर के ऊपर का झोंक है। चैतन्य की जाति की वह बात नहीं है। समझ में आया? अरे! यह गजब, भाई! ऐसे तो दूसरे को कहे, आहाहा! बहुत जीवों की दया पाल दे। कौन पाले? यह जगत के तत्त्व हैं या नहीं? इनके देह का संयोग, उसे आयुष्य होगा, वैसा रहेगा। तू क्या जिला देता है उसे? और उसके आयुष्य की अवधि पूरी होने पर देह छूट जायेगी, एकदम। क्या तू मार सकता है दूसरे को? क्या होगा मूलजीभाई! आहाहा! भाव कर (तो कर) तू मिथ्या भ्रमणा के। दूसरे को जिलाऊँ और दूसरे को मारूँ। दूसरे के तत्त्व की दशा का अधिकार तुझमें नहीं तथा मारूँ और जिलाऊँ मान, वह महामिथ्या भ्रमणा में अज्ञान को रच डाला है, रच दिया है। उसे भ्रमणा में मिथ्यात्व का लाभ होता है। सुनाई देता है या नहीं इसमें? मगनभाई! मगनभाई के काम में वह है न। उदाणी!

अनुकम्पा। आहाहा! एक व्यक्ति कहे, पानी में जो मक्खी पड़ी हो और हम उसे

न निकालें तो समकित चला जाये। परन्तु निकाले-बिकाले कौन? वह तो देह की क्रिया होनेवाली हो तो होती है और अनुकम्पा का भाव आता है, आवे अवश्य। परन्तु वह राग है, वह धर्म नहीं। पर की दया का भाव वह धर्म नहीं। आत्मा की दया का भाव, वह धर्म। अरे! कौन सी दया आत्मा की? अहिंसा परमो धर्म। जो अहिंसा भगवान चिदानन्द की मूर्ति के लपेट में अन्दर एकाकार हो और भ्रमणा और राग-द्वेष की उत्पत्ति न हो और अभ्रम अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्थिरता की दशा उत्पन्न हो, उसे भगवान अहिंसा परमो धर्म कहते हैं। ऐसा करना नहीं आया अनन्त काल में? पर की दया और पर की अनुकम्पा। करे तो कहाँ, उसे भाव आवे। उस भाव को धर्म का कारण मानकर अज्ञानी व्यवहारावलम्बी मूढ़ हो रहा है। समझ में आया इसमें?

कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं,... एक-एक बोल अलग-अलग स्थापित करते हैं। आस्था। आहाहा! भगवान ने कहा वह सब सच्चा है, हों! छह द्रव्य सच्चे, अनन्त आत्मा सच्चे, परमाणु सच्चे। परन्तु वह आस्तिक्य तो परद्रव्य की आस्था है। उसमें स्वद्रव्य आया नहीं। और स्वद्रव्य के आये बिना पर की आस्था, वह भी शुभराग का ही कारण है। समझ में आया? पश्चात्? **शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और मूढ़दृष्टिता के उत्थान को रोकने के लिये नित्य कटिबद्ध रहते हैं,...** भगवान के मार्ग में शंका नहीं करना, हों! नौ तत्त्व, छह द्रव्य कहे, उसमें शंका नहीं करना। **कांक्षा,...** उनके अतिरिक्त दूसरे की इच्छा नहीं करना। ग्लानि—मुनि दिगम्बर सन्त आनन्दकन्द में झूलते, उनका मलिन शरीर देखकर ग्लानि नहीं करना। ऐसे भाव में रहा हुआ प्राणी भी रागवाला है। समझ में आया? मूढ़दृष्टि। उलझे नहीं। आहाहा! भगवान ने कहे वे छह द्रव्य, नौ तत्त्व इत्यादि मोक्षमार्ग व्यवहार, उसमें उलझे नहीं। उसे **रोकने के लिये नित्य कटिबद्ध रहते हैं,....** कटिबद्ध—ऐसे तैयार रहे। फेरफार न हो। भगवान ने कहे हुए के लिये सिर दें। दूसरा न माने। वह सब परपदार्थ के झुकाव का विकल्प धर्म नहीं। आहाहा! है या नहीं? पण्डितजी! ऐसी बात आयी है।

उपबृंहण... दूसरे को धर्म में बढ़ाना, ऐसा शुभराग। दूसरे धर्म से गिरे उसे स्थिति(करण) करना, वह शुभराग है। धर्मी के प्रति प्रेम करना, वह शुभराग है। प्रभावना बाहर की। पैसा खर्च करके मन्दिर बनाना, यह करना और हाथी को हौदे निकाले। ऐसे

देखो कालावड... कालावड क्या कहलाता है वह? कालबादेवी। तुम्हारे कालबादेवी रोड में नहीं? दो हाथी निकले थे ऐसे। लोग कहे, ओहो! आहा! सौ वर्ष में ऐसा नहीं हुआ था। परन्तु यह तो बाहर की क्रिया है। कहा न? कभी सौ वर्ष में कालबादेवी में हाथी नहीं निकला था। उस समय दो हाथी (निकले) और सोने के वह इंदौर से आये हुए। सर हुकमीचन्दजी के घर से। और लोग तो उमड़ पड़े। उसमें मैं साथ में। उमड़े वहाँ लाखों लोग ऊपर से देखे, यह है कौन? एक अंग्रेज महिला और वे निकले। है कौन? इस गाँव में ऐसा आध्यात्मिक कोई कि जिसे पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग तो एक घण्टे, दो घण्टे दिन के निवृत्त होकर सुनें। सवेरे एक घण्टे। फिर अन्दर फोटो खींच गये। मेरे साथ वे भाई साथ में थे सेठ। कैसे? तोलाराम साथ में थे। महाराज! ऐसी... आहाहा! बाहर में सब लोग देखे। ऐसा मेरे लाडनु में कर दो न! कहा, यह सेठ भी समझता नहीं। यह (संवत्) २०१५ के वर्ष की बात है और १४के वर्ष में उसने चौदह लाख का मन्दिर बनाया। लाडनु में तीन भाईयों ने उनके पिता के नाम का चौदह लाख का मन्दिर और बड़ा खर्च (किया)। परन्तु यह शोभा देखकर उसे ऐसा हुआ, महाराज! अरे... बापू! करने से होता है? यह तो बाहर की प्रवृत्ति का योग हो तो यह होता है। कौन करे और कौन छोड़े? समझ में आया? आहाहा! शुभभाव आता है। वह विकल्प है पुण्य का, प्रभावना का परन्तु वह बन्ध का कारण है। वह भी स्वरूप में स्थिरता न हो तो आये बिना रहता नहीं। परन्तु उससे ही धर्म और प्रभावना हुई, इसलिए धर्म हुआ, ऐसा मान ले, उसे मिथ्या अभिप्राय, सत्य के खून के अभिप्राय का लाभ होता है। समझ में आया?

बारम्बार उत्साह को बढ़ाते हैं;... बारम्बार उत्साह बढ़ावे, श्रद्धा के लिये सब। **ज्ञानाचरण के लिये—स्वाध्यायकाल का अवलोकन करते हैं,...** ज्ञान के पढ़ने के लिये **बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं,...** गुरु का विनय, शास्त्र का विनय, हाथ छूने दे नहीं, थूक लगने दे नहीं। समझ में आया? यह शास्त्र पढ़ते-पढ़ते कितने ही ऐसा नहीं करते? थूक लगावे। पृष्ठ ऊँचा न हो न, हाथ से लगावे। परन्तु वह तो शास्त्र की असातना है। यह तो पापभाव है। समझ में आया? वह भाव भी न करे, यहाँ तो ऐसा कहना है। बराबर बनाये रखे। पृष्ठ बदलना हो तो हाथ साफ (रखे), हाथ में पानी-

बानी लगा हो, मैल लगा हो या पसीना लगा हो वह इसे (शास्त्र को) लगावे, ऐसा नहीं। ऐसा कहना चाहते हैं। **बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं,...** परन्तु यह सब शुभराग है। ऐसा धर्मी को आत्मा के द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई दशा के काल में अपूर्णता के समय हो सही, परन्तु वह धर्म का कारण है और आत्मा के आनन्द की वृद्धि का कारण है, ऐसा वह नहीं मानता। अज्ञानी ऐसे भाव को धर्म का कारण मानता है। विनय मूलो धम्मो। ऐसा विनय करें। परन्तु वह तो विकल्प है। होवे सही, आये बिना रहे नहीं। परन्तु उसे तू धर्म मान ले और उससे आगे बढ़ा जायेगा और स्वद्रव्य में जाया जा सकेगा, ऐसी मान्यता वह व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया?

दुर्धर उपधान करते हैं,... अपवास करे, बहुत पढ़ने के लिये। एकान्तरा, लुखा, पन्द्रह-पन्द्रह दिन के अपवास या डेढ़-डेढ़ महीने के उपधान, उसमें राग की मन्दता करता हो तो पुण्य हो। उसके कारण धर्म हो और निर्जरा (हो)—आत्मा की अशुद्धि गले, ऐसी मान्यता वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि की है। पूरी दुनिया के क्रियाकाण्ड में यह सब समावेश कर दिया। इससे और आगे कौन सा प्रकार रहता होगा? बापू! पूरा आत्मा निर्विकल्प रह जाता है। **भलीभाँति बहुमान को प्रसारित करते हैं,...** शास्त्र का बहुमान करे। काल में... बहुमान है न भाई उसका। काल में... काल में स्वाध्याय। स्वाध्याय का काल, यह विनय और उपधान। बहुमान।

निह्नवदोष को अत्यन्त निवारते हैं,... जिससे सुनने का ज्ञान मिला हो, उसे बराबर माने। बराबर है, मुझे यहाँ से मिला है। परन्तु वह सब शुभभाव है। समझ में आया? ऐसे शुभभाव से आत्मा का कल्याण माने, उसे यहाँ मूढ़ में गिनने में आया है। **अर्थ, व्यंजन और तदुभय...** शब्द सीखे, शब्दों के अर्थ को सीखे और दोनों को इकट्ठे (सीखे).....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक - ०७-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-११

यह पंचास्तिकाय नाम का शास्त्र है। सर्वज्ञ भगवान, इस आत्मा का जो ज्ञानस्वभाव अन्तर में है, उसे अन्तर में एकाग्रता प्राप्त करके जिसने सर्वज्ञपद अर्थात् तीन काल और तीन लोक जाने, उनके मुख से निकली हुई वाणी को शास्त्र कहा जाता है। उस शास्त्र में आया यह पंचास्तिकायसंग्रह नाम का शास्त्र है।

अपने चलता अधिकार यह आता है, भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव, जिन्होंने अज्ञान और राग को जीतकर, वीतरागी अविकारी सर्वज्ञपद प्राप्त किया, उनकी आज्ञा में क्या है, वह यहाँ बात चलती है। कहते हैं कि अनादि के कितने ही जीव, आत्मा एक समय में पूर्ण आनन्द और शुद्ध ध्रुव चैतन्यधातु है, उसकी अन्तर में निर्विकल्प की प्रतीति और श्रद्धा नहीं करते। परन्तु... समझ में आया?

व्यवहारावलम्बी जीव की आचरणवृत्ति और श्रद्धावृत्ति कैसी है, उसका वर्णन चलता है। यह आत्मपदार्थ एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शान्त और अनादि-अनन्त आनन्द की मूर्ति आत्मा है। सत् ज्ञान और आनन्द, सत्तानन्द ऐसा उसका शुद्ध पवित्र अन्तर ध्रुव अनादि-अनन्त स्वरूप है। उसके अन्तर में सन्मुख होकर चैतन्य आनन्द और ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसी प्रतीति न करके अनादि काल से परवस्तु है, भगवान है, सर्वज्ञ है, पंच परमेष्ठी है, उनकी आस्था करता है, वह राग का भाग है। और उस राग द्वारा मैं सम्यग्दृष्टि हूँ—ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? सूक्ष्म बात। जगत के चलते प्रवाह से दूसरी बात है। श्रद्धा के लिये मात्र सर्वज्ञ ने कहे हुए छह तत्त्व—छह द्रव्य, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह राग का भाग है। उस प्रवृत्ति में राग को अवलम्बकर उसे वह धर्म मानता है। उस दृष्टि में पापदृष्टि है। उसकी दृष्टि में धर्म दृष्टि आयी नहीं।

आगे बढ़कर शास्त्र ज्ञान करे। शास्त्र का स्वाध्याय करे, विकल्प करे, शास्त्र का पर्यटन करे, वह भी एक राग भाग है। शास्त्र की ओर के झुकाववाला ज्ञान, वह भी एक राग भाग है। वासना है, वृत्ति है, पुण्यास्रव है। अर्थात् कि उससे भी नया आवरण आवे,

ऐसा भाव है। उसे वह अनादि से शास्त्र के पठन की ओर के झुकावभाव को आत्मज्ञान मानकर वहाँ रुका हुआ है, वह व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि है। उसकी दृष्टि सच्ची नहीं है।

अब जरा चारित्र के लिये आया है अभी तो। है ? देखो ! **चारित्राचरण के लिये...** अनादि का अज्ञानी अपने आनन्द शुद्ध चैतन्य स्वरूप में चरना, रमना अन्तर में आनन्द में, ऐसे चारित्र को न जानता हुआ, न मानता हुआ, न पहिचानता हुआ, नहीं प्रगट करता हुआ, मात्र **हिंसा...** यह परजीव की हिंसा की निवृत्ति से मुझे अहिंसा का चारित्र होता है, ऐसा अज्ञानी अनादि से मान रहा है। बहुत सूक्ष्म बात है। ...भाई ! प्रचलित बात से पूरी... देखो ! हिंसा। किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करना। एकेन्द्रिय की, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस। उनकी हिंसा न करना, ऐसी जो वृत्ति और उनकी दया पालना—भाव, ऐसे भाव को भगवान राग और पुण्यबन्धन का कारण कहते हैं। उसे अज्ञानी चारित्र मानता है। पण्डितजी !

हिंसा से निवृत्ति। देखो ! हिंसा से सर्वविरतिरूप। पंच महाव्रत। यह मेरे अहिंसा महाव्रत हुआ, ऐसा अज्ञानी मानता है। परजीव के प्रति झुकाव का भाग—उसे न मारूँ, उसकी दया पालन करूँ, उसे सुखी करूँ या दु:खी न करूँ, ऐसी वृत्ति उठती है, वह एक वासना—राग का भाग है। वह हिंसा की निवृत्ति के परिणाम राग का भाग है। जिसे व्यवहार अहिंसा कहकर वह पुण्य परिणाम है। धर्म नहीं, चारित्र नहीं। ओहोहो ! समझ में आया ? तथापि उस हिंसा से **सर्वविरतिरूप पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,...** हिंसा को छोड़कर, झूठ छोड़कर... झूठ बोलना नहीं, सत्य बोलना। परन्तु यह सत्य बोलना, वह भी एक विकल्प और राग है। असत्य का त्याग और सत्य का बोलना, वह भी विकल्प एक रागांश वृत्ति है। उसे अज्ञानी चारित्र पालते हैं, ऐसा मानता है। प्रकाशचन्दजी !

अस्तेय। अस्तेय अर्थात् चोरी का अभाव। किसी की चोरी न करूँ, ऐसी वृत्ति उठे, वह भी एक राग का भाग है। उसे अज्ञानी चारित्र पालते हैं, ऐसा मानता है। वह चारित्र नहीं है। इसी प्रकार अब्रह्म—विषय का त्याग। स्त्री का विषय का भोग का त्याग। उसके त्याग की वृत्ति जो हो और शरीर द्वारा ब्रह्मचर्य पालूँ, यह भी एक

राग का भाग, वृत्ति का उत्थान है। यह पुण्य भाग है, यह धर्म नहीं, चारित्र नहीं। कठिन बात।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सीढ़ी। उसके रहित वह सीढ़ी। वह जहर की सीढ़ी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य माने, वह जहर है। पुण्य में धर्म मानता है। उसे चारित्र मानता है कि हम चारित्र पालते हैं और दूसरे भी उसे चारित्र पालनेवाला मानते हैं। वह सब जहर दृष्टि है, पापदृष्टि है। दूधपाक में शक्कर पड़ती है या कहीं नमक पड़ता है? नमक डलता है दूधपाक में सस्ता करने के लिये? इसी प्रकार चैतन्य की जो अन्तर ज्ञानानन्द ज्ञान... ज्ञान... शास्त्र के पृष्ठ नहीं, अन्तर आत्मा चैतन्यप्रकाशस्वरूप है आत्मा। उस चैतन्यप्रकाश की अन्दर प्रतीति, अनुभव करके उसमें अन्तर में रमणता, आनन्द में स्थिरता, आनन्द में जमावट होना, उसे यह भगवान चारित्र और उसे संवर, निर्जरा अर्थात् मोक्ष का मार्ग कहते हैं। परन्तु अज्ञानी अनादि काल का बाह्य त्याग करके दया पालना, व्रत पालना, ब्रह्मचर्य पालूँ, सत्य बोलूँ, असत्य न करूँ और परिग्रहरहित होऊँ। सर्व परिग्रह छोड़ दूँ और अकेला रहूँ, यह परिग्रह का त्याग, वह भी एक राग की वृत्ति है। परिग्रह को रखना, हिंसा का भाव, वह पाप है। तब हिंसा की निवृत्ति और असत्य का बोलना, वह पाप और असत्य की निवृत्ति, वह पुण्य है। चोरी का भाव वह पाप, चोरी की निवृत्ति वह पुण्य। ब्रह्मचर्य का भाव वह पुण्य और विषय का भाव, वह पाप। परिग्रह रखने का भाव, वह पाप और छोड़ने का भाव, वह पुण्य। ऐसे पुण्य भाग को अनादि काल से, हम धर्म करते हैं, हम चारित्र पालते हैं, हम महाव्रत पालते हैं। देखो, महाव्रत शब्द पड़ा है।

यह **सर्वविरतिरूप पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले...** इस राग की वृत्ति में तल्लीन हो गया है। भगवान आत्मा राग से पार चिदानन्द की मूर्ति है। ऐसे स्वभाव की प्रतीति नहीं करता, उसका स्व का-आत्मा का ज्ञान नहीं करता, और आत्मा में स्थिरता की, आनन्द की प्रगट दशा चारित्र की प्रगट नहीं करता और पंच महाव्रत के भाव को

चारित्र मानकर बैठा है, वह मूढ़ व्यवहार दृष्टि के अवलम्बी, उसे पाप दृष्टिवाला कहा गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य, वह पाप नहीं; पुण्य को धर्म माने, वह पाप है। उसमें तल्लीन होकर ऐसा मानता है कि हम कुछ धर्म करते हैं। ऐसी मान्यता को पापदृष्टि कहा जाता है। अरे.. गजब बात।

इसने आत्मा की जाति क्या है, उसकी सुनी नहीं। 'जब तक आत्मा तत्त्व जाना नहीं, वहाँ तक साधना सर्व झूठी, क्या किया तीर्थ और तप करवा से, क्या किया व्रत और जप करवा से।' यह सब विकल्प और राग का भाग, बन्धन का कारण, संसार फले, उसका यह कारण है। धर्म नहीं। ओहोहो! यह पाप करते हैं, उसकी अपेक्षा निवृत्ति लेकर बैठे, वह तो कुछ चारित्रवाले होंगे या नहीं? प्रभुभाई! हें रतिभाई! यहाँ भगवान इनकार करते हैं कि बापू! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तेरी प्रभुता ज्ञान चैतन्यबिम्ब में समा गयी है। वे विकल्प उठते हैं, शुभ या अशुभ, हिंसा का भाव अशुभ, दया का भाव शुभ, झूठ का भाव अशुभ—पाप, सत्य बोलने का भाव पुण्य, चोरी करने का भाव पाप, चोरी छोड़ने का भाव / विकल्प पुण्य, विषय सेवन का भाव पाप, विषय से निवृत्त होने का-ब्रह्मचर्य पालने की वृत्ति का भाव पुण्य। परिग्रह रखने का भाव पाप। भानुभाई! यह पैसा संग्रह कर बैठे हो न! ममता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सीढ़ी यह है। ऊपर चढ़ना हो तो नीचे पहला सोपान उतरना कि ऊपर चढ़ने का हो? बस, चढ़ने का यह है। यह राग है, वह धर्म नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह राग है। न हो तो क्या? वह राग रखे नहीं, परन्तु उसका स्वरूप ही राग है। अभी स्वयं ही राग है। न रखे तो कहाँ जाये? पर की अहिंसा पालूँ यह ही राग है। सूक्ष्म बात नहीं इसने कभी सुनी। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में जैन त्यागी होकर गया। चमड़ी उतारकर नमक छिड़का (तो भी) क्रोध न करे, परन्तु दृष्टि

मिथ्या। क्योंकि वह क्रियाकाण्ड करता हूँ, वह मेरा धर्म है। उसमें राग की वासना को धर्म मानता है। आहा! प्रकाशचन्दजी! भारी खलबलाहट।

यहाँ देखो! इस टीका के संस्कृत के शब्द हैं। नौ सौ वर्ष पहले के और उसके भाव दो हजार वर्ष पहले के कुन्दकुन्दाचार्य के। उसके भाव अनादि के सर्वज्ञ कहते आये हैं। वह यह बात कही जाती है। है शब्द? पुस्तक-बुस्तक है या नहीं? नवरंगभाई! क्या कहा? हिंसा का भाव, चोरी का, झूठ का, विषय का, परिग्रह का, इनसे सर्वविरतिरूप—इनसे निर्वृत्य हुआ ऐसे पंच महाव्रत के परिणाम, पंच महाव्रत के भाव वे आस्रव और बन्ध के कारणरूप भाव है। उसमें तल्लीन वृत्तिवाला रहता है। तल्लीन। वह हमारा आचरण और वह हमारा धर्म। वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है।

धर्मी जीव को ज्ञानानन्द चिदानन्द का साक्षात्कार आत्मा का भान होना, आत्मज्ञान होना, वह पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति मेरे स्वरूप में नहीं—ऐसे चैतन्य का भान होकर, चैतन्य का अनुभव होकर और चैतन्य के आनन्द में लीन होकर जो शान्ति और अविकारी दशा प्रगट होती है, वह एक ही मोक्ष का मार्ग और धर्म है। ऐसे धर्मीजीव को ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प आवें सही, परन्तु वह उसे पुण्यबन्धन का कारण जानता है, उसे चारित्र और धर्म नहीं मानता। समझ में आया? बहुत अन्तर परन्तु बहुत अन्तर। बाहर की क्रिया से निवृत्त हुआ और दूसरे की जहाँ दयायें पालन कीं और कुछ किया तो हो गया धर्म। अरे.. भगवान! तूने धर्म की बात सुनी नहीं। धर्म हो तो कहाँ से? परन्तु धर्म किसे कहना? '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा**' (समयसार) चौथी गाथा में आता है न? भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं। अरे.. आत्मा! पंच महाव्रत के भाव, वह राग की कणिका है, वह धर्म नहीं—यह बात तू अनन्त बार कर चुका है, भोग चुका है। इस बात का अनुभव तुझे राग के पंच महाव्रत का हो चुका है, परन्तु उससे पृथक् भगवान चैतन्य आनन्द है, उसकी तूने रुचि, दृष्टि और अनुभव कभी किया नहीं। इसलिए तेरे लिये स्वभाव दुर्लभ हो गया है। समझ में आया? दुनिया जहाँ पाँच महाव्रत पाले... यह तो अभी ठिकाना नहीं अभी तो। वह सब समझने जैसा। बहुत स्पष्ट करें, तब हो।

यहाँ तो कहते हैं कि कदाचित् किसी प्राणी को न मारे ऐसे, एकेन्द्रिय के जीव को, हरितकाय को घात न करूँ, झूठ न बोला जाये, वस्तु में ऐसा हो और ऐसा सत्य (हो), व्यवहारु सत्य, चोरी नहीं, ब्रह्मचर्य वह नौ वाड़ से (पालन करे), इन्द्राणी ऊपर से डिगाने आये और न डिगे, ऐसा ब्रह्मचर्य (पालन करे)। परन्तु वह विषय की निवृत्ति और ब्रह्मचर्य पालन करूँ, ऐसी राग की प्रवृत्ति है। आहाहा! समझ में आया? जिसे जगत और अज्ञानी आत्मायें ऐसा मानते हैं कि यह तो चारित्र पालते हैं, यह तो व्रत पालते हैं। वह सब चारित्र नहीं परन्तु अचारित्र और अव्रत है। समझ में आया?

सम्यक् योगनिग्रह जिनका लक्षण है (-योग का बराबर निरोध करना, जिनका लक्षण है) ऐसी गुप्तियों में अत्यन्त उद्योग रखते हैं,... क्या कहते हैं? हम गुप्ति पालते हैं, ऐसा कहते हैं। पाँच समिति और तीन गुप्ति आती है न? हम मन, वचन और काया को गोपते हैं। बाहर में प्रवृत्ति नहीं जाने देते। ऐसे अशुभभाव होने नहीं देते। गोपना है अशुभ को परन्तु होता है अन्दर शुभराग। मन को, वचन को अशुभ में से वापस मोड़ने से जिसे व्यवहार गुप्ति कहते हैं, उसमें तो शुभभाव का विकल्प है। वासना-राग की गन्ध है। उसे अज्ञानी आत्मा के गुप्तिरूप संवर और निर्जरा का कारण, शान्ति का कारण मानता है। वह सब व्यवहार के अवलम्बी मिथ्यादृष्टि और पापदृष्टि हैं। दृष्टि में बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। समझ में आया? परन्तु बहुत अन्तर। पहले यह गले उतरना कठिन पड़े। इतना तो बेचारे करके... परन्तु क्या किया इतना अर्थात्?

चैतन्य ज्ञानप्रकाश का पुंज प्रभु आत्मा तो है। अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। उस ज्ञान को अन्तर में पकड़े बिना ऐसी जो वृत्तियाँ उठे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की, समस्त पुण्यभाव है। सब संसार भाग है। सब यहीं का यहीं संसार फले, ऐसी वह कारण दशा है। समझ में आया? कहा नहीं था एक बार? (संवत्) २०१६ के वर्ष में जब तोरी गये वहाँ। अगाध नाम का पुस्तक... किसान होंगे स्वामी नारायण (को माननेवाले)। दिन में व्याख्यान हो गया। यह तोरी... तोरी यहाँ है न? व्याख्यान हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तोरी में आये थे। यह रतिभाई आये थे, कहाँ गये? चले गये होंगे। वे आये थे पोरबन्दर। रतिभाई आये थे न? आये थे वहाँ। २०१६ के वर्ष में गये और दोपहर में व्याख्यान हुआ। लोग तो बहुत आवे। नाम प्रसिद्ध है, इसलिए लोग तो उपाश्रय में समाये नहीं इतने। वे किसान बेचारे जंगल में। रात्रि में आये, महाराज! हमारे पास एक पुस्तक है—अगाधगति। उसमें क्या लिखा है, यह खबर पड़ती नहीं। पढ़ा तो बहुत। उसमें ऐसा लिखा है। कहा, पढ़ो। रात्रि में आये थे। हम दिन में रह गये, हों! उसमें ऐसा लिखा हुआ कि यह जितने दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति, नामभक्ति, भगवान का जप जितने भाव हों, उनका फल संसार है। उनके फल में कहीं धर्म और मुक्ति नहीं है। बहुत लिखा हुआ, बहुत बोल लिखे हुए। समझ में आया? यह क्या कहते हैं?

कहा, यह कहते हैं कि यह सब राग का भाग है। उसमें आत्मा का धर्म नहीं है। अरे! हम तो कितनी बार पढ़ते। अगाधगति नाम का पुस्तक। परन्तु हमको तो इसका अर्थ (आवे नहीं)। इसका फल यहाँ है, इसका फल यहाँ है, इसका फल यहाँ है, उसमें बहुत लिखा हुआ। यहाँ अर्थात् यहाँ का यहाँ मिलेगा। उसमें आत्मा को लाभ मिलेगा नहीं। पण्डितजी! एक पुस्तक थी। समझ में आया?

पंच महाव्रत के परिणाम आत्मा में अहिंसा, सत्य, अचौर्य के (परिणाम) वे भी आस्रव मलिन विकार है, मैल है। जैसे पानी में काई है, वैसे भगवान आत्मा में वह वृत्ति उठे, वह भी एक काई है। आहाहा! यह तो सब साधारण प्राणी बेचारे कुछ करके... जय महाराज! जय चारित्र! वह तो चारित्र के पालनेवाले, बापू! पंच महाव्रत के पालनेवाले। पंच महाव्रत अर्थात् राग और राग अर्थात् मलिनभाव। मलिनभाव अर्थात् पुण्यबन्ध का कारण। उसे पालनेवाले अर्थात् आत्मा को टालनेवाले। समझ में आया? ऐ... समझ में आता है या नहीं? ऐई... मणिभाई! हरिभाई हैं या नहीं साथ में? देखो, यह समझने जैसी बात है। जय नारायण! वाडा में पड़े और जय भगवान! कुछ खबर नहीं होती। बनिया व्यापार करने में तो छोटी-बड़ी चाबियाँ निकाले अन्दर से। ऐसा है और वैसा है और यह पैसा हुआ और धूल हुई और पाँच करोड़ हुए और दो करोड़ हुए और पाँच करोड़ हुए। धूल में है अब, सुन न! यह तो पूर्व के पुण्य के कारण धूल आती

है और जाती है। उसमें तेरी चतुराई वहाँ काम करती थी? जिसमें चतुराई काम करना चाहिए, धर्म की परीक्षा, उस परीक्षा की खबर नहीं होती। पाँच महाव्रत जहाँ पाले, वहाँ ... आहाहा! यह हमारे गुरु। जय महाराज! ... ऐ... भानुभाई! कहते हैं, अरे! तुझे चारित्र की दशा कैसी होती है और वह श्रद्धावन्त कैसा होता है, इसकी तुझे खबर ही नहीं।

यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ देवाधिदेव जैन परमेश्वर सर्वज्ञदेव एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखे, वे भगवान फरमाते हैं कि तेरे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का भाव, वह सब पुण्य और आस्रव और बन्ध का कारण है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का भाव, वह पापास्रव और बन्ध का कारण है। यह पुण्यास्रव और बन्ध का कारण है। परन्तु दोनों बन्ध के कारण और दोनों धर्म नहीं। गजब व्याख्या धर्म की, भाई! वीतराग के घर की सुनने को भी मिले नहीं कभी। ऐसे के ऐसे वर्ष गँवाये कितने ही। भानुभाई! जय नारायण! त्वमेव सच्चं... मा हणो, मा हणो, मा हणो यह जिनवाणी पाठ। वे कहे, आहाहा! यहाँ कहते हैं कि मा हणो, मा हणो, (यह) तेरा भाव वह भी राग है। ज्ञानस्वरूप भगवान में वह वृत्ति का उत्थान राग का होता है। उसे तू चारित्र मान और उसे तू धर्म मान (तो) बड़ी पापदृष्टि अनन्त संसार की वृद्धि का कारण है। समझ में आया?

पश्चात् पाँच समिति। ईर्या—देखकर चलना, ऐसे देखकर। किसी जीव को दुःख न हो, वह भी राग का भाग है। पुण्यभाग है। भाषा विचारकर बोलना। वह भी एक राग भाग पुण्यास्रव। चारित्र नहीं। निर्दोष आहार-पानी लेना। उसके लिये बनाया हुआ न ले, ऐसा भाव भी पुण्यास्रव और अधर्म है। और अधर्म आया। जरा कठिन पड़े। पुण्य कहते थे, वहाँ तक दिक्कत नहीं, परन्तु धर्म से विरुद्ध, वह अधर्म। आहाहा! समझ में आया? ऐषणा—अपने शरीर के निभाव के लिये, अपने लिये नहीं बनाये हुए ऐसे आहार को नग्न-दिगम्बर मुनि हों, जंगल में बसते हों और ऐसी ऐषणा से आहार लेते हों, तो भी वह राग का भाग है। पुण्यास्रव है। चारित्र नहीं। राग से अन्दर पृथक् होकर आनन्दकन्द में लीन हो और आत्मा की शान्ति का अन्तर अनुभव और वेदन करे, तब उसे सम्यग्दर्शन और चारित्र होता है। इसके बिना सम्यग्दर्शन और चारित्र होता नहीं।

इसके बिना सम्यग्दर्शन, चारित्र नहीं होता। यहाँ तो प्ररूपित करे कि यह पालो तो धर्म होगा, मुझे और तुमको दोनों को। मिथ्या पापदृष्टि का सेवन अनन्त काल से चैतन्य को भूलकर करता आया है।

आदाननिक्षेप। वस्तु को देखकर रखे। लेने-रखने में ध्यान रखना। परन्तु वह भी एक राग है। **उत्सर्ग।** शरीर की चीज़ आदि कोई छोड़ देना। विष्टा, पेशाब विसर्जन करते हुए ध्यान रखना, वह भी राग है। ऐसे **प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ते हैं,...** अत्यन्त जोड़ता है। उसमें ही उसके राग में लीनता है। व्यवहारावलम्बी है, निश्चय का भान उसे है नहीं। सनातन सत्य भगवान आत्मा जो आनन्द से भरपूर प्रभु, उसके स्पर्श को करता नहीं और ऐसी क्रियाकाण्ड के राग को वह चारित्र मान बैठा है। समझ में आया? यह चारित्र की व्याख्या हुई। चन्दुभाई!

अब अज्ञानी तप करने लगे। **अनशन...** आज मेरे एक अपवास, दो अपवास, पाँच अपवास, पच्चीस अपवास करे, वह भी राग का भाग है। आहार को खाने की वृत्ति, वह पाप, शरीर को पोषण करने की। और आहार करना नहीं दो दिन, पाँच दिन, पन्द्रह दिन, महीना वह भी अनशन (अर्थात्) अशन का अभाव, ऐसी वृत्ति उठे वह भी एक शुभराग है। उस शुभराग को वह तप मानता है। यह तो अभी बीत गयी। कल नहीं? तीज। चारों ओर धमाल होती होगी, महिलाओं ने वर्षीतप किये होंगे तो। ओहोहो! पति पागल, लड़के पागल। ऐई! भानुभाई! पैसा प्रमाण वापस खर्च करना चाहिए। उत्सव करना चाहिए। नहीं तो लंघन की थी यह? ऐसा बोले महिलायें अन्दर में। लोग मरे न? हाथ चले नहीं महिलाओं का तो ऐसा महिलायें बोले अन्दर, लकड़ी टूटी है यह? हाथ क्यों नहीं उठता मातम। ऐसा ले। ...तप की क्रिया में राग की मन्दता हो और उसका महोत्सव कुछ करे तब उसका तप हुआ कहलाये। मातम है, बापू! तुझे धर्म का भान नहीं।

मुमुक्षु : कुछ न करे उसकी अपेक्षा...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... इसका उत्तर मिलेगा। क्या करता है यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, तप ही नहीं। यह मूढ़ मानता है। फोड़े को निरोगता मानता है। आहार न करने की वृत्ति भी एक पुण्य राग का फोड़ा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म-बर्म नहीं। वह भी राग घटाने के लिये करे तो। मान के लिये करे, इज्जत के लिये करे और हमारे अपवास हुए, यह महोत्सव न करो तो हमारा लंघन कहलाये, ऐसे भाव से करे तो वह सब पाप है। समझ में आया? और उसका पति इस कारण से करे... अपने पचास लाख के, साठ लाख के आसामी कहलाते हैं और पत्नी ने अपवास किये, शास्त्र के हिसाब से तो सब लंघन है, इसने अपवास किये और यदि पाँच-पच्चीस हजार न खर्च करें तो पूरा कुटुम्ब कुचाला (उपहास) करेगा। कहाँ सुलगे? तुम्हारे पास साठ लाख पड़े हैं और कुछ नहीं? यह स्त्री ने लंघन किया। चारों ओर के झपाटा बजेंगे। चल भाई खर्च करते हैं, इसके लिये खर्च करने का भाव भी पाप है। परन्तु राग की मन्दता के भाव से कदाचित् करे तो भी वह पुण्य है, धर्म तो नहीं। बापू! धर्म की चीज़ कोई दूसरी है। अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी धर्म नहीं किया। समझ में आया?

अनन्त-अनन्त काल हुआ। ऐसा अनन्त बार कर चुका है, हों! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' अनन्त बार कर चुका आत्मा। पाप भी कर चुका और ऐसे पुण्य भी कर चुका। परन्तु उस पुण्य के पीछे भगवान चिदानन्द विराजता है, उसकी दृष्टि और अनुभव कभी किया नहीं। और उसके बिना कहीं जन्म-मरण का अन्त और कर्म का क्षपण हो, यह तीन काल में नहीं होता।

अनशन, अवमौदर्य,... दो ग्रास कम खाना, चार ग्रास कम खाना। एक व्यक्ति ने प्रश्न पूछा था, महाराज! तीन रोटियाँ खावें तो पाप और दो रोटियाँ खावें तो धर्म हो जाये न? अभी प्रश्न किया था। समझ में आया? कहीं का व्यक्ति था। परन्तु रोटियाँ कौन खाये? वह तो जड़ की क्रिया है। यह मुँह (थोबड़ा) हिले, वह तो मिट्टी है। वह कहाँ आत्मा था? आत्मा तो अन्दर ज्ञानप्रकाश का पुंज आत्मा। वह राग करे कि मैंने खाया,

मैंने छोड़ा। वह राग करे। वह जड़ की क्रिया अज्ञानी भी नहीं कर सकता। वह तो सवेरे बहुत चलता है। सवेरे चलता है या नहीं? परन्तु तत्त्वों की भिन्नता और भिन्नता में रहा हुआ रहस्य क्या है, उसकी इसने अनन्त काल में खबर नहीं ली। दो ग्रास कम, चार ग्रास कम, वह धर्म नहीं। वह तो पुण्य की वृत्ति का शुभभाव है।

वृत्तिपरिसंख्यान... अमुक घर में ही लेना, अमुक गली में ही जाना। ऐसा नियम ले, वह भी एक शुभराग है। **रसपरित्याग...** दूध, दही, खाण्ड, शक्कर, गुड़, पकवान खाना छोड़ दे, वह भी एक शुभराग है, धर्म नहीं। आत्मा आनन्दरस—चिदानन्द है, उसकी दृष्टि में अन्तर में जाकर अनुभव न करे, तब तक ऐसे रस के त्याग के भाग को भी शुभ परिणाम और आस्रव कहते हैं।

विविक्तशय्यासन... जहाँ स्त्री, पशु, नपुसंक रहते हों, वहाँ न रहे। एकान्त में रहे—ऐसी भी वृत्ति, उसे पुण्यास्रव और राग कहते हैं। **और कायक्लेश...** अपवास आदि करके, आसन लगाकर शरीर में बहुत कष्ट करे, उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य होता है। उसे तप नहीं कहा जाता। उसमें **सतत् उत्साहित रहते हैं,...** निरन्तर। अपवास करूँ, दुकान छोड़ूँ, यह करूँ। परन्तु आत्मा में पर का ग्रहण-त्याग है ही नहीं तीन काल में। आत्मा ने पर को कहीं पकड़ा नहीं। वह तो ज्ञानमूर्ति आत्मा पकड़े किसे? मान्यता में राग करे और विकार करे। उसने कहीं परवस्तु पकड़ी नहीं कि उसे छोड़ना है। उसने पकड़ा है कि यह मैंने छोड़ा और यह मैंने रखा, ऐसा मिथ्यात्वभाव। उस मिथ्यात्वभाव को अन्तर आत्मा के भान द्वारा छूट सकता है। बाकी दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है। समझ में आया इसमें कुछ?

यह तप... तप। तब वे बातें करे। अरे! महावीर भगवान ने तपस्यायें की थीं, वे मुफ्त में कर्म नहीं गले थे। चैन से खाया नहीं, पानी करके पानी पीया नहीं, सुख से सोये नहीं। तब वे कहे, हाँ। तब दुःखी होंगे उस समय भगवान? अरे! सुन न! अभी तुझे सुख से सोये नहीं, अन्न खाया नहीं और पानी पीया नहीं। वर्षीतप नहीं परन्तु यह माने, ऐसा नहीं। वह आता है, देखो तो सही। वह बात आती है। वह बात मिलाते हैं और वे कहें, हाँ, हाँ! बापू! तब बारह वर्ष तक तप किया, तब केवलज्ञान को प्राप्त हुए। बातें करे कि तप से धर्म नहीं होता। अरे! सुन न! भगवान ने ऐसे तप नहीं किये थे।

उन्होंने तो आनन्दमूर्ति प्रभु चैतन्य को अन्दर में पकड़कर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष इच्छा उत्पन्न नहीं हुई और आहार नहीं आया, उसे लोग तप कहते हैं। यहाँ इच्छा उत्पन्न नहीं हुई और आनन्द के, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की लहजत में, वह इच्छा ही उत्पन्न नहीं हुई। ऐसी आनन्द की दशा की ओपित दशा को भगवान तप और तपस्या कहने में आता है। अरे! व्याख्या भी (अलग)। कहाँ तप, यह तो लंघन है सब। यह तो अनादि काल का... अभी की तो बात भी कहाँ है।

अनन्त बार ऐसे शुभराग किये, उसने बारह-बारह महीने के अपवास, बारह-बारह महीने के अपवास। यह अपवास; उपवास नहीं। उपवास अर्थात्? आहार तो उसके काल में नहीं आता, इच्छा की उत्पत्ति नहीं, इतने से नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में आत्मा एकाग्र होने पर अतीन्द्रिय के आनन्द का ऐसा स्वाद आवे कि पूरा जगत रूखा लगे। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की शोभा की दशा अन्तर्मुख होकर प्रगट करे, उसे तप कहा जाता है। दूसरे को लंघन कहने में आता है। ऐ... मगनभाई! कुछ घर में स्त्री ने किया हो और फिर महोत्सव किया हो उसे कठिन लगे ऐसा है यह सब। चीमटी भरे ऐसा। हमारे मोहनभाई हैं या नहीं? नहीं आ सके। ध्रोळवाले नहीं? मोहन रावजी... स्थूल शरीर से ऐसा करे तो मुश्किल शरीर ठीक रहे। एक दिन खाये और एक दिन अपवास। अरे! परन्तु यह कहाँ अपवास है? तुझे खबर नहीं, भाई! समझ में आया?

'आस्रव बन्ध विभाव करूँ लोचिया...' यह तो विकल्प का राग वह आस्रव अर्थात् नये आवरण का कारण। यह विभाव है। 'आस्रव बन्ध विभाव करूँ लोचिया... भूल्यो मिथ्या बात दोष जुं पर भणी' अपनी दृष्टि के दोष में ऐसे विकल्प की वृत्ति को मैं धर्म मानता था, आस्रव मानता था, बन्ध मानता था, विभाव मानता था, विभाव को धर्म का कारण मानता था। प्रभु! मैं भूला था। मुझे भुलानेवाला कोई था नहीं और उस भूलवणी में, राग की करणी में मैं धर्म मानता था, यह मिथ्यात्व भाव था। ऐसा भगत वीतराग के निकट विनती करता है। समझ में आया?

यह अधिकार तो माँगा था, वह अभी आया है। अरे! सुने तो सही! कभी इसे बात कान में पड़े नहीं। वह कब विभाजन करे अन्दर? यह देहादि की क्रिया भिन्न। यह

मिट्टी है, धूल है, माँस, हड्डियाँ अजीव तत्त्व है। इससे आत्मा भिन्न। परन्तु ऐसे पंच महाव्रत और ऐसे तप के विकल्प उठें, उस विकार की वासना से भगवान अन्दर भिन्न है। उसे स्पर्श किये बिना, उसकी दृष्टि किये बिना, उसका अनुभव हुए बिना ऐसे सब तप करे, वे सब संसार खाते है। चार गति में फलेंगे। उन्हें आत्मा का फल आयेगा नहीं। समझ में आया? ओहो!

सतत् उत्साहित रहते हैं, प्रायश्चित्त,... कुछ पाप लगा हो तो कहे, महाराज! एक चुहिया मर गयी, हों! इस जगह यह मर गया। मुझ प्रायश्चित्त दो। वह मानता है कि धर्म करते हैं, प्रायश्चित्त लेते हैं इसलिए (धर्म करते हैं)। वह प्रायश्चित्त भी राग है। सुन न! समझ में आया? यह **विनय...** सच्चे सन्त, गुरु, देव, शास्त्र का विनय करना, वह भी एक पुण्य का भाग है। वह पाप नहीं, परन्तु पुण्य है। आत्मा का अन्दर चिदानन्द अखण्डानन्द प्रभु का विशेष नय अर्थात् ज्ञान करके अन्तर में स्थिर होना, उसे परमार्थ से विनय कहा जाता है। परन्तु यह बाहर का विनय करके माने कि हम (विनय करते हैं)। विनय धर्म का मूल है और उससे धर्म होगा। अरे... भगवान! बाहर के विनय का विकल्प, वह तो पुण्यास्त्रव है। उससे पुण्य बँधेगा और उसमें से उसके फल में फिर यह धूल-बूल यह मिलती है न इन सेठियाओं को (वह मिलेगी)। भानुभाई! क्या मिला तुमको? ममता। धूल भी नहीं। धूल तो कानपुर रह गयी, जहाँ मकान हो वहाँ। हमको यह, ऐसी ममता मिली। उस धूल का मिलना, वह ऐसे राग के फल में पुण्यबन्ध होता है, मिलती है। आत्मा को नुकसान करे। आहाहा! मूलजीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसन्न नहीं होते अन्दर में? लड़का वहाँ धन्धा करे। हम बैठे हैं। निश्चिन्तता से बैठे हैं तो अब दिक्कत नहीं। कमाने की आवश्यकता नहीं। वे कमाते हैं। राग का सन्तोष वर्तता है। राग का, हों! वे कमाते हैं वह ठीक, कमाते हैं वह ठीक। न कमाये तो ठीक न पड़े। ध्यान रखा नहीं। क्यों बराबर कमाया नहीं? इसलिए भले वहाँ न करते हों परन्तु सब डोरी हाथ में हो। पत्र-बत्र लिखकर सब ताजा रखे नाम।

एक सेठिया था तो टेलीफोन यहाँ का यहाँ रखे। निवृत्ति से बैठा था, निवृत्ति

लेकर। दुकान में क्या हुआ? वहाँ क्या हुआ? कुछ निवृत्त नहीं हुआ, सुन न! निवृत्ति लेकर बैठा हो तो राग का भाग पुण्य का है वह। यह तो अभी सभी दुकानें वहाँ चले, उसका व्यवस्थित खाता सवेरे से शाम तक ध्यान रखे। भानुभाई! यह तो वस्तु का स्वरूप है ऐसा। यह तो कहते हैं कि उससे निवृत्त हुआ। मोहनभाई देखो, दुकान पर बैठते हैं या नहीं? ऐई! दोनों भाई कहाँ गये? ऐसा सुना है कि मोहनभाई बराबर दुकान में बैठते हैं। लोहे का तार... अब नहीं जाते होंगे। शरीर निर्बल पड़ गया। कोई कहता, हों! सब बातें हमारे पास बहुत आती है। वह लोहे के सरिया नहीं काँटे वाले? वायर के बाँधने के काँटे। ऐसे हैं और वैसे हैं, भाव याद। सब करे। लड़के करें। लड़के करे तो ठीक है। ऐसा भाव रहे, वह पाप है। धीरुभाई! बराबर होगा? लड़के से हाँ करावे न इसके पिता की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं। परसन्मुख के लक्ष्यवाला, परद्रव्य को अनुसरण करनेवाला भाव, उसे राग कहा जाता है। साक्षात् तीन लोक के नाथ परमात्मा समवसरण में विराजते हों, उनका विनय करे, वह राग का भाग पुण्य का है। धर्म नहीं। आहाहा! परन्तु आत्मा स्व वस्तु अखण्डानन्द प्रभु है। उसका अन्तर आश्रय लिये बिना जितना परवस्तु के आश्रय में झुकाव (होता है), वह सब राग है। पाप का राग स्त्री, पुत्र, व्यापार का धन्धे में मुड़े। पुण्य का राग तो विनय देव-शास्त्र-गुरु का (वह) भी राग है। धर्मी को ऐसा राग आये बिना रहता नहीं परन्तु उस राग को पुण्यबन्ध का कारण जाने और धर्म तो रागरहित मेरे स्वरूप में जितनी स्थिरता हो आनन्द में, वह मेरा धर्म। अज्ञानी अभिप्राय में अन्तर मानता है कि यह मेरा धर्म है। हमने तो विनय किया। अब तिर जायेंगे। धूल में भी तिरेंगे नहीं, सुन न! अरे.. अरे! भारी कठिन बातें परन्तु यह।

वस्तु स्थिति चैतन्यप्रभु वह तो ज्ञान का निर्विकल्प कन्द है। यह पुण्य-पाप की वृत्तियाँ उठती हैं वह उसका वर्तमान क्षणिक अपराध है। मूल स्वरूप में नहीं। मूल स्वरूप की दृष्टि छोड़कर और ऐसे पुण्य भाग को विनयादि भाग को कल्याण का कारण माने, वह व्यवहार के अवलम्बी जीव पापदृष्टिवन्त, मिथ्यादृष्टिवन्त, अधर्मदृष्टिवन्त हैं।

उन्हें आत्मा का कुछ धर्म का लाभ होनेवाला नहीं है। समझ में आया? प्रकाशचन्दजी! पण्डितों को कितनों को तो कठिन पड़ जाये अन्दर। कितनों को कहता हूँ, हों! आहाहा! यह बात कहाँ अभी की है? यह तो संस्कृत में हजारों-लाखों वर्ष से, अनादि काल से चली आती है। संस्कृत टीका में है। संस्कृत आती हो, वह भी पढ़ सकता है। क्योंकि इस बात का मूल भेदज्ञान अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी इसने किया नहीं। ऐसे क्रियाकाण्ड के राग के झुकाव की वृत्ति को ही इसने धर्म माना है। और ऐसे तप किये, इसलिए हमको निर्जरा अर्थात् कर्म गलेंगे। धूल में भी नहीं गलेंगे, तेरा काल चला जायेगा। समझ में आया? परन्तु बहुत कठिन बात, भाई! समझ में आया इसमें?

विनय, वैयावृत्य,... यह सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की सेवा। सच्चे की सेवा, हों! वह भाव भी राग है। क्योंकि झुकाव जाता है परसन्मुख के झुकाव में ऐसे जाता है। उस भाग को धर्म नहीं कहा जाता। ऐसा भाव आवे सही, सम्यग्दृष्टि धर्मी को भी (आवे)। परन्तु वह राग को धर्म नहीं मानता। अज्ञानी ऐसा मानता है कि यह अपन सेवा करते हैं, सच्चे सन्त गुरु, देव की सेवा में हमको धर्म होता है। मूढ़ है। कहो, यह दूसरी सेवा-फेवा में क्या होगा यह सब? अरे... भगवान! परन्तु भारी जगत की रीति। कर सकता नहीं, हों! यह बात नहीं। पर का कर सकता नहीं। परन्तु उसके भाव में आवे कि इसकी सेवा करूँ। यह भाव भी एक राग है, पुण्यास्रव और वासना है। यह आत्मा की मूल चीज़ नहीं। इस वासना को मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि अरे! बहुतों की सेवा के भाव किये, अपना तो कल्याण हो जायेगा। नहीं? बहुतों की सेवायें की, बापू! यह सब गरीब नारायण हैं। इनकी अन्तरडी अपने यदि बराबर सरीखी करें तो अपने को लाभ होगा।

अरे... भगवान! सुन तो सही, प्रभु! यह दूसरे आत्माओं को दुःख होना या सुख होना, उनकी कल्पना के कारण उनमें है। कहीं अच्छे संयोग दिये आहार-पानी, इसलिए उसे दुःख मिटा और सुख होता है, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मायें सब चिदानन्द की मूर्ति हैं। उस आनन्द में से हटकर प्रतिकूलता में दुःख है, ऐसा मानता है, वह कल्पना इसके दुःख का रूप है। उस कल्पना के दुःखरूप को यह टाल सके और यह कर सके। दूसरा कर सके नहीं और दूसरा टाल सके नहीं। ओहोहो! बहुत अन्तर,

भाई! अब हमारे करना या नहीं? कहते हैं न, करना क्या? तुम कर कहाँ सकते हो पर की क्रिया? ऐसा भाव आता है, उसकी मर्यादा पुण्य जितनी है, धर्म नहीं। इतनी बात बतलाते हैं। समझ में आया?

इस काल के लोगों के साथ ऐसी बातें करना? ढेबरभाई कल आये थे। भाई! कहते हैं। परन्तु मैं बराबर सो गया था। ढेबरभाई मिलने आये थे। मैं बराबर सवा ग्यारह वहाँ गया और वे यहाँ आये होंगे। उनके साथ बहुत बातें चलती हैं हमारी। बहुत बात। एक बार प्रश्न किया था। (संवत्) २०१५ के वर्ष के नूतन वर्ष में, पौन घण्टे वहाँ आये। सणोसरा गये थे। वह एक नहीं आये थे? क्या कहलाते हैं? विनोबा भावे। सणोसरा। (संवत्) २०१५ के वर्ष की कार्तिक शुक्ल एकम्। वहाँ आये थे। फिर पौन घण्टे आये थे। महाराज! इस शरीर का सदुपयोग कैसे करना? ऐसा प्रश्न किया था। रामजीभाई थे, नाराणभाई थे। क्या कहते हो? कहा। इस शरीर—जड़ का उपयोग आत्मा कर सकता है? यह मिट्टी है। अजीव जगत के तत्त्व हैं। उनके ऐसे हलन-चलन की क्रिया आत्मा कर सकता है, तीन काल-तीन लोक में नहीं। पक्षघात हो तब बहुत इच्छा रहती है। देखो न, एक बहिन को देखते हैं न! आज ही गये थे। सोमचन्द खारा। उनके पुत्र मनुभाई। उनके घर में ऐसी बेचारी वह है। आहाहा! यहाँ से नीचे का सब समाप्त। पक्षघात तो हो मनुष्य को परन्तु ऐसा। या आधा अंग ऐसा, या आधा अंग ऐसा। इसको तो ऐसा पक्षघात यहाँ से, यहाँ से नीचे के अंग की कुछ खबर नहीं होती। कुछ करने से कुछ... यहाँ से यहाँ तक देखो तो बातचीत करे, बोले। आज सवेरे गये थे। सोमचन्दभाई... महाराज! आज के बाद... पहले तीसरे दिन में मैं गया था। महाराज! मुझे क्या करना? बेचारे। पैंतीस वर्ष की, छत्तीस वर्ष की। कितनी उम्र होगी? छोटी होगी। छोटी उम्र। महिला होशियार है, हों! और उसे उत्साह है। इतना डेढ़ वर्ष से परन्तु दीनता उसके मुख में मैं जाऊँ तब नहीं थी। ऐसा मुझे चरणवन्दन करे। महाराज! बहिन! माँ! शरीर की क्रिया आत्मा के अधिकार की नहीं है, हों! आहाहा! इतना नीचे से विष्टा जाये, या पेशाब, उसकी कुछ खबर नहीं। मात्र यहाँ मुख से खा सके। बराबर बोले। पढ़े। यहाँ से इतना सब समाप्त। नीचे कुछ नहीं मिलता। भगवान! एक विचार तो कर, प्रभु!

आत्मा यदि प्रेरक होकर जड़ के काम कर सकता हो तो उस समय करना चाहिए। परन्तु नहीं बैठता। अभिमान इतना हो गया है न!

शरीर के कार्य हिलना-चलना, उससे भगवान भिन्न है। भगवान आत्मा राग करे, तो भी देह के काम नहीं कर सकता और ज्ञान करे तो भी देह के काम नहीं कर सकता। वह जड़ के काम पक्षघात के काल में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। यहाँ खबर भी नहीं पड़ती, हों! अरे! यहाँ पेशाब जाता है या खुराक... कुछ नहीं होता। आहाहा! ऐ! चैतन्य भगवान विराजमान भगवान देह में और देह के कण को बदल नहीं सकता। हाथ-पैर ऊँचे कर नहीं सकता। आहाहा! परन्तु जब करे, तब उसे माने कि मुझसे यह हुआ। बापू! तुझसे हो तो पक्षघात के काल में होता नहीं, इसका कारण यह है कि इसके (जड़ के) कारण होता और इसके कारण रुका है। तेरे कारण से होता नहीं और तेरे कारण से अटका है, ऐसा है नहीं। परन्तु यह अभिमान ऐसा दौड़-धूम में चढ़ा है न! राग के वेग में, विकार के। जँचता नहीं। अरे... परन्तु यह? यह? यह तो बहिन को देखे तब खबर पड़े। मुझे तो अन्दर से... आहाहा! बहिन! आत्मा ज्ञान और आनन्द है, माँ! इसका विचार करना। दूसरा क्या कहें? समझ में आया? यह पैंतीस वर्ष की उम्र जवान। महिला कोमल शरीर की है और बोले-चले होशियार है। बोले उसमें कुछ अन्तर नहीं, जरा भी नहीं। आधे अंगवाले को तोतला-तोतला हो जाये। इसे कुछ नहीं। नीचे से सब अंग समाप्त। यह कहाँ खाता है, इसकी भी खबर नहीं। अन्दर में पेशाब कहाँ जाता है और विष्टा कहाँ जाये?

अरे..! आत्मा इस जड़ का भरोसा करके, मेरे कारण से चले और मेरे कारण से रोग मिटे, मैं ध्यान रखूँ तो शरीर ठीक रहे, यह तेरी दृष्टि महा पाप की है। भानुभाई! यहाँ तो भाई बड़ा रेच है कठोर। यह डॉक्टर-इंजेक्शन नहीं देते? रतिभाई! यह इंजेक्शन दे, हों! यहाँ घुसावे और यहाँ घुसावे। दो-तीन बार देखा न! वह चिटनीस आता था न? एक यहाँ घुसावे और एक यहाँ घुसावे। मोतिया उतारने के लिये। मनसुखभाई के, मनसुखलाल ताराचन्द नहीं? लींबडीवाले करोड़पति। मनसुखलाल ताराचन्द। यह अठारह लाख का बनाते हैं न अभी। सुरेन्द्रनगर में वह क्या कहलाता है? आँख का

बड़ा। उसे कहा था, क्या करते हो तुम ? धूल। करोड़ रुपये मेरे पास हुए, ऐसे हुए। धूल भी हुई नहीं अब। वह तो पूर्व के पुण्य के रजकण फले तब आये। तुमने क्या किया ? धूल करे। यह राग वर्तमान करते हो कि इसका कर दूँ और इसका कर दूँ। वह भी पुण्य है, धर्म नहीं। अब उसे लगता है कि बात तो यह सच्ची लगती है। अभी तक तो मानो... और डॉक्टरों को बहुत ऐसा होता है, ओनरेरी काम करे और सेवा करते हैं, हमें तो दो लाभ, सेवा का लाभ मिलता है और पैसा भी मिलता है। रतिलालभाई!

अरे.. भगवान! प्रभु! तू कहाँ है ? और तेरे कार्यक्षेत्र की मर्यादा कितनी है ? यह तुझे तेरी खबर नहीं, बापू! यह शरीर मिट्टी के काम वह मिट्टी का पुतला, उसमें रोग हो, निरोग हो, हिले, चले, गति हो, रुक जाये वे सब कार्य जड़ के हैं। आत्मा का वह कार्य किंचित् तीन काल में नहीं। आहाहा! अभी इसका बैठे नहीं, उसे उस पुण्य का भाव यह दया, दान और यह। तप का भाव, वह पुण्य है; धर्म नहीं... आहाहा! यह तो गले उतरना (कठिन पड़े)। प्रकाशचन्दजी! अभी यह बड़े लोथ हैं, यह बड़ी लोथ मेरे कारण चलती है। अरे... भगवान! यह पक्षघात तब यह ऐसे-ऐसे होगा। दूसरा हाथ ऐसे-ऐसे करे तब होगा। वह तो जड़ की पर्याय है। पर्याय अर्थात् हालत; हालत अर्थात् कार्य; कार्य अर्थात् उसका काम। परन्तु कैसे जँचे ? यह सुना नहीं, विचार नहीं किया। समझ में आया ? ऐसे पक्षघात के केस देखो तो जरा खबर पड़े। आहाहा! क्या हो ? कैसे करना ? क्या करें ? माता! आत्मा ज्ञान और आनन्द है। उस ज्ञान और आनन्द की नजर करो, बापू! दूसरा कुछ यह आत्मा पर का करे, यह वस्तु में नहीं है। परन्तु यह रोग आवे, तब ऐसा (नहीं कर सकता)। परन्तु निरोगता थी तब तो हम कर सकते थे न ऐसी धमाधम ? हराम कर सकता हो तो, यह देह की अँगुली और (आँख की) पलक ऊँची-नीची होती है, यह पलक के ऊँचे-नीचे के काम आत्मा अज्ञानभाव से माने। कर नहीं सकता तीन काल में। यह बात सवेरे बहुत आती है। समझ में आया ?

अब इसकी दृष्टि कहते हैं कि यह तपस्यायें करना और महाव्रत पालना, यह सब राग। यह तो कठिन, कठिन, बहुत कठिन। बड़े मानधाता जब शास्त्र के पढ़े हुए हों न, उन्हें भी ऐसा कहे कि यह राग। और इसमें धर्म मान तो मूढ़, मिथ्यादृष्टि, पापी है।

कठिन पड़े, हों! नमक छिड़ककर कोड़ा मारे सामने... खार समझे? खार छांटे न। सामने कोड़ा मारे, ऐसा यह लगे ऐसा है। मानता है कि मुफ्त का इसलिए लगता है। इसे तो नरमाई लगना चाहिए। अरे! हम तो आत्मा हैं न, हमारे क्षेत्र में हमारी सत्ता में हमारे काम अज्ञान के या राग-द्वेष के हों। बाकी राग-द्वेष और अज्ञान टालकर स्वभाव में आवें, इतना कार्य कर सकते हैं। पर के क्षेत्र में कहीं तीन काल तीन लोक में कर सकें, यह बात वस्तु के स्वभाव में नहीं है। भगवान ने देखी नहीं, भगवान ने कही नहीं, ऐसी होती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, आहाहा! यह **वैयावृत्य,...** यह तो वैयावृत्य शब्द आया न इसलिए जरा लम्बाया। पुरुषोत्तमभाई! बहुत सेवाभावी जीव होते हैं न! उन्हें ऐसा हो जाता है, अपने बहुत सेवा की, बहुत सेवा की। एक व्यक्ति मरता था। महाराज! मुझे कुछ त्याग कराओ। तुम्हारे त्याग? तुमने तो बहुत सेवायें की हैं, बहुत परोपकार किया। अब तुम्हारे नहीं। धूल का भी किया नहीं। सुन न! किसका परोपकार तू कहता है? क्या पर के कार्य आत्मा कर सकता है? सुख-दुःख के टालने के लिये संयोगी चीज़ वहाँ जाये, वह तेरे अधिकार की बात है? विकल्प आवे तुझे, राग आवे। परन्तु इसके खातिर तू जीव की सेवा कर देता है और दूसरे को दुःख से टालकर सुखी कर सकता हूँ, यह तेरी भ्रमणा के भरोसे चढ़ा हुआ आत्मा को भूल गया है। समझ में आया? चन्दुभाई! क्या होगा यह? अभी हा... हो और हरिफाई की दुनिया में ऐसी बातें सभा में रखना! परन्तु यह त्रिकाल सत्य है। तेरी मान्यता असत्य की लाखों, करोड़ों माने तो क्या हुआ? वस्तु का स्वरूप सत्य इस प्रकार से है। ऐसा उसे न माने और ऐसी सेवा आदि के भाव को धर्म माने, पुण्य है। पाप के भाव न हो, पुण्य है। प्रवीणभाई! बराबर होगा यह? वह गारियाधार गये थे घूमने और वह तो यहाँ दुकान ठीक चलती है। इंजेक्शन लेने गये थे न? यह क्या कहलाता है अभी? बस्ती न उपजे और कुछ कहते हैं न? वहाँ गये थे। गारियाधार है न। हमारे एक साथ में। प्रवीणभाई। यह चत्रभुज वकील के पुत्र के पुत्र। अमेरली। वह तो हमारे पुराने परिचित हैं। घोडिया में सोते थे, तब से मैंने उन्हें देखा है। (संवत्) १९८६ के वर्ष में। ८६ के वर्ष में उनका जन्म है। घोडिया में सोते थे और हम

आहार लेने गये थे। इतने वर्ष हुए। कितने हुए? ३२ हुए ३२। ३२ हुए न? खबर है न सब ठेठ की। समझ में आया?

अरे.. भगवान! तू कौन है और किसकी सेवा करने-प्रयासरत हुआ? तब हमारे नहीं करना? परन्तु वह तो देह की क्रिया होने की हो तो होती है। राग भाग आवे, परन्तु वह राग पुण्य का कारण है, आत्मा के कल्याण के लिये वह चीज़ नहीं है, ऐसी मान्यता न करे तो वह दृष्टि के पाप को सेवन करता है। भारी भाई! यह राजकोट जैसे शहर में और यह सब सुधरे हुए में यह बात रखना! दयाशंकरभाई कहते। दयाशंकरभाई नहीं यह? जूनागढ़वाले वकील। यहाँ अपने थे न प्रधानरूप से यहाँ रहते थे। अठारह दिन रह गये थे, सोनगढ़। दस वर्ष पहले, बारह वर्ष पहले। बहुत चर्चा। बात सौ के सौ प्रतिशत जैसी सच्ची है। परन्तु जगत के सामने तो यह बड़ा झगड़ा है। समझ में आया?

कुछ परिचय करे, विचार करे तो उसके तत्त्व की मर्यादा और जड़ तत्त्व की मर्यादा में भिन्नता है। भिन्न के काम भिन्न करे, वह तो नहीं, तो तूने क्या किया पर का? तुझे सेवा का भाव आया। वह भाव परसन्मुख के लक्ष्यवाला है, पुण्यबन्ध का कारण है। पुण्यबन्ध का। स्त्री, पुत्र को रखने का भाव या पैसा रखने का भाव पाप। यह भाव पुण्य है। परन्तु है तो दोनों बन्ध के कारण। उसमें धर्म का कारण एक भी नहीं है। समझ में आया?

पश्चात् **व्युत्सर्ग...** कायोत्सर्ग... आता है न? किया है या नहीं कण्ठस्थ? ...परन्तु क्या... काय ठाणेन? यह काया तो जड़ है। उसे क्या तू ऐसा कर सकता है? वह तो जड़ है। उसमें विकल्प उठा जरा कि ऐसे स्थिर होऊँ। वह विकल्प उठा, वह राग है, पुण्य है; धर्म नहीं, उसका नाम कायोत्सर्ग नहीं। कायोत्सर्ग तो उसे कहते हैं कि देह के और पर के काम मैं कर नहीं सकता, ऐसा भान। और राग उठता है, वह विकल्प करूँ, वह भी पुण्यबन्ध का कारण, वह मेरा कर्तव्य नहीं। मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप में स्थिर होऊँ तो राग और पर से छूट होकर स्वरूप में रमे, आनन्द में ऐसी दशा को भगवान कायोत्सर्ग कहते हैं। ऐसे हाथ से नहीं। यह हाथ तो जड़ है, यह तो मिट्टी है। मरने के समय नहीं करते? मर जाये, फिर ऐसे दो हाथ रखे। यह तो... ऐसे समरूप न रहे उस

समय। फिर डोरा बाँधे। यहाँ डोरी बाँधे न? समरूप ऐसे बाँधने के लिये। यह मुर्दा बापू! जीवित मुर्दा। भगवान! तेरी चैतन्य की जागृत जात, उससे यह जात पृथक् काम करती है। यह काम मेरे कार्य हैं, यह वस्तु में नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, मैंने शरीर द्वारा कायोत्सर्ग किया। मूढ़ है। और उसकी वृत्ति उठना पुण्य है। समझ में आया? **स्वाध्याय...** शास्त्र का स्वाध्याय। ऐई! चन्दुभाई! शास्त्र पढ़ना, उसके प्रश्न पूछना, उसके उत्तर देना, यह सब पुण्यभाव है। धर्म नहीं। स्व अध्याय में धर्म है। चैतन्य ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा में एकाकार होकर स्व का अन्तर ज्ञान और आनन्द करे, उसे वास्तविक स्वाध्याय और उसे धर्म कहने में आता है। यह वाँचन करना और प्रश्नोत्तर करना, वह मानो धर्म है—ऐसा नहीं है। बात में बहुत अन्तर, भाई! 'आणंदा कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे न मळे ने एक त्रांबियाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि बात-बात में जगत के साथ हमारे अन्तर है। समझ में आया इसमें?

स्वाध्याय और ध्यान... यह ध्यान। ऐसा ध्यान करता हूँ, ध्यान करता हूँ, ध्यान करता हूँ, यह राग है, विकल्प है, आत्मा नहीं, धर्म नहीं। समझ में आया? मैं तो बस ध्यान करूँ। आँख बन्द करके... बाद में अभी कहेंगे। निश्चय अधिकार कहेंगे तब। यह भी राग है। इस राग का ख्याल आता है, यह कहीं वस्तु नहीं है। ध्यान अज्ञानी का। ऐसे एकाग्र होकर बैठे और माने कि हम कुछ ध्यान करते हैं। उस विकल्प को ध्यान माने, वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : शुभराग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभराग कहो या पुण्य कहो या राग कहो, सब एक ही है। ध्यान में शुभराग उठे वह....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान कहाँ था? सम्यग्दर्शन बिना ध्यान नहीं हो सकता। क्या कहा? सम्यक् अर्थात् आत्मा राग से निराला है, उसके अनुभव बिना एकाग्रता कहाँ करना, इसकी तो खबर नहीं। किसका ध्यान करेगा? समझ में आया? अभी चीज़ कौन

है ? विकार कौन है ? उसका भेदज्ञान किया नहीं और ध्यान करने बैठे और विकल्प में धर्मध्यान माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। वह व्यवहारावलम्बी जीव है। उसे सब खबर हो अन्दर में, हों! कि ऐसा करता हूँ, ऐसा करता हूँ। सामान्य चैतन्यमूर्ति एकरूप है, उसका ध्यान अधिक काल टिक नहीं सकता, इसलिए उसमें दूसरे विचार आया करते हैं और उसे ध्यान माने, मिथ्या भ्रम है। कठिन बात भाई! ध्यान तक के राग को...

ऐसे **परिकर द्वारा...** ऐसी सब सामग्रियों में। समूह, सामग्री द्वारा **निज अन्तःकरण को अंकुशित रखते हैं;...** अन्तःकरण को अशुभ में जाने नहीं देता। परन्तु ऐसे जो पंच महाव्रत, तप के भाव, ऐसे शुभभाव से आत्मा को अशुभ से विमुख करना, वह पुण्यबन्ध का कारण है। उसे धर्म माननेवाले अनादि काल के मानते आये हैं। उन्हें भटकने का अभिप्राय है। आत्मा उनसे पृथक् है, उसका भेदज्ञान किया नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वैशाख शुक्ल ५, मंगलवार, दिनांक - ०८-०५-१९६२, गाथा-१७२, प्रवचन-१२

.... इसमें अन्तिम गाथा। १७३ है, उसमें सार में यह अन्तिम गाथा है। निश्चय और व्यवहार की सन्धि और असन्धि का यह अधिकार है। अर्थात् क्या?

यह आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप इसका त्रिकाल सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध है। इसके ज्ञान की जो अन्तर क्रिया, ज्ञान में ज्ञान को एकाग्र करके शुद्ध निर्विकारी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की दशा प्रगट करना, वह निश्चय अर्थात् सत्य मोक्ष का पन्थ है। समझ में आया? क्या इसमें अता-पता हाथ आवे बाहर में कहीं? इसलिए यहाँ व्यवहारावलम्बी जीव की बात ली है।

भगवान आत्मा ज्ञान के प्रकाश के स्वभाव के बेहद शक्तिरूप मूर्ति आत्मा है। उसके अन्तर में ज्ञान को अन्तर खोलने में, ज्ञान को अन्तर खोलने में राग और ज्ञान, राग की जो दशा होती है, दया, दान, व्रतादि के विकल्प राग और ज्ञान, उन दोनों की अनादि की जो एकता (बुद्धि) है, वह संसार, वह मिथ्यात्व, वह अज्ञान, यह भ्रमणा है। वह राग और ज्ञानमूर्ति त्रिकाल चैतन्यप्रभु और राग विकल्प मलिन, फिर दया, दान या व्रत शुभ आदि चाहे जो हो। दो की भिन्नता भासित हुए बिना, राग से पृथक् चैतन्यमूर्ति अनादि-अनन्त ज्ञायकभाव से विराजमान है। ऐसा अन्दर भान किये बिना अकेले दया, दान, व्रत, तप, जप के भाव को शुभ को करे और वे मेरे कल्याण के साधन और धर्म के साधन हैं, ऐसा माने, वह जीव आत्मा की भ्रमणा में पड़ा हुआ है। उसे धर्म नहीं होता। समझ में आया?

यह निश्चय अर्थात् कि सत्य। अर्थात् कि त्रिकाल चैतन्य के प्रकाश के अन्दर एकाग्रता करने से जो निर्मल वीतरागी, अविकारी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति की रमणतारूप दशा होती है, वह सत्य धर्म और सत्य मोक्ष का मार्ग है। उसे प्रगट किये बिना, उसके भान के प्रयत्न और परायण बिना मात्र शास्त्र का स्वाध्याय करे, शास्त्र कहे वैसे तत्त्वों को माने और शास्त्र कहे वैसे व्यवहार पंच महाव्रत के भाव पाले, करे, उसे धर्म माने, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। कल पंच महाव्रत का आया था। तुम नहीं थे। कल थे? आज सवेरे नहीं थे। समझ में आया? पूछते थे।

अरे... प्रभु! तेरी प्रभुता तो निर्लेप, निर्विकार रागरहित चैतन्यद्रव्य तत्त्व स्वभाव पड़ा है। ऐसे स्वभाव की अन्तर्मुख दृष्टि, अन्तर्मुख दृष्टि; बहिर्मुख... राग, दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, जप आदि का राग वह बहिर्मुख वृत्ति है, पुण्यबन्ध का कारण है। उससे हटकर ज्ञानानन्द भगवान में एकाकार होकर, राग से हटकर चैतन्य भगवान की शक्ति में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दृष्टा, अनन्त वीर्य यह सत्त्व में अन्दर पड़ा है, उसमें एकाकार होकर शुद्ध आत्मा के आनन्द के वेदन के अंश को प्रगट न करे और यह सब महाव्रत पाले, अहिंसा पाले, अचौर्य पाले, ब्रह्मचर्य शरीर का पाले, स्त्री का त्याग करे, वह सब भाव बन्ध के कारण हैं और पुण्य हैं। उनमें आत्मा को कुछ धर्म-बर्म है नहीं। समझ में आया?

अब अपने यहाँ तक आया है। स्वाध्याय करे, तप करे, यह सब आ गया था न कल? अब **वीर्याचरण के लिये...** यहाँ से लिया है। नीचे से छठवीं लाईन। है? २५८ पृष्ठ। इन्हें बताओ भाई। भानुभाई ने वे पुस्तकें बहुत देखी। खबर भी नहीं हो। है? कहाँ है? शब्द क्या है? देखो! ऐसा है, ऐसे नहीं चलता। **वीर्याचरण के लिये...** यहाँ से शुरु होता है। अज्ञानी आत्मा के अविकारी आनन्दकन्द की दृष्टि और अनुभव किये बिना उसका जो वीर्य अर्थात् बल—शक्ति है, वीर्य अर्थात् कि आत्मा की शक्ति जो वीर्य है... वीर्य रेत नहीं शरीर की। आत्मा का अन्दर जो बल है, उसका आचरण करने के लिये अज्ञानी क्या करता है? **कर्मकाण्ड में सर्व शक्ति द्वारा व्यापृत रहते हैं;...** यह दया के भाव, हिंसा को छोड़ने के भाव, सत्य बोलूँ, विचार करूँ, ब्रह्मचर्य पालन करूँ ऐसे अनेक प्रकार के राग। स्वाध्याय करना, तप करना, अपवास करना, ऐसी राग की वृत्ति जो है, वह कर्मकाण्ड है। कर्मकाण्ड अर्थात् यह बन्ध के कारण का भाव है। आहाहा! उस आत्मा के बल को कर्मकाण्ड में सर्व शक्ति, ऐसा वापस। जरा भी स्वरूप के आनन्द में दृष्टि और निर्विकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार छोड़कर अखण्डानन्द प्रभु चिदानन्द की अनुभव की दृष्टि की हो, और फिर जरा पुरुषार्थ में राग की मन्दता के भाव शुभ हों तो वह बन्ध का कारण है और आत्मा की ओर के स्वभाव की एकाग्रता का स्वभाव जितना प्रगट हुआ है, वह मोक्ष का कारण है परन्तु उस अन्तर के स्वभाव को स्पर्श किये बिना उस बल को व्रत पालना और अपवास करना, जप करना और होम करना

और विकल्प में एकाकार होकर जितनी उसकी शक्ति, तत्प्रमाण कर्मकाण्ड में जुड़ गया है।

व्यापृत रहते हैं;... देखो नीचे। रुका हुआ, गूँथा हुआ, तल्लीन, मग्न। बस, यह करूँ। विकल्प उठे दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप उसमें लवलीन हो गया है, वह मूढ़ जीव है, उसे राग बिना की चीज़ का आत्मज्ञान का भान नहीं। समझ में आया? वैसे तो नरसिंह मेहता ने नहीं कहा? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिहन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी, शुं कर्युं तारा तीर्थ ने तप ने जप करवा थकी?' यह भगवान की भक्ति और जाप सब थोथा है। शुभराग है। पुरुषोत्तमभाई! समझ में आया?

यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में और सन्तों के हृदय जो अध्यात्म आनन्द में रेलमछेल थे, उनकी वाणी में विकल्प आने पर ऐसा आया, अरे... आत्माओं! क्या है अनादि का तेरा झोंक? तेरे बल को सब क्रियाकाण्ड के शुभभाव में उन्हें लगा दिया है। उसमें धर्म-बर्म जरा भी किंचित् भी है नहीं। बाहर टूट मरे, मर जाये, उसके शरीर में जीर्णता हो, अपवास करे, समझ में आया? हड्डियाँ गल जाये, ऐसे अपवास (करे)। मर जा न, कहते हैं। परन्तु वह सब राग के मन्द की क्रिया, वह धर्म-बर्म है नहीं। जयन्तीभाई!

कहते हैं, जिसने यह सब पुण्यभाव के क्रियाकाण्ड जप, दया, दान, व्रत, व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ऐसी वृत्ति खड़ी की है। उसमें तल्लीन और लीन हो गया है। कैसा है वह? **ऐसा करते हुए कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण...** क्या कहते हैं? वह तो शुभराग है कर्म रागचेतना है, वह कहीं आत्मा के ज्ञान की चेतना और आत्मधर्म नहीं है। समझ में आया? भगवान ज्ञाता-दृष्टा आनन्द का कन्द सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, उसके ऊपर नजर नहीं होती, श्रद्धा नहीं होती, आनन्द का अनुभव नहीं होता और इस राग की क्रिया में कर्मचेतना—रागरूपी भाव शुभ में उसमें चेत गया है, एकाकार हो गया है। उसकी जिसे मुख्यता दृष्टि में है।

यद्यपि... ऐसे शुभभाव में एकाकार होने से **अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त**

निवारण किया है... हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना इत्यादि पाप के परिणाम, पाप के भाव अत्यन्त छूट गये हैं, परन्तु इस पुण्य के भाव में तल्लीन हो गया है। समझ में आया? अशुभकर्मप्रवृत्ति। अशुभकर्मप्रवृत्ति अर्थात् हिंसा के, झूठ के, चोरी के, विषय के,..., खेद के, शोक के, दूसरे को दुःख देने के, मश्करी के भाव, हँसी के ऐसे पापभाव जिसे छूटे हैं। परन्तु **तथापि—शुभकर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है...** परन्तु यह दया, दान, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपवास ऐसी जो वृत्तियाँ शुभ, उन्हें पकड़ रखी है कि यही मेरा कर्तव्य है। समझ में आया? बात भी बहुत... इसने अनन्त काल में इसके चैतन्य का तल, उसके थाह इसने कभी ली नहीं। ऊपर-ऊपर से यह दया, व्रत, भक्ति और जप... जप... जप किया ही करे। बहुत तो अन्दर राग के परिणाम फिरें, धूल है, कहते हैं, वह कहीं मूल धर्म नहीं है। गजब बात, भाई! समझ में आया? उस शुभ परिणाम में बराबर पकड़कर बैठा है। अशुभ से अत्यन्त निवृत्त हुआ है। वह शुभ में पकड़कर बैठा है। वह शुभ और अशुभ दोनों बन्धन के कारण हैं। श्वास उड़ जाये ऐसा है इसमें। भानुभाई! यह सब बनिये और यह सब मानकर ऐसे बैठे हों न, ...आहाहा! क्या हम अहिंसा पालते हैं, अपने दया पालते हैं और बड़ा धर्म करते हैं। धूल में भी धर्म नहीं। सुन न!

मुमुक्षु : दूसरे को....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को बनावे। परन्तु स्वयं हो वैसा बनावे न। अफीमियाँ काठी, जमींदार जो अफीम पीवे, उसे कंसुबो करके लो, लो, ऐसा कहे कंसुबा। चाँदी की राब, बापू! ऐसा करके चढ़ावे उसको। इसी प्रकार अज्ञानी ने शुभभाव के क्रियाकाण्ड में धर्म माना है, दूसरे को कहे, कर न, यह अच्छा धर्म है। और ऐसा करता हो उसे कहे, वाह, वाह, त्यागी! बहुत सरस करता है। उस पाखण्ड को पोषण करता है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! बहुत कठिन बातें परन्तु भाई! बापू! यह सत्य की जीत और सत्य की राह ऐसी है। इसे कभी सुनने को मिला नहीं, इसलिए विचार की धार में इसे चढ़ाया नहीं। धार में चढ़ाया नहीं कि कौन सा भाव धर्म और कौन सा भाव पुण्य है।

यहाँ आचार्य कहते हैं, अरे! **शुभकर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया**

है... बराबर अर्थात् उसमें कहीं अशुभभाव आवे, ऐसा नहीं है। बराबर अहिंसा के भाव, सत्य के भाव, अचौर्य के , ब्रह्मचर्य के, अपरिग्रह के। एक लंगोटी न रखे, ऐसा भाव शुभ। ऐसा शुभ और देखकर चलना, विचारकर बोलना, निर्दोष आहार लेना इत्यादि। उसकी क्रियाकाण्ड में कहीं शुभ में भूल हो, ऐसा नहीं। ऐसे शुभभाव की क्रिया को बराबर ग्रहण किया है। **ऐसे वे...** ऐसे अज्ञानी व्यवहार के क्रियाकाण्ड में धर्म समझनेवाले, माननेवाले **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई...** अशुभभाव, वह तो निवृत हुआ परन्तु शुभ विकल्प के लक्ष्यवाला। कोई ऐसा कहता है कि परन्तु तुम उसे राग कैसे कहते हो? अहिंसा करना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य (पालन करना)... परन्तु बापू! उसका लक्ष्य जाता है पर के ऊपर। वह ज्ञान एकरूप नहीं रहता, ज्ञान चक्कर खाता है। और यह क्या कहा? समझ में आया?

एक बड़ा सोलिसीटर था। उसने बहुत वर्ष पहले पूछा था (संवत्) १९९७ के वर्ष में। पर की दया और सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, देखकर चलना, इसमें राग कहाँ से आया? यह तो आत्मा का ज्ञान है। अरे! सुन न! अशुभभाव पाप के जैसे परलक्ष्य हैं, उसे मारूँ और उसे ऐसा करूँ, ऐसा परलक्षी है; वैसे अहिंसा भी, इसकी दया पालन करूँ, इसको दुःख न दूँ, सत्य बोलूँ वह सब परलक्षी भाव ज्ञान का एकरूप है, ऐसा रहता नहीं। ज्ञान चक्कर खाता है। ऐसे घूमता है, फूदड़ी के तरह फिरता है एकदम। ज्ञान राग में भँवरी खाता है। आहाहा! परन्तु यह किस प्रकार इसे गले (उतरे)? कभी सीढ़ी पकड़ी नहीं, वह रास्ता लिया नहीं। कोर्ट में नये व्यक्ति को जाना पड़े तो कैसे पैसा भरना? किस व्यक्ति के पास... वह क्या कहलाता है? तुम्हारे लिखाते हैं न? रिपोर्ट। प्रार्थनापत्र लिखाते हैं न वे सब शब्द होते हैं न, वे सब वकील बैठे हों, चाय-पानी लेनेवाले उन्हें क्या देना, किसे लेना, क्या कहना? (इसकी खबर न हो)। और बहुत बार भटकाना हो, वह गया हो तो तुरन्त फाट.. फाट ऊपर चढ़कर... ऐई! वकील! यहाँ ऐसा करना, अमुक करना। कुछ डर नहीं। अभ्यास नहीं होता। नया किसान हो तो बेचारा... अब तो डर रहा नहीं। अब तो सब हो गये पावरधा। पहले में ऐसा था। ऐसे किसान को वहाँ जाना हो तो (ऐसा हो) क्या करना यह? ऐसे अज्ञानी को किस कदम जाने से धर्म होगा? और किस कदम से छूटूँ? यह अता-पता हाथ आता नहीं। समझ में आया?

यह यहाँ आचार्य कहते हैं कि अरे... आत्मा! अनादि काल का साधु हुआ, त्यागी हुआ, मुनि हुआ और बारह-बारह महीने के अपवास, बालब्रह्मचारी रहा। हजारों रानियों का त्याग। परन्तु उस हजारों रानियों के त्याग में मैंने ब्रह्मचर्य अंगीकार किया—ऐसा शुभराग, वह क्रिया धर्म की नहीं है। समझ में आया? ऐसे राग की प्रवृत्ति में यद्यपि इसने अशुभराग की वासना घटायी है। परन्तु शुभराग की वासना को बराबर ग्रहण किया है। वह **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई...** परन्तु उस शुभ और अशुभ की विकल्प की वासनायें हैं, उनसे हटकर, उनसे हटकर चैतन्य ज्ञानानन्द समुद्र में इसने कभी डुबकी मारी नहीं। समझ में आया? यह तुम्हारे नहीं यह? देखो न! रास्ते में निकले थे तो कितने ही जाते थे। कहाँ गये? प्रवीणभाई आये हैं या नहीं? वहाँ तुम्हारे तालब-बालब है या क्या है? नहाने जाते हैं बाहर में। अभी सब ऐसा हुआ है न। बाथरूम। देखो न, घर में थे तो बाहर निकले। चलो, जंगल बारह नहाने। उसमें डुबकी मारे। डुबकी मारे और ऐसे तिरे तब उसे सपाट आवे।

इसी प्रकार यहाँ चैतन्य अनादि का पुण्य-पाप के विकल्प में डुबकी मार रहा है। उसमें से निकलकर चैतन्य ज्ञानानन्द आत्मा क्रियाकाण्ड के राग से रहित है, ऐसे चैतन्य की ज्ञानचेतना इसने कभी प्रगट नहीं की। इसलिए इसे धर्म और शान्ति कभी नहीं होती। समझ में आया? यह श्रीमद् का कहा था एक बार।

यम नियम संयम आप कियो,
पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो,
वनवास लियो मुख मौन रह्यो
दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।

जप भेद जपे तप त्यों ही तपे,
उर से ही उदासी लही सब पै,
उर से ही उदासी लही सब पै,
सब शास्त्रन के नय धारी हैये,

मत मण्डन खण्डन भेद लिये,
वह साधन बार अनन्त कियो,

तदपि कुछ हाथ हजु न पर्यो
अब क्यों न बिचारत है मनसे,
कछु और रहा उन साधन से।

आहाहा! तेरे यह साधन तो थोथा है। वह लगे वापस। 'त्याग वैराग्य न चित्त में, होवे न उसको ज्ञान,' वहाँ लगावे वे। त्याग वैराग्य किये बिना ज्ञान नहीं होता, ऐसा श्रीमद् कहते हैं। अरे.. सुन न! अभी तुझे खबर नहीं। वे दूसरा कहते हैं। वह तो चित्त में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और नौ तत्त्व के भेद के विकल्प की कषाय की मन्दता न हो, ऐसा व्यवहार, उसका न हो तो उसे छोड़कर निश्चय हो, ऐसा नहीं हो सकता। अशुभभाव और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और तत्त्व के विरोधभाव की श्रद्धा हो, उसमें से अन्दर में से आ सके, ऐसा नहीं हो सकता। वैराग्य की व्याख्या की जरा। समझ में आया? परन्तु एक बार वहाँ कहा कि इसके चित्त में जिसने राग की वृत्ति छेदी नहीं, तीव्र अस्थिरता घटायी नहीं, नौ तत्त्व के वास्तविक पदार्थों के विकल्प के आँगन में आया नहीं, उसे आँगन उल्लंघकर अन्तर में जाना, ऐसा अनुभव उसे होता नहीं। समझ में आया? तब वह त्याग वैराग्य किसका ले? बाह्य का त्याग और बाह्य सब साधन हैं, ऐसा कहते हैं। धूल भी नहीं कहते। सुन न! यह क्या कहते हैं तब?

'यम नियम संयम आप कियो' यम - पंच महाव्रत पालन किये अनन्त बार। नियम पालन किये। बारह महीने में कोई अभिग्रह धारण हो तो ले। मोतीबाई हो, मोतीचूर का लड्डू खाती हो, मोतीचूर की वह साड़ी आती है न? वह पहने हुए हो। उसका बरामदा टूट गया हो और मोती कौने में बाँधा हो, वह बाई दे तो लूँ, ऐसे अभिग्रह धारण किये और पूर्व के पुण्य के कारण वह भी छह महीने, बारह महीने फले। ऐसे क्रियाकाण्ड के भाव भी अनन्त बार प्रत्येक प्राणी परिभ्रमण के काल में कर रहा है और किया है। फला नहीं कुछ, आत्मा हाथ आया नहीं उसमें। वह तो भटकने के भाव थे। समझ में आया?

'वह साधन बार अनन्त कियो' वह साधन बार—ऐसे अनन्त बार किया। परन्तु...

तदपि कुछ हाथ हजु न पर्यो
अब क्यों न बिचारत है मनसे,

कछु और रहा उन साधन से।
बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे,
मुख आगल है कह बात कहै।

यह भगवान ज्ञाता चिदानन्द मूर्ति जहाँ-जहाँ राग होता है, सब होता है, उसे जाननेवाला मुख्य पड़ा है सर्वत्र। राग हो दया का, यह हुआ, यह हुआ। परन्तु जाननेवाला कौन वहाँ? सब जगह वह ज्ञान आर-पार दशा पड़ी है। ऐसे ज्ञान को अन्तर में पकड़े बिना उसका कल्याण और सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अरे... जीव! तू ऐसे व्यवहार भाव भी अनन्त बार कर चुका है। परन्तु वह क्रियाकाण्ड का आडम्बर शुभभाव का है। आहाहा! आडम्बर है। उससे **पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,...** वह शुभराग वासनावृत्ति परसन्मुख झुकती हुई। ज्ञान परसन्मुख में चक्कर खाता है। चित्त का पसार होता है। उससे हटकर अकेला चिदानन्द ज्ञानानन्द आत्मा आनन्द की मूर्ति है, ऐसे रुचि को, राग की रुचि और आश्रय और अवलम्बन बहिर्मुख की वृत्ति की रुचि छोड़कर अन्तर्मुख चैतन्य में ज्ञान का ज्ञान होकर एकाग्रता का आनन्द का अंश अंश आवे, ऐसी ज्ञानचेतना को जरा भी प्रयत्न से करता नहीं। समझ में आया? रतिभाई! रतिभाई मांगते हैं बहुत बड़ा। कल भी बहुत माँगते थे। एकदम खेल कर लेना है। कल तो बहुत माँगते थे। एकदम दे दो यह। मोहनभाई! तुम्हारे चिरंजीवी माँगते हैं एकदम, बहुत दे दो। पैसा भी अधूरा कहाँ सुहोता है उसे। यह भी... लाओ... लाओ... पूरा। परन्तु यह पूरा कब मिले? यह चिदानन्द ध्रुव धातु अनादि-अनन्त जिसने चैतन्य की धारणा की, वह वस्तु त्रिकाल पड़ी है। उसे यह पुण्य-पाप के विकल्प का... इसमें है, पहले आ गया था न? २५६ पृष्ठ। २५६ में आ गया। **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण...** २५६ में आया था। बीच में है, पाँचवीं लाईन। आडम्बर की निवृत्ति। यह पुण्य के विकल्प हैं, क्रिया है, पुण्य के पाप का आडम्बर है। उसकी निवृत्ति में अन्दर चिदानन्द की दृष्टि होती है, इसके बिना उसके आश्रय से हो, यह तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? यह भानुभाई पूछते थे। कुछ साधन है न? यह कहा, देखो! २५६ पृष्ठ पर है। देखो! यह

बीच में है, देखो, पाँचवीं लाईन। समझ में आया? **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण निस्तरंग परम चैतन्यशाली...** ऐसा ज्ञानानन्द भगवान। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, सेवा की वृत्ति से पार अन्दर में पड़ा है, ऐसे चिदानन्द को क्रियाकाण्ड के आडम्बर से हटकर और अन्तर की ज्ञानचेतना में एकाकार होना, जिसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। ऐसा जरा भी नहीं करता। यह माहात्म्य अन्दर... इसके बाद एक आता है, पीछे एक है। भाई! २६२। निश्चय और व्यवहार की सन्धि की है न?

क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए... उसमें भी पाँचवीं लाईन है, दूसरे पेरेग्राफ की। देखो! **प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्तिका निवर्तन करेवाली (टालनेवाली) क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए...** अर्थात्? जो कुछ शुभभाव दया, दान, व्रत, तप, जप का आवे, उसका माहात्म्य उड़ाता हुआ। उसमें माहात्म्य नहीं है। वस्तु चिदानन्द रागरहित पड़ी है, उसका माहात्म्य करता हुआ और शुभ क्रियाकाण्ड के शुभ परिणाम का माहात्म्य निवारता हुआ, वह आत्मा चैतन्य में एकाकार हो, उसे धर्म होता है। गजब! लोगों को उकताहट जैसी बात लगे, हों! ना करते हैं, हों! रतिभाई! ना करते हैं। ना, उकताहट आवे ऐसा नहीं, कहते हैं। सच्ची बात है।

यह उकताहट आवे ऐसा नहीं है। इसमें उकताहट उतरे ऐसा है। अनादि के उकताहट और विकल्प के भाव के जाल में मकड़ी जैसे अपने जाल में फँस जाती है, वैसे राग की वृत्तियाँ कर्मकाण्ड चौबीस घण्टे लवलीन, हों! ऐसे जीर्ण हो जाये। अपवास किये और यह किये और वह किया, आज अठ्ठम है न बापू! सिर दुःखता है। आज थोड़ा खाया है और पचता नहीं और यह है। और ऐसे क्रियाकाण्ड में लवलीन (रहता है)। वे सब राग के रागी राग में लवलीन हुए मूढ़ जीव हैं। उस राग का माहात्मय निवारते हुए...

सम्यग्दृष्टि जीव, यह शुभभाव का माहात्म्य... है न माहात्म्य अन्दर? **(-शुभ क्रियाकाण्ड-परिणति हठरहित सहजरूप से भूमिकानुसार वर्तती होने पर भी अंतरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते हुए),...** ओहो! शुभभाव आया, बहिर्मुख हुआ। यह दया और यह व्रत। वाह रे वाह! वह तो मूढ़, उसे माहात्म्य देता है। शुभभाव की क्रिया के परिणाम को मूढ़ जीव माहात्म्य देता है। धर्मी की दृष्टि शुभभाव के माहात्म्य से हटकर

चिदानन्द आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के माहात्म्य में जाती है, तब उसे सम्यग्दर्शन और आत्मा का साक्षात्कार होता है। उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आडम्बर है या दूसरा क्या है? राग का आडम्बर है। वह राग का धुँआ है। उस धुँए में चैतन्य एक ओर छुप गया है। यह लापसी-बापसी पकाते नहीं? अब तो सब लकड़ियाँ हो गयी दूसरे प्रकार की। पहले तो लापसी पकावे तब चारों ओर धुँआ निकले। गीली लकड़ियाँ हों, तना हरा गीला हो। लापसी पकती है या नहीं? वह तो अटवाई गयी बीच में। धुँए की आड़ में दिखती नहीं, यह क्या पकता है वह, इसी प्रकार राग का धुँआ असंख्य प्रदेश में उठे, उसकी आड़ में चैतन्य कौन है, वह अटवाई गया। समझ में आया?

अरे... चैतन्य प्रभु! तुझमें सामर्थ्य इतना है, इस राग के कण को, बहिर्मुख वृत्ति को छेद, उसकी रुचि छोड़ और चैतन्य भगवान... आता है न समयसार में भी? भूतार्थ परिग्रहेण। आत्मा में यह सामर्थ्य है कि राग की वृत्ति को छेदकर चैतन्य के ज्ञानानन्द में प्रवेश करे, एक बार भी यह ज्ञानचेतना प्रगट करे तो खबर पड़े कि परमात्मा ही मैं हूँ। मुझे स्वरूप में स्थिर होने पर अब मैं थोड़े काल में परमात्मा हो जानेवाला हूँ। ऐसा उसे भान होता है, उसे धर्मक्रिया कहा जाता है। अरे! यह सब... शाम को टोकरा बजावे और आरतियाँ करे। और कहे, हम धर्म कर आये, धर्म कर आये।

मुमुक्षु : निर्जरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्जरा अर्थात् कर्म खिरे, ऐसा कहते हैं। चल रे चल पाखण्ड। वह तो कर्म बँधे हैं। आवे सही, भाव होवे सही। परन्तु वह भाव पाप से बचनेमात्र की दशा है। परन्तु उसे धर्म के कारण यह भाव आवे और यह भाव धर्म का कारण हो, यह तीन काल-तीन लोक में वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? डॉक्टर नहीं आये आज। क्या कहा यह?

जिन्हें दर्शन-ज्ञान... क्या कहा? क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई। यह विकल्प की जाल, इससे पार, आडम्बर से पार। इस आडरम्बर के धुँए में प्रविष्ट है। यह

धुँआ है, मैल है, जहर है, विकार है। पाखण्ड अर्थात् अज्ञान को यहाँ पाखण्ड कहते हैं। उस राग को धर्म माननेवाले पाखण्डी हैं। वह आत्मा को खण्ड डालता है और आत्मा को तोड़ डालता है। समझ में आया? महा हिंसा माननेवाला है वह। इस राग की वृत्ति से धर्म हो, वह अहिंसा में धर्म नहीं मानता, परन्तु राग से लाभ माननेवाला हिंसा में धर्म मान रहा है। पर की हिंसा की यहाँ बात नहीं है। भगवान ज्ञाता-दृष्टा चैतन्य भावप्राण, जिसके त्रिकाल ज्ञाता-दृष्टा, आनन्द जिसके प्राण हैं, आनन्द जिसका सत्त्व है। उसमें राग से लाभ माननेवाला चैतन्य आनन्दप्राण को लूटता, काटता और छेद डालता है। बराबर सरखाई बिना उसको अन्दर घुसे बिना। यह कचड़-पचड़, लथड़-पथड़ करे न। ऐसा होता है और (वैसा होता है)।

तीन काल तीन लोक में भगवान आत्मा में इस शुभराग के क्रियाकाण्ड द्वारा अन्दर में पड़ा आत्मा को लाभ हो, (उसमें) संसार फले, यह राग फले, यह धूल मिले। यह सेठाई जो कहलाती है दुनिया की, दुनिया की, वह मिले परन्तु चैतन्य की श्रेष्ठता उससे नहीं मिलती। और सेठिया-बेठिया भी पुण्य के वैभव के कारण मिले और पूर्व के पुण्य के अहंकार किये थे। इसलिए वैभव के समय भी उसकी चेतना अहंकार में चली जायेगी। जिस राग का त्याग करके, चैतन्य का भान नहीं करे तो। क्या कहा? पूर्व में जब इसने राग की मन्दता के दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा के भाव किये, उसका अहंकार था कि यह मेरा कर्तव्य है। ऐसे पुण्य के फल में बन्ध पड़ा और बन्ध के फल में बाहर की धूल मिली, राजा और सेठाई जिसे दुनिया कहती है, उसका इसे अभिमान हुए बिना नहीं रहेगा। हम सेठिया, हम राजा, हम बड़े, हम बड़ी सम्पदावाले। धूल भी नहीं। सुन न! वह तो मिट्टी सब विष्टा का पोटला है। चन्दुभाई! कठिन, हों!

एक बार वह दरबार आये थे न, दरबार। कृष्णकुमार व्याख्यान में (आये थे)। भावनगर दरबार। फिर कहे, बात निकलते-निकलते कहा, यह तो महाराज ऐसा कहते हैं, थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, अधिक माँगे वह बड़ा भिखारी। महीने में पचास हजार चाहिए, वह थोड़ा भिखारी, परन्तु महीने में पाँच लाख चाहिए और बारह महीने में साठ लाख (चाहिए है), बड़ा भिखारी है। समझ में आया? अरे! यह तो कहे राजा

भी भिखारी। भिखारी के बाप हैं ये सब। बाप भी न हो कदाचित् भिखारी का, अच्छा भी हो। समझ में आया?

यहाँ चैतन्य की बादशाही के भान में यह राग का-शुभ का कण उठे, उसकी अभिलाषा नहीं। तो उसके फल में पुण्य और उसके फल में धूल, उसकी अभिलाषा धर्मी को धर्म की भावना में नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! यह पैसे तो प्राण कहलाते हैं। नहीं? क्या कहलाते हैं? ग्यारहवाँ प्राण। धन ग्यारहवाँ प्राण। अनाज ग्यारहवाँ प्राण और पैसा बारहवाँ प्राण। लो, ठीक! पैसा बारहवाँ। क्योंकि पैसे से अनाज मिले और अनाज से यह शरीर पोषित हो। भारी उल्टे रास्ते। प्राण है, बापू! पैसा न हो तो मर जायें। निर्धन सदा दुःखी। निर्धन सदा दुःखी, सधन सदा सुखी। धूल में भी नहीं, सुन न!

चैतन्य के आनन्दकन्द का धन जिसने अन्तर में (प्राप्त किया), पुण्य के विकल्प की रुचि को छोड़कर ज्ञान की दशा के आनन्द में झुकाव किया है, ऐसा कण भी जिसे, अकषाय की दृष्टि और स्थिरता हुई है, वह जगत में सधन है। बाकी सब रंक और भिखारी हैं। ऐसा होगा? जयन्तीभाई! बात भी... कोड़े कठोर पड़ते हैं लोगों को, हों! उसमें उघाड़ा शरीर हो और कोड़े पड़ें सिर पर। वस्त्र हो तब तो ठीक सिर पर इतना तो झेले। अरे.. भगवान! तूने तेरे तत्त्व की सच्ची बात सुनी नहीं। यह कोड़े मारते हैं यहाँ तो धर्मात्मा ज्ञानी। अरे! तू कहाँ गया? राग की क्रिया की पामरता में तू प्रभुता प्रगट करने का मान रहा है? राग के शुभ परिणाम तो पामरता के परिणाम हैं। उससे पुण्य बँधता है और उसमें से धूल मिलती है। वह पामरता में प्रभुता देख रहा है? उस पामरता के पार अन्दर चिदानन्द भगवान है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और प्रभुता को प्रगट नहीं करता। उसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र—आत्मा आनन्दमूर्ति उसकी प्रतीति अन्तर में, आत्मा का ज्ञान स्वसंवेदन, स्वसंवेदनज्ञान और चारित्र अर्थात् स्वरूप के आनन्द में रमना, उसकी एक परिणतिरूप ज्ञानचेतना। तीनों को, भाई! ज्ञानचेतना कहा।

राग-पुण्य है, वह कर्मचेतना है। विकारी भाव का चेतना। यह संसार का कारण है। इससे रहित भगवान आत्मा चिदानन्द की अखण्ड मूर्ति की प्रतीति अनुभव में वेदकर...

वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम,
रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव ताको नाम।
अनुभव रत्न चिंतामणि, अनुभव है रसकूप
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

भगवान आत्मा, वह पुण्य-पाप की वृत्तियों से हटकर आत्मा के आनन्द का अनुभव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, ऐसी ज्ञानचेतना को विकार के पुण्य की रुचि की आड़ में कभी स्पर्शता नहीं और पाता नहीं। अधर्म में पड़ा चार गति में भटकेगा। हाँ, आता है न? हाँ। भानुभाई!

किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,... ऐसा नहीं कहा यहाँ कि कर्म का जोर हो, वह आत्मा ज्ञानचेतना कैसे प्रगट कर सकता है? अरे... भगवान! कर्म-फर्म रहे जड़ में। तेरे चैतन्य के अन्दर कर्म कहाँ है? वह तो नास्ति है। वस्तु वस्तु में है और परवस्तु उसमें नहीं। भगवान चिदानन्द स्वतन्त्र अनादि-अनन्त है। कर्म के रजकण भले हों, वह तो मिट्टी-धूल है, अजीव है। उसने कहीं चैतन्य की सत्ता में प्रवेश नहीं किया। ऐसे चैतन्य की सत्ता को जिसने एक परिणतिरूप ज्ञानकी दशा कभी प्रगट नहीं की। जरा भी नहीं की। अर्थात् कि सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं किया। वह शुभ की क्रिया में धर्म माननेवाला अनादि से त्यागी हुए, साधु हुए।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' एक ग्रैवेयक है। चौदह ब्रह्माण्ड है वह पुरुष के आकार है और खाली भाग चारों ओर अनन्त है। उसके बीच में गर्दन के स्थान में स्वर्ग के देव के विमान हैं। वहाँ प्रत्येक जीव 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' मूलजीभाई! अरे! भगवान! तेरे निधान चिदानन्द के ताले तो खोल। यह राग और आत्मा को एक मानकर निधान को ताला लगाया है। उसे एक बार राग से रहित सम्यक् स्वभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता—ऐसी ज्ञानचेतना, यह पुण्य परिणाम के रचनेवाले, माननेवाले अभिमानी पुण्य के करनेवाले, अभिमान अर्थात् पुण्य मेरा, मैंने किया, उससे लाभ होगा, वे सब आत्मा के ज्ञान की दशा को जरा भी स्पर्श नहीं करते, जरा भी छूते नहीं। तब क्या है?

बहुत पुण्य के भार से मंथर हुई... वह तो पुण्य... पुण्य... पुण्य... पुण्य... ओहोहो! समझ में आया? एक वृद्धा थी। वह बेचारी पानी भरने गयी थी। पानी भरने। फिर पानी भरने गयी थी उसमें आया एक बकरा। बकरा। बकरा प्यास बहुत। अब यह मटकी निकालकर पिलाया इसे तो दूसरी निकालनी पड़े। धक्के देकर डाला कुँए में और घर आकर बहू को कहे, बाईजी! ऐसे कैसे आज प्रसन्न हो? अरे! आज मैंने किया पुण्यड़ा, वह जाने मेरा मनडा। आज ऐसा पुण्य किया... कैसा? वह बेचारा बहुत प्यासा था और मैं पानी निकाल सकूँ नहीं, डाला (पानी में)। अरे! परन्तु वह तो मर गया होगा। परन्तु मेरा भाव तो पानी पिलाने का था। तेरा भाव मूर्खता से भरपूर था। और हमारे पुण्य हुआ, जाने मेरा मनडा।

इसी प्रकार अज्ञानी शुभभाव में पुष्कल पुण्य के भार से मस्त हो गये, हमने पुण्य किया, हमने धर्म किया, हमने दूसरे की अपेक्षा बहुत अच्छा किया। मर जायेगा अब, सुन न! तेरे पुण्य परिणाम दया के, अहिंसा के, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और व्रतादि के वह पुष्कल पुण्य का भार है यह तो। आहाहा! भाषा भी कठिन, भाई! **भार से मंथर हुई...** मन्थर अर्थात् मन्द, जड़, सुस्त। समझ में आया? दृष्टान्त देते हैं न वहाँ? बहुत लड्डू खाये हों बहुत। और फिर गर्मी के दिन हों, दूधपाक और लड्डू दोनों इकट्ठे खाये हों। ठीक सा दूधपाक... हमारे यह हुआ था न? लक्ष्मीचन्दभाई थे न? खंधार! हम वहाँ गटका गये थे न, गटका। दरबार ने किया था। दो करो आज। महाराज आये हैं न! दूधपाक भी बनाओ और लड्डू (बनाओ)। और लक्ष्मीचन्दभाई को जरा कफ था। दोनों उड़ाये उस समय। दूधपाक भी खाया और लड्डू भी खाये। गटका गये थे न, गटका नहीं यहा? लखुभाई थे न वे। परन्तु शरीर ऐसा कि कुछ हुआ नहीं वापस। चलता था। ऐसे दूधपाक और लड्डू खाये और गर्मी के दिन हों। वह तो निन्द्रा ही आवे, झोला।

इसी प्रकार अज्ञानी पुष्कल पुण्य के भार से आलसी होकर मिथ्यात्व में पड़े हैं, कहते हैं। उसे राग की निद्रा आती है। आहाहा! राग से मानो तृप्त हो गये हैं। पुण्य क्रिया, पुण्य करते हैं, ऐसा पालते हैं। हम रोटियाँ खाते नहीं, इतने अपवास किये, पेट मिल गया है। कुछ करते होंगे उसमें कुछ फलेगा या नहीं? फलेगा, राग मन्द किया

होगा तो पुण्य। धर्म-बर्म उसमें है नहीं। परन्तु पुण्य के बोझ के भार के वजन से सुस्त और जड़ हो गये हैं, कहते हैं। आहाहा! बात बहुत कठिन परन्तु इसमें। अभी तो आत्मा है या जड़ है, परलोक है, ऐसा माने नहीं, उसे ऐसी बातें (कहना)। अब सुन न! यह सब त्रिकाल सत्य है। आत्मा अनादि-अनन्त है, उसकी शक्तियाँ है, उसकी दशा है, विकार है और संयोग है, सब है। ऐसी मान्यता फिर यह राग के क्रियाकाण्ड में लवलीन होकर पड़े, कहते हैं कि सुस्त हो गये। ओहो! मन्द हो गये हैं, आत्मा की शक्ति में से। वह जड़ हो गये हैं, कहते हैं। अरे... भगवान! यह अहिंसा के भाव, इनमें मग्न, वह जड़? प्रभु! वह चैतन्य का मूल स्वभाव नहीं। क्योंकि होवे तो टलकर पूर्ण दशा आनन्द की कभी प्रगट नहीं होगी। पूर्णानन्द प्रगट हो, तब राग का भाग शुभ का भी रहता नहीं। इसलिए राग में लवलीन होकर रहनेवाले चैतन्य की जाति को भूलकर अचेतन जड़ जैसे हुए हैं। भारी कठिन बात, भाई! चन्दुभाई!

बापू! कहते हैं, यह पुष्कल पुण्य के भार से। बहुत पुण्य, बहुत.. बहुत... बहुत... अभी तो हमने निवृत्ति ली है। दुकान का धन्धा नहीं, स्त्री, पुत्र कुछ नहीं। बस, अब तो सब परोपकार के ही काम करते हैं और दया, निवृत्ति सब काम... ऐसे भाव में पुष्कल भाव में सुस्त, मन्द, जड़ (हो गये हैं)। जैसे लड्डू खाकर सो रहा हो निश्चिन्त, वैसे यह राग में सो गया है। समझ में आया? उसे चैतन्य की जागृति नहीं है। ऐसे **चित्तवृत्तिवाले वर्तते हुए,...** क्या होगा इसे? **देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की...** यह बहुत तो सेठाई मिलेगी और या तो स्वर्ग मिलेगा। वह क्लेश है वहाँ। इस साधन में राग हो, वह क्लेश है। बाहर इन्द्राणी मिली और हमने यह पुण्य किया था। इन्द्राणी वहाँ हमें मिली। इन्द्राणी मिली न? क्लेश... क्लेश... क्लेश। राग, वह पुण्य के फल क्लेश हैं। उनमें कहीं शान्ति और आनन्द नहीं है। देवलोक आदि शब्द है न? अर्थात् देवलोक... स्वर्ग है, स्वर्ग, हों! वस्तु है, हों! नहीं है, ऐसा नहीं है। यह अभी अपने कहाँ यह सब सिद्ध करने जायें। अपने तो अकेले तत्त्व की बात अभी है। बाकी नरक, स्वर्ग आदि सभी गतियाँ, उनके सिद्धान्त लॉजिक, न्याय, युक्ति से सिद्ध हो सकते हैं। ऐसे का ऐसे मानना, ऐसा नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा ऐसे शुभभाव में मस्त हो गया हुआ देवलोक

स्वर्ग, सेठाई, राजा आदि... आदि में यह डालना। खम्मा, खम्मा हो। पाँच-पाँच करोड़ की आमदनी। आहाहा! कोमल शरीर मक्खन का। ऐसे मोजा मखमल के पहने तो ऐसा मानो चमड़ी में अन्दर लाल जैसा हो जाये। पहनते हुए उस ओर अवरोधक करे न? कोर, उस ओर रहे वहाँ लालिमा हो जाये, ऐसे तो पुण्य के फल मिलें। क्लेश, क्लेश। दामोदरभाई! क्या होगा यह? तुमको सबको लोग सुखिया कहते हैं। लो, बातें करते हैं। धूल में भी सुख नहीं। कौन कहता है? जसाणी को एक व्यक्ति कहते थे, नहीं? एक आये थे वे। इनके समधी आये थे, मोहनलालभाई के समधी। हमारे जसाणी सुखी हैं। बात तो सच्ची लगती है। यह पागल पागल की महिमा करते हैं। पैसे से सुखी हैं। यह कोई था। भाई! यह तुम्हारे बोलते थे न? एक बार यहाँ सोनगढ़ आये थे। मोहनभाई बैठे थे। जसाणी हमारे समधी सुखी हैं। सुख की व्याख्या क्या करना? सुख शब्द है, परन्तु उसकी व्याख्या? पराधीन सपने सुख नाहीं। यह बाहर की चीज़ों में वृत्ति जाती है कि यह सुखी है, वह पराधीन वृत्ति है। क्लेश है, क्लेश है। भानुभाई! यह सब तुमको सुखी कहते हैं न, वे सब मूढ़ हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। सच्ची बात होगी?

मुमुक्षु : .... सही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ...सुखी हो उसे सुखी कहे तो मूढ़ कैसे कहा जाये उसे? यह तो सुखी नहीं, दुःखी है और सुखी कहते हैं, इसका नाम मूढ़ है। यह पुण्य के फल का वर्णन चलता है, हों! यह कुछ पुण्य करूँगा न तो कुछ फल तो आयेगा। कुछ तो पाऊँगा न अच्छा। कहते हैं कि स्वर्ग और सेठाई क्लेश का कारण है। कारण कि वह पुण्यभाव ही आकुलता का कारण है। उस आकुलता का निमित्त पाकर बन्धन हुआ पुण्य परमाणु, उसका जब पाक आया तो लक्ष्मी के ढेर (हुए)। पाँच-पाँच करोड़ और दस-दस करोड़, ऐसे देखो तो अणधारी लड़कियाँ ऐसी पके, लड़के ऐसे पकें, समधी ऐसे मिलें ठीक से, चारों ओर समधी और रिश्तेदार भी ऐसे मिलें उसे। ओहोहो! दो शब्द हो या नहीं एक साथ? खाटलो-बाटलो, ऐसे समधी-बमधी। मोहनभाई! ... परन्तु यह सब समधी और रिश्तेदार सब धूल है, कहते हैं। यह तेरे ठीक से मिले, हमको सब व्यवस्थित है। एक व्यक्ति कहे। सब लड़कियाँ अच्छी जगह विवाही गयी हैं। लड़के अच्छी जगह विवाहित हुए हैं, अब मरें तो सन्तोष है। मूर्ख है, मूर्ख। यह सन्तोष है अब

हमारे। अब हमारे कुछ अधूरा रहा नहीं। सब तेरे अधूरे रहे। अब सुन न! तेरी हरी वाड़ी (हरा भरा परिवार) छोड़कर चला जाता है। बहुत ऐसा कहे, हरी वाड़ी रखकर मर गया है वृद्ध। भानुभाई! पैसा छोड़ गया है। हरा भरा परिवार छोड़कर गया। परन्तु छोड़कर गया। सुन न! जला डाला उसका पुण्य लेकर आया था उसे। उसे तू कहता है कि हरी वाड़ी (हरा भरा परिवार) छोड़कर गया।

यहाँ तो शुभभाव के फलरूप से स्वर्ग और सेठाई (मिले), वह क्लेश की प्राप्ति की परम्परा है। वापस परम्परा। अकेली नहीं। वहाँ से निकलकर-स्वर्ग में से निकलकर मनुष्य हो तो क्लेश। राजा हो तो क्लेश। निर्धनता की यहाँ बात नहीं है। ऐसी **परम्परा द्वारा अत्यन्त दीर्घ काल तक संसारसागर में भ्रमण करते हैं।** लो, ऐसे शुभ के परिणाम में धर्म माननेवाले वे मिथ्यादृष्टि मूढ़ अनन्त काल के संसार के समुद्र में डूब रहे हैं।

कहा भी है कि—तो चरणपरिणामप्रधान हैं... क्या कहते हैं? जिसमें शुभभाव के क्रियाकाण्ड के परिणाम ही मुख्य हैं, उन्हें जिन्हें धर्म माना है। **स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं,...** परन्तु वह रागरहित चिदानन्द स्वसमय आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द के अन्तर व्यापार से रहित है। वह राग के व्यापार से सहित है। **वे चरणपरिणाम का सार...** वह शुभ परिणाम में से निकलकर शुद्धता में आना, वह जानता नहीं। **जो निश्चयशुद्ध (आत्मा) उसे नहीं जानते।** यह व्यवहार की बात की। समझ में आया? व्यवहार के गीत गानेवाले मूढ़ हैं, ऐसा कहा। समझ में आया या नहीं इसमें? भानुभाई! जिसे तुम मानो न, यह महाव्रत पालते हैं और यह करते हैं और यह करते हैं। कहते हैं कि वह धूल है। आहाहा! अब जरा निश्चय की थोड़ी... दस मिनिट है न? यह व्यवहार की बातें की।

अब, जो केवलनिश्चयावलम्बी हैं,... अकेला आत्मा... आत्मा... आत्मा करनेवाले। परन्तु आत्मा की अन्तर्दृष्टि और अनुभव नहीं करके और क्रियाकाण्ड के काल में उसे दया, दान आदि के परिणाम शुभ आवे, उसे करता नहीं। हम तो आत्मा हैं। हमारे शुभ परिणाम करने की आवश्यकता नहीं। ऐसे निश्चय के भान बिना के और व्यवहार के परिणाम को छोड़कर मिथ्यादृष्टि अशुभभाव में जुड़ जाते हैं, वे भी चार गति में भटकनेवाले हैं। समझ में आया?

धर्मी को आत्मा के भानपूर्वक की श्रद्धा-ज्ञान की रमणता में उसके योग्य शुभभाव आवे, उसे बराबर आचरण में रखे व्यवहार से, ऐसा कहने में आता है। उसे जाने कि यह पुण्यबन्ध का कारण है। मेरे स्वभाव में एकाग्रता का कारण नहीं। परन्तु मैं दशा में निर्बल हूँ, (ऐसा) भान होने पर भी ऐसे शुभ की परिणति भूमिकानुसार दया, भक्ति, दान, पूजा, भाव शुभभाव आवे। उसे धर्मी पुण्यबन्ध का कारण जानता है। हेय जानकर उसमें वर्तता है।

यह निश्चयावलम्बी, हम आत्मा हैं... आत्मा (हैं), अब हमको शुभपरिणाम की आवश्यकता नहीं। समझ में आया? **निश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले...** शुभपरिणाम, जिसका आदर नहीं। और निश्चय को आत्मा के भान को किया नहीं। **आँखों को अधमुँदा रखकर...** मानो ध्यान करते हैं ऐसे। वे भी जड़ हैं। उनकी भूमिकानुसार निश्चय के भानपूर्वक अनुभवपूर्वक उसे भूमिका और मुनिव्रत आदि जो छठवें गुणस्थान में सन्त होते हैं, उन्हें आत्मदशा का अनुभव होने (पर भी), निर्विकल्प का भान होने पर भी उन्हें पंच महाव्रत के—अहिंसा, सत्य, अचौर्य के परिणाम आये बिना नहीं रहते।

और यहाँ निश्चय का भान नहीं और शुभपरिणाम को करता नहीं। इसलिए उसे योगफल में अशुभ में जाना है। समझ में आया? वह शुभभाव से निवृत्त अर्थात् शुभभाव को करने का कामी नहीं है और निश्चय का अन्तर अनुभव हुआ नहीं है। **आँखों को अधमुँदा रखकर...** एक व्यक्ति मिला था, एक व्यक्ति। बनिया था, हों! बहुत पढ़ा हुआ। सोलह घण्टे मस्त रहता हूँ। वाह! क्या है? हमारे तो सदा शुद्ध उपयोग ही होता है। पागलपन हुआ लगता है इसे। फिर एक बार तो यहाँ तक मस्ती में चढ़ गया कि यह कुन्दकुन्दाचार्य की आप बात करते हो, वह तो मेरे पास अनेक बार आ जाते हैं। ओहो! इसे पावर फटा (अभिमान चढ़ा) लगता है, कहा। बनिया था बनिया, हों! नाम नहीं लिया जाता। समझ में आया? और खाकर-पीकर मस्त। इसमें आगे लेते हैं। स्थूल शरीरवाला लेते हैं। इस ओर है। है न इस ओर। **मोटे शरीर के कारण...** यह स्थूल शरीर की बात नहीं। स्थूल शरीरवाला **घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए (-तृप्त हुए) हों ऐसे, मोटे शरीर के कारण जड़ता (-मन्दता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो**

ऐसे,... स्थूल शरीर हो, ऐसा नहीं। परन्तु स्थूल शरीरवाला जैसे सुस्त और अज्ञान में प्रमाद में मस्त रहता है, ऐसी जड़ता। निश्चय की दृष्टि का अनुभव नहीं और शुभपरिणाम को (देखकर कहता है), यह विकल्प... यह विकल्प... यह विकल्प है। ऐसा करके शुभ को भी छोड़ता है। वह **मोटे शरीर के कारण जड़ता (-मन्दता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे,...** जड़ता उत्पन्न हुई हो ऐसा। मानो अन्दर प्रमाद का पोटला। होवे नहीं कुछ, हों! निर्विकल्प-फिर्विकल्पता कुछ। ऐसे मन्द कुछ दिखायी दे, बाहर की प्रवृत्ति में (उथल-पुथल न दिखाई दे)। हम अन्दर निर्विकल्प की एकाग्रता करते हैं, हम आत्मा की परिणति शुद्ध करना चाहते हैं। समझ में आया? ऐसे निश्चयाभासी, निश्चय के भान बिना के और व्यवहार के शुभ परिणाम यथायोग्य विनय, दया, दान, स्वाध्याय आदि जो भाव चाहिए, वह करता नहीं। उसे तो यहाँ प्रमादी जड़ में डाला है। वह भी चार गति में भटकनेवाले हैं। समझ में आया?

आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर... कल्पना करे, कुछ प्रकाश दिखता है, कुछ ऐसा होता है। धूल भी नहीं, सुन न! अभी राग और पुण्य की क्रिया क्या, चैतन्य क्या, द्रव्य-गुण क्या, पर्याय क्या, वस्तु क्या, इसका जहाँ ज्ञान ही हुआ नहीं। उसे निश्चय में ऐसा ध्यान करे, तब हमको ऐसा दिखता है। क्या दिखता है? बहुत सफेद-सफेद दिखता है। सफेद तो जड़ है।

एक व्यक्ति कहता था। (संवत्) १९७६ के वर्ष में। ७६ के वर्ष में। ४२ वर्ष हुए। महाराज! मैं ध्यान करता हूँ और वहाँ कर्म के परमाणु ऐसे अन्दर से सफेद घूमते हुए दिखते हैं। एक बात है। समझ में आया? बहुत परिचय में आये हुए हो न। नहीं, व्यक्ति अच्छा था, हों! नरम व्यक्ति। ऐसे उद्धत या, ऐसा नहीं। ऐसा करता हूँ न, तब अन्दर में सफेद कर्म के परमाणु खिरते दिखते हैं। कहा, उसमें परमाणु नहीं दिखते। समझ में आया? अन्दर ऐसा दिखता है, बापू! कुछ भ्रमणा में चढ़ गया है। यह ऐसा नहीं होता। यह तो ७६ की बात है, हों! ध्रांगध्रा की। ४२ वर्ष हुए। समझ में आया इसमें? बहुत प्रकार के व्यक्ति आये और बहुतों की प्रकृति का स्वभाव क्या है, यह भी देखने में आया हो। प्रत्येक सिर की प्रकृति, बोलना, प्रकार, स्वभाव क्या? बापू! ऐसा नहीं होता। परमाणु सूक्ष्म खिरते तो अवधिज्ञानी देखते हैं। जिन्हें अवधिज्ञान हुआ हो,

आत्मज्ञान उपरान्त मर्यादित जड़ को देखने का ज्ञान। उसे अन्दर में रजकण ज्ञात होते हैं। ऐसे मति और श्रुत में रजकण झरे, वे नहीं दिखते। आत्मा को ऐसे भ्रमणा में कितने ही चढ़े (हों)।

अभी ऐसा आया न, यह महाराज निश्चय की बहुत बातें करते हैं। इसलिए अब अपने करो ध्यान। परन्तु किसका ध्यान? सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन के भान बिना ध्यान तीन काल में नहीं हो सकता। समझ में आया? एक व्यक्ति को पूछा था, त्यागी बाई थी। नहीं, आदमी था। ऐसा प्रतिमाधारी नाम धराता था। उसका नाम प्रभु था। प्रतिमाधारी। आत्मा कैसा? आत्मा हो पहले लाल। लाल कपड़े पहने न। वह ब्रह्मचारी सात प्रतिमावाला। फिर हो सफेद। यह प्रतिमा लेकर बैठे हुए। हम प्रतिमाधारी हैं और श्रावक हैं। पहले कैसा आत्मा? कि पहले लाल। लाल कपड़े पहने न, ब्रह्मचारी होवे न। दिगम्बर ब्रह्मचारी लाल (कपड़े पहने)। बाद में? बाद में हो सफेद, लाल कपड़े छोड़ दे। ऐ.. परन्तु लाल और सफेद तो जड़ की दशा है। आत्मा में लाल और सफेद था कब? वह तो अरूपी चिद्घन आनन्दकन्द है। वह तुझे ऐसा कुछ भासे, वह कल्पना है।

वह स्वमति से **अवलोक कर यथासुख रहते हैं (अर्थात् स्वमतिकल्पना से कुछ भी भास की कल्पना करके इच्छानुसार—जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे-रहते हैं।)** ऐसे **भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कारते हुए,...** शुभभाव जो व्यवहार से दया, दान, व्रत, विनय जो चाहिए, स्वाध्याय, ऐसे भाव को छोड़ देते हैं, तिरस्कार करते हैं कि नहीं, यह नहीं। नहीं हुआ निश्चय, नहीं हुआ शुभ। अशुभ में आकर प्रमाद में आकर नरक में या निगोद में जायेंगे। समझ में आया?

कहा था न एक बार? एक साधु आया। पहले स्थानकवासी था, फिर मन्दिरमार्गी हुआ। फिर चातुर्मास वहाँ था। फिर आया। मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा था। बस, निश्चयवन्त को अब माँस और शराब हो तो क्या पाप है उसमें? इसे उल्टा अभिमान चढ़ गया लगता है। जिसे निश्चय भान हुआ, फिर परस्त्री हो, शराब हो, वह तो परद्रव्य है। बात कौन इनकार करता है कि परद्रव्य है। परद्रव्य के खाने का भाव कौन करता है? माँस खाने का, शराब पीने का, (भाव कौन करता है)? हमारे निश्चय में यह बाधक नहीं।

परन्तु मर जायेगा। समझ में आया? भगवान ज्ञाता-दृष्टा के भान बिना निश्चय-निश्चय पुकारे और उस राग की शुभ की क्रिया का (तिरस्कार करे)। चाहे जो खायें, चाहे जो पीये, परद्रव्य कहाँ आत्मा को नुकसान करता है? समयसार में कहा है कि भोगों को भोग। परद्रव्य की शंका किसलिए करता है? यह भोग भोगने का कहा नहीं। सुन न!

कहते हैं कि परद्रव्य से मुझे नुकसान होता है, (यह) दृष्टि छोड़ दे, ज्ञान में ला। और परद्रव्य को भोगने की वृत्ति, वह विकार है, बेकार है, आत्मा की शान्ति के लिये नहीं है—ऐसा निर्णय कर। नहीं करते निश्चय में और नहीं आते शुभ में। यद्यपि शुभ में आवे तो कहीं धर्म तो है नहीं। यहाँ तो निश्चयाभासी एकदम रूखा जैसा हो गया है। भगवान की भक्ति, पूजा, बहुमान, विनय, शास्त्र स्वाध्याय, कहीं भी वाँचन चले, प्रश्न-उत्तर हो (उसमें) मन पिरोवे नहीं। ऐसा जाने कि हम तो बस अन्दर शुद्ध परिणति में जाना चाहते हैं। एकाग्रता करना चाहते हैं। वहाँ धूल में भी एकाग्रता नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि भिन्न साध्य को... राग वह व्यवहार से साधन। अभिन्न त्रिकाल शुद्ध आत्मा की निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, वह निश्चय साधन। उसमें व्यवहार का तिरस्कार करते हुए निश्चय के भान बिना के **अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुए,...** निश्चय स्वरूप भगवान राग से भिन्न की दृष्टि का अनुभव और पूर्ण साध्य का ध्येय, ऐसा प्रगट करते नहीं और मात्र व्यवहार का तिरस्कार करके निश्चय के आँगन में आता नहीं। वह **अन्तराल में ही (-शुभ तथा शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशा में ही), प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए आलसी...** जैसे पड़े हों। कुछ अन्दर ज्ञान में काम हो नहीं, अन्तर एकाग्रता हो नहीं और शुभराग आने पर कहे, यह नहीं... यह नहीं, यह विकल्प है। इसलिए प्रमाद जैसा अशुभभाव उसे वर्तता होता है। उससे आत्मा को सुगति भी नहीं मिलेगी और दुर्गति मिलेगी। समझ में आया? है न यह?

आलसी चित्तवाले वर्तते हुए, मत्त (उन्मत्त) जैसे, मूर्च्छित जैसे,... वह मानो मूर्छित हो गया हो। **सुषुप्त जैसे, बहुत घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए (-तृप्त हुए) हों ऐसे, मोटे शरीर के कारण जड़ता (-मन्दता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई**

हो ऐसे, दारुण बुद्धिभ्रंश से मूढ़ता हो गई हो ऐसे,... सम्यग्ज्ञान की कला क्या है, उसके भान बिना मूढ़ हो गये। शुभभाव का आदर नहीं, देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान नहीं। श्रीमद् ने कहा है न वहाँ? नहीं कहा उसमें? पावे नहीं सिद्धत्व को।

उपादान का नाम ले, वे जो तजे निमित्त,
पावे नहीं सिद्धत्व को, रहे भ्रान्ति में स्थित।

हमारे देव-गुरु-शास्त्र का क्या काम है? परन्तु अभी तुझे भान भी नहीं और देव-गुरु-शास्त्र के विनय के भाव को छोड़ दे, तेरी क्या दशा होगी? न्यालभाई! यह दोनों की बातें हैं, हों! दोनों ओर की। इसलिए कहते हैं कि ऐसे होते हुए **जिसका विशिष्टचैतन्य मुँद गया है,...** चैतन्य की जाति की शक्ति तीव्र मुँद गयी है। जिसे निश्चय का भान नहीं, नहीं जिसे व्यवहार के राग में पुण्यबन्ध में आना इतना भी। तीव्र मुँद गयी है। वह भी चार गति में भटकनेवाले हैं।

धर्मी जीव आत्मा के आनन्द की श्रद्धा, ज्ञान का विकास करता हुआ और उस भूमिका प्रमाण में दया, दान, विनय का भाव लाता हुआ वह निश्चय को, व्यवहार को दोनों को जानता है कि ऐसा है। समझ में आया? निश्चय अकेला है और व्यवहार न हो, ऐसा नहीं हो सकता। कर्तृत्वबुद्धि नहीं। होता है। दोनों की सन्धि करते हुए आगे बढ़कर वह क्रियाकाण्ड के आडम्बर के परिणाम छोड़कर स्वरूप में स्थिर होकर केवलज्ञान पाकर मुक्ति में जाता है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र कृष्ण १२, सोमवार, दिनांक - २१-०४-१९५२, गाथा-१०३, १०४, प्रवचन-१३

यह १०३वीं गाथा चलती है। मोक्षपद को पाता है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। अनादि जीव संसार में अज्ञान और राग-द्वेष से भटकता है। उसका विवेक ज्ञान होने पर, विवेक ज्ञान अर्थात् वह राग-द्वेष और अज्ञान, वे तो क्षणिक हैं; मेरा त्रिकाल शुद्ध स्वरूप आनन्द है। मुझे और परपदार्थ के साथ कुछ परिणति की पर्याय के साथ सम्बन्ध नहीं है। मेरे साथ रहे हुए पदार्थों की भी क्षण-क्षण में जो पर्याय और परिणति होती है, उससे मुझे कुछ लाभ-नुकसान नहीं है। मेरे स्वभाव और मेरे क्षेत्र में मुझे जो कुछ हिताहित का कर्तव्य हो तो मेरे स्वभाव में है। ऐसे पर से भिन्न करके और विकाररहित और आकुलतारहित मेरा अन्दर चैतन्य शुद्ध ध्रुव स्वरूप है, ऐसा पर से विवेक और विकार से विवेक करके और जैसा शक्तिरूप स्वभाव है, उसमें एकाग्र होकर व्यक्तरूप मोक्ष करता है, उसे चतुर्गतिरूप परिभ्रमण दुःख नहीं होता।

दृष्टान्त देते हैं, देखो! 'जैसे परद्रव्य के सम्बन्ध से जल तप्त होता है...' दृष्टान्त है। जैसे परद्रव्यरूप अग्नि के सम्बन्ध में पानी अपनी वर्तमान योग्यता की परिणति के कारण तप्त अर्थात् उष्ण होता है। समझ में आया? दृष्टान्त दिया। भाई! जैसे पानी अपनी वर्तमान पर्याय की योग्यता के कारण अग्नि के सम्बन्ध से उष्णता को पाता है, अग्नि के सम्बन्ध से आकाश उष्ण नहीं होता। समझ में आया? वहाँ रहा हुआ आकाश, जहाँ अग्नि है, वहाँ आकाश है, अग्नि है वहाँ धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल भी है। तथापि वह निमित्त उष्णता उत्पन्न करने में निमित्त भी नहीं हो सकता।

इसी प्रकार पानी अपना शीतल स्वभाव है, उसकी वर्तमान पर्याय में उष्णता (होने की) योग्यता है। उस उष्णता के समय कोई इन्द्रिय से यदि उसे देखे तो वहाँ पानी ठण्डा नहीं दिखाई देगा। समझ में आया? दस सेर पानी गर्म हुआ। उसे कोई ऐसा कहे... अनित्य उष्णता है। ... तो शीतलता नहीं ज्ञात होगी। क्योंकि पानी का स्वभाव इन्द्रिय ग्राह्य अन्तर का नहीं है। कोई आँख से नजर करे तो शीतलता नहीं दिखाई देगी। उस पानी को कान के पास खड़खड़ावे तो शीतला ज्ञात नहीं होगी। उसे जीभ से स्पर्श

करावे कि पानी ठण्डा होगा ? उस उष्णता के समय ठण्डा नाक से ज्ञात नहीं होगा। उसी प्रकार उष्णता के समय उसकी ठण्डक जीभ से भी ज्ञात नहीं होती। पाँच इन्द्रिय से नहीं ज्ञात होती। मोहनभाई ! क्योंकि ठण्डा स्वभाव है। वह स्वभाव पदार्थ, पदार्थ वह पानी है, इसलिए उसका स्वभाव ठण्डा है परन्तु वर्तमान उष्णता है। ऐसा इन्द्रिय बिना का तर्क ज्ञान निश्चित करता है। कहो, समझ में आया ?

यह तार्किक अन्दर तर्क उठाता है कि यह पदार्थ क्या है ? यह पदार्थ क्या है ? यह पदार्थ पानी है। पानी उष्ण क्यों ? वर्तमान उष्णता की उपाधि है। निमित्त के संग में पानी वर्तमान अपनी योग्यता से उष्ण हुआ है। परन्तु उसका स्वभाव उष्ण नहीं है। किस प्रकार निर्णय करोगे ? तब कि पहले पानी ठण्डा देखा था इसलिए। परन्तु वह तो पानी का स्वभाव ठण्डा है, ऐसा निर्णय किया है इसने। पानी पदार्थ ठण्डा है और अग्नि पदार्थ उष्ण है। वह पानी के ठण्डे स्वभाव का निर्णय वह ज्ञानस्वभाव ही कर सकता है। कहो, समझ में आया ? कोई बहुत राग करे तो भी वह निर्णय नहीं होगा। भाई ! राग करे, उसमें प्रश्न ऐसा आया कि मन के संकल्प में बहुत राग में जुड़े... समझ में आया ? पाँच इन्द्रियाँ निकालकर अब जरा मन निकाल डालते हैं।

पानी का ठण्डा स्वभाव कोई प्राणी बहुत राग करे या बहुत द्वेष करे या बहुत आकुलता करे, इससे उसका स्वभाव ज्ञात हो जाये, ऐसा नहीं होता। परन्तु पानी एक पदार्थ है। अग्नि से भिन्न पदार्थ है, तो पानी का स्वभाव शीतल है। वह इन्द्रियों से नहीं और राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प से नहीं। कोई दया, दान, शुभभाव करे, शुभभाव करे तो पानी के ठण्डे स्वभाव का निर्णय हो जाये ? पानी पदार्थ ठण्डा है, ऐसा ख्याल करे। ध्यान रखना, समझ में आया ? पानी पदार्थ शीतल स्वभाववाला है, ऐसा ख्याल करे। इन्द्रियों से नहीं, राग से नहीं। संकल्प, विकल्प से उसका निर्णय नहीं होता। नहीं तो बहुत संकल्प, विकल्प रागवाले उसका निर्णय बहुत कर ले, ऐसा है नहीं। एक ज्ञान ही उसका निर्णय करता है। हिम्मतभाई ! पानी शीतल स्वरूप है। उसकी उष्णता वर्तमान अपनी योग्यता से है। अग्नि निमित्त है। तीनों का जिसे यथार्थ ज्ञान वर्तता है, वह पानी के शीतल स्वभाव का ज्ञान द्वारा निर्णय करता है। वह पानी उष्णता को छोड़कर उसका स्वकाल प्राप्त होने पर शीतलता को प्राप्त होता है।

'उसी प्रकार भगवत वचन को अंगीकार करके...' भगवान सर्वज्ञ आप्त पुरुष। देखो! यहाँ वापस शब्द 'समय' लेते हैं। भगवान ने कहा है कि आत्मपदार्थ है, यह आत्मपदार्थ है। वह विकार त्रिकाल नहीं हो सकता। विकार, वह क्षणिक पुण्य-पाप, दया, दान, काम, क्रोध, वह क्षणिक विकार है। वह निमित्त कर्म है और विकार होने की जीव की योग्यता है तो करता है। और वह विकार त्रिकाल स्वभाव में नहीं है। विकार किसी ने कराया नहीं और उस विकार की परिणति स्वभाव में नहीं, ऐसा निर्णय भगवत वचन और अपने ज्ञान में आत्मपदार्थ का, वह अर्थसमय आत्मा है, उसका शब्द निमित्त, पदार्थ और ज्ञानसमय में स्वभावज्ञान द्वारा निर्णय करे। अहो! मेरी शान्ति, मेरा सुख वह मुझमें है। क्योंकि आपदा और आकुलता तो क्षणिक है, वह आत्मस्वभाव नहीं है। वह आत्मस्वभाव नहीं है। वह आत्मस्वभाव इन्द्रियों से निर्णय हो सके, ऐसा नहीं है।

जैसे पानी का स्वभाव शीतल, परन्तु इन्द्रियों से निर्णय हो सके, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार संकल्प-विकल्प से निर्णय हो सके, ऐसा नहीं है। 'भगवत वचन को अंगीकार करके ज्ञानी जीव...' समझ में आया? '...कर्म विकार के आताप को नष्ट कर...' जड़ कर्म साथ में निमित्त है। मेरी योग्यता आताप और आकुलता होने की समय की योग्यता है। आताप उसका स्वरूप नहीं। आत्मा का आताप, वह (स्वरूप नहीं)। जैसे पानी का उष्ण स्वरूप नहीं। पानी का स्वरूप शीतल है। उसी प्रकार आताप, पुण्य-पाप, संकल्प-विकल्प की वृत्ति / परिणति जो विकार, वह मेरा स्वभाव नहीं, शाश्वत् स्वभाव नहीं। उसी प्रकार कर्म के विकार के आताप को नष्ट करके। जैसे पानी उष्णता का नाश करके, वैसे जीव अपने स्वभाव का ज्ञान करके। शीतल स्वरूप, शान्त स्वरूप जिसकी महत्ता और महिमा तो गाँठ तू स्वयं ही है। भगवान ऐसे, तीर्थंकर ऐसे, सर्वज्ञ ऐसे, सन्त ऐसे उनके जो तू गीत गाता है, वे जिस मार्ग में अन्तर में प्रविष्ट है, वह मार्ग तुझमें तेरे पास है।

जितने अनन्त केवली, सन्त, मुनि हुए, वे वस्तु के स्वभाव को बहिर्मुख से दृष्टि छोड़कर अन्तर्मुख स्वभाव की दृष्टि करके आताप नष्ट करके शीतलता की प्राप्ति की है। आताप अर्थात् संसार का विकार नाश होकर, स्वाभाविक शीतलता शान्त आनन्द है, उसे प्रगट करके मुक्तपना को प्राप्त हुए हैं। वह कोई किसी के कारण से प्राप्त नहीं होते।

किसी कारण से पाये नहीं और मैं भी बाहर के कारण से प्राप्त कर सकूँ, ऐसा मेरा स्वरूप नहीं। ऐसा निर्णय करने के लिये भगवतवचन को अंगीकार करके। स्वच्छन्दियों के अज्ञानियों के, एकान्तियों के वचन नहीं। समझ में आया?

भगवत हो गये, भगवान हो गये। कहाँ से हुए? जो थे, उसमें से हुए। विकार का आताप नाश करके शान्त शीतल अन्तर्मुख देखकर, बाहर की कोई भी जगत के पदार्थ की जो कुछ परिणति होती हो, उसके साथ मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं संसार के आताप में भी अकेला दुःखी हूँ और आताप का अभाव करने में भी अकेला स्वतन्त्र हूँ। मेरे अकेले स्वरूप में किसी का दोकलापन कभी हुआ नहीं। भाई! कहो, समझ में आया? ऐसा अन्तर भान करके और 'कर्म विकार के आताप को नष्ट करके आत्मिक शान्तरस गर्भित सुख को पाते हैं...' पानी में शीतलता हुई न। वैसे आत्मिक शान्त अनाकुल शान्त स्थिर... स्थिर... स्थिर अन्दर में। ज्ञानस्वभाव वह शीतल शान्त ही है।

किसी पदार्थ का—परमाणु हो या दूसरे सर्वज्ञ साथ में बैठे हों, वे कहीं आत्मा की परिणति—पर्याय सुधार सकें, ऐसा नहीं है। और कोई निन्दा करनेवाला और शरीर के खण्ड करनेवाला साथ में हो, वह आत्मा की स्व-पर्याय को बिगाड़ने में कोई समर्थ नहीं है। समझ में आया? अरे! चौथा काल हो तो आत्मा को ज्ञान दे दे, ऐसा नहीं है। और भगवान सर्वज्ञ के समवसरण में बैठा हो, तेरी आताप परिणति स्वभाव के अवलम्बन बिना किसी प्रकार टले, ऐसी नहीं है। जेठाभाई! परन्तु क्या करना इसे? लोग कहते हैं। यह करना।

भगवान क्या है? भगवान किस मार्ग से हुए? भगवान ने कौन सा मार्ग कहा? और वह मार्ग उनके आत्मा में से आया या बाहर से आया? पानी की शीतलता पानी में से आयी या बाहर से आयी? पानी जो उष्णता थी, वह मिटी, शीतल हुआ। कहाँ से आया? शीतलता के अंश बढ़ने लगे और उष्णता के अंश घटने लगे और शीतलता व्यक्त बाहर पूरी आयी। किसमें आयी? उसकी पर्याय में। कहाँ से आयी? अन्तर शीतलता में से आयी। क्या टलने से आयी? उष्णता टलने से आयी। उष्णता के सहारे से नहीं।

इसी प्रकार जो शीतलस्वरूप भगवान आत्मा शान्तरस गर्भित प्रभु चैतन्य है, अनन्त भगवानों ने अपना अन्तर शीतल स्वभाव है, उसमें से स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान के अंश प्रगट करके विकार के अंशों का व्यय होकर और पूर्ण शान्तरस गर्भित केवलज्ञान पाये हैं। वह मार्ग भगवान ने कहा, वह शास्त्र में है और तेरी पर्याय में, तेरी शक्ति में वह है। ऐसा समझकर जो कोई आत्मिक शान्तरस गर्भित... पहले निर्णय कर कि पूरी दुनिया डोले तो भी तेरे एक तत्त्व को लाभ-नुकसान करने में समर्थ नहीं है। समझ में आया? और तू जहाँ खड़ा है, वहाँ मुनियों के गंज आकर पड़ें, केवलियों के हों और लाख-करोड़ देव हो और महाविदेह में जाकर तुझे छोड़ दे, परन्तु तेरी परिणति की शीतलता करने में तेरा वस्तुस्वरूप साधन है। कहो, समझ में आया?

यह आताप जिसने उत्पन्न किया, वह आताप टालने की ताकत (रखता है)। दूसरा कोई टालने की ताकत इस जगत में है नहीं। इसलिए कहते हैं कि पहले निर्णय किया कि अहो! यह स्वभाव अतीन्द्रिय है। इन्द्रियों से आत्मस्वभाव किसी प्रकार निर्णय नहीं होता। पानी का स्वभाव जैसे किसी प्रकार इन्द्रिय से निर्णय नहीं होता, वैसे भगवान चैतन्यस्वभाव, शुद्धस्वभाव, द्रव्यस्वभाव, शाश्वत स्वभाव मैं स्वयं हूँ, मैं कौन हूँ? ऐसा शाश्वत् स्वभाव जानने के लिये अन्तर का ज्ञान ही काम करता है। कोई राग, विकल्प, पुण्य, निमित्त सहारा या सन्तोष देता नहीं। ऐसा निर्णय करके, ऐसे स्वरूप में स्थिर होकर... यहाँ तो पूर्ण बात करते हैं न? आत्मिक शान्तरस गर्भित। शान्त... शान्त... शान्त। चारित्र की बात की है, भेदज्ञान के बाद।

पूरी दुनिया चाहे जो हो, शरीर में रोग हो, परमाणु पलटे, कर्म के उदय का विपाक, बाहर में प्रतिकूल संयोग हो। तो प्रतिकूलता से अन्तर प्रतिकूलता नहीं। और बाह्य अनुकूलता, वह अन्तर अनुकूलता नहीं। है? और अन्तर अनुकूलता से बाहर प्रतिकूलता या अनुकूलता टलती नहीं। क्योंकि मेरी पर्याय से मेरा परिणमन पलटता है। वैसे मेरी पर्याय से पर की पर्याय पलटे, ऐसा स्वभाव नहीं है। ऐसे पर से भेदज्ञान करके स्वभाव में शान्ति का अवलम्बन अन्तर में लेकर और शान्तरस गर्भित सुख को प्राप्त करता है। शान्तरस अर्थात् चारित्ररससहित ऐसे आनन्द को पाता है। उसका नाम मुक्त कहने में आता है। उसका नाम मुक्ति है। मुक्ति कोई दूसरी चीज़ नहीं है। कहो, समझ में आया?

मोहनभाई! इसमें तो पैसा, लक्ष्मी, इज्जत कुछ नहीं आया। आया कि पर उसके कारण से वहाँ-वहाँ खड़े हैं। मुझमें कुछ धागे जितना एक धागे जितना भी हटे, ऐसा नहीं है। मेरे कारण से वे हटे, ऐसा नहीं है और उनके कारण से मैं एक धागे जितना वापस हटूँ, ऐसा नहीं है। हजार तीर्थंकर खड़े हों, हजार केवली खड़े हों... समझ में आया? समवसरण में होऊँ या चाहे जहाँ होऊँ, मुझमें मेरी पर्याय की परिणति का दोरो कम करना विभाव से और स्वभाव से ज्वार लाना, वह मेरे आधीन है। अन्तर के आधीन है। कोई दूसरा साधन है नहीं। भाई! कहो, समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, ऐसा जो अन्तर भान करता है, और फिर अन्तर में स्थिर होता है, वह शान्तरसवाला आनन्दस्वभाव को पाकर मुक्त होता है। १०३ गाथा कही।

१०४ (गाथा)। 'आगे दुःखों को नष्ट करने का क्रम दिखाते हैं।' यह पहला अधिकार पूरा करते हैं। अब दुःखों का नाश करने का क्रम कहते हैं। 'जिस क्रम से जीव संसार से रहित होकर मुक्त होता है, सो दिखाते हैं।' जिस क्रम से जीव संसार से रहित होकर अपनी आनन्द की दशा को प्राप्त करता है, वह बताते हैं।

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहदमोहो।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदयपरापरो जीवो॥१०४॥

'जो पुरुष इस ग्रन्थ के रहस्य शुद्धात्मपदार्थ को जानकर...' लो, अन्तिम योगफल यह अधिकार का करते हैं। जो कोई आत्मा '**एतद् अर्थं**' इस ग्रन्थ के रहस्य शुद्धात्मपदार्थ। रहस्य पंचास्तिकाय को तो बहुत सवेरे भी कहा गया, कल भी कहा गया था। छह द्रव्य ऐसे हैं। उसका अर्थ ही वीतरागता है। मोहनभाई! सवेरे नहीं थे, नहीं? भाई! नहीं थे। ऐसे छह वस्तुएँ हैं। इसका अर्थ कि वीतरागता। वीतरागस्वभाव से स्व को जानते हुए जानना, वह छह द्रव्य है, उसका फल है। समझ में आया? सवेरे कहा था, महासत्ता और अवान्तरसत्ता सब है। ऐसा क्यों नहीं? इसके कारण नहीं और नहीं, वह नहीं। ऐसा जो स्वभाव जानना छहों का, उसमें आत्मा स्वयं आकर छह का ज्ञान करता है। ज्ञान जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... उस जाननेवाले की वीतरागता वह छह द्रव्य को समझने का फल है। और छह द्रव्य जाने, इसलिए वीतरागता ही हुई। पंचास्तिकाय

के रहस्य को जाना। ऐसा है न यहाँ? भाई!

है पंचास्तिकाय। है काल। सबके कारण से सब है। ऐसा जहाँ हुआ, इसलिए इसकी दशा परपदार्थ की ओर ढलती थी, वह हटकर स्व चैतन्य पदार्थ की ओर ढली। इसलिए पंचास्तिकाय और छह द्रव्य है, उसका रहस्य शुद्धात्मपदार्थ की ओर मुड़ता है। समझ में आया?

यह समय-समय की क्रमबद्धपर्याय होती है और बदलती नहीं, यह कहो तो वह शुद्धात्म सन्मुख उसका झुकाव होता है। पंचास्तिकाय और छह द्रव्य हैं, ऐसा कहो तो भी शुद्धात्म सन्मुख झुकाव होता है। नहीं तो वह है, ऐसा रहा नहीं। समझ में आया? और सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि मोक्षमार्ग कहा, वह भी वस्तु स्वभाव सन्मुख ढलता है—शुद्धात्मा की ओर, तब यह भान होने पर सब है, ऐसा इसे निर्णय होता है। द्रव्यदृष्टि कहो, शुद्धात्मपदार्थ का झुकाव, इसका अर्थ ही हुआ कि सब है। इसलिए क्रमबद्ध है, सब है और अवान्तर भी सब है। एक अन्तर्भेद भी है और सब भी है। उसकी दृष्टि शुद्धात्मपदार्थ की ओर झुकती है। उसके बिना यह सब है, यह निर्णय नहीं होता। तो द्रव्यदृष्टि कहो, सम्यग्दर्शन का विषय कहो, क्रमबद्धपर्याय कहो, मोक्षमार्ग कहो... समझ में आया? पर्यायबुद्धि का अभाव कहो। छह द्रव्य हैं, ऐसा बराबर जानना कहो। और महासत्ता तथा अवान्तर सत्ता है, ऐसा है, ऐसा माना कहो। इन सबका फल शुद्धात्म पदार्थ रहस्य आता है।

इसलिए कहा, '**एतद् अर्थं**' ऐसा शब्द है। '**एतद्**' इस ग्रन्थ के रहस्य को अर्थात् शुद्धात्मपदार्थ को। शुद्धात्मपदार्थ। अब इन सबका सार एक आता है। अनेक शास्त्र में चाहे जिस प्रकार से वर्णन किया परन्तु उसका झुकाव यह शुद्धात्मा है। क्योंकि पर्याय है, वस्तु सब है तो पर्याय है और वस्तु भी है। तो एक पर्याय पर लक्ष्य अल्प रहता है और पूरी चीज़ है, उसके ऊपर ज्ञान का जोर जाता है, अर्थात् शुद्धात्मपदार्थ वह पंचास्तिकाय और छह द्रव्य का रहस्य है। समझ में आया? और शुद्धात्मा शुद्ध ज्ञायक अनन्त हूँ और इसके बाद तो उसकी शक्तियों के अंशों का माप है। अनन्त ज्ञान हूँ, अनन्त दर्शन हूँ, अनन्त आनन्द हूँ... समझ में आया? वह तो अनन्त अपरिमित अंश

और स्वभाव का माप है। परन्तु यहाँ तो है। एक समय का अंश... सब चीज़ है, पंचास्तिकाय और काल। उसके द्रव्य, गुण, पर्याय से। यह एक समय की पर्याय विकार और क्षयोपशम का अंश इत्यादि साथ में है। तथा गुण और द्रव्य है, ऐसे है तो उसका झुकाव एक समय की पर्याय भी है, तो इतने के ऊपर जोर न जाकर, कहीं देखना स्थिर न हो, इसलिए शुद्धात्मपदार्थ पर उसकी दृष्टि जाती है। समझ में आया इसमें?

पंचास्तिकाय, छह द्रव्य जो कहो परन्तु उसका अन्तर झुकाव कहाँ गया? है, अंश तो अंशरूप से है। अंश कहीं अंशीरूप से नहीं। अंशी अंशीरूप से रहा। अंशी अंशरूप से नहीं। जो पर्याय पर्यायरूप से है, वस्तु वस्तुरूप से है। ऐसा जहाँ आत्मा का पर से भेदज्ञान हुआ, वह इस ग्रन्थ का रहस्य है। अर्थात् कि जैनशासन के शास्त्र का रहस्य है। अर्थात् कि छह द्रव्य और पंचास्तिकाय को मानने का एक रहस्य है। अर्थात् कि मोक्षमार्ग जानने का यह रूप है। कहो, समझ में आया?

इस ग्रन्थ के रहस्य को, ऐसा शब्द है, देखो! समझ में आया? '**शास्त्रस्यार्थभूतं**' ऐसा है न टीका में? '**शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानं कश्चिज्जीवस्तावज्जानीते।**' यह क्या शब्द किया है? '**कश्चिज्जीवस्तावच्च**' कहो, समझ में आया? वापस बात यह, जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला। यह ज्ञाता है। यह कोई भी चीज़ जहाँ है, वहाँ उसे रखकर जानता है। अपने में रखकर जानता नहीं। अपने को अपने में रखकर जानता है। ज्ञान हुआ, राग तो है भले। राग-द्वेष का विकार भी एक समय का है। एक समय का है, उसे त्रिकाल में खपाता नहीं। त्रिकाल है, उसे एक समय में खताता नहीं। पर है, उसे अपने में खताता नहीं और अपनापन पर के कारण खताता नहीं। ऐसा इस ग्रन्थ का रहस्य 'शुद्धात्मपदार्थ को जानकर...' समझ में आया? लो, इस प्रकार जानकर, तब जाना कहलाये। उसमें दृष्टि ही स्वभाव... स्वभाव पर के साथ मेरा सम्बन्ध निमित्त-नैमित्तिक है। अर्थात् कि पृथक्ता है। अर्थात् कि भिन्नता बतलाता है। अर्थात् कि वहाँ स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा पीटता है। निमित्त-नैमित्तिक ऐसा कहते हैं कि सब प्रत्यक्ष स्वतन्त्र है। ऐसा इस पंचास्तिकाय के रहस्य को जानकर...

यह तो बहुत बातें पहले आयी थी। बीच में उपादान-निमित्त की भी आयी थी

न? बीच में। उपादान-निमित्त की बहुत आयी थी। परन्तु स्वयं वचनिका में डाला। नीचे लेखन में। यह इसका सार। शुद्धात्मा आनन्दाम्। अनन्तपना, ऐसा नहीं, अनन्तपना फिर तो शक्तिरूप से हूँ। एक समय का नहीं और सामान्य आदि-अन्त बिना का हूँ। वह मैं हूँ, उसमें फिर अनन्तता आ जाती है। अनन्त ज्ञान हूँ, अनन्त दर्शन हूँ, अनन्त आनन्द हूँ, अनन्त वीर्य हूँ और अनन्त चारित्र है... समझ में आया? यह तो शक्ति के—स्वभाव के अंशों का प्रकार है। परन्तु मैं हूँ। एक समय का अंश है और वस्तु, वह वस्तु है। पर, वह पर है। अर्थात् मैं हूँ, उसमें अनन्तता की प्रधानता न आकर, मैं हूँ। हूँ मात्र इसके प्रकार पड़े। कि यह तो आदि बिना का, अन्त बिना का, वर्तमान स्वभाव अनन्त पर्यायों को प्रगट करनेवाला। यह तो बाद में। परन्तु यहाँ तो शुद्धात्मपदार्थ है। वह वर्तमान पर्याय मलिन और अल्पज्ञ जितना नहीं। क्योंकि वर्तमान है अवश्य, ज्ञान में आये प्रमाण। अंश में व्यवहारनय से। और त्रिकाल मेरा स्वभाव शुद्ध है, ऐसा जानकर। यह जाने बिना धर्म का पहला सोपान शुरु नहीं होता। यह रीति, यह कला, यह प्रकार, यह भेद, यह अन्तर का भेद जाने बिना इसकी शुरुआत सत् की, सत् के रास्ते चढ़ने की, यह समझकर पहले हाँ किये बिना अन्तर में जाने का सोपान नहीं आता। कहो, समझ में आया?

पश्चात् '**तदनुगमनोद्यतः**' 'उसी उसी आत्मपदार्थ में प्रवीण होने को उद्यमी होता है।' यह वस्तु ऐसी है। सब है, है तो उसका जाननेवाला। कहीं नहीं, ऐसा नहीं, फेरफार करनेवाला नहीं। ऐसा जिसने अपना ज्ञानस्वभाव जाना तो सब स्पष्टीकरण हो गया। पूरी दुनिया के चक्कर कैसे हैं, इसका स्पष्टीकरण (हो गया)। है... है... है और सबके कारण है। ऐसा जाना। 'उसी आत्मपदार्थ में प्रवीण होने को उद्यमी होता है।' फिर उसकी ओर अन्तर विशेष जानने में उद्यमी होता है। विशेष स्वभाव जो अन्तर्मुख झुकता है। ज्ञानस्वभाव ही यह है। मेरी शक्ति का भण्डार है, वही मैं हूँ। ऐसा उसमें... देखो!

'**तदनुगमनोद्यतः**' 'उसी आत्मपदार्थ में प्रवीण होने को उद्यमी होता है...' यहाँ ऐसा कुछ कहा नहीं कि शुद्धात्मपदार्थ को जानने से कर्म हटे तो ज्ञात होता है। समझ

में आया? इस बात की कहीं गन्ध भी ली नहीं। '**तदनुगमनोद्यतः**' '**तदनुगम, तदनुगम**' यह आत्मा है, एक समय का विकार है, वस्तु है, वह त्रिकाल है। त्रिकाल, वह शुद्ध है। शुद्ध में विकार का प्रवेश नहीं। तो '**तदनुगम**' उसे अनुगमन, उसे अनुसरकर 'प्रवीण होने को उद्यमी...' उसे अनुसरकर प्रवीण होने को उद्यमी। शास्त्र को अनुसरकर, यह बात निकाल दी। भाई! पहले साधारण बात की। आत्मपदार्थ, उसमें से प्रकाश, उसका प्रकाश। चैतन्य स्व स्वसंवेदन में कैसे आवे? ऐसे अन्तर के भेद से, अन्दर के ज्ञान में उतरने लगा। बाहर के झुकाव की उपेक्षा हो गयी और अन्तर के झुकाव में अपेक्षा हुई। बाहर की उपेक्षा और अन्दर की अपेक्षा। देखो!

'उसी आत्मपदार्थ में प्रवीण होने को उद्यमी होता है...' इस प्रकार उद्यमी होता है। पुरुषार्थ करता है। अन्तर के ज्ञानस्वभाव झुकाव में, अन्तर्मुख होने में, अन्तर्मुख होने में। देखो! यह मोक्ष का मार्ग, सुखी होने का उपाय। यह शान्ति और सहज स्वतन्त्र होने का उपाय। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय है नहीं। बात में यह आया कि जब आत्म पदार्थ में प्रवीण होने के लिये उद्यमी इस शुद्धात्मा को जानकर। तब उसमें सब न्याय आया कि गुरु और शास्त्र ने और देव ने इसे ऐसा कहा... भाई! उन्होंने क्या कहा? गुरु ने ऐसा कहा, शास्त्र ने ऐसा कहा और केवली ने ऐसा कहा कि छह पदार्थ में, छह द्रव्य में और पंचास्तिकाय में शुद्धात्मपदार्थ की ओर का प्रवीण हो, झुकाव कर—ऐसा शास्त्र ने कहा। गुरु ने भी कहा है, जो कहा, उसे समझने के लिये प्रयत्न करता है। उसे शास्त्र ने ऐसा कहा नहीं कि मेरे सन्मुख देख। शास्त्र ने, गुरु ने यह कहा नहीं कि मेरे सन्मुख देख। राग हुआ, उसमें प्रयत्न कर। समझ में आया?

'**तदनुगमनोद्यतः**' आत्मपदार्थ जो त्रिकाल, एक समय का अंश पर्याय और त्रिकाल। उसकी ओर पर्याय का झुकाव अन्तर में कर। ऐसा शास्त्र ने कहा। यह शास्त्र कहते हैं कि राग करते हुए अन्तर में जाया जाये, यह शास्त्र नहीं कहते। जो गुरु कहे कि बहिर्गत झुकाव से अन्तर्गत में जाया जाता है, वे गुरु नहीं हैं। जो देव नाम धराकर कहते हैं कि आत्मपदार्थ के अन्तर झुकाव में हम हों तो तेरा झुकाव अन्तर में हो, तो वह देव नहीं है। समझ में आया? '**तदनुगमनोद्यतः**' इसका रहस्य। एक बार विकल्प तुझे

आया। श्रवण तो किया। यह तो सिद्ध किया। श्रवण तो किया न कि ऐसा है। तब राग तो है। यह जाना क्या? पंचास्तिकाय है। अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त पुद्गल हैं, आकाश है, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और छठवाँ द्रव्य... अस्तिकाय है पाँच और वह (काल) अस्तिकाय नहीं परन्तु छठवाँ द्रव्य है। ऐसा जिस शास्त्र ने कहा, तब सुननेवाले को विकल्प तो था। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र का विकल्प था, तब तक निमित्त का लक्ष्य था। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का निमित्त छूट गया है। उससे विरुद्ध कोई कहता हो ऐसे कुगुरु, कुशास्त्र और कुदेव की मान्यता छूट गयी है। उसके बिना यह श्रवण में भी यह नहीं हो सकता। इस श्रवण में इस प्रकार से खड़ा है कि छह द्रव्य हैं, पंचास्तिकाय है। है, वे सब अपने कारण से है। विकार, वह भी स्वयं के कारण से है। ऐसा जहाँ इसने श्रवण किया, श्रवण करने पर भी इसका वजन अब कहाँ जाता है? अन्तर्मुख आत्मा शुद्धात्मा, वहाँ प्रवण होने का प्रयत्न कर। अन्तर्मुख प्रवीण होने का प्रयत्न कर। ऐसा गुरु ने कहा, शास्त्र ने कहा और देव ने कहा। ऐसा जो माननेरूप का विकल्प आवे सही, परन्तु उसने किया नहीं कहलाता। वह तो जब अन्तर पुरुषार्थ करे, तब उस राग को व्यवहार का आरोप आता है। नहीं तो आरोप-फारोप भी नहीं आता।

इसलिए कहा कहे कि '**ज्ञात्वा तदनुगमनोद्यतः**' 'उसी आत्मपदार्थ में प्रवीण होने को उद्यमी होता है...' पुरुषार्थ कर। लोगों को ऐसा है कितनों को कि क्रमबद्धपर्याय होती है, इसमें हमारे क्या करना? प्रमाद नहीं हो जाये न? ...भाई! क्रमबद्धपर्याय होती है वह तो... करते हैं यहाँ से। ... प्रत्येक द्रव्य और पदार्थ की। परन्तु इसका अर्थ ही यह हुआ, स्वात्मा की ओर का पुरुषार्थ उसका रहे, तब क्रमबद्ध का निर्णय किया कहलाता है, नहीं तो निर्णय किया नहीं। क्रमबद्ध को मानना और ऐसा कहना कि उसमें पुरुषार्थहीन हो जाये तो? तो वह वस्तु को समझता नहीं। हिम्मतभाई! ऐसा कितने ही कहते हैं, यह क्रमबद्ध माने और पुरुषार्थ हीन हो जायेंगे और व्यवहार नहीं रहेगा तो? तो इसका अर्थ यह हुआ कि क्रमबद्ध जो वस्तु है, समय-समय में जिसे जो होनेवाला है, उसे वह होनेवाला ही है, ऐसा जिसने है का निर्णय किया है, उसे अन्तर्मुख का प्रवीणपने का प्रयत्न चूके बिना करता है, तब क्रमबद्ध का निर्णय यथार्थ होता है। उसे प्रमाद और दोष हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। तब तो ऐसा हुआ कि वस्तु स्वभाव की दृष्टि करने से

दोष हो तो ? है, परन्तु कब होनेवाला है ? वह होता है, यह प्रश्न है। '**तदनुगमनोद्यतः**' आत्मपदार्थ में उसका प्रयत्न रहता है, यथार्थ जाननेवाले को। परन्तु होनेवाला हो वह होता है, फिर वह व्यवहार नहीं सम्हले तो ? 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' और जहाँ-जहाँ जो योग्य वहाँ राग, उसका निमित्त बराबर सचवाय नहीं। होनेवाला हो वह होता है, फिर वह नहीं सचवाय तो ? भाई!....

जब वस्तु क्रमबद्धपर्याय और है, ऐसा निर्णय हो गया, वहाँ व्यवहार नहीं रहे, यह तो स्वभाव का आश्रय खो देगा तो नहीं रहेगा और स्वभाव का आश्रय किये बिना तो होनेवाला होगा, और क्रमबद्धपर्याय का पुरुषार्थ होता ही नहीं। वीतरागता और अन्तर आत्मा के अवलम्बन बिना होनेवाला होगा वह होगा, उसका पुरुषार्थ यथार्थ हो सकता ही नहीं। जहाँ होनेवाला होगा क्रमबद्ध और है ऐसा कहने पर सब है, वह तो स्वभाव—द्रव्य का प्रयत्न रहा। उसका जब तक निर्बलता का काल है, वहाँ तक उसे रागादि रहेंगे। इसमें व्यवहार नहीं रहे तो ? इस प्रश्न को अवकाश नहीं है। ...भाई! लोगों को यह एक प्रश्न उठता है। यदि ऐसा होगा तो फिर लोगों को देव-गुरु-शास्त्र का विनय, यह सब व्यवहार उड़ जायेगा तो ? उसे अनुसरकर रहना, उसे—शुद्धात्मा को अनुसरकर रहना नहीं है। कहो, समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं कि 'उस ही आत्मपदार्थ में प्रवीण होने को उद्यमी होता है, वह भेदविज्ञानी जीव...' लो, यह अन्तर में प्रवीणता में जहाँ पड़ा, वह 'नष्ट किया है दर्शनमोह जिसने' लो, अर्थात् वहाँ भ्रान्ति का नाश होता है। कैसे होगा ? क्या होगा ? यह बात रहती नहीं। गजब बात, भाई! यहाँ तो अब कहा, भाई! उसमें 'जानकर' और उसमें 'प्रवीण होने को उद्यमी होता है, वह भेदविज्ञानी जीव नष्ट किया है दर्शनमोह जिसने...' नष्ट किया अर्थात् उसे नाश हो जाता है। इसका अर्थ। स्वभाव-सन्मुख का जहाँ प्रयत्न हुआ तो विभाव की एकताबुद्धि का, मोह की मिथ्यादृष्टि रहती नहीं। यह उसका उपाय है। दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है। कहो, समझ में आया ?

'(नष्ट किया है) दर्शनमोह जिसने...' जड़ का नाश किया, वह कहीं आत्मा नहीं कर सकता। ऐसे दर्शन की भ्रान्ति का भी नाश जीव करना चाहे तो करता नहीं। वह

तो ऐसे उद्यमी जहाँ अन्तर में हुआ '**तदनुगमनोद्यतः**' स्वभावसन्मुख के पुरुषार्थ में जहाँ रहा अर्थात् भ्रान्ति की उत्पत्ति हुई नहीं। उसने मोह का नाश किया—दर्शनमोह का, ऐसा कहा जाता है। अभी विधि पकड़ने में न आवे, करना क्या? विधि किस प्रकार करना? कहो, समझ में आया? यहाँ तो '**तदनुगमनोद्यतः**' एक धाराप्रवाही प्रयत्न वर्तता है वहाँ। समझ में आया? स्वभाव, एक पर्याय जितना नहीं और निमित्त में तो नहीं ही। ऐसा जहाँ तत् अनुगम पुरुषार्थ वर्ता, वहाँ दर्शनमोह का नाश हुए बिना रहता नहीं। दूसरे किसी उपाय से दर्शनमोह का नाश नहीं होता। कहो, समझ में आया? फिर अब विशेष कहते हैं।

'शान्त होकर विलय गये हैं राग-द्वेष जिसमें से...' फिर तो जो स्वभाव के अवलम्बन से जो मिथ्यात्व और भ्रान्ति का नाश होता है, उसी स्वभाव के अवलम्बन से शान्ति प्रगट होने लगी। अन्तर के और अन्तर के अवलम्बन से शान्ति (प्रगट होने लगी)। दूसरा कोई उपाय नहीं कि इतने व्रत करे और इतने विकल्प उठे और इतने निमित्त का सेवन करे तो शान्ति हो। वह शान्ति बाहर से आती नहीं। शान्ति बाहर से आती नहीं। शान्ति अर्थात् चारित्र। अन्तर शान्त... शान्त होकर ज्ञायकस्वभाव में रहकर, अरे! आत्मा! तू अकेला है। ऐसा जहाँ निर्णय भेदविज्ञान से हुआ, किस जगह तू दोकला हो जायेगा अब? अकेले का जहाँ निर्णय किया, किस जगह दोकला लाभ लेना है तुझे? किस जगह? राग के अवलम्बन से, निमित्त के अवलम्बन से, क्षेत्र के अवलम्बन से, कोई बाहर के सत्समागम के निमित्त के अवलम्बन से? अकेला ही है, ऐसा जब अन्तर के पदार्थ को अनुसरकर जहाँ पुरुषार्थ हुआ, भ्रान्ति टली, उसकी शान्ति का साधन तो अन्तर में होने लगा। वह चारित्र है, उसका नाम चारित्र है।

'शान्त होकर...' अकेला होऊँ तो भी मेरी परिणति मेरे आधीन। संयोग में अनेक में होऊँ तो भी मेरी परिणति—पर्याय मेरे आधीन। किसी के समीप में होऊँ तो उसकी परिणति की पर्याय उसके आधीन। कोई मेरे कारण कुछ होता है और अधिक बाहर में आवे तो मुझे कुछ शान्ति हो कि अधिक सभा हो,... समागम अकेले को किस प्रकार करना? अकेला चर्चा करे, उसमें शान्ति मिले? अपना ज्ञान सुननेवाला चाहिए, सुनानेवाला चाहिए। हिम्मतभाई! मोहनभाई! सुननेवाला चाहिए। ... कोई सुननेवाला... यह तो

अकेला। अकेला तो वन में... क्या कुछ कहते हैं ? वन में वृक्ष भी रहेगा नहीं। ऐसा नहीं कहते ? यहाँ तो अकेला, तीनों काल अकेला। लोग तो ऐसा कहते हैं न ? बापू ! अकेला तो वन में वृक्ष भी होगा नहीं। भीखाभाई ! यह तुम्हारे संसार के... ऐसा कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि तीनों काल सब पदार्थ अकेले हैं। अकेले में शान्ति है। दोकला—दो का जहाँ आश्रय लिया, वहाँ आकुलता है। आश्रय देता नहीं कोई। कोई दोकला आश्रय देता नहीं। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि स्व का अवलम्बन लेने से पर सन्मुख का राग का अनुसरण टल जाता है। राग का अनुसरण अर्थात् निमित्त का अवलम्बन की ओर का आश्रय टल जाता है।

और स्वभाव के आश्रय से 'विलय गये हैं राग-द्वेष जिसमें से, नष्ट किये हैं पूर्व बन्ध जिसने...' लो, नष्ट हो गया अब बन्धन। जो चारित्र की अस्थिरता से जरा से बन्ध होता था धर्मी को, स्वरूप को अनुगत जो पूर्ण नहीं था, उसे... पूर्ण करना है न यहाँ। 'ऐसा होकर मोक्षपद का अनुभवी होता है।' वह अपने पूर्णानन्द का अनुभवी हो जाता है। पूर्ण हुआ, वह हुआ। उसे फिर अवतार नहीं होता। कहो, समझ में आया ?

'यह संसारीजीव अनादि अविद्या के प्रभाव से...' लो, आया। किसके प्रभाव से ? कर्म के प्रभाव से नहीं। अविद्या। न विद्यमान रहे, उसके ऊपर प्रीति और विद्यमान त्रिकाल रहनेवाले पदार्थ पर अप्रीति अर्थात् अरुचि। ऐसा जो अनादि का अज्ञान। त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, वस्तु स्वभाव, शुद्ध स्वभाव, चिदानन्द ध्रुव नित्य स्वभाव, वह विद्यमान रहा हुआ तत्त्व है। क्षण-क्षण में विकार पलटे, संयोग पलटा ही करे, उसके ऊपर बुद्धि और अवलम्बन और लाभ, वह अविद्या है। वह अविद्या, 'अनादि अविद्या के प्रभाव से परभावों में आत्मस्वरूप जानता था...' परभावों अर्थात् विकार और पुण्य-पाप में पूरा आत्मस्वरूप, आत्मस्वरूप अर्थात् पूरा आत्मतत्त्व मानता था। एक समय की पर्याय में पूरा आत्मतत्त्व स्वीकारता था अविद्या के कारण। अरे ! यह कौन है ? यह क्या है ? मैं वह कहीं एक समय का हूँ ? ऐसा मानता था कि मैं एक समय का हूँ। ऐसा मानता था... मैं तो एक समय का हूँ या शाश्वत् हूँ ? यह अविद्या के प्रभाव से जो आत्मस्वरूप परभावों में जानता था,

'अज्ञानियों को राग-द्वेष भावरूप...' परिणमते थे। अज्ञानी होकर राग-द्वेष, अज्ञानी होकर राग-द्वेषरूप परिणमता था, उसकी बात है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप विकाररूप होता था। 'जब काललब्धि पाय...' जहाँ पुरुषार्थ की जागृति सूझी, अहो! सब है, वह है। क्रमबद्ध है, नियमबद्ध है, व्यवस्थित है। कोई अव्यवस्थित है नहीं। ऐसा जहाँ पर्याय में भान हुआ, उसे काललब्धि कहते हैं। स्वद्रव्य के स्वपर्याय के भाव को यहाँ काललब्धि कहते हैं। वह काल अर्थात् स्व पुरुषार्थ का काल, उसमें पाँचों बोल आ जाते हैं। समझ में आया? काल, स्वभाव, नियति, पुरुषार्थ और कर्म का अभाव, ये पाँचों बोल एक समय में आ जाते हैं।

जो राग-द्वेषरूप होता था, वह 'काललब्धि पायकर सर्वज्ञ वीतराग के वचनों को धारण करता है...' किसके वचन? सर्वज्ञ वीतराग, सर्वज्ञ वीतराग। जाननेवाला तू है, वीतराग तू है। हम सर्वज्ञ और वीतराग हुए हैं। कहाँ से हुए हैं? अन्तर के स्वभाव में से हुए हैं। प्राप्त की प्राप्ति है। अप्राप्त की प्राप्ति नहीं। अन्दर में है, उसमें से सर्वज्ञ और वीतरागता आयी है। ऐसे जिसने वचन सुने और जिसे अन्तर में रुचे (उसकी) काललब्धि पक गयी। उसे काललब्धि पकी अर्थात् पर्याय साख पकी अब। अब संसार से पृथक् होने का समय आया। आम पकता है न? आम। डण्ठल में जब सरीखी। पके तो एकदम टूट जाये नीचे। उसी प्रकार संसार के दण्ठल से राग-द्वेष और अज्ञान में चिपटा है, समझ में आया? अखण्ड शुद्ध चैतन्य हूँ। भगवान के वचन सर्वज्ञ और वीतराग के... सर्वज्ञ शक्तिवाला और वीतरागता का स्वरूप है। रागादि तेरा स्वरूप नहीं। ऐसी जहाँ रुचि हुई, वह काललब्धि पकी, वह पुरुषार्थ हुआ। वह स्वभाव था, वह आया, यह नियत था, वैसा हुआ और कर्म के अभावरूप परिणमने लगा, इसका नाम एक समय में काललब्धि और पाँच समवाय कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया?

'जब काललब्धि पाय, सर्वज्ञ वीतराग...' पड़ा है, एक शब्द पड़ा रहा है अन्दर। 'वीतराग के वचनों को अवधारण करता है।' कौन अवधारण करता है? धारता है। वह तो धारता नहीं। वीतराग का वचन ही धारता नहीं। घर का स्वच्छन्द और कल्पना जो धारी, उसे ही धार रखता है। सर्वज्ञ वीतराग के वचनों को वह धारण करता है। ओहो!

सर्वज्ञ ज्ञानी सर्व के जाननेवाले। पूर्ण शक्ति प्रगट हुई तो जाननेवाले रहे। मैं और अपूर्ण शक्तिवाला कुछ करनेवाला होऊँ, ऐसा बनता नहीं। पूर्ण शक्ति हुई, अनन्त शक्ति उघड़ गयी। ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य। जाननेवाला रहे। किसी का करे? नहीं। किसी को दे? नहीं। किसी से ले? नहीं। यह ज्ञानमूर्ति आत्मा कि जिसमें से सर्वज्ञ हो। वीतराग स्वभावी आत्मा कि जिसमें से वीतराग हो। आनन्दस्वरूपी आत्मा कि जिसमें से आनन्द पूर्ण हो। वीर्यमूर्ति आत्मा तो अनन्त वीर्य जिसमें से हो। ऐसा जिसने अवधारण किया, उसे काललब्धि पक गयी। ऐसा जिसने अवधारण किया नहीं, उसकी काललब्धि पकी नहीं। उसे पुरुषार्थ की खबर नहीं, उसे स्वभाव की खबर नहीं, उसे नियत की खबर नहीं, उसे कर्म का अभाव होता नहीं। कहो, समझ में आया? देखो, यह काललब्धि का आया। ...भाई! यह काललब्धि का आया। गजब बात, भाई!

'जब काललब्धि पाय सर्वज्ञ वीतराग के वचनों को अवधारण करता है, तब इसके मिथ्यात्व का नाश होता है।' तब मिथ्यात्व का नाश (होता है)। बात सुनने से नहीं वापस, धारणा से। अकेला शब्द सुने, ऐसा नहीं। अन्दर में अवधारण करे कि ओहोहो! यह वस्तु तो ज्ञानस्वरूपी बात, अन्तर्मुख की ही बात करते हैं। बहिर्मुख का झुकाव, वह राग है। वीतराग उसका अवलम्बन लेने को कहते नहीं। जानने का कहते हैं कि है, उसे जान। परन्तु उसका आश्रय करने का कहते नहीं। ऐसा जिसने धारण किया है, अन्तर में निर्णय किया है स्वभाव-सन्मुख होकर (निर्णय किया है), उसके 'मिथ्यात्व का नाश होता है।' उसे भ्रान्ति नहीं रहती। कैसे होगा? क्या होगा? यह मार्ग कैसे है? मेरी शान्ति कहाँ से मिले? क्या मुझे बहुत करना पड़े कि जिससे शान्ति मिले? अनन्त काल में इतने उपाय किये नहीं, उपाय करने पर भी मिली नहीं, तब किस प्रकार का उपाय होगा? वह किसी प्रकार की भ्रान्ति रहती नहीं।

'भेदविज्ञान...' समझ में आया? 'रूप सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट होती है।' भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट होती है। समझ में आया? भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान ज्योति। राग नहीं होने पर भी वह मुझमें त्रिकाल में नहीं। ऐसा। समय-समय में तो है। शरीरादि सभी वस्तुएँ हैं। 'भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट होती है...' लो, यह

सम्यग्ज्ञान ज्योति, सम्यग्ज्ञान ज्योति। समस्वभावी चैतन्यसूर्य। यह आत्मा समस्वभावी, ज्ञानस्वभावी सूर्य है। राग, विकार वह मेरा स्वरूप नहीं, ऐसा जिसने अन्तर में भान किया, 'तत्पश्चात् चारित्रमोह भी नष्ट होता है...' तत्पश्चात्। यह समझे बिना, यह ज्ञान बिना किसी का चारित्रमोह का नाश नहीं होता और किसी को अचारित्र टलता नहीं। समझ में आया? समझे बिना सीधे चारित्र लेना चाहे तो? व्रत, नियम और प्रत्याख्यान। यह करो... यह करो, इस क्रिया से मदद मिलेगी। वह तो मूढ़ है, कहते हैं कि कुछ समझता नहीं। यह भेदविज्ञान अन्तर में प्रगट होने के पश्चात् 'चारित्रमोह भी नष्ट होता है।' अर्थात् कि स्वभाव की जितनी शान्ति की ओर अन्तर में समाधान... समाधान... समाधान स्वसन्मुख झुकने लगा, समझ में आया? फिर तो इष्ट-अनिष्ट जरा वृत्तियाँ होती थीं, पदार्थ के कारण से नहीं, वे वृत्तियाँ टूटने लगीं। स्वभाव का अवलम्बन लेने से। यश का पुंज हो तो भी मुझे शान्ति नहीं। और अपयश का पहाड़ हो तो उससे मुझे अशान्ति नहीं। मेरी ही पर्याय में जरा राग-द्वेष की वृत्तियाँ हैं, वे अशान्ति का कारण है। दूसरा कोई कारण नहीं है। दुनिया में सम्पदा के ढ़ेर हों, और पर्याय में राग-द्वेष हों, भेदज्ञान होने पर भी, वह राग-द्वेष है, इतनी मुझे विपदा है। वह सम्पदा नहीं है। मोहनभाई! बाहर की सम्पदा के ढ़ेर हों। इज्जत के, कीर्ति के, दुनिया के ढ़ेर के। वह सम्पदा की पर्याय मुझे कुछ लाभकर्ता नहीं। वह सम्पदा न हो और अकेला होऊँ, अकेला होऊँ तो मुझे कोई विपदा का कारण नहीं। ऐसा क्रम-क्रम से स्वभाव की शान्ति का अवलम्बन लेकर और जिसके राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं।

'तब सर्वथा संकल्प-विकल्प के अभाव से स्वरूप में एकाग्रता से लीन होता है।' फिर शान्ति में लीन होता जाता है परन्तु तेरे कारण जगत को लाभ हो? थोड़ी प्रभावना करनी चाहिए शुभराग की। वजुभाई! यह तो कहते हैं, पहले ही कर्तव्य माना है कि... शुभभाव से मेरी शान्ति अटकती है। परन्तु यह बहुत प्रभावना होती है, लो! कितना देखो ऐसा। किसकी प्रभावना? प्र—विशेष भावना। अन्तर में आत्मा में प्रभावना होती होगी या आत्मा की बाहर में होती होगी? अर्थात् अन्तर राग-द्वेष के जो अंश उत्पन्न होते थे, वे अन्तर के स्वभाव की शान्ति के अवलम्बन से सर्वथा अभाव होकर स्वरूप में एकाग्र और लीन होता है।

'आगामी बन्ध का भी निरोध हो जाता है।' फिर बन्ध नहीं होता। 'पिछला कर्मबन्ध अपना रस देकर खिर जाता है।' पूर्व के परमाणु खिर जाते हैं। रस आत्मा को नहीं, हों! यह संयोग-फंयोग देकर छूट जाते हैं। संयोग कोई आनेवाला, तीर्थंकर को तीर्थंकरगोत्र का, बलदेव को बलदेवपने का, चक्रवर्ती को चक्रवर्तीपने का, सेठ को सेठाई का राग पूर्व का प्रारब्ध ऐसा हो तो बाहर आकर छूट जाये। उसके आत्मा को कुछ लाभ-नुकसान नहीं करता।

'तब वही जीव निर्बन्ध अवस्था को धारणपूर्वक मुक्त होकर अनन्त कालपर्यन्त स्वरूप गुप्त अनन्त सुख का भोक्ता होता है।' लो, यह क्रम। समझ में आया? 'वह जीव निर्बन्ध अवस्था को धारण कर...' स्वभाव की मुक्त अवस्था हुई अर्थात् निर्बन्धदशा हुई। 'धारणपूर्वक मुक्त होकर अनन्त काल पर्यन्त इस स्वरूपगुप्त...' सिद्ध क्या करते होंगे? स्वरूपगुप्त अनन्त सुख के भोक्ता हैं। वे फिर राग और आकुलता का जरा अनुभव साधक में था, वह टल जाता है। पूर्ण आनन्द का अनुभव (होता है)। यह सर्व दुःख से मुक्त होने का क्रम और यह एक उपाय है, दूसरा उपाय नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

असोज शुक्ल १४, रविवार, दिनांक - २६-१०-१९५८, गाथा-१५९, प्रवचन-१४

यह पंचास्तिकाय की मोक्षमार्ग के विस्तार के कथन में १५९वीं गाथा है। इसमें क्या कहते हैं? कि आत्मा को जो मोक्ष का मार्ग है... इस ओर से लो, २३२ से। दूसरा पेरेग्राफ। **इस प्रकार वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित, अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया।** अर्थात् क्या कहा? कि यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध चैतन्य आनन्द और ज्ञानानन्द की मूर्ति है। उसका अन्तर अवलम्बन लेकर जो निर्मल श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की रमणता ऐसा जो स्वाभाविक शक्ति के विकासरूप निर्मल अवस्था, उसे अभिन्नसाध्यसाधन मोक्षमार्ग कहते हैं। अर्थात् क्या?

यह आत्मा की पूर्ण निर्मल दशा का प्रगट होना, वह साध्य-मोक्ष है। और उसका साधन आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द का अन्तर कन्द है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की दशा, वह भी निर्मल, निर्विकारी अवस्था है। और पूर्ण मोक्षदशा भी निर्विकारी निर्मल मोक्षदशा भी शुद्धपर्याय है। वह शुद्धपर्याय साध्य—प्रगट करनेयोग्य और उसका साधन शुद्धपर्याय, वे दोनों शुद्ध हैं, इस अपेक्षा से एक साध्यसाधन है, ऐसा कहने में आया। अभिन्न साध्यसाधन अर्थात् ऐसी निर्मल पर्याय आत्मा की मोक्ष की प्रगट हो, उसका कारण भी स्वभाव के आश्रय से निर्मल श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की रमणता, वे दोनों अभिन्न साध्य है। निर्मल पर्याय साध्य और निर्मल पर्याय साधन। निश्चयमोक्षमार्ग साधन और उसका साध्य पूर्ण मोक्ष। इस अपेक्षा से उसे अभिन्न साध्य और साधन कहा गया है। समझ में आया? सूक्ष्म आया है आज बराबर यहाँ।

और जो पहले (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था,... १०७ वीं गाथा अपने ली थी। उसमें जो कहने में आया था कि **स्व-परहेतुक पर्याय के आश्रित,...** देखो, यहाँ स्पष्टीकरण किया। वहाँ तो अकेला अभिन्नसाध्यसाधनत्वात। अर्थात् कि वहाँ आत्मा की पूर्ण निर्मल मोक्षदशा प्रगट होना, उसका अन्तर में निर्मल स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता कि जिसे व्यवहार स्वपरहेतुक राग को साधन कहेंगे। उसकी अपेक्षा यह स्वहेतुक निर्मल पर्याय है, इसलिए उसे अभिन्नसाध्यसाधन कहा गया है। गजब बात

लम्बी! समझ में आया? वहाँ स्वहेतुक स्पष्टीकरण न किया हो, परन्तु स्वद्रव्य आश्रित है, शुद्ध द्रव्याश्रित है अर्थात् उसमें यह स्पष्टीकरण आ गया। समझ में आया इसमें?

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा पूर्णानन्द और शान्तरस के कन्द से भरपूर है, ऐसे स्वभाव में ही अन्तर में अन्तर्मुख होकर श्रद्धा, ज्ञान और रमणता निर्विकारी प्रगट हो, उसे शुद्ध द्रव्य परमात्मद्रव्य आत्मा का, उसके आश्रित प्रगट हुई स्वहेतुक निर्विकारी निर्मल पर्याय कि जिसे निश्चय—सच्चा मोक्षमार्ग कहा जाता है। वह निश्चयमोक्षमार्ग निर्मल, वह निश्चय मोक्ष निर्मलदशा का साधन। वे दोनों निर्मल से निर्मल की बात की गयी है। समझ में आया? इसलिए उसे एक जाति के साध्य और साधन है, ऐसा कहने में आता है। अभिन्न कहो या एक जाति के कहो।

(गाथा) १०७ में जो कहा था कि स्वपरहेतुक अवस्था। आत्मा में निश्चय स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता होने पर भी अपूर्ण जहाँ चारित्र की निर्मलदशा मोक्षमार्गी जीव को अन्तर में चारित्र निर्मल अल्प है, इसलिए उसे राग का विकल्प उठता है। वह राग नौ तत्त्व की श्रद्धा के भेदरूप राग, नौ तत्त्व भगवान ने कहे हुए ज्ञान का राग, और पंच महाव्रत मुनि को और अट्ठाईस मूलगुण जो मुनि को होते हैं, उनका व्यवहारचारित्र का राग, वह राग स्वपरहेतुक है। अर्थात्? उस राग का उपादान स्व आत्मा तो कारण है परन्तु साथ में कर्म के निमित्त की उसमें अपेक्षा आती है। अपेक्षा आती है, इसलिए व्यवहार और स्व-अपना कारण वह निश्चय उपादान। वह निश्चय उपादान और व्यवहार निमित्त के कारण से उत्पन्न होता विकारी भाव कि आत्मा अखण्ड आनन्द की प्रतीति, ज्ञान और रमणता करता होने पर भी अपूर्ण चारित्र की दशा के स्थान की भूमिका में ऐसे राग की भूमिका वहाँ आये बिना नहीं रहती। नरभेरामभाई! भारी सूक्ष्म आयेगा, हों! इसमें कोई चतुराई करने जैसा नहीं है। मुश्किल-मुश्किल से समझ में आये, ऐसा है। समझ में आया?

एक समय में ऐसे प्रभु आत्मा की वर्तमान दशा में भले पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान के राग आवे, परन्तु उस राग बिना का इसका पूर्ण शुद्ध चैतन्य दल, ज्ञानदल, आनन्ददल, उसका स्वभाव है। ऐसे स्वभाव की अन्तर्मुख श्रद्धा, ज्ञान

और रमणता, वह मात्र स्वहेतुक निर्मल निर्विकारी दशा है। वह दशा निर्मल पूर्ण मोक्ष का कारण है, ऐसा कहना, वह एक जाति के साध्य और साधन कहे गये हैं। समझ में आया?

और जहाँ १०७वीं गाथा में कहा, वहाँ स्वपरहेतुक पर्याय अर्थात् राग, विकारी विकल्प उत्पन्न होते हैं। नौ तत्त्व की श्रद्धा के भेदवाला और नौ तत्त्व का ज्ञान परसन्मुखवाला और पंच महाव्रत जो मुनि को सत्य स्वरूप प्रगट और अनुभव होकर स्थिरता में आंशिक रमता हो, उसे पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की वृत्ति की परिणति जो उत्पन्न होती है, वह राग है। वह स्व-परहेतुक है। आत्मा से हुआ है और उसके साथ कर्म का निमित्त है, ऐसी पर्याय अर्थात् आस्रव, उसे वास्तव में तो वह आस्रवभाव है। परन्तु उस आस्रव को यहाँ निमित्तरूप से गिनकर उसे भिन्न साध्यसाधनभाववाला व्यवहारनय के आश्रय से मोक्षमार्ग कहा गया है। समझ में आया? कहने में आया था वहाँ। १०७वीं गाथा में।

नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। परन्तु है राग। नौ तत्त्व का ज्ञान, सम्यक् सच्ची दृष्टि, और सच्चे ज्ञान की भूमिका में यह है तो नौ तत्त्व का ज्ञान व्यवहार से राग, ऐसे स्वरूप की रमणता होने पर व्यवहार राग बाकी रह गया, पंच महाव्रत का है तो आस्रव, परन्तु भिन्न साध्यसाधनरूप से गिनकर अर्थात् मोक्ष का स्वरूप तो पूर्ण प्रगट हो, वह तो साध्य निर्मल और निर्विकार है। परन्तु उससे भिन्न, निर्मल से भिन्न राग की उत्पत्ति, पंच महाव्रत के रागांश आदि की हुई; वह निर्मल पर्याय का मोक्ष, उससे भिन्न ऐसा राग, उसे मोक्ष का साधन कहना, वह व्यवहार से कहने में उपचार से कथन करने में आया है। समझ में आया इसमें? सत्य मार्ग... कभी सत्य तो सुना ही नहीं।

अनन्त काल अनन्त अवतार हुए परन्तु सत्य पन्थ क्या है, और सत्य की राह कैसे आत्मा को प्राप्त हो, यह बात सत्य के मार्ग की सुनी नहीं। और सुनी हुई उसे कहते हैं कि वह वस्तु का स्वरूप आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है, पूर्णानन्द आनन्द का कन्द एक-एक आत्मा है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान करे तो सुना हुआ कहा जाये, नहीं तो सुना हुआ कहने में नहीं आता। समझ में आया?

(गाथा) १०७ में भिन्न साध्य। आत्मा की मोक्ष की शक्तिरूप जो आत्मा में आनन्द पूर्ण पड़ा है, पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराई—चरपराहट जैसे भरी है, वह जैसे बाहर में आवे, तब चौंसठ पहरी प्रगट हो, वह पूरी प्रगट हुई कहलाती है। इसी प्रकार आत्मा में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान पड़ा है। उसकी एकाग्रता द्वारा पूर्ण निर्मल दशा प्रगट हो, उसे मोक्ष कहा जाता है। ऐसे मोक्ष की निर्मलदशा में आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से श्रद्धा, ज्ञान और रमणता जो होती है, वह तो एक प्रकार का साधन गिनकर उसे अभिन्न और एक जाति का साध्य-साधन कहा। परन्तु व्यवहारनय से भिन्न साध्यसाधन कहा। निश्चय निर्मलदशा मोक्ष की और मलिन राग, व्यवहार, उसे साधन कहा। व्यवहार से कहा गया है। वह व्यवहार से कहा गया है। देखो!

भिन्नसाध्यसाधनवाले... साध्य और साधन भाववाले। भिन्न साध्य अर्थात् निर्मल दशा का भाव पूर्ण मोक्ष का और साधन अर्थात् रागरूपी स्वपरहेतुक शुभराग। उस शुभरागभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से,... व्यवहारनय अर्थात् वर्तमान ज्ञान करनेयोग्य ऐसा एक विषय, आत्मा में राग की उत्पत्ति पूर्ण वीतराग न हो, तब ऐसा भाग होता है। उसे निर्मल का साधन व्यवहार से कहने में, उपचार से कहने में आया है। वास्तव में वह साधन नहीं है। वास्तव में साधन तो निर्मल पूर्ण दशा प्रगटाने में आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता ही उसका वास्तविक साधन है। समझ में आया? इस साधन की भूमिका में रहा हुआ शुभराग, उसे भी साध्य निर्मल का व्यवहार साधनरूप से गिनकर व्यवहारनय से उसे प्ररूपित किया गया है। वह भिन्नसाध्यसाधन व्यवहारनय से है। भिन्नसाध्यसाधन व्यवहारनय से है, उपचार से है, आरोप से है। निमित्तमात्र का ज्ञान कराने के लिये उसे आरोपित साधन कहा गया है और आत्मा अन्तर अखण्डानन्द प्रभु पूर्ण स्वभाव का पिण्ड है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता निर्विकारी होना, उसे एक जाति की निर्मलता का कारण गिनकर अभिन्न साध्यसाधन कहा है। यह बात समझ में आयी?

इसमें... इसमें निश्चय से एक जाति के साध्यसाधन और व्यवहार से भिन्न जाति के साध्यसाधन, ऐसा जो कहने में आया, उसमें **परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं**

है... क्योंकि एक ओर कहा कि भिन्नसाध्यसाधन, एक ओर कहा कि अभिन्नसाध्यसाधन। यह तो दोनों का विरोध लगता है। ऊपरी दृष्टि से ऊपर से देखनेवाले को, अरे! आत्मा की शक्ति में आनन्द पूर्ण पड़ा है, उसे अन्तर की मोक्षदशा निर्मलता द्वारा प्रगट हो, वह हमें समझ में आये। उसे और साधन कहना साध्य का, साध्य अर्थात् मोक्ष। और राग के विकल्प को नौ तत्त्व भगवान ने सर्वज्ञदेव ने त्रिलोकनाथ परमात्मा ने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखे, उसमें नौ की व्याख्या जो भगवान सर्वज्ञ के मुख से आयी, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। ऐसे नौ की परसन्मुख की भेदवाली राग की श्रद्धा, वह नव का ज्ञान रागवाला ज्ञान और पंच महाव्रत भावलिंगी सन्त दिगम्बर होते हैं, जंगल में बसते होते हैं। वनवासी होते हैं, अन्तर में आत्मध्यान, ज्ञान, श्रद्धा प्रगट हुई और तीन कषाय का नाश होकर, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय—तीन प्रकार के कषाय का अभाव होकर, जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई है। एक संज्वलन का राग-द्वेष का कषाय रहा है। उसमें संज्वलन के राग की उत्पत्ति में यह नव तत्त्व की श्रद्धा, नव का ज्ञान और पंच महाव्रत के परिणाम, उसे संज्वलन जरा राग का भाग है, उसे भी निर्मल साध्य का साधन कहा गया तो कहते हैं, परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है।

क्योंकि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति... सोना वह निश्चय और स्वर्ण पत्थर, आता है न स्वर्ण पाषाण? सोने का पत्थर। पत्थर में - जिसमें सोना रहा हुआ हो। अकेला सोना पृथक् और जो सुवर्ण पत्थरवाला हो, ऐसा पाषाण, उसकी भाँति। सुवर्ण, वह निश्चय है और सुवर्णपाषाण की भाँति व्यवहार है। **साध्यसाधनपना है;....** सुवर्ण वह साध्य है, वह सोना प्रगट करना, वह और सोने का पत्थर, वह व्यवहार साधन है। सोना को प्रगट करने के लिये। **इसीलिए...** यह व्यवहार। **इसलिए पारमेश्वरी (-जिनभगवान की)...** सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव तीर्थंकर प्रभु जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमेश्वर पूर्ण प्रगट हुआ है। जिन्हें एक शरीरमात्र अरिहन्त (को) हो तब होता है। दूसरा कुछ होता नहीं और देह छूटने के पश्चात् सिद्ध भगवान हो जाये, उन्हें शरीर भी नहीं रहता। ऐसे जैन परमेश्वरी जिन भगवान वीतराग महिमावाली दशावन्त परमात्मा, उनकी **तीर्थप्रवर्तना...** तीर्थप्रवर्तना। तीर्थ, नीचे (फुटनोट में) कहा

है। **मार्ग (अर्थात् मोक्षमार्ग); उपाय (अर्थात् मोक्ष का उपाय); मोक्ष का उपदेश; मोक्ष का शासन।** शिक्षा। ऐसे तीर्थ की प्रवर्तना **दोनों नयों के आधीन है।** यहाँ वजन है अब। अब दोनों नयों के आधीन तीर्थ प्रवर्तना है। निश्चयनय और व्यवहारनय। अभिन्न साध्यसाधन, वह निश्चय; भिन्न साध्यसाधन, वह व्यवहार। दोनों नय के आधीन भगवान की तीर्थ प्रवर्तना भगवान ने फरमायी है।

अब इसका स्पष्टीकरण। पहले चोगड़ा (चार), नोट में। **जिनभगवान के उपदेश में दो नयों द्वारा...** निश्चय और व्यवहार द्वारा निरूपण अर्थात् कथन होता है। **वहाँ, निश्चयनय द्वारा तो सत्यार्थ निरूपण किया जाता है...** निश्चय यथार्थ। आत्मा पूर्ण निर्मल आनन्द की दशा, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसी प्रगट दशा करे, उसमें कारण आत्मा के अवलम्बन से शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह मोक्ष का साधन है, मोक्ष का उपाय है, मोक्ष का मार्ग है, मोक्ष का कारण है, वह सत्यार्थ है। वह सच्ची बात है। वह सत्यार्थ कथन है। समझ में आया?

और व्यवहारनय द्वारा... निर्मल मोक्ष की पर्याय आत्मा की... उस राग को साधन कहा है, ऐसा जो व्यवहारनय द्वारा कहा, वह अभूतार्थ उपचरित कथन किया गया है। यह अभूतार्थ, अभूतार्थ। उसमें सत्यार्थ डाला था। इसमें अभूतार्थ अर्थात् कि असत्यार्थ। असत्यार्थ उपचरित कथन किया गया है। समझ में आया? यह राग जो मोक्ष का कारण और साधन कहा, वह असत्यार्थ से कथन किया गया है। व्यवहारनय से असत्यार्थ कथन किया गया है। व्यवहारनय कहता है कि यह साधन है, निश्चय कहता है कि नहीं, यह साधन नहीं। तथापि यह अन्यथा कथन व्यवहारनय का है कि यह साधन है। तो कहते हैं, असत्यार्थ से कहने में आया है। वह वास्तव में साधन नहीं। वास्तव में साधन राग (नहीं है)। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, नव तत्त्व की श्रद्धा का राग, नव तत्त्व का ज्ञान और पंच महाव्रत का राग वास्तव में मोक्ष का साधन नहीं है। नहीं है, उसे कहे, उसको व्यवहार कहा जाता है।

अब इसका स्पष्टीकरण। **प्रश्न :—सत्यार्थ निरूपण ही करना चाहिए;...** सच्चा ही कथन करना चाहिए। निरूपण... निरूपण शब्द प्रयोग किया है सर्वत्र। परन्तु कुछ

होगा न निरूपण में। सत्यार्थ कथन करना चाहिए, उसके बदले सत्यार्थ निरूपण करना चाहिए। वह निरूपण आता है न, वहाँ टोडरमलजी में। दो नयों का... निरूपण दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से—कथन दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग दो प्रकार से नहीं। मोक्षमार्ग तो एक ही है। स्वभाव चैतन्य शुद्ध आनन्द उसे पकड़कर ज्ञान करके रमणता करना, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। परन्तु उसका निरूपण दो प्रकार से है। एक व्यवहार से, निमित्त से, उपचार से। तीनों एक (एकार्थवाची)। एक यथार्थ से, वास्तविक रीति से, भूतार्थ से, यह निश्चय। कहते हैं, प्रश्नकार के मुख में प्रश्न रखकर हिम्मतभाई ने स्पष्टीकरण विस्तार से, इसे समझाने के लिये किया है। अन्यत्र से लेकर, हों! घर का किया है, ऐसा नहीं।

सत्यार्थ निरूपण ही करना चाहिए;... प्रश्नकार के मुख में प्रश्न रखकर पूछा। **अभूतार्थ उपचरित निरूपण किसलिए किया जाता है ?** अभूतार्थ, असत्यार्थ, उपचार, झूठा। झूठा निरूपण किसलिए किया जाता है ? लो, ऐसा प्रश्न (किया)। समझ में आया ?

उत्तर :- जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो,... सिंह, सिंह। क्या कहते हैं ? शेर। सिंह। **सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा...** ऐसा वापस। यथार्थ सीधा **समझ में न आता हो, उसे सिंह के स्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा...** सिंह के स्वरूप के आरोपित, असत्यार्थ निष्पण द्वारा **बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा...** बिल्ली अर्थात् मिंदडी। (बिल्ली को गुजराती में) मिंदडी कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? बिल्ली। सिंह का स्वरूप सीधे यथार्थ जान न सके, उसे बिल्ली द्वारा सिंह का स्वरूप बतलाया जाता है कि देखो! यह छाठेवाली, ऐसा मुख ऐसे-ऐसे, थाप मारे। होगा ऐसा बिल्ली में लक्षण-लक्षण। ऐसे... निकाले, ऐसे आँख करे। ऐसा सिंह हो। बिल्ली सिंह नहीं है। वह तो सिंह को समझाने में असत्यार्थ कथन से बिल्ली को लक्ष्य में लेकर, बिल्ली—बिल्ली, सिंह के स्वरूप को बतलाते हैं।

सिंह (को जानता) न हो, उसे बिल्ली के स्वरूप के बिल्ली के स्वरूप के कथन द्वारा। बिल्ली के स्वरूप के कथन द्वारा **सिंह के यथार्थ स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं;...** सिंह के उचित स्वरूप के ख्याल की ओर ले जाया जाता है। लड़के को नहीं

कहते ? बापू ! सिंह कैसा जो तुम देख आये ? देख, यह बिल्ली है न। ऐसा करे, चूहे को मारने के लिये घुरखती है, घुरखती है। आँखें ऐसे करती है और ऐसे करते हैं, झपट मारे, ऐसा सिंह होता है। अब वह लड़का उसे सिंह समझ ले तो क्या कहलायेगा ? मूर्ख कहलायेगा मूर्ख। वह तो बिल्ली द्वारा बतलाना है सिंह का स्वरूप। बिल्ली दिखलाना नहीं है। उस बिल्ली द्वारा तो सिंह का स्वरूप बतलाना है। **बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा सिंह के यथार्थ स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं;...** ले जाया जाता है। यह दृष्टान्त हुआ।

उसी प्रकार जिसे वस्तु का यथार्थस्वरूप सीधा समझ में न आता हो,... जिसे वस्तु अर्थात् पदार्थ, आत्मा, मोक्ष का मार्ग, मोक्ष। यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे वस्तु के स्वरूप के, वस्तु के-पदार्थ के स्वरूप के। पदार्थ में तो मोक्ष भी पदार्थ आता है और मोक्षमार्ग भी पदार्थ आता है। उसके स्वरूप के **उपचरित निरूपण द्वारा वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझ की ओर ले जाते हैं...** दोरी अर्थात् ? ले जाया जाता है। बिल्ली के लक्ष्य द्वारा, सिंह ऐसा होता है, इसके ऊपर नजर कराने को बिल्ली का दृष्टान्त दिया गया है। एक बात।

दूसरी बात। अब वापस दूसरी बात। **और लम्बे कथन के बदले...** लम्बा कथन करना पड़े। इसका दृष्टान्त देंगे नीचे, हों ! लम्बा कथन करना। लम्बा को क्या कहते थे ? विस्तार। बहुत विस्तार कथन के बदले **संक्षिप्त कथन करने के लिये भी...** संक्षिप्त कथन करने के लिये भी **व्यवहारनय द्वारा उपचरित अर्थात् आरोपित निरूपण किया जाता है।** कहो, समझ में आया ? **यहाँ इतना लक्ष्य में रखनेयोग्य है कि—जो पुरुष बिल्ली के निरूपण को ही सिंह का निरूपण मानकर,...** बिल्ली के स्वरूप को ही सिंह का स्वरूप मानकर बिल्ली को **बिल्ली को ही सिंह समझ ले, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है,...** यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय का दृष्टान्त दिया है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय है। अमृतचन्द्राचार्य महाराज(कृत) जिसकी यह टीका चलती है गुजराती में। संस्कृत टीका है। वह अमृतचन्द्राचार्य महाराज का बनाया हुआ पुरुषार्थसिद्धि उपाय है। उसमें यह दृष्टान्त है।

उसी प्रकार जो पुरुष... बिल्ली के स्वरूप द्वारा सिंह के स्वरूप को पहिचानने पर बिल्ली को सिंह मान ले, वह उपदेश के योग्य नहीं है। अन्यत्र ले जाने, ले जाने के लिये यह बात कही गयी थी। उसके बदले इसे ही पकड़कर बैठ जाये तो वह उपदेश के योग्य नहीं है। **उसी प्रकार जो पुरुष उपचरित निरूपण को ही...** उपचारित, आरोपित व्यवहारित कथन को ही **सत्यार्थ निरूपण मानकर,...** सच्चा निरूपण मानकर। वह व्यवहार से भी सच्चा है और निश्चय से भी सच्चा है, ऐसा **मानकर, वस्तुस्वरूप को मिथ्यारीति से समझ बैठे,....** बिल्ली को सिंह मान बैठे, ऐसे उपचारित कथन को ही सच्चा माने, **वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं हैं।** देखो न! यों ही घर में लड़का लकड़ी लेकर खेलता हो। घोड़ा कहते हैं न, घोड़ा। लड़का (कहे) यह मेरा घोड़ा। लकड़ी हाथ में रखे। उसका पिता भी ऐसा कहे, उतावल से उसका पिता आम लेकर आया हो, अधमण और उस लड़के ने उंबरामां, उंबरा होता है न घर का? उसमें खड़ा हो। उसे वह भी कहे, तेरा घोड़ा आगे रख। क्योंकि उसे हृदय में घुलता है घोड़ा.. घोड़ा.. घोड़ा.. घोड़ा—अश्व। इसलिए वह एकदम पकड़ ले। झट हट जाये।

इसी प्रकार बोलने में आवे परन्तु उस लकड़ी को ही कोई घोड़ा मान ले कि तुम कहते थे न? परन्तु हम क्या कहते थे? तेरे हृदय में ऐसा घुला करता था कि यह लकड़ी घोड़ा, लकड़ी घोड़ा। मैं उस समय कहने जाऊँ कि तेरी लकड़ी आगे रख। तू लक्ष्य में भी न ले। क्योंकि घुलता है घोड़ा। इसलिए तुझे देहरी में से दूर हटाने के लिये उसे ऐसा कहे कि तेरा घोड़ा आगे रख। इसलिए हमने घोड़ा कहा, इसलिए घोड़ा है ऐसा मान ले तो वह बालक मूर्ख कहलाता है। वह सच्ची समझणवाला नहीं कहलाता।

इसी प्रकार पदार्थ को—वस्तु को, स्व को, पर को, मोक्षमार्ग को, बन्धमार्ग को जैसा जिसका जो स्वरूप है, उसका उसे समझण में सीधे-सीधे यथार्थ समझने में न आवे तो उसे उपचारित, आरोपित कथन द्वारा उस पदार्थ के स्वरूप की ओर ले जाने के लिये, ले जाने के लिये आरोपित कथन किया जाता है। परन्तु उस आरोपित को ही सच्चा मान ले तो वह उपदेश के योग्य नहीं है। कहो, बराबर है? भेद पाड़कर बात करे तो पकड़े, वह भेद को। आत्मा ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है। परन्तु वहाँ ज्ञान, दर्शन,

आनन्द पृथक् कहाँ है ? वहाँ तो एकमेक है। शक्कर की डली में जैसे सफेदाई और श्वेतता एकसाथ पड़ी है। परन्तु खाता हो तब कहे कि वह सफेदाई, वह शक्कर। तुम नहीं कहते थे क्रम-क्रम से ? सफेदाई और मिठास और सुगन्धता... किसलिए उसमें क्रम से क्रम गुण रहे होंगे ? यह समझाने की भेद की विधि अभेद को समझाने के लिये है। ऐसा न पकड़कर भेद को पकड़ ले कि इसमें क्रम-क्रम से गुण हैं। ऐसा मान ले तो वह सुनने के भी योग्य नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ एक उदाहरण लिया जाता है:— दृष्टान्त-दृष्टान्त। **साध्य-साधन सम्बन्धी सत्यार्थ निरूपण इस प्रकार है कि...** साध्य और साधन। यहाँ सातवें गुणस्थान को साध्य कहेंगे और छठवें गुणस्थान को साधन (कहेंगे) दृष्टान्त में। साध्य-साधन का सच्चा निरूपण ऐसा है कि **छठवें गुणस्थान में वर्तती हुई...** दृष्टान्त मुनि का लिया है। मुनि सच्चे सन्त ऐसे होते हैं कि जिन्हें आत्मा आनन्द का भान और तदुपरान्त स्थिरता की रमणता (हुई हो) और बाह्य में अत्यन्त नग्नदशा, दिगम्बरदशा होती है। ऐसे '**छठवें गुणस्थान में वर्तती हुई आंशिक शुद्धि...** आंशिक निर्मलता। वह **सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** छठवीं भूमिका मुनि की होती है, विकल्प उठते हैं तब। और जो निर्विकल्प अन्दर जो श्रद्धा, ज्ञान और रमणता छठे की अमुक वर्तती है, वह निर्विकल्प सातवें गुणस्थान में जो उपयोग ऐसे जम जाये अन्दर में, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान तीन का भेद भी जहाँ रहे नहीं। ऐसे सातवें गुणस्थान में अप्रमत्तदशा... मुनि को तो छठवाँ और सातवाँ, छठवाँ और सातवाँ हजारों बार आवे। सच्चे सन्त और मुनि मोक्ष के साधक जिन्हें कहा जाता है, उग्र चारित्र के पालनेवाले अन्तर स्वरूप की रमणतावाले और अट्ठाईस मूलगुण जिन्हें रागरूप से छठे गुणस्थान की भूमिका में होते हैं। एक बार आहार, अचेलरूप से रहना, खड़े-खड़े आहार, सामायिक इत्यादि। भगवान की स्तुति आदि के विकल्प होते हैं। ऐसे छठवें गुणस्थान की भूमिकावाला जीव, जिसे आत्मा के अवलम्बन से कुछ आंशिक निर्मलता प्रगट हुई है। सातवाँ गुणस्थान अर्थात् आगे जाकर स्थिर हो गया आत्मा में, ऐसी निर्विकल्प... उसमें जरा भेद था अभी राग, परन्तु यह शुद्धि जो है—निर्विकल्प शुद्धि, अविकारी शुद्धि छठवें की

थी। वह निर्विकल्प अभेद आत्मा की शुद्धि सातवें में तुरन्त आयी, ऐसी शुद्ध परिणति, शुद्ध परिणति। शुद्ध परिणति अर्थात् शुद्ध अविकारीदशा। उसका छठा गुणस्थान में आंशिक निर्विकारी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता हुई है। रमणता आंशिक है। श्रद्धा-ज्ञान तो बराबर है। वह साधन कहा जाता है। क्या कहा?

आत्मा का ज्ञान और भान होता है कि मैं शुद्ध चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसी भूमिका को चौथा गुणस्थान सम्यग्दृष्टि का कहते हैं। वह तो गृहस्थाश्रम में भी होता है। तदुपरान्त पंचम गुणस्थान जो श्रावक का (हो), वाडावाले की बात नहीं है। अन्तर आनन्द के स्वरूप के भानपूर्वक की आंशिक लीनता, उसे पंचम गुणस्थान श्रावक कहा जाता है। इससे आगे जाकर स्वरूप में विशेष रमणता (हो), उसे छठवाँ गुणस्थान मुनि का, साधु का कहा जाता है। ऐसे छठवें गुणस्थान की शुद्धि, वह सातवें निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है, ऐसा कहा जाता है, वह वास्तविक है। समझ में आया?

ऐसे प्रथम शुद्धि प्रगटी है। वह शुद्धि विशेष शुद्धि सातवें गुणस्थान की है, उस शुद्धि का यह साधन है, यह उचित है। यह कथन बराबर है। भीखाभाई! छठवें गुणस्थान की शुद्धि सातवें का कारण है। यहाँ साधक की पर्याय लेनी है न? द्रव्य का अवलम्बन कैसे है, वह तो आश्रय अधिक ले, तब सातवें का प्रगट होता है। परन्तु छठवें गुणस्थान में मुनि को ऐसी छठवीं भूमिका है। चौदह गुणस्थान हैं। जैसे मंजिल चढ़ने में सीढ़ियों के चौदह सोपान होते हैं, वैसे आत्मा की पूर्ण मोक्षदशा होने में उसे चौदह भूमिका होती है। उसमें चौथी भूमिका से धर्म की शुरुआत होती है।

आत्मा एक स्वरूपी चिदानन्द अखण्ड आनन्द का कन्द है और पूर्ण शुद्ध है, ऐसी अन्तर्मुख होकर प्रतीति अनुभव में हुई, तब से उसे सम्यग्दर्शन की शुरुआत होती है। फिर आगे जाकर श्रावक आंशिक... विकल्प रहे, वह बात व्यवहार में जाती है। और आगे जाकर छठवें गुणस्थान में मुनि को विशेष निर्मलदशा हो, वह विशेष निर्मलदशा सातवें में विशेष निर्मलदशा का साधन। सातवें की छठे की अपेक्षा विशेष निर्मलदशा है। उसका छठे गुणस्थान की निर्मलदशा साधन है, वह उचित है। वह सत्यार्थ है, वह भूतार्थ है, वह उचित है।

अब, 'छठवें गुणस्थान में कैसी अथवा कितनी शुद्धि होती है'... बहुत सरस बात है यह। मुनि को छठवें गुणस्थान में कैसी शुद्धि होती है, कैसी और कितनी निर्मलता होती है, **इस बात को भी साथ ही समझना हो तो विस्तार से ऐसा निरूपण किया जाता है...** विस्तार से ऐसा कथन किया जाता है। क्या कहा? छठवें गुणस्थान की निर्मलता सातवें की विशेष निर्मलता का साधन। अकेली बात। अब छठे गुणस्थान की निर्मलता कितनी और कैसी होती है, ऐसा जब बतलाना हो तो इस बात का ख्याल कराना हो तो विस्तार से ऐसा कथन होता है। विस्तार से, हों! संक्षेप से बाद में कहेंगे।

जिस शुद्धि के सद्भाव में,... आत्मा को जहाँ आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और आत्मा की अविकारी कितनी ही शुद्ध परिणति छठवें गुणस्थान में प्रगटी है, उस भूमिका के योग्य, उसे ख्याल दिलाना हो तो उस शुद्धि की अस्ति में छठवें गुणस्थान में निर्मल दशा की भूमिका में, छठवें की अस्ति **सद्भाव में, उसके साथ-साथ महाव्रतादि के शुभविकल्प हठ बिना...** छठवें गुणस्थान में मुनि की चारित्रदशा में उसके साथ ऐसा महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इत्यादि। एक बार आहार, अचेलपना रहना इत्यादि। ऐसे जो शुभराग के विकल्प, शुभ विकल्प अर्थात् शुभराग। हठ बिना। हठ बिना अर्थात्? उस काल में उस भूमिका में उस प्रकार का ही राग आता है। उसे छठवें गुणस्थानवाले को वस्त्र का, पात्र का, उसके लिये बनाये हुए आहार का, ऐसा विकल्प उस भूमिका में होता ही नहीं। ऐसा राग उसे होता नहीं। समझ में आया? गुरु का स्वरूप चारित्रवन्त का यह सुना नहीं और समझा भी नहीं। नरभेरामभाई! संघ के प्रमुख कहलाये। संघ के मोवडी। पाट के पाया के सेवक। खबर न हो क्या मुनि कहलाये और किसे...?

यहाँ कहते हैं, शुद्धि के सद्भाव में। क्या कहा? जैसे केसर लाने में डिब्बा ही निमित्त होता है। उसे लाने में बारदान नहीं होता, थैला नहीं होता। इसी प्रकार इस छठवें गुणस्थान की निर्मलदशा आत्मा की प्रगट हुई—चारित्र, उसके सद्भाव में राग किस प्रकार का होता है, कि महाव्रत आदि शुभराग हठ बिना (होता है)। हठ नहीं। अरे! हमारे यह करना पड़ता है। यह अहिंसा का विकल्प लाना पड़ता है, हमारे ऐसी अहिंसा

पालनी पड़ती है। हमारे ऐसे सत्य बोलना पड़ता है। बोलने की क्रिया तो जड़ की है। परन्तु ऐसा विकल्प लाना पड़ता है—ऐसा नहीं होता। ब्रह्मचर्य पालने का भाव सहज वहाँ है, हठ बिना विकल्प उठता है। नौ कोटि से नव वाड से ब्रह्मचर्य के भाव में ऐसा रागांश उत्पन्न होता है। रागांश।

ऐसे **शुभविकल्प हठ बिना सहजरूप से प्रवर्तमान हो,...** सहजपने का अर्थ। वह राग कहीं स्वाभाविक नहीं, राग तो विकार है। राग तो विभाव है। परन्तु सहजरूप से उस भूमिका में ऐसा ही राग होता है, इसलिए उसे सहजरूप से वर्तता हो, ऐसा कहने में आया है। भारी सूक्ष्म बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुद्धि बतलाने के लिये विस्तार का कथन। समझ में आया?

आत्मा में मुनिदशा जिसे प्रगटे, भावलिंग चारित्रदशा जिसे प्रगट हुआ हो, उसकी भूमिका में किस प्रकार का राग होता है? हठ बिना का होता है, सहज प्रवर्तता होता है। ऐसा वह **छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** कहो, समझ में आया? क्या कहा? छठवें गुणस्थान की निर्मलता ऐसी है कि उसे पंच महाव्रतादि का राग सहज हठ बिना उत्पन्न होता है। ऐसा बतलाना है। परन्तु कहते हैं कि **छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** वास्तव में तो ऐसा है। सातवें गुणस्थान की निर्मल दशा, उसका साधन यह। परन्तु छठे की शुद्धि में रहा हुआ शुभराग इस जाति का ही होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार का नहीं होता। ऐसा लम्बा-लम्बा कथन करने के बदले, ऐसे लम्बे कथन के बदले, ऐसा कहा जाता है कि छठवें गुणस्थान में वर्तता महाव्रतादि के शुभ विकल्प सातवें गुणस्थान के योग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है। क्या कहा?

कहते हैं कि कहना है तो यह कि छठवें गुणस्थान में निर्मल श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह सातवें की उग्र शुद्धि का साधन है। परन्तु उस शुद्धि की भूमिका कैसी होती है और उस शुद्धि के साथ राग की उत्पत्ति की जाति कैसी होती है, उस जाति को

बतलाकर यह जाति, वह जाति बतलाकर, बतलाना है तो वह शुद्धि निर्मल छठवें की शुद्धि सातवें का साधन। परन्तु उसकी भूमिका में इस प्रकार का राग होता है और दूसरे प्रकार का राग नहीं होता। यह निर्विकल्प शुद्ध परिणति का ऐसा निमित्तपने का वास्तविक ज्ञान कराने को विकल्प जो हठ बिना छठवें गुणस्थान के योग्य आया, उसे साधन कहना, वह उपचार साधन है। ओहो! क्या कहा, समझ में आया कुछ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शुद्धि इस जाति की होती है और यह शुद्धि ही सातवें का कारण है। परन्तु इस शुद्धि की भूमिका में राग की मर्यादा ही इस प्रकार की होती है। इसके द्वारा शुद्धि का ज्ञान कराकर उस राग को सातवें गुणस्थान का साधन आरोपित किया गया है। विशिष्टता है इसमें। इसमें कितने ही ऐसा कहते हैं कि हमको तो साधुपना प्रगट हुआ है, अब हमको चाहे जैसा राग आवे और चाहे जैसी देह की क्रियायें हों। वह वस्तु को समझते नहीं। समझ में आया?

कहना है तो छठवें गुणस्थान की शुद्धि सातवें का कारण। परन्तु उस शुद्धि की मर्यादा की जाति बतलाने के लिये कि ऐसी शुद्धि जहाँ हो, वहाँ ऐसे ही पंच महाव्रत के, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अचेलपने का राग होता है। कोई ऐसा कहे कि हमको वस्त्र, पात्र रखने का राग आता है परन्तु यह हमारा कोमल साधुपना है। (वह) मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। वह वस्तु को समझता नहीं। समझ में आया? तब तुम कहते हो न, पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। अचेलपना आदि राग और साधन कहते हो न? परन्तु वह साधन कहने का हमारा हेतु क्या है? कि उस भूमिका की निर्मलता वास्तव में तो सातवें का साधन है। परन्तु उस शुद्धि की हद में छठवें गुणस्थान की निर्मलता की भूमिका की मर्यादा में पंच महाव्रत और अचेलपना आदि के शुभराग की मर्यादा उठती है। हठ बिना उस गुणस्थान में ऐसा ही राग आता है। उस गुणस्थान में ऐसा राग नहीं आता कि स्त्री सेवन करूँ। पाँच-पचास हजार (रुपये) रखूँ, वृद्धावस्था होगी तो (काम आयेंगे)। ऐसा राग आवे तो समझना कि उसे छठवाँ गुणस्थान नहीं है और मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कहना चाहते हैं।

जिसे निर्मलता बहुत प्रगट हुई है। वह सातवें की प्रचुरता का साधन है। तथापि उस निर्मलता को पहिचानने के लिये कि ऐसी निर्मलता जिसे छठवीं भूमिका गुणस्थान में प्रगटी हुई हो उसे तो इस प्रकार का राग होता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचेल आदि। और भगवान ने कही हुई विधि व्यवहार की—सामायिक, चौविसंतो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान इत्यादि। इस प्रकार की भूमिका में ऐसा राग हो। उस राग की जाति से दूसरा अधिक और मन्द दूसरी जाति का नहीं होता। क्योंकि शुद्धि के प्रमाण में उसे अशुद्धि का अंश प्रगट होता है। समझ में आया? ऐसा यह कहते हैं कि हमको तो मुनिपना है परन्तु हमको वस्त्र-पात्र लेने का राग, वह कोमल साधुपना है। तो कहते हैं कि मूढ़ हो। तुझे छठे गुणस्थान की शुद्धि की खबर नहीं और उस भूमिका में आनेवाले राग की हद और मर्यादा कैसी है, उसकी भी तुझे खबर नहीं। और आस्रवतत्त्व की हद कितनी, उसकी खबर नहीं। संवर, निर्जरा की हद छठवें में कितनी होती है, उसकी खबर नहीं। और वह संवर, निर्जरा की ऐसी हद जिसे प्रगट हुई हो, उसे ऐसा ही राग होता है और वह संवर, निर्जरा ही मोक्ष का कारण है। अथवा सातवें की भूमिका का कारण है। परन्तु उसकी शुद्धि में कोई गड़बड़ कर दे। हमको छठवें की शुद्धि बहुत प्रगट हुई परन्तु राग तो अभी हमारे स्त्री सेवन का, माँस खाने का, शराब पीने का, हमारे लिये बनाये हुए आहार लेने का, वस्त्र पहनने का, पात्र में आहार लेने का हमको राग आता है। तो कहते हैं कि वह राग बताता है कि वहाँ छठवें गुणस्थान की शुद्धि नहीं है। है ही नहीं। शुद्धि ही नहीं। और उसे मानता है तो वहाँ मिथ्यात्व भूमिका है। समझ में आया इसमें? भारी सूक्ष्म बात, भाई! देखो! कितना स्पष्टीकरण किया है हिम्मतभाई ने। हिम्मतभाई को कहें तो शर्माते हैं। वे तो कहे, शास्त्र में है, ऐसा मिलानकर लिखा है। मिलान ठीक-ठीक किया है। समझ में आया? समझ में आता है या नहीं इसमें? महेन्द्रभाई!

लोगों को होता है न, नहीं कहा था? एक बाबा का दृष्टान्त दिया था। बाबा बैठा था अन्ध। एक शिकारी निकला। ऐ अन्ध! अन्ध कहा। उसने परख लिया कि यह कोई शिकारी लगता है। दूसरा आया कहे, अरे..! अन्ध बाबा! यह कोई इससे बड़ा लगता है। और तीसरा आया, कहे, क्यों सूरदास! ठीक, यह दीवान लगता है। क्यों सूरदासबाबा!

यह राजा लगता है। उसको उसके खानदानी प्रमाण में उसे विकल्प और उसकी भाषा होती है। खानदान मनुष्य की हद प्रमाण उसकी भाषा होती है। समझ में आया? बेअदब हद नहीं होती।

इसी प्रकार छठवें गुणस्थान की खानदानी जिसे प्रगट हुई है, आत्मा श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के चारित्र की खानदानी जिसे प्रगट हुई है, वहाँ तो वह अहिंसा, सत्य के विकल्प की हद की ही उत्पत्ति होती है। उसे दूसरी होती नहीं। वह ऐसा बताती है कि इसे छठवें गुणस्थान की शुद्धि अन्दर में इस प्रकार की होती है। यह बतलाने के लिये ऐसा व्यवहार और निमित्त का साधन कहा है। समझ में आया? दृष्टान्त समझ में नहीं आता। दृष्टान्त से तो अपने सिद्धान्त सिद्ध करना है न! यह बात आयी थी। वह तो अन्ध था। बेचारे को खबर नहीं। चले जाये न, ऐसा उसको बोलते जाये। राजा निकला तो कहे, सूरदास बाबाजी! यहाँ से लश्कर निकला था? हाँ, राजा साहेब! वह कुछ बोला नहीं था। हाँ राजा साहेब। पहला बोला था कि ऐ अन्ध, ओ अन्धे। यहाँ से लश्कर निकला था? हाँ, पुलिस साहेब। भाषा के ऊपर से कहा। उसकी मर्यादा, खानदानी मनुष्य होते हैं, उस खानदान की मर्यादा अलग प्रकार की होती है। समझ में आया? खानदान किसे कहते हैं, समझ में आया? हिन्दी में खानदान किसको कहते हैं? खानदान कहते हैं? कुलवान, कुलवाले। कुलवानी।

इसी प्रकार आत्मा की सम्यग्दर्शन की खानदानी प्रगट होने पर उसकी भूमिका में किस प्रकार का राग होता है? उसे माँख खाने का, शराब पीने का या ऐसा राग होता नहीं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा करने का राग उसे होता ही नहीं। इतनी उसकी खानदानी सम्यक्त्व में प्रगट हुई है, आगे जाकर पाँचवें की खानदानी विशेष शुद्धि प्रगट हुई है, उसे तीव्र राग जिस प्रकार के पहले थे, वे टल गये हैं। उस मन्द राग की मर्यादा होती है। समझ में आया? शान्ति का रस अन्दर विशेष प्रगटा हुआ, इसलिए उसे अशान्ति का राग आवे परन्तु वह उसकी मर्यादा जितना आता है। छठवें गुणस्थान की जहाँ मुनि की मर्यादा प्रगट हुई, (वहाँ) अकषायदशा और स्थिर और शान्ति प्रगट हुई। उसकी भूमिका में तो पतला राग, राग है। कैसा पतला? कि अहिंसा—किसी को दुःख

न हो; सत्य बोलूँ, शास्त्र लिखूँ, उपदेश करूँ। उसकी ऐसी मर्यादा जितना राग, उस राग की मर्यादा वह शुद्धि बतलाने के लिये कहना है कि ऐसी शुद्धि में ऐसा राग होता है। समझ में आया? यों ही राग हो और शुद्धि न हो, उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो इसीलिए सहज कहा है न उसमें? हठ में जाता है। साधारण किसी की प्रकृति में ही राग मन्द हो और अमुक हो, वह सहजरूप से राग नहीं। जिसे स्वभाव की दृष्टिपूर्वक स्थिरता प्रगट हुई है, उसे सहजरूप से स्वाभाविक अर्थात्, अर्थात् कि उस भूमिका में आनेयोग्य हठ और आग्रह बिना, खेद बिना (आवे)। अरेरे! हमारे अहिंसा पालनी पड़ती है, ऐसा नहीं। समझ में आया? अज्ञानी को पाँच महाव्रत के विकल्प अज्ञानी को होते हैं, वह व्यवहार नहीं है, वह सहज नहीं है, वह तो हठवाले हैं। अर्थात् वह व्यवहार भी उसे लागू नहीं पड़ता। समझ में आया?

ऐसे... क्या ऐसे? कि लम्बे कथन के बदले। छठवें गुणस्थान की ऐसी शुद्धि हो, उसमें ऐसे विकल्प हों, ऐसा छठवाँ गुणस्थान सातवें का कारण होता है। ऐसे लम्बे कथन के बदले छठवें गुणस्थान की ऐसी शुद्धि हो कि ऐसा राग हो, ऐसा छठवाँ गुणस्थान सातवें का कारण है। ऐसा लम्बा कहने के बदले... समझ में आया? **छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** तो सातवें गुणस्थान में तो अधिक निर्मल पर्याय प्रगटी और छठवें का राग तो मलिन है। मलिन को निर्मल का साधन कहना, वह संक्षिप्त कथन करने के लिये कहा है। नहीं तो कहना तो है छठवें की शुद्धि सातवें का कारण है। परन्तु इस शुद्धि की भूमिका की हद में राग ऐसा होता है, इस द्वारा बतलाकर शुभराग ही स्वयं मानो सातवें का कारण हो, ऐसा उपचार से निरूपण व्यवहार से कहा गया है। कहो, समझ में आया? तब रामजीभाई ने कहा था कि यह उतार लो। नीचे अच्छा पैरेग्राफ किया है। क्या कहलाता है वह? नोट। फुटनोट। बहुत सरस, बहुत सरस। उस समय विचार घोलन को बराबर करके ऐसे... दिया है। साथ ही साथ भाई ने कल ऐसा भी कहा, अब यह अष्टपाहुड़ का कुछ करो। चार किये, इकट्ठे पाँचवाँ। लोभ कुछ मारे बनिया को। कहो, समझ में आया?

ऐसे उपचरित कथन में, आरोपित कथन में। जैसे उस बिल्ली को सिंह बताया

वैसे। **ऐसे लम्बे कथन के बदले,...** ऐसे आरोपित कथन में से ऐसा भाव निकालना चाहिए, ऐसा न्याय छाँटना चाहिए, ऐसा अर्थ खींच लेना चाहिए कि **महाव्रतादि के शुभ विकल्प नहीं...** छठवें गुणस्थानयोग्य जो राग, वह नहीं। वह सातवें का वास्तविक कारण नहीं। **किन्तु उनके द्वारा बताना है...** किसके? छठवें गुणस्थान की। समझ में आया? यह छठवीं दशा होती है मुनि को, उन्हें ऐसा ही राग होता है, ऐसा उनके द्वारा, उस राग द्वारा सूचित करने—बतलाने के लिये **छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि...** छठवें गुणस्थानयोग्य निर्मल वह, **वास्तव में सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** ऐसा इसमें से अर्थ निकालना। ऐसा इसमें से भाव निकालना। कहने में ऐसा आया कि यह शुभराग छठवें के योग्य सहज हठ बिना का आया, वह सातवें का कारण। छठवें की शुद्धि में ऐसा ही होता है, यह बतलाने के लिये यह बात की है। साधन तो वास्तव में यह है। परन्तु उसकी शुद्धि में इस प्रकार की मर्यादा होती है, उस मर्यादा को इसका कारण कहा, सातवें का (इसका) अर्थ निकालना कि उसे मर्यादावाले राग से सूचित छठवें गुणस्थान की शुद्धि वह सातवें का साधन है। ऐसा उसमें से अर्थ निकालना चाहिए। तो वास्तविक समझण और वास्तविक उसकी पहिचान हो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६०, प्रवचन - १५

नोंध — (३५ मिनिट के बाद आवाज डबल है)।

यह पंचास्तिकाय, इसकी १६०वीं गाथा है। यह मोक्षमार्ग के विस्तार का कथन है। उसमें यह गाथा व्यवहारमोक्षमार्ग का कथन है। व्यवहार क्या कहलाता है, वह सब इसमें आयेगा।

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति।।१६०।।

नीचे हरिगीत।

धर्मादि की श्रद्धा सुदृग पूर्वांग बोध-सुबोध है।
तप माँहि चेष्टा चरण मिल व्यवहार मुक्तिमार्ग है।।१६०।।

टीका :- निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से,... अर्थात् कि निश्चय अर्थात् आत्मा शुद्ध आनन्द पवित्रस्वरूप स्वभाव से है। उसकी अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, उसे निश्चय मोक्षमार्ग कहा जाता है। समझ में आया? सच्चा, निश्चय अर्थात् सच्चा मोक्ष का मार्ग। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ऐसे आत्मा अन्तर की शक्ति का सत्त्व पूर्ण आनन्द और शुद्ध स्वभाव से भरपूर पदार्थ है, ऐसा उसका एकरूप स्वरूप अभेद की दृष्टि करके श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के चारित्र भाग और ज्ञान भाग और स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट करना, उसे सच्चा मोक्ष का मार्ग कहते हैं। पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का वह कारण-वास्तविक उपाय है। ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग।

मोक्ष अर्थात् पूर्ण पवित्रता प्रगट करना, वह मोक्ष। और उसका मार्ग अर्थात् उपाय अर्थात् कारण और निश्चय अर्थात् यथार्थ, ऐसा जो आत्मा के स्वभाव के सन्मुख होकर श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र के स्वभाव की सिद्धि, वही मोक्ष का वास्तविक कारण है। परन्तु उसके साधनरूप से अर्थात् व्यवहार साधनरूप से। निश्चय साधन तो अपना स्वभाव है। समझ में आया? निश्चय साधन तो अपना शुद्ध, पवित्र आनन्दस्वभाव है। वही अन्तर में एकाग्रता होकर साधन करना, वही निश्चय सच्चा, उचित, यथार्थ साधन

है। परन्तु उसे निश्चय मोक्षमार्ग के साधन अर्थात् व्यवहार साधनरूप से। इतना शब्द यहाँ लेना। परमार्थ साधनरूप से नहीं।

व्यवहार अर्थात् स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता की भूमिका में उसकी भूमिका के विरुद्धवाला, विरुद्धवाला कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा का अभाव और नौ तत्त्व भगवान सर्वज्ञ ने कहे, उनसे विपरीत श्रद्धा का अभाव और उनसे अविपरीत व्यवहार श्रद्धा और अविपरीत व्यवहार ज्ञान और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि के शुभ विकल्प अर्थात् राग, उसे निश्चयमोक्षमार्ग के व्यवहार साधनरूप से आरोप से कथन किया गया है। भारी सूक्ष्म बात, भाई!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप अन्तर में सत्त्वरूप से-शक्तिरूप से-स्वभावरूप से अन्तर की सृष्टि स्वभाव में शुद्धता पूर्णता पड़ी है, उसकी प्रतीति, अन्तर्मुख ज्ञान और रमणता एक ही पूर्णानन्द की प्राप्ति का उपाय और मार्ग है। परन्तु उस मार्ग की पूर्णता चारित्र की-स्वरूप की रमणता अन्तर्मुख पूर्ण न हो, तब धर्मी जीव को निश्चय स्वभाव के निश्चय साधन के काल में व्यवहार साधनरूप से सच्चे देव, गुरु, शास्त्र और नौ तत्त्व जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप के दोनों भाव इकट्ठे होकर उसे मलिन भाव कहने में आता है। आस्रव अर्थात् नये रजकणों का कारण। संवर अर्थात् उस मलिन के अंश को आंशिक रोकना, निर्जरा अर्थात् निर्मलता की वृद्धि, मोक्ष अर्थात् पूर्ण निर्मल की शुद्धि। और बन्ध अर्थात् आत्मा का त्रिकाली परम स्वभाव, वह विकार में अटकता हो, उसे भावबन्ध कहा जाता है। ऐसे नौ तत्त्व को भेदरूप-अनेकरूप श्रद्धा में राग के अंश में लेना, उसे और वह नौ तत्त्व का शास्त्र प्रमाण व्यवहार सम्यग्ज्ञान होना, उसे और शास्त्र व्यवहार की आज्ञा जो सन्तों ने पंच महाव्रत हो, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ऐसा विकल्प रागांश जो उठे, उसे व्यवहार साधनरूप से, चारित्ररूप से, निश्चयमोक्षमार्ग स्वभाव की सन्मुखता को साधता हो, उसे ऐसा राग इस प्रकार का आवे, उसे निश्चयमोक्षमार्ग के, सच्चे मोक्षमार्ग में आरोपित व्यवहार निमित्तरूप से साधन कहा गया है। यह बात कुछ दूसरी है, वैद्यराज! ये वैद्य दूसरे प्रकार के हैं। परन्तु एकदम जरा

पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। रतिभाई! यह समझना पड़ेगा, हों! हीरा-माणेक में कुछ चले, ऐसा नहीं है। क्यों बेचरभाई!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ऐसा पूर्ण सत्त्व जो अन्दर शुद्ध और आनन्द न हो तो बाहर में उसकी दशा में, उसकी हालत में कहाँ से आयेगा? प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर में शुद्धता परिपूर्ण आनन्द और ज्ञान की परिपूर्णता स्वभाव में न हो तो वह उसकी वर्तमान हालत में—दशा में—अवस्था में कहाँ से बाहर से आयेगी? अन्दर में से वह प्राप्त होती है। अन्दर के स्वभाव में...

दृष्टान्त कल नहीं दिया था? पीपर का। यह तो हजारों बार दृष्टान्त देते हैं। पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट यदि न हो तो उसकी वर्तमान हालत में—दशा में—अवस्था में कहाँ से आयेगा? कहीं बाहर से आवे, ऐसा नहीं है। शक्ति में से व्यक्तता-प्रगटता हो, उसे अवस्था कहते हैं। और शक्तिरूप सत्त्व को पदार्थ के सत्त्व को द्रव्य और पदार्थ वास्तव में कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, जो कोई आत्मा अन्तर स्वभाव के अभिमुख होकर। अभिमुख अन्तर। उसके अभिमुख शक्ति के सत्त्व के सामर्थ्य को प्रतीति में लेकर स्व ज्ञान द्वारा उस आत्मा के अन्तर पूर्ण स्वभाव को ज्ञान में ज्ञेय बनाकर और उस स्वरूप में रमणता, चरना, रमना, जमना, उसे चारित्र कहते हैं। ऐसा सम्यग्दर्शन—स्वभाव की प्रतीति, सम्यग्ज्ञान—स्वभाव का ज्ञान और सम्यक्चारित्र—सच्चा चारित्र सत् चारित्र, वह स्वभाव में लीनतारूप एकाग्रता। यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह सच्चा मोक्ष का मार्ग अर्थात् उपाय है। उसके साधनरूप से, उसके व्यवहार साधनरूप से, इस साधन में व्यवहार साधन लेना। वास्तविक साधन तो अन्तर में है। परन्तु इसके व्यवहार साधनरूप से **पूर्वोदिष्ट (१०७वीं गाथा में उल्लिखित)...** १०७वीं गाथा अपने कही गयी है। **व्यवहारमोक्षमार्ग का यह निर्देश है।** व्यवहार अर्थात् उपचारित। छूटता आत्मा बन्धन से छूटने के अन्तर के पन्थ में पड़ता हुआ, उसे उस भूमिका में पूर्ण रमणता चारित्र की न हो, ऐसे काल में उसे इस राग का विकल्प, नौ तत्त्व की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता व्यवहार से अशुभ छूटकर शुभ में आवे—ऐसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र को व्यवहारमोक्षमार्ग, निमित्त मोक्षमार्ग, उपचारित

मोक्षमार्ग कहते हैं, उसे निश्चय मोक्षमार्ग का साधन व्यवहार से कहा जाता है। वास्तव में नहीं। समझ में आया? यह व्यवहारमोक्षमार्ग का निर्देश है, कथन है।

अब इस ओर। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सो मोक्षमार्ग है।** देखो! यह मोक्षमार्ग निश्चय, सच्चा, सम्यक्, सत्य। जैसा पूर्ण स्वरूप सत्य है अन्तर में, उसके अन्तर्मुख होकर प्रतीति वह सम्यग्दर्शन—सत्य दर्शन है। वह सम्यग्ज्ञान। आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण स्वभाव में है, उसका सम्यक् अर्थात् सच्चा ज्ञान, पूर्ण ज्ञान के झुकाववाला अन्तर के झुकाववाला स्वसंवेदन ज्ञान की वर्तमान दशा को त्रिकाल ज्ञान में एकाग्र करके उस वेदनज्ञान का अंश प्रगट हो, उसे सच्चा ज्ञान, सम्यग्ज्ञान, सत्य ज्ञान कहा जाता है। सम्यक्चारित्र। यह सम्यक् तीनों को लागू पड़ता है। सम्यक्चारित्र—सत्य चारित्र, सच्चा चारित्र, निश्चय चारित्र, यथार्थ चारित्र। अर्थात्? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो आत्मा शुद्ध परिपूर्ण सत्त्वरूप से प्रतीति और ज्ञान में लिया था, उसे स्वभाव-सन्मुख होकर सच्ची रमणता, स्वरूप में लीनता, स्वरूप में चरना, शान्ति पड़ी है अन्तर में पूर्ण, उस शान्ति में एकाग्रता की रमणता होना, उसे सम्यक्—सच्चा चारित्र कहा जाता है। यह सब व्याख्या अलग है, वैद्यराज! यह दुनिया मानती है कि यह क्रियाकाण्ड और धूल काण्ड और यह काण्ड और वह सब यह निश्चय—सच्चे में नहीं आता। वह तो विकल्प उठे इस प्रकार की इसकी अनुकूलता वाला, राग की मन्दतावाला। तीव्रता के राग के अभाववाला, उस भूमिका को योग्यवाला। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, सर्वज्ञ परमात्मा कौन हैं? गुरु निर्ग्रन्थ मुनि दिगम्बर सन्त कैसे होते हैं, उनका चारित्र अन्तर में कैसा होता है, और शास्त्र स्वपने वस्तु है और परपने नहीं, सम्यक्पने श्रद्धा में आता है आत्मा, व्यवहार से रागरूप से उसे यथार्थरूप से श्रद्धान में नहीं आता। ऐसी जो अनेकान्त शास्त्र की पद्धति कथन, उसे सच्चे शास्त्र कहते हैं।

ऐसे देव-गुरु और शास्त्र की, उन्होंने कहे हुए नौ पदार्थों की श्रद्धा, ज्ञान और व्यवहार पंच महाव्रत, पंच महाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। वह भी विकल्प का उत्थान है, राग है, पुण्यबन्ध का कारण है। उसे उस भूमिका के योग्य राग की मन्दता देखकर उसे निश्चय-सच्चा मोक्षमार्ग जो पहले कहा, उसका उसे निमित्त साधनरूप से कहकर व्यवहार साधन व्यवहार को कहा है। कहो, समझ में आया?

वहाँ... वहाँ अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वह मोक्षमार्ग है। सच्चा, सत्य। अब उसमें **(छह) द्रव्यरूप...** छह द्रव्य। कल दोपहर में कहे थे वे। जगत में छह वस्तु हैं। युक्ति से, आगम से, ज्ञान से यह बात सिद्ध हो सकती है। ऐसे छह पदार्थ **और (नव) पदार्थरूप...** छह द्रव्य और नौ पदार्थ। नौ पदार्थ कहे वे। यह छह द्रव्य कहाँ कहे? क्या कहा? अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु अरूपी, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश तीनों अरूपी। यह छह प्रकार के द्रव्य अनादि जगत के स्वभावरूप है। जगत के स्वभावरूप यह छह वस्तुएँ हैं। यह छह द्रव्य और उनके भेद नौ। जीव मैं हूँ, जड़ वह अजीव है; दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप की विकल्प वृत्ति उठे, वह पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह पाप है। यह पुण्य और पाप दोनों मलिन परिणाम हैं। उन्हें एकरूप गिनने से आ-स्रव—मर्यादा से स्रवना। जिस परिणाम से नये आवरण आवें, ऐसा आस्रव। यह बन्ध। यह स्वभाव विकार में अटका है, उसे बन्ध कहते हैं। और संवर। स्वभाव शुद्धता की एकाग्रता होकर शुद्धि के अंश की उत्पत्ति होने पर अशुद्धता का रुक जाना, उसे संवर कहते हैं। निर्जरा—अशुद्धता छूटकर शुद्धता की वृद्धि शक्ति के अवलम्बन से होना, उस भाव को निर्जरा कहते हैं। और मोक्ष—आत्मा की शक्ति में पूर्ण शुद्धता है, उसकी व्यक्तता में प्रगटता में पूर्ण शुद्धता हो, उसे मोक्ष कहते हैं।

ऐसे नौ के भेद... है न? **(नव) पदार्थरूप जिनके भेद हैं,...** किसके? **ऐसे धर्मादि के...** छह द्रव्य के। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, जीव और पुद्गल। इनके धर्मादि नौ भेद हैं। यह **तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव...** यह रागवाला भाव है। लो, तत्त्वार्थश्रद्धान भाषा तो आयी बराबर उस जैसी। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। यहाँ कहते हैं, निश्चय स्वभाव सत्य को जो आंशिक स्पर्श किया है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अर्थात् एक समय में अर्थात् काल के छोटे से छोटे भाग में पूर्ण शुद्ध सत् आनन्दकन्द पड़ा है, वस्तुरूप से स्वभाव, उसे अन्तर में स्पर्श किया है। वेदता हो, जानता हो, रमता हो। ऐसी शुद्धि की प्रगटता जिसे आंशिक भी हुई हो, उसकी भूमिका में ऐसे धर्मादि के अन्तर्भेदरूप नौ तत्त्व, उनकी श्रद्धा, उसे शुभराग और शुभ विकल्प कहा जाता है। उसे व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। व्यवहारश्रद्धा तो वास्तव में बन्ध का कारण है। उसे यहाँ

बन्धन के ही कारण को व्यवहार साधनरूप से उपचार करके मोक्ष का मार्ग व्यवहार से है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? कठिन बात भाई! दुनिया में चले नहीं, विद्यालय में मिले नहीं। जादवजीभाई! विद्यालय में मिले यह पठन? दुकान में व्यापार में न हो यह।

प्रभु आत्मा... ऐसे परमाणु इस देह के रजकणों की मिट्टी में पाररूप अन्दर भिन्न है। सत्त्व जिसकी शान्ति है, स्वभाव जिसका आनन्द है, शुद्धता जिसकी मूल शक्ति है। उसकी प्रतीति और ज्ञान और वेदन को स्पर्शता आत्मा, स्पर्शता आत्मा—वेदता आत्मा—अनुभव करता आत्मा—उसकी पूर्ण चारित्र की रमणता पूर्ण न हुई हो, तब तक ऐसे नौ तत्त्व के श्रद्धा का राग व्यवहाररूप से सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

(-धर्मास्तिकायादि की तत्त्वार्थप्रतीतिरूप भाव)... वास्तविक तत्त्व जो है, उसकी श्रद्धारूप भाव। **जिसका स्वभाव है...** किसका? व्यवहार सम्यक् का। **जिसका स्वभाव है ऐसा, 'श्रद्धान' नाम का भावविशेष...** श्रद्धान नाम की पर्याय—हालत विशेष, श्रद्धान नाम की दशा विशेष, उसे व्यवहार सम्यक्त्व कहा जाता है। समझ में आया? यह व्यवहार समकित कहा। यह तो ऊपर उपोद्घात बाँधा है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वह मूल मार्ग। वह तो उचित यथार्थ मोक्षमार्ग है।

अब इसकी कथन की पद्धति दो प्रकार की है। उसमें से पहले व्यवहार मोक्षमार्ग की कथन पद्धति कैसी है और उसका स्वरूप क्या है, वह यहाँ वर्णन किया जाता है। समझ में आया? भारी अटपटी बात, भाई! जगत के यह तत्त्व और उसमें यह चैतन्य ज्ञायक, ज्ञायक ज्ञाता-दृष्टा, जाननेवाला-देखनेवाला स्वभाव का पिण्ड प्रभु, उसके भान बिना विपरीत मान्यता—छह द्रव्य से विपरीत, नौ से विपरीत, उसकी तो यहाँ बात भी नहीं। और स्वभाव के भान बिना अकेले व्यवहारश्रद्धा नौ तत्त्व की सच्ची, उसकी यहाँ व्याख्या नहीं। क्या कहा?

जिसे आत्मा क्या वस्तु है, इसकी भी खबर नहीं और छह पदार्थ, नौ पदार्थ क्या है, इसकी खबर नहीं और विपरीत मानता है, उसकी तो यहाँ बात है नहीं। अब आत्मा

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ऐसे चैतन्यज्योति ज्ञायक की मूर्ति है। ऐसा अन्तर स्पर्श किये बिना अकेले नौ तत्त्व की श्रद्धा का राग, उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप की पूर्णता का पिण्ड है, ऐसा अभिमुख अन्तर... जैसे बहिर्मुख दृष्टि है, स्वभाव है उसका पूर्ण, परन्तु वर्तमान दशा में उसकी बहिर्मुखता अनादि की दृष्टि है। यह शरीर और वाणी और मन यह और वह, क्योंकि इन्द्रियों से देखने पर बहिर्मुख देखता है, उसकी अकेली प्रतीति बहिर्मुख पदार्थ की उसे तो यहाँ व्यवहार भी गिनने में आया नहीं। समझ में आया?

अन्तर्मुख स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र अर्थात् रमणता के स्पर्शित भाव की भूमिका में नौ तत्त्व का व्यवहार भेदरूप (ज्ञान)। ऐसे तीन श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र स्वभाव में अभेदरूप हैं, अभेदरूप हैं, एकरूप है। तब यह नौ तत्त्व की श्रद्धा अनेकरूप भेदरूप है। उसे व्यवहार समकित निश्चय सम्यग्दृष्टि स्वभाव को स्पर्शित किया हुआ ऐसा जीव को ऐसे नौ तत्त्व की श्रद्धा होती है, उसके राग के भाग को व्यवहार समकित कहा जाता है। उस निश्चय का उसे आरोप दिया जाता है। समझ में आया? चावल की बोरी चार मण और ढाई सेर की तोली जाती है, उस चावल में बोरी भी ढाई सेर की साथ में तुलती है। तथापि पकाने में ढाई सेर कम पड़े तो बोरी नहीं बफा जाती। चावल बाफने में काम आते हैं। समझ में आया? बफाये समझते हो? क्या कहते हैं? पकाना। चावल की बोरी आती है न? चार मण ढाई सेर (ऐसा बोले)। वह तो थैली पृथक् हो, हों! और उसका भाव इस प्रकार बाँधा हो, भाव इस प्रकार बाँधा हो। चार मण ढाई सेर हो रहे हैं। चार मण हो रहे हैं। ढाई सेर लाओ बोरी। लाओ पकायें। बोरी पकती होगी? बोरी तो एक निमित्तरूप से चावल में साथ में तुल गयी है। परन्तु वह वास्तव में चावल नहीं है।

इसी प्रकार आत्मा परमानन्द और शुद्ध स्वभाव की मूर्ति है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह तो चावल का तोल है। चावल का तोल है, स्वच्छता का तोल है, निर्मलता का तोल, निर्मल स्वभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता है। परन्तु साथ में नौ तत्त्व की श्रद्धा का राग साथ में व्यवहारमोक्षमार्ग कहा जाता है, वह बारदानरूप से साथ

में कहा है। वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया? एक बात। एक बात हुई न यह? निश्चय सम्यक् चैतन्यस्वरूप आनन्द, आनन्दरस, अतीन्द्रिय आनन्दरस। यह इन्द्रियों के झुकाव की ओर का विषयों के भोग का राग, वह तो आकुलता-दुःखरूप राग है। परन्तु उस राग के पीछे अन्तर अनाकुल आनन्दकन्द रस पड़ा है, उसकी प्रतीति और उसका ज्ञान और रमणता, वह यथार्थ मार्ग और मुक्ति का उपाय है। उसके साथ-साथ राग भाग अभी कचास रह जाती है, पूर्ण रमणता नहीं इसलिए। यहाँ चारित्र को मोक्षमार्ग वर्णन कर अपूर्ण चारित्र का भाग उसे व्यवहारमोक्षमार्ग वर्णन करना है। समझ में आया? यह समझ में आता है यहाँ हमारे साबडे मध्य में, समझ में आता है? पहले पुराने में ऐसा बोला जाता था न? एक-दूसरे बोले वहाँ बीच में कोई विश्राम होता है न? विश्राम। विश्राम का वाक्य। साबड़े मध्य ऐसा कहते। साहेब को भली मति हो जो ऐसा हमारे उमराला में हमारे बड़े बुजुर्ग वृद्ध थे, ननिहला, बहुत वृद्ध-बहुत वृद्ध। वे ऐसा कहते, साबड़े, मध्य। मामा! तुम क्या कहते हो? इसका अर्थ, साहेब को भली मति होओ। ऐसा कहने में आता है। वह वचनों का विश्राम है। इसी प्रकार समझ में आया? यह वचन का विश्राम है।

अनन्त काल से एक सेकेण्डमात्र भी वास्तविक स्पर्श चैतन्य का एक समय का पूर्ण... पूर्ण.. पूर्ण प्रभु, उसकी धीरज से, उसके अन्तर में जाकर एकाग्रता की सम्यक् स्पर्शना दर्शन की हुई, वह निश्चय सम्यग्दर्शन। निश्चय-सच्ची प्रतीति। परन्तु उसकी भूमिका में चारित्र की कमी के कारण नौ तत्त्व के राग की व्यवहार श्रद्धारूप राग जो आवे, उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। बारदान भी चावल में तुल जाता है। परन्तु वास्तव में वह समकित नहीं है। समझ में आया?

अब दूसरी बात ज्ञान की। **तत्त्वार्थश्रद्धान के सद्भाव में...** यह व्यवहार नौ तत्त्व की श्रद्धा रखकर व्यवहार में वर्तमान में राग के अंश में नौ तत्त्व के श्रद्धान का भाव रखकर उसकी अस्ति में **अंगपूर्वगत पदार्थों का...** अंग पूर्वगत। सर्वज्ञ भगवान पूर्ण परमात्मदशा जिन्हें त्रिकाल ज्ञान हो गया और वीतराग-विज्ञान जिनकी दशा पूर्ण हो गयी, उनके मुख में से शास्त्र निकले, उन शास्त्रों को अंग और पूर्वगत कहा जाता है।

यह अंग है बारह प्रकार के। इन बारह अंग में पूर्व अर्थात् बहुत अखूट ज्ञान जिसमें है, ऐसे ज्ञान की शैली के पद्धति के शास्त्र को पूर्व कहने में आता है। वह अंगपूर्वगत, उसमें कहे हुए **पदार्थों का अवबोध (-जानना)...** यह व्यवहार ज्ञान है। निश्चय तो ज्ञायक चैतन्य ऐसा चैतन्य की डली है, चैतन्यमूर्ति है, मिठास की डली अकेली खार से भरपूर है, इसी प्रकार भगवान आत्मा अकेला ज्ञान के स्वरस से भरपूर है। ऐसे ज्ञान का ज्ञान, पुण्य-पाप के राग के विकल्प का आश्रय छोड़कर अकेले सम्यक् स्वभाव का ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान, उस ज्ञान की भूमिका में चारित्र की पूर्णता न हो, तब ऐसे नौ तत्त्व सम्बन्धी ज्ञान को व्यवहार ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

अज्ञानी बिल्कुल पूर्वगत और अंगगत और देव-गुरु-शास्त्र सच्चे मानता नहीं, उसकी तो यहाँ बात भी नहीं। तथा कोई देव-गुरु-शास्त्र को, नौ तत्त्व को व्यवहार से सच्चा माने परन्तु निश्चय स्वभाव का भान नहीं जिसे, उसकी भी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो माल तोला जाता है साथ में बारदान तोला जाता है। अकेला थैला-बारदान तोला जाये उसकी यहाँ बात नहीं है। बारदान का होता है न? गठरी... गठरी बड़ी होती है। अकेला चावल-बावल कुछ नहीं हो। यह तो चावलवाला बारदान। कोथला समझते हो? बारदान होता है न? बारदान—थैला। उसकी बात है। अकेला थैला नहीं और कहीं थैला और यों ही थैलियाँ फटी-कूटी हो, उनकी भी बात नहीं है। यहाँ तो चावल के साथ बारदान तोला जाता है, बारदान, उसे यहाँ व्यवहार की गिनती कहने में आती है।

इसी प्रकार एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ परमात्मा ने जैसा आत्मा (देखा), सर्वज्ञ हुए कहाँ से? अन्दर में सर्वज्ञपद स्वभाव में पड़ा है, उसके अवलम्बन से प्राप्त की प्राप्ति हुई, उसकी दशा में सर्वज्ञ हुए हैं। ऐसी सर्वज्ञशक्ति की प्रतीतिपूर्वक, वह तो निश्चय, वह तो सच्चा परन्तु उसकी भूमिका में चारित्र की रमणता की अपूर्णता के कारण जब तक शास्त्र में कहे हुए नौ तत्त्व के बोध की ओर का झुकाव रहता है, ऐसे रागमिश्रित शास्त्र के ज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? दो (बातें हुई)। **(—जानना) वह ज्ञान;...** ज्ञान अर्थात् व्यवहार, व्यवहार अर्थात् उपचार, उपचार अर्थात् निमित्त।

तीसरा। **आचारादि सूत्रों द्वारा कहे गए...** भगवान सर्वज्ञ परमात्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिन्हें पूर्ण ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हो गया, जिन्हें परमात्मदशा पूर्ण प्रगट हो गयी, ऐसे भगवान के मुख में इच्छा बिना, विकल्प बिना, राग बिना वाणी, वाणी के कारण पूर्व के विकल्प जो थे राग, उससे परमाणु का बन्ध हुआ, उससे ध्वनि सर्वज्ञ हुए और खिरी। उसमें जो कहे हुए साधुओं के आचार, उनका जिसमें वर्णन है, ऐसे आचार आदि। आचारांग, सूत्रकृतांग, उपासकाध्ययन ऐसे शास्त्र, शास्त्रों के भिन्न-भिन्न नाम हैं। शास्त्रों में वर्णन जिस प्रकार का हो, उस प्रकार का उस शास्त्र का नाम होता है। ऐसे **आचारादि सूत्रों द्वारा कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों के समस्त समुदायरूप तप में चेष्टा (-प्रवर्तन), सो चारित्र;...** क्या कहते हैं ? आत्मा शुद्ध चारित्र को प्रगट करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है, ऐसा अन्तर में सत्त्व पड़ा है, ऐसे भान बिना और अकेले देव-गुरु-शास्त्र की विपरीत मान्यतावाला जो कुछ बाह्य की कोई दया, दान की क्रिया करे, उसे तो यहाँ व्यवहारचारित्र भी कहने में आया नहीं। समझ में आया ? अब निश्चय के भान बिना अकेले व्यवहार पंच महाव्रत पाले। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नग्न होकर जंगल में रहे, परन्तु आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण आनन्द का अन्तर की ओर का स्पर्श—वेदन नहीं। अन्तर की ओर के वास्तविक स्वभाव के झुकाव से प्रगट हुआ स्थिरतारूप चारित्र नहीं। उसे ऐसे पंच महाव्रत के भाव को व्यवहारचारित्र भी नहीं कहा जाता। समझ में आया ? परन्तु जिसे आत्मा स्वरूप से क्या है, ऐसा भान है, भान में ज्ञेय वर्तता है आत्मा पूर्ण ऐसा, उसमें रमणता की शान्ति और अतीन्द्रिय आनन्द भी वर्तता है। अतीन्द्रिय आनन्द पूरा हो तब तो परमात्मा दशा हो जाये। उसकी मुक्ति हो जाये। फिर उसे अवतार-बवतार न हो। परन्तु पूर्ण दशा नहीं हुई, तब तक उसे आत्मा के स्पर्श की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता—चरना, रमना होने पर भी पूर्णता की रमणता के अभाव के काल में शास्त्र ने विहित कहे हुए व्यवहार (होता है)। किसी जीव को नहीं मारना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना, स्व-परस्त्री विषय न लेना, नौ-नौ प्रकार से। मन, वचन और काया से करना, कराना और अनुमोदना—सम्मत होना। इससे छूट गया हो और अन्तर के स्वभाव की रमणता की भूमिका में ऐसा पंच महाव्रत का शुभराग आवे उसे... देखो!

कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों... यह मुनि दिगम्बर होते हैं, सन्त होते हैं, जंगल में बसते होते हैं। इसके बिना मुनिपना कभी नहीं हो सकता। अन्तर के आत्मा की भूमिका, आत्मा के अवलम्बन में से खड़ी हुई दशा, उसमें रमते हुए चारित्रवन्त सन्त को व्यवहार से आचारों की **समस्त समुदायरूप...** विधि कही है न? बारह प्रकार के तप और चारित्र, महाव्रत, समिति और गुप्ति, ऐसा व्यवहार बहुत होता है। ऐसे **तप में...** तप कहो या चारित्र कहो। देखो! यहाँ तप कहो या चारित्र कहो। **तप में चेष्टा...** यह पंच महाव्रत आदि समिति, गुप्ति, देखकर चलना, मन अशुभ से गोपन करना ऐसे चारित्रभाव में चेष्टा अथवा ऐसी तपस्या मुनिपने की दशा में व्यवहार प्रवर्तन। व्यवहार प्रवर्तन अर्थात् रागांश का उत्पन्न होना। देह की क्रिया नहीं, जड़ नहीं, वह तो मिट्टी है। मिट्टी की क्रिया मिट्टी में मिलती है। आत्मा के साथ उसे सम्बन्ध नहीं है। अन्दर का जो शुभराग अंश प्रगट होता है, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। सम्यक् चारित्रवन्त को पंच महाव्रत आदि के जो समिति, गुप्ति आचार शास्त्र में ... मुनि को समस्त समुदाय आचार शुभ रागांश उठे, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। कहो, समझ में आया?

पहली व्यवहार श्रद्धा, दूसरा व्यवहार ज्ञान और तीसरा व्यवहार चारित्र। व्यवहार अर्थात् यह लौकिक व्यवहार की यहाँ बात नहीं है। .... इसके लेखा-जोखा की बात है कि आत्मा अपने स्वभाव की भूमिका देख ली और उसमें रमणता कुछ करता हो, उसकी राग की मन्दता की हद कितनी और कैसे होती है, उसकी बात चलती है। उसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की मान्यता का राग नहीं होता। कुदेव ने कहे हुए शास्त्र का व्यवहार ज्ञान भी होता है, ऐसा नहीं मानता। और पंच महाव्रत के परिणाम अहिंसा आदि के छोड़कर अकेले अव्रत और हिंसा आदि के भाव हो, उन्हें व्यवहार कहने में नहीं आता।

(३५ मिनिट के बाद आवाज डबल है)

ज्येष्ठ कृष्ण १२, गुरुवार, दिनांक - १९-०६-१९५२, गाथा-१७२, प्रवचन-१६

पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा। सर्व शास्त्र और... ऐसा इस गाथा में कहेंगे। वीतराग सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई दिव्यध्वनि और उसमें से हुए जो गणधरदेव ने रचित शास्त्र, उन सब शास्त्रों का तात्पर्य तो वीतरागभाव है। वीतरागभाग अर्थात्? चाहे जो बात चारों अनुयोगों में करते हों, द्रव्यानुयोग में, चरणानुयोग में, धर्मकथानुयोग में... समझ में आया? चरणानुयोग में और करणानुयोग में, परन्तु चारों का सार वीतरागता है। अर्थात् कि सब जानकर यह चैतन्य... सार है।

शास्त्र में धर्मी जीव को पूर्ण वीतराग न हो, तब तक पंच परमेष्ठी भगवान आदि के प्रति उसे भक्ति का राग आता है। राग होता है, परन्तु वह धर्मराग भी वीतरागदृष्टि की अपेक्षा से हेय—छोड़नेयोग्य है। क्योंकि राग है, वह विकार है। पंच महाव्रत आदि का राग या पंच परमेष्ठी—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, प्रवचन—ज्ञानादि की भक्ति, उनके प्रति होनेवाला राग, वह भी शास्त्र का तात्पर्य नहीं है। राग छोड़नेयोग्य है और ज्ञाता चैतन्यमूर्ति आत्मा वीतराग हूँ—ऐसी अन्तर स्वभाव की दृष्टि करके वीतरागता प्रगट करना, वह सार है। इसलिए कहते हैं।

'जो कोई मोक्ष का अभिलाषी महाजन है...' महाजन अर्थात् महापुरुष कोई हो। मोक्ष का अभिलाषी—यहाँ से शुरु किया है। जिसे आत्मा में अन्तर्मुख शान्ति और आनन्द अन्तर में पड़ा है शक्तिरूप से, उसकी जिसे प्रगट परम शुद्धता प्रगट करने का जो इच्छुक है। संसार पुण्य-पाप की जिसे इच्छा और अभिलाषा नहीं। और आत्मा ज्ञान, दर्शन और आनन्द मेरा स्वरूप है, ऐसी अन्तर प्रतीति करके परम पवित्रता प्रगट करने का कामी है, ऐसे महाजन को कहते हैं, हे महाजन! महाजन अर्थात् इस जगत के महाजन रूप से का सवाल नहीं। महाजन अर्थात् महापुरुष। हे विरल महापुरुष! तुझे यदि मोक्ष की अभिलाषा हो, यह शरीर-वाणी-मन, कर्म से छूटना हो, संसार के परिभ्रमण दुःखदायक भाव से छूटना हो, आत्मा के आनन्द की परिपूर्ण दशा की अवस्था को प्राप्त करना हो 'सो प्रथम ही विषयराग का त्यागी हो।' क्या कहते हैं?

सम्यग्दर्शन तो है। मुनिपने की बातें हैं। सम्यग्दर्शन है। आत्मा ज्ञान, दर्शन और आनन्दस्वरूप है। पुण्य-पाप के, दया-दान के, काम-क्रोध के विकल्प उठते हैं, वह विकार हैं। शरीर, वाणी, कर्म, वह पर है। मेरा अन्तरस्वरूप शान्ति का निधान वीतरागस्वभाव की खान है, वह चैतन्यद्रव्य है। ऐसी प्रतीति, अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ है।

उसे कहते हैं, हे मोक्ष के अभिलाषी महाजन! 'सो प्रथम ही विषयराग का त्यागी हो।' सम्यग्दर्शन होने पर भी, आत्मा का भान होने पर भी, विषय का राग जो अशुभ— हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, ऐसा जो पापराग है, उसे आत्मा के ज्ञान के भानपूर्वक पापराग पहले छोड़ना। दलीचन्दभाई! समझ में आया? यहाँ तो मुनिपने की बात लेते हैं। चारित्र, वह मुक्ति का मुख्य मार्ग है। अर्थात् चारित्र, वह स्वरूप की अन्तर रमणता है। आत्मा पहले ज्ञान, दर्शन और आनन्द का भान होने पर पूर्ण पवित्रता का जो अभिलाषी जीव है, उसे कहते हैं, हे महाजन! इस जगत के अन्दर अनन्त संसार के परिभ्रमण से छूटना हो तो प्रथम विषयराग का त्यागी हो। सम्यग्दर्शन तो है। हिम्मतभाई! इसकी बात है। समझे?

आत्मा का ज्ञान तो है। आत्मा ज्ञाता हूँ, शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ। अशुद्ध राग-द्वेष विकल्प, पुण्य-पाप होता है, वह विकार है। शरीरादि क्रिया जड़ की है, मेरी नहीं। मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ। ज्ञाता हूँ, दृष्टा हूँ, साक्षी हूँ, आनन्द हूँ।—ऐसी अन्तर में श्रद्धा और ज्ञान हुआ है। उसे कहते हैं कि हे महाजन! प्रथम विषयराग का त्याग कर अर्थात् कि स्वरूप में लीन होकर स्वरूप आत्मा का ज्ञान, दर्शन, आनन्द जो स्वरूप है, उसमें प्रयत्न करके लीन होकर, पाँचों इन्द्रियों के विषयों की ओर के अशुभराग को छोड़। समझ में आया? पहले तो सम्यग्दर्शन है, ऐसा स्वीकार करके ही यह बात ली है। क्योंकि मोक्ष का अभिलाषी लिया है। हिम्मतभाई! समझ में आया?

जिसे मोक्ष चाहिए है, जिसे पुण्य-पाप के भाव हों, वे चाहिए नहीं, रुचि नहीं। शरीर की रुचि नहीं, स्वर्ग के सुख की रुचि नहीं। पुण्य के भाव हों दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति के, वे हों अवश्य, परन्तु उसमें से फल लेनी की रुचि नहीं है। समझ में

आता है ? मैं ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ, मेरी शक्ति—स्वभाव है। मेरी निर्बलता मैंने कमजोरी से मुझमें जो शुभभाव होता है, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का शुभभाव हो, परन्तु जिसकी शुभभाव की भी रुचि हट गयी है और शुभ का फल स्वर्ग में मिलना, वह भी रुचि हट गयी है। स्वर्ग क्या ? स्वर्ग अनन्त बार मिला। राग और सेठाई भी अनन्त बार मिली। मेरा स्वरूप शान्त, आनन्द है। मुझे परम अनाकुल शान्ति मुझे चाहिए है। ऐसी जिसे अनाकुल शान्ति की स्वभाव में प्रतीति हुई है। आत्मा के अन्तर में निर्विकल्प प्रतीति और श्रद्धा हुई है। परन्तु गृहस्थाश्रम छोड़ा नहीं है, उसे कहते हैं कि हे महाजन! पहले आत्मा के भानपूर्वक पंचेन्द्रिय के विषय के प्रति राग छोड़। पहले धर्मराग नहीं छूटता, ऐसा कहते हैं। धर्मराग अर्थात् ? आत्मा का ज्ञान और भान होने पर भी, प्रथम पंच परमेष्ठी की भक्ति, वीतरागदेव की भक्ति, अरिहन्त, सिद्ध, प्रतिमा, आचार्य, उपाध्याय, साधु की, सच्चे सन्त का बहुमान, यह राग पहले नहीं घटता।

पहले राग तो चैतन्य सन्मुख की प्रतीति के पश्चात् विषय का तीव्र राग जो अशुभ है, उसे स्वभाव की एकाग्रता द्वारा उस राग को पहले घटा। भानुभाई! समझ में आया ? देखो, यह ऊपर आया था न ? 'धर्मराग भी हेय जानना।' उसके साथ सन्धि है। धर्मराग तो धर्मी को आत्मा का भान है, वीतरागता न हो, तब तक पंच परमेष्ठी के प्रति प्रीति, रुचि, भक्ति, श्रद्धा, बहुमान, प्रभावना ऐसा भाव हुए बिना नहीं रहता। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति प्रेमवृत्ति हुए बिना नहीं रहती। परन्तु कहते हैं कि यह पहले नहीं छूटती। पहले तो तीव्र विषय कषाय और जो ममता—मोह तीव्र है, उसे स्वरूप की दृष्टि का विषय जो स्वरूप किया है, उसमें एकाग्र होकर विषय की तीव्रता को घटा। समझ में आया ? यह तो उपदेश के वाक्य हैं।

वास्तव में तो प्रयत्न तो स्वभाव का ही कर सकता है। प्रयत्न कहीं परवस्तु छुड़ाने का नहीं हो सकता। क्योंकि परवस्तु तो आत्मा में अभावस्वरूप है तथा आत्मा में होते विकार को छोड़ूँ, यह भी प्रयत्न हो नहीं सकता। स्वभाव ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ, दृष्टा हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा भान करके ज्ञान में प्रयत्न किया जा सकता है। जिससे विषय की—राग की वृत्ति उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकार विषय के राग का त्याग कर, ऐसा कहा गया है।

यहाँ तो अब अन्तिम सार लेते हैं पूरा। जैनदर्शन का सार क्या है? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञानी देवाधिदेव को जो केवलज्ञान में भासित हुआ, वाणी द्वारा आया और उसके द्वारा जो शास्त्र रचे गये और शास्त्र का तात्पर्य क्या है? मक्खन... मक्खन। समझ में आता है? समझ में आता है न? शास्त्र का मक्खन क्या है? मक्खन समझते हो न? क्या कहते हैं? मक्खन कहते हैं, मक्खन। शास्त्र का मक्खन—तात्पर्य—सार क्या है? कि सार तो आत्मा परपदार्थ से और राग से हटकर स्वरूप की प्रतीति में लीनता करे, वह वीतरागता शास्त्र का सार है। राग आता है, वह शास्त्र का सार नहीं। धर्मराग आत तो है। देव-गुरु-शास्त्र, भक्ति, प्रभावना शुभराग आता है। बाहर की क्रिया तो जड़ की होनेवाली हो तो होती है। परन्तु धर्मीजीव को कहते हैं कि भाई! प्रथम धर्मराग नहीं घटता, प्रथम विषयराग घटा। पाँच इन्द्रिय के विषय कुटुम्ब-कबीला के प्रति तीव्र आसक्ति, कमाना आदि भोग के प्रति जो वृत्ति, स्वभाव की दृष्टि होने पर भी—मैं सुखरूप आनन्दरूप आत्मा हूँ, ऐसी दृष्टि होने पर भी धर्मी को जो विषयभोग, युद्ध या कषाय जो विषय का होता है, उसे घटा—ऐसा पहले उपदेश करते हैं। कहो, समझ में आया?

यह घटाने का उपाय भी कहा कि उपाय तो आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव शुद्ध स्वभाव के प्रति ही उद्यम कर सकता है। वह उद्यम करने से विषय का राग, विषय की तृष्णा कम होती है। 'अत्यन्त वीतराग होईकर...' बाद में कहा। फिर अत्यन्त वीतराग। वह धर्मराग जो है, उसे छोड़कर। पहले विषयराग छोड़, फिर धर्मराग (छोड़)। पंच परमेष्ठी के प्रति, साधर्मी के प्रति, सच्चे सन्त, देव, गुरु, भगवान की प्रतिमा इन इत्यादि के प्रति जो राग—धर्मराग शुभ है, वह भी स्वभाव के प्रयत्न द्वारा छोड़। 'अत्यन्त वीतराग होईकर संसारसमुद्र के पार जाओ...' भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, हे जीवो! ऐसा वीतरागभाव अन्दर प्रगट करके संसारसमुद्र के पार जाओ। संसारसमुद्र तिर जाओ। नहीं तो संसारसमुद्र में कहीं सुख है नहीं। देखो! संसारसमुद्र के पार जाओ, ऐसा भगवान अमृतचन्द्राचार्य आदेश अथवा उपदेश के वाक्य करते हैं।

अब संसार की व्याख्या करते हैं। संसार कैसा है? संसार कोई स्त्री, पुत्र, परिवार

में समाहित नहीं है। संसार आत्मा की पर्याय में विकारभाव है, वह संसार है। अब वह संसार कैसा है, उसे कहते हैं। हे जीवो! संसारसमुद्र को पार पाओ। संसार में चौरासी के अवतार में कहीं सुख है नहीं। सेठाई में नहीं, पटेलाई में नहीं, बढ़प्पन में नहीं, देव में नहीं, इन्द्रपद में नहीं। ...भाई! कैसे होगा? सेठाई में सुख नहीं? यह सब पूछते हैं तुमको सब। जहाँ हो वहाँ मोटर आवे, सामने पूछे, लो। सुख होगा या नहीं? सब हैरान होने के रास्ते हैं। सुख धूल में भी नहीं। मोहनभाई! राग है, राग है। जहाँ-तहाँ हैरान (होता है)। इसके बदले आओ न यहाँ मीटिंग आयोजित है और इस जगह बैठो। हैरान... हैरान होने का रास्ता है। ऐ... मोहनभाई! है या नहीं?

यहाँ तो कहते हैं, भाई! यह तीव्र राग तो पहले स्वभाव की दृष्टि करके छोड़। धर्मानुराग पहले नहीं छूटता। धर्मानुराग तो स्वभाव में लीनता विशेष होने पर राग छूट जायेगा। जिससे वीतराग होकर संसार का पार पायेगा। अब कहते हैं, संसार कैसा है? 'जो संसारसमुद्र नानाप्रकार के सुख-दुःखरूपी कल्लोलों द्वारा आकुलव्याकुल है।' देखो! संसार, आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप त्रिकाल ध्रुव नित्यानन्द है, उसे चूककर जो विकार, पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दान यह अनुकूल-प्रतिकूल में हर्ष-शोक की कल्पना, पच्चीस लाख मिले और हर्ष। यह हर्ष सुख की कल्पना, वह दुःख है। क्यों सेठ? पच्चीस लाख मिले, पचास लाख मिले, एक करोड़ मिले। किसे मिले? भगवान! वह तो जड़ पदार्थ है। उसका हर्ष वह सुख की कल्पनारूपी कल्लोलों द्वारा, कल्लोल उठती है। पानी में जैसे कल्लोल उठे, वैसे कल्पना उठती है कि अहो! इस वर्ष में हम सफल हुए। भगवान! सफल होना किसे कहा जाये? इस वर्ष में हमें मन्दी हुई तो सफल हुए नहीं। दोनों कल्पनायें आकुल-व्याकुल की दुःखदायक है। बराबर होगा? अभी एक करोड़ पैदा किये और मन्दी हो तो पाँच-दस लाख जाये तो अरे..! आता है तो ठीक, जाये तो ठीक नहीं। समझे? आता है तो ठीक परन्तु जाता है तो बराबर (नहीं), गड़बड़ हो जाती है।

भगवान आचार्य कहते हैं, संसारसमुद्र अर्थात् विकार की पर्याय, विकार की पर्याय, विकार की अवस्था 'नाना प्रकार के...' अनेक प्रकार के 'सुख-दुःखरूपी

कल्लोलों द्वारा...' जैसे समुद्र में कल्लोल उठती है, वैसे तेरा शान्त स्वभाव समुद्र, उसमें अनाकुल आनन्द, उसमें कल्लोल, कल्पना की कल्लोल उठती है। पुत्र हुआ, उत्तराधिकार रहेगा। मकान हुआ, रहने को काम आयेगा। गहने हुए, घर का गहना हुआ। वस्त्र हुए अथवा पाँच वर्ष, दस वर्ष का अनाज कोठी में पड़ा है, दो वर्ष दिक्कत नहीं। यह कल्पना... कल्पना... कल्पना। यह सुख की कल्पना आकुलता की है। प्रतिकूलता की आयी, वह दुःख की कल्पना भी आकुलता है।...भाई! दोनों आकुलता होगी? यह दस-दस लाख पैदा हो और प्रसन्न हो, वह आकुलता? बेचरभाई! देखो! यहाँ तो दोनों बातें करते हैं।

संसारसमुद्र अनेक प्रकार के सुख-दुःखरूपी कल्लोलों द्वारा आकुल-व्याकुल है। आकुल है, आकुल। कहीं चैन नहीं। आवे तो भी चैन नहीं और जाये तो भी चैन नहीं। चैन तो आत्मा के अन्तर समाधान ज्ञान और आनन्द शुद्ध में हैं। आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को श्रद्धा कर उसमें समाधान करे तो सुख है। बाहर में सुख है नहीं। देखो न, यहाँ तो संसारसमुद्र में बड़े राजा और देव आदि हों, उन्हें भी सुख-दुःख की कल्पना की कल्लोलें उठती हैं, ऐसी तरंग उठती है। जिस प्रकार समुद्र में बड़ी तरंग उठे, वैसे विकार की पर्याय, पुण्य की, पाप की कल्लोलें, कल्लोल, कल्लोल की कल्पना, वह आकुल-व्याकुल संसार है। संसार में कहीं सुख नहीं है। देव में नहीं, सेठाई में नहीं, बड़प्पन में नहीं, पटेलाई में नहीं, अधिकारी में नहीं। पाँच-पाँच हजार का वेतन महीने में हो तो उसमें सुख है नहीं। दाह है, दाह। यह चीज़ें दाह नहीं। ऐसी कल्पना हुई। भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। दर्शन, आनन्दस्वरूप है। त्रिकाल उसका मूल नित्य स्वरूप है। आनन्द नित्य। वह कल्पना करे, अभी हमको बादशाही है। हमको अभी छह-छह महीने से कहीं चैन है नहीं। पाँच वर्ष से हमको ठिकाना पड़ता नहीं। वह कल्पना, वह दुःख और पच्चीस वर्ष से अभी हमको कुछ समरूपता आयी। यह दाह और दुःख है। बेचरभाई! सणोसरा कैसा दुःख होगा? कल्पना। वहाँ व्यापार छोटा हो तो उस प्रकार की कल्पना, बड़ा हो तो कल्पना। दोनों कल्पनायें। मोहनभाई! राग और द्वेष, राग और द्वेष।

एक बार पहिचान तो कर कि यह राग और द्वेष कल्पनायें-वृत्तियाँ उठती हैं, वह

विकार है। मेरा त्रिकाल स्वरूप तो ज्ञान और आनन्द है। उसकी दृष्टि कर और उसकी रुचि कर। और कल्पना है, वह दुःखदायक है, उसकी पहली प्रतीति कर तो स्वरूप की लीनता करके कल्पना तोड़ने का अवसर और अवकाश आयेगा। परन्तु जिसे मिला ही करे... यह तो सम्यग्दृष्टि है, इसलिए कल्पना में सुख तो मानता नहीं। उसकी बात चलती है। उसकी बात चलती है। जो कल्पना में सुख मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसकी तो यहाँ बात ही नहीं करते हैं। परन्तु कल्पना उठती है, पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध या हर्ष, दुःख की वह कल्पना सुखरूप नहीं। मेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द सुखरूप है। ऐसी प्रतीति और श्रद्धा हुई है, उसे कहते हैं।

हे आत्मा! संसाररूपी समुद्र के पार जा। कहीं शान्ति नहीं। संसार के किनारे कहीं शान्ति नहीं। तिरकर पार जा। कैसा है संसार? किसलिए पार पाना? यह सुख-दुःखरूपी कल्लोलें उठती हैं, कल्पना उठती है। सब कल्पना। इसका मैंने किया, इसका मैंने नहीं किया, इतना कुटुम्ब व्यवस्थित रखा, इतना मैंने व्यवस्थित नहीं रखा। सब अज्ञानी का मिथ्याभाव है। ज्ञान को भी जो कल्पना उठी, वह अस्थिरतारूपी... भाव है। समझे? अज्ञानी को तो मैं कर देता हूँ, मैं कर सकता हूँ। यह मिथ्यादृष्टि का भाव, वह तो परसन्मुख है और आत्मा के ज्ञाता-दृष्टा सन्मुख उसका भाव नहीं है। उसे तो यहाँ कहते भी नहीं।

तू यदि मोक्ष का अभिलाषी हुआ (हो), संसार से थका हो। लहर लगती हो तो उसे तो मेरा उपदेश लागू पड़े, ऐसा नहीं है। बराबर होगा यह? परन्तु यह आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द (स्वरूप है)। जितने सिद्ध हुए, वे आत्मा में से हुए हैं। जितने अरिहन्त, सिद्ध हुए, वे आत्मा के अन्तर शक्ति के सामर्थ्य में से ... प्रगट करके पर्याय प्रगट की है। ऐसे आत्मा के त्रिकाल शुद्ध वीतरागी स्वभाव अन्तर में है, उसकी प्रतीति और ज्ञान हुआ हो तो तुझे कहते हैं कि संसारसमुद्र की आसक्ति कल्लोल, सुख-दुःख की कल्पनायें हैं। भान तो है परन्तु विशेष उपदेश करते हैं।

'कर्मरूप वडवाग्निकर बहुत ही भय को उपजाता अति दुस्तर है...' अहो! ऐसे पूर्व के पुण्य-पाप आदि बाँधे हुए होते हैं जीवों ने। कहते हैं कि कर्मरूपी वडवाग्नि।

समुद्र में होती है न? वडवाग्नि नहीं होती? पानी का शोषण कर डाले। इसी प्रकार कर्म का निमित्त और भावकर्म की कल्पना। जड़ कर्म के कारण संयोग मिले, उसमें सुलगती अग्नि। उसमें कल्पना करे कि अहो! हमारे अभी ठीक है, अठीक है। वडवाग्नि से पानी शोषित हो जाता है। समुद्र का पानी होता है न? वडवाग्नि हो तो शोष लेती है। इसी प्रकार चैतन्य भगवान शान्त ज्ञानानन्दमूर्ति अनाकुल जैसे सिद्ध भगवान वैसा अन्दर शक्तिरूप स्वभाव है। उसकी प्रतीति करने पर भी अस्थिरता की आकुलता में शान्ति का जल शोषित हो जाता है। समझ में आता है? कहो, समझ में आया इसमें? मनसुखभाई! क्या होगा? यह चैन नहीं बाहर में?

'वडवाग्निकर बहुत ही भय को उपजाता है...' पानी में अग्नि। कहते हैं न? जल में ला (आग)। जल में ला (आग) लगी। इसी प्रकार भगवान ज्ञानस्वरूपी चैतन्य ज्योति है, उसमें पर्याय में—अवस्था में जितनी कल्पनायें कर्म के निमित्त से जुड़ने पर अपनी दशा में जो विकार हों, वह आत्मा की शान्ति को शोष डालते हैं। शोष जाती है, लुट जाती है। तेरे स्वभा की पहले प्रतीति तो कर कि स्वरूप कैसा है और किस प्रकार शान्ति मिले। 'वडवाग्निकर बहुत ही भय को उपजाता अति दुस्तकर है।' पानी में ला (आग)। इसी प्रकार चैतन्यसमुद्र ज्ञानानन्द स्वरूप वस्तु स्वरूप से 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' मेरा स्वरूप अन्दर सिद्ध समान निर्मल नित्य है। उसकी पर्याय में जितना यह विकार होता है (वह) 'भयंकर भय को उपजाता दुस्तर है...' उस विकार को तिरना दुस्तर है। बहुत उग्र पुरुषार्थ माँगता है। एक तो समुद्र, उसमें वडवाग्नि। उसमें किनारे जाना। ऐसे अनादि का संसार, उसमें कल्पना और कर्म के संयोगों का प्रतिकूल वडवाग्नि का सुलगना, उससे पार पाना, वह स्वभाव के अन्तरभान और अन्तर लीनता बिना पार नहीं पाया जा सकता। कहो, समझ में आया?

'ऐसे संसार के पार जाकर परम मुक्त अवस्था...' ऐसे संसारसमुद्र को पार पाकर अन्तर स्वभाव ज्ञायक है, उसमें लीन होकर परम मुक्त अवस्था—परम मुक्त दशा, ऐसा 'अमृतसमुद्र में मग्न होईकर...' अमृतसमुद्र भगवान अन्दर है। चैतन्यस्वभाव में शान्ति और अमृत पड़ा है। उस अमृतसागर का जो पर्याय डोलती परिणति होती है, उसमें मग्न

हो जा। 'तत्काल ही मोक्षपद को पाते हैं।' लो, यह संसार का पार पाकर अमृतसागर भगवान। अमृतसागर भगवान। कहते हैं नहीं? समुद्र में विष्णु, कृष्ण ऐसे विराजते हैं। वह यह विष्णु, दूसरा कोई नहीं। ज्ञानानन्द चैतन्य अमृतस्वरूप का नित्य आनन्दस्वरूप है। उसमें भगवान आत्मा स्वयं विराज रहा है। यह क्षणिक विकार जो होता है, वह कहते हैं कि संसार है। इसलिए स्वभाव की दृष्टि करके संसार का पार पा जा। लो!

'मुक्त अवस्थारूप अमृतसमुद्र में मग्न होईकर...' अमृतसमुद्र। समझ में आया? आत्मा का शाश्वत् स्वभाव। विकार जो क्षणिक है, उसकी दृष्टि छोड़कर कायम असली अन्तर तत्त्व जो भरा है, वह अमृतसागर का भरपूर स्वरूप है। उसमें मग्न होकर 'तत्काल मोक्षपद को प्राप्त हो।' देरी न लगा, कहते हैं। 'तत्काल ही मोक्षपद को पाते हैं।' ऐसी जो अन्तर्दृष्टि करके वीतरागता अन्तर लीन करता है, वह अल्प काल में मुक्ति को पाता है। 'बहुत विस्तार कहाँ तक किया जाये?' भगवान आचार्य कहते हैं, '**अलं विस्तरेण**' है न? है। '**अलं विस्तरेण। स्वस्ति साक्षात्**' कहते हैं, देखो! 'बहुत विस्तार कहाँ तक किया जाये?'

'साक्षात् मोक्षमार्ग का प्रधान कारण है।' साक्षात् आत्मा अन्दर चिदानन्द है, उसका जो मोक्ष का मार्ग प्रधान कारण है, मोक्षमार्ग का मुख्य कारण। 'समस्त शास्त्रों का तात्पर्य है, ऐसा जो वीतरागभाव, सो ही जयवन्त हो।' स्वस्ति। यह स्वस्ति किया है। स्वस्ति अर्थात् जयवन्त हो! अहो! आत्मा अन्तर्मुख होकर, राग पुण्य कल्पना और निमित्त की दृष्टि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि अन्तर करके, अन्तर वीतराग हो, वह वीतरागमार्ग जयवन्त वर्तो। वह वीतरागभाव जयवन्त वर्तो। गत काल में भी उस वीतरागभाव से मुक्ति प्राप्त हुए हैं, अभी महाविदेहक्षेत्र में पाते हैं तो भी इस भाव से पाते हैं और अनन्त भविष्य में होंगे, वे आत्मा के अन्तर शक्ति—स्वभाव के सामर्थ्य को समझ से, अन्तर स्वभाव ज्ञान, दर्शन और आनन्द की शक्तिरूप पिण्ड की समझ से पर्याय प्रगट करता हुआ वीतराग भाव से वह मुक्ति पाता है।

इसलिए कहते हैं, साक्षात् मोक्षमार्ग का प्रधान कारण है, समस्त शास्त्रों का तात्पर्य है। चारों अनुयोगों का तात्पर्य—द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और

धर्मकथानुयोग। सबका तात्पर्य वीतरागभाव है। कहीं पुण्य बताया हो तो पुण्य आदरणीय है, ऐसा नहीं है। धर्मकथानुयोग में तो ऐसा बताया है कि ऐसे पुण्य से सुखी होता है, पाप से दुःखी होता है। कथानुयोग में ऐसी कथाएँ आये। परन्तु उसका सार पुण्य-पापरहित तेरा निर्मल वीतराग स्वभाव है, उसकी दृष्टि करके वीतरागदशा प्रगट करना सर्व शास्त्रों का सार है। कोई शास्त्र अनेक प्रकार से वीतराग के शास्त्र कहते हों। वीतराग के शास्त्र। इसके अतिरिक्त शास्त्र सच्चे हो नहीं सकते। सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई वाणी और परम्परा से जो आयी हुई, उसका सार अकेला वीतरागभाव। भले राग आवे, पुण्य आवे, शुभभाव हो। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वृत्ति मुनि को भी हो तो वह शास्त्र का तात्पर्य नहीं है। शास्त्र का मक्खन नहीं है। मक्खन तो अन्दर ज्ञान में डोलकर लीन हो जा। इस ज्ञानानन्दस्वभाव में एकाकार दृष्टि करके लीन हो, वह वीतराग शास्त्रों का सार है। समझ में आता है? राग सार नहीं है। राग आता अवश्य है। यह तो बतलाते हैं। धर्मराग निचलीदशा में आता अवश्य है। परन्तु सार नहीं है। सार तो... सार कहते हैं न? लकड़ी में भी बीच में सार आता है। कस आता है, कस? सत्त्व लकड़ी का आता है न? सार... सार। वैसे आत्मा में शरीर, वाणी, मन तो नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप की कल्पना होती है, दया, दान का (भाव), वह भी नहीं। अन्तर शुद्ध वीतरागस्वभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वीतरागता सर्व शास्त्रों का सार है। वीतराग के चारों अनुयोग में किसी जगह राग को, पुण्य को उपादेय कहा हो तो व्यवहार से कहा हो। परमार्थ से तो आत्मा का वीतरागस्वभाव वह आदरणीय है। इसके अतिरिक्त उपादेय—अंगीकार करनेयोग्य कोई भाव वीतरागमार्ग में हो नहीं सकते। दूसरे तो किसी समय और... कहे, कोई लड़ने का कहे। यहाँ तो कहते हैं, देखो भाई! अशुभराग टलने पर शुभराग आता तो है। वीतराग न हो, तब तक (आता है) तो भी वह राग उपादेय अर्थात् आदरणीय और अंगीकार करनेयोग्य निश्चय से नहीं है। निश्चय से तो ज्ञाता-दृष्टा में लीनता करना, वह शास्त्रों का सार है। देखो! यह बात समझनेयोग्य बात है। कितने ही कहते हैं, व्यवहार से धर्म होता है, निश्चय से धर्म होता है और अमुक से धर्म होता है। निमित्त से होता है या व्यवहार करते-करते धर्म होता है, यह वीतराग का मार्ग नहीं है। कहो, समझ में आया?

'समस्त शास्त्रों का तात्पर्य...' समस्त अर्थात् सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी निकली और परम्परा से सन्तों ने झेली और जो सन्त भावलिंगी हुए, उन्होंने शास्त्र—यह समयसार, प्रवचनसार आदि और षट्खण्डागम आदि बनाये। षट्खण्डागम इत्यादि शास्त्रों का सार वीतरागभाव है। पर से उपेक्षा और स्व चैतन्यमूर्ति की ओर अपेक्षा। कहो, समझ में आया? ... व्यवहार आता है तो बताते हैं। बतायेंगे, अभी भी बतायेंगे। व्यवहार आता है, परन्तु वह उपादेय नहीं है। अंगीकार करने जैसा तो स्वभाव... स्वभाव है। जितना राग है, उतना दुःखदायक है। अशुभराग तो दुःखदायक है ही। विषयभोग वासना, वह तो पाप परिणाम दुःखदायक है ही; परन्तु दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, करुणा, कोमलता आदि के भाव वे भी दुःखदायक हैं, ऐसा न समझे तो उसकी मिथ्यादृष्टि कभी टलती नहीं। समझ में आया? राग है न, राग? विकल्प राग है न? परसन्मुख का झुकाव, वह राग है। वह राग, आकुलता है। पहले कहा था। जो आत्मा का स्वभाव हो तो कभी सिद्ध में से टले नहीं। तो परमात्मा भी ऊपर से दया पालने उतरे। ऐसा है नहीं। कठिन बात, भाई!

यहाँ कहते हैं, सर्वज्ञ ने कहे हुए शास्त्र जितने हों, हजार, लाख, करोड़, अरब चाहे जो हो, उनका तात्पर्य तो वीतरागभाव है। पहले दृष्टि भी आत्मद्रय की कराते हैं कि आत्मा ध्रुव है, उसकी दृष्टि कर। ज्ञान भी आत्मा का कराते हैं और वीतरागता भी—चारित्र भी आत्मा का कराते हैं। बीच में यह रागादि आवे, उनका ज्ञान कराते हैं। परन्तु निमित्त भी उसे समझावे, परन्तु वह आदरणीय है और उससे कल्याण होगा, ऐसा सर्वज्ञ की वाणी चार अनुयोग में कहीं कहती नहीं। कहो, समझ में आया?

स्वयंसिद्ध भगवान चैतन्यज्योति वस्तु है। चैतन्य समस्वभावी सूर्य, चैतन्य सूर्य है आत्मा। उसके स्वभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वही सर्व शास्त्रों का सार और तात्पर्य है। कहो, समझ में आया? भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, सो ही जयवन्त हो। विकल्प तो उठा है शास्त्र लिखने के समय। अमृतचन्द्राचार्य भाव सन्त मुनि थे। भावलिंगी छठवें गुणस्थान में विराजते जंगल में आत्मज्ञान में, आनन्द में झूलते थे। परन्तु लिखने के समय विकल्प उठा है। कहते हैं कि राग की जय न हो, स्वभावसन्मुख

की स्थिरता की जय हो। समझे? शास्त्र तो लिखे न? शास्त्र तो जड़ की पर्याय होती है। जंगल में ताड़पत्र में अक्षर (लिखे) वह जड़ की पर्याय होती है, परद्रव्य की। आत्मा उसका कर्ता-हर्ता है ही नहीं। विकल्प उठा था, अहो! शास्त्र का तात्पर्य मैं कहूँ। वीतरागभाव—राग और पुण्य-पाप से रहित स्वभाव सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र, वह वीतरागभाव, वह शास्त्र का तात्पर्य है। परन्तु ऐसा विकल्प—शुभराग उठा है, उसमें लिखा जाता है, (वह) क्रिया जड़ की, शुभराग के समय भी कहते हैं कि जयवन्त हो वीतरागभाव! यह राग टूटकर स्वरूप में स्थिर होऊँ, वह जयवन्त हो। राग सदा ही रहना, शास्त्र मैं लिखूँ और पर की ओर का मेरा झुकाव रहना, वह जयवन्त होओ नहीं। राग मुझे होओ नहीं। ...जगत से सब उल्टा। कहो, समझ में आया? जगत से उल्टा है।

देखो! यहाँ यह मुनि हैं, सन्त हैं, द्रव्य से नग्नदशा है, भाव से आत्मा में तीन कषाय का नाश होकर स्वरूप के अवलम्बन से निर्ग्रन्थदशा प्रगट हुई है। विकल्प उठा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने श्लोक किये हैं, उनकी टीका करते हैं, ऐसे टीका होती है। जड़ की पर्याय जड़ से होती है। आत्मा से सळी आदि हो या छिद्र पड़ते हों ताड़पत्र में अक्षर के, वे जड़ से होते हैं। मैं उसका कर्ता नहीं, मुझसे वह पर्याय होती नहीं। वह तो परपदार्थ की वर्तमान वर्तती दशा से होता है, मुझसे नहीं। मुझमें राग होता है, मैं कहता हूँ कि शास्त्र का तात्पर्य यह है। मेरी दृष्टि तो स्वभाव-सन्मुख की छूटती नहीं है।

कहते हैं कि जयवन्त हो वीतरागभाव! शास्त्र का तात्पर्य, शास्त्र लिखने का राग, वह भी शास्त्र का तात्पर्य नहीं है। कठिन बात, भाई! समझ में आया? मोहनभाई! तो संसार के यह पुस्तकें लिखने का तात्पर्य क्या होगा? संसार का नामा लिखना और मिलान करना और ब्याज उपजाने का। पैसे आये, उसे वापस खाते में डालना और कांधा करना और उसका सब व्यवस्थित करना, यह सब कौन सा राग होगा? अशुभराग होगा? सेठ! कौन सा होगा यह? यह तो अशुभराग है। वह तो हेय है, छोड़नेयोग्य है। परन्तु यह शुभराग शास्त्र रचने का उत्पन्न हुआ। कुन्दकुन्दाचार्य को भी यह शास्त्र रचने का शुभराग उत्पन्न हुआ। जयवन्त हो वीतरागभाव! यह राग पर की ओर का झुकाव

होता है उसकी जय न हो, परन्तु पराजय हो। स्वभाव में लीन हो जाऊँ, यह मेरी घड़ी वीतरागता की है। भान तो अभी, वीतराग का भान है, दृष्टि है, चारित्र है। परन्तु जितना छठवें गुणस्थान में राग होता है, कहते हैं कि वह नहीं। जयवन्त अविनाशी रहनेवाला स्वयं तत्त्व हो तो आत्मा के अवलम्बन से वीतरागभाव, वह जयवन्त हो। परसन्मुख का राग, उसे जयवन्त हो नहीं। ऐसा अर्थ इसमें अस्ति में नास्ति आ जाता है। कहो, समझ में आया?

'सिद्धान्तों में...' अब कहते हैं। सिद्धान्त अर्थात् सर्वज्ञ भगवान ने कहे हुए शास्त्रों में। सिद्धान्त अर्थात् जिनवाणी सर्वज्ञ ने कही हुई सिद्ध है। उसमें शंका-सन्देह नहीं है। वीतराग त्रिलोकनाथ के परमात्मा के मुख से निकली हुई वाणी। जो महा सन्त मुनि जंगल में विचरते सन्त दिगम्बर, उन्होंने परम्परा से जो वाणी सुरक्षित रखी, वह सिद्धान्त है, निश्चय है, तीन काल में इन्द्र, नरेन्द्र कोई बदलने को समर्थ नहीं है। उसे सिद्धान्त कहते हैं। सिद्ध हो गयी हुई बात। निश्चित हो गयी बात, सन्देहरहित हो गयी हुई बात, विपरीत रहित बात। ऐसा होगा या वैसा होगा? ऐसे अध्यवसायरहित बात। ऐसे भाव को सिद्धान्त कहते हैं। उस सिद्धान्त ने 'दो प्रकार का तात्पर्य दिखाया है।' भगवान त्रिलोकनाथ के शास्त्र में सन्त-मुनियों ने सिद्धान्त दो प्रकार के तात्पर्य, तात्पर्य—सार दिखलाया है।

एक सूत्रतात्पर्य, एक शास्त्रतात्पर्य, एक सूत्रतात्पर्य और एक शास्त्रतात्पर्य। 'जो परम्परा सूत्ररूप से चला आया हो, सो तो सूत्रतात्पर्य है।' देखो! यह बात करते हैं। सर्वज्ञ भगवान के मुख से वाणी निकली। गणधरों ने रची, सन्तों ने झेली, (ऐसा) करते... करते... करते... कुन्दकुन्दाचार्य आदि, अमृतचन्द्राचार्य आदि महामुनि हुए, उस परम्परा से जो भाव चले आये और शास्त्र की रचना हुई। 'परम्पर सूत्ररूप से चला आया सो सूत्रतात्पर्य।' बीच में सन्धि टूट जाये और कोई कल्पना करे तो उसे सूत्रतात्पर्य भी नहीं कहते।

दूसरी बात की जो सूत्ररूप से वाणी चली आयी है, उसका प्रत्येक गाथा का अर्थ करना, भाव समझाना, इसका नाम सूत्रतात्पर्य। इस गाथा में क्या कहते हैं? विकार

करते जीव को (कर्म) का निमित्त है। विकार तो तू कर तो होता है। विकार त्रिकाल में नहीं है। इसलिए विकार छूट सकता है, ऐसा इस गाथा के सूत्र का सार है। ऐसा जो प्रत्येक गाथा में जो-जो भाव आता हो, उस-उस गाथा का उस-उस प्रकार का भाव उस जगह समझाना, इसका नाम सूत्रतात्पर्य। परन्तु यह सूत्रतात्पर्य परम्परा से चला आता है। ...भाई! यह सूत्र लिया है, हों! दूसरा सूत्र नहीं। समझ में आया? ऐसे तो '**सूत्रतात्पर्यं प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम्**' मूल में ऐसा लिया है। जो सूत्र परम्परा से वीतराग ने कहे हुए शास्त्र चले आते हैं, उनका प्रति गाथा '**प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम्**' यह प्रत्येक गाथा। गाथा में क्या कहना है, उसका अर्थ उस-उस गाथा में समझाया होता है, उसका नाम सूत्रतात्पर्य। इस गाथा में कहने का यह आशय है, इस गाथा में कहने का यह आशय है। इस गाथा में यह कहने का आशय है। यह प्रत्येक गाथा के भावार्थ को समझाना वह सूत्र तात्पर्य है।

'और समस्त शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागभाव है।' करणानुयोग में, करणानुयोग में ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, ऐसा आता है न? उसका तात्पर्य? आत्मा ज्ञान से हीन होता है, उसमें कर्म निमित्त है। यह गाथा का तात्पर्य है। यह सूत्र की गाथा का तात्पर्य है। कहीं ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा को रोकता है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय को रोके, यह सूत्र का तात्पर्य नहीं हो सकता। जहाँ-जहाँ अधिकार जो आया हो, वहाँ-वहाँ स्वतन्त्र आत्मा की पर्याय और निमित्तता और विकार और त्रिकाल, वह क्या-क्या स्वरूप है, उसे वहाँ-वहाँ उस सूत्र में जो बताया हो, उसे सूत्रतात्पर्य कहते हैं। समझ में आया?

अपने (नियमसार) ५३वीं गाथा में आ गया है न, ५३वीं गाथा में आया। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को वीतराग की वाणी बाह्य उपचार से निमित्त है और अभ्यन्तर अन्तर हेतुरूप से बाह्य धर्मात्मा समकिती (उस) समकित पानेवाले को बाह्य होने पर भी, उन्हें उपचार से अन्तर हेतु कहा जाता है। यह सूत्र अर्थात् उस-उस गाथा में जो भाव कहना है, वह सूत्रतात्पर्य है। समझ में आया? इस प्रकार जितनी गाथायें जहाँ-जहाँ आवे, उनका सार कहना कि इस गाथा में यह कहना है, इस गाथा में यह कहना है। यहाँ

नहीं आया था अपने ? स्वामी कार्तिकेय में। '....' यह गाथा आयी थी। कहाँ पुद्गल में अपूर्व शक्ति दिखती है कि जो आत्मा के केवलज्ञान को भी जो घात कर डालती है। ऐसा आया था, स्वामी कार्तिकेय में। उस दिन वह पण्डित आये थे बराबर। ... पुद्गल की शक्ति केवलज्ञानावरणीय कि आत्मा के केवलज्ञान की पर्याय का, अनन्त तीन काल तीन लोक को जाने ऐसी आत्मा की ज्ञानपर्याय उस पुद्गलशक्ति से घात हो जाती है। ऐसा आया था। उसका तात्पर्य क्या ? वह तो पुद्गल की निमित्तता में उत्कृष्ट पर्यायरूप परिणमते परमाणु की पर्याय बतलाने का तात्पर्य है। वह कहीं आत्मा के ज्ञान को घात डालती है, ऐसा बतलाने का तात्पर्य वहाँ नहीं है। समझ में आता है ? यह कथन शास्त्र में निमित्त से आता है, न समझे। समझ में आया ? दो गाथायें आयी थीं। निमित्त को प्रधान हेतु कहा था। किस अपेक्षा से ?

जो पर प्राणी को सुख-दुःख का निमित्त होता है, दूसरा उपकार निमित्त, इस निमित्त की अपेक्षा यह प्राणी जो सुखी-दुःखी होता है, उसका पुण्य-पाप वह प्रधान निमित्त है। दूसरा प्राणी उसे निमित्त होता है, वह प्रधान हेतु नहीं। परन्तु जो प्राणी सुख-दुःख का संयोग पाता है, उसके पूर्व के पुण्य-पाप वह निमित्त हेतु है। यह निमित्त कहना। दूसरा उसे सुख-दुःख दे सकते हैं, उसकी अपेक्षा उसके पुण्य-पाप वे सुख-दुःख निमित्तरूप से प्रधान हैं। वहाँ लोग कहे, देखो, यह निमित्त प्रधान आया। प्रधान हेतु से खतौनी करे। प्रधान हेतु। आया था न ? एक जीव दूसरे जीव को उपकार करे। वह उपकार करे वह प्रधान हेतु नहीं है। परन्तु उपकार करनेवाले का निमित्त का प्रधानपना न लेकर जिसे सुख-दुःख का संयोग मिलता है, उसे पूर्व के पुण्य-पाप के कारण मिलता है। यह निमित्त इसे प्रधान हेतु है। देनेवाले की अपेक्षा, निमित्त होनेवाले की अपेक्षा कर्म उसका निमित्त है, यह बतलाना था। कर्म प्रधान हेतु है और उपादान गौण हेतु है, ऐसा वहाँ कहना नहीं था। उस-उस गाथा में बात करना, उसके सूत्र की, इसका नाम सूत्र तात्पर्य है। कहो, समझ में आया ?

'और समस्त शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागभाव है।' लो, इस गाथा में ऐसा कहा, उसमें प्रधान निमित्त कहा दूसरे को। एक जीव दूसरे जीव को उपकार करे उसमें बहुत

लिया है। स्त्री पति को उपकार करे, पति स्त्री को उपकार करे। सेठ नौकर को उपकार करे, नौकर सेठ को उपकार करे। यह सब लिया है। उपकार शब्द से जहाँ-जहाँ कार्य होता हो, वहाँ निमित्त है, उसे उपकार कहा जाता है। परन्तु कहते हैं कि वह उपकार-फुपकार कोई कर नहीं सकता। उसके पुण्य-पाप के कारण होता है, ऐसा वहाँ कहा है। उसका—शास्त्र का सार यह है कि जो तुझे कल्पना होती है कि पुण्य-पाप के निमित्त से यह मुझे हुआ, (वह) कल्पना छोड़। निमित्त की दृष्टि छोड़ और स्वभाव की दृष्टि करके स्वभाव की स्थिरता कर। यह सब शास्त्र का मक्खन और सार है। समझ में आया? गाथा में कुछ भी कहा हो, उसमें क्या है? गाथा जितना गाथा का सूत्रतात्पर्य है।

'समस्त शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागभाव है।' चाहे जहाँ चाहे जो कथन आया हो। ज्ञानावरणीय ने ज्ञान रोका। कहते हैं कि ज्ञानपर्याय तेरी हीन होती है, तेरे पुरुषार्थ से। तो कर्म निमित्त है। इतना ज्ञान (कराया)। पीछे, हीन होती है, वह स्वभाव की दृष्टि से हीन का नाश कर। उसका तात्पर्य वीतरागभाव है। हीन को बताने का प्रयोजन नहीं है। हीन पर्याय होती है। हीणी समझते हो? अल्प होती है न? कम... कम। ज्ञान की पर्याय हीन होती है, वह अपने पुरुषार्थ से होती है, कर्म ज्ञानावरणीय निमित्त है। यह बताने का तात्पर्य क्या? तेरा ज्ञाता-दृष्टा त्रिकाल स्वभाव है, उसकी रुचि कर, स्थिर हो, केवल (ज्ञान) हो जायेगा। हीन पर्याय नहीं रहेगी और कर्म का निमित्त भी नहीं रहेगा। समस्त शास्त्र का सार भगवान आत्मा के स्वभावसन्मुख की रुचि, ज्ञान और रमणता, यह सब शास्त्र का सार है। कहीं भी राग अटके और ज्ञान की हीन अवस्था अटके, आत्मा के वीर्य की—बल की कहीं अटके, अपने पुरुषार्थ से अटकती है, ऐसा जो कहा हो और निमित्त से अटकती है, ऐसा कहा हुआ हो तो समझना कि वहाँ निमित्त का ज्ञान कराया है। अपने पुरुषार्थ से अटके, वहाँ बतलाया है कि वहाँ पर्याय हीन तेरे उल्टे पुरुषार्थ से हुई है, उसका ज्ञान कराया है।

अब सार? हीन अवस्था छोड़ और स्वभाव की दृष्टि कर। ज्ञायकस्वभाव, चैतन्यस्वभाव एक समय में परिपूर्ण मेरा स्वभाव है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह सर्व शास्त्र का सार है, उसमें से आड़ा-टेढ़ा करे तो वह शास्त्र को समझता नहीं। ऐसा मक्खन आया है। सेठ! कहो, समझ में आया?

भगवान ने कहे हुए द्रव्यानुयोग समयसार इत्यादि; करणानुयोग गोम्मटसार इत्यादि; चरणानुयोग रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि; धर्मकथानुयोग—आदिपुराण इत्यादि। इन चारों अनुयोगों में भगवान के शास्त्र में आत्मा की ओर झुक जा, यह सार कहा है। वर्तमान पर्याय, वर्तमान पुण्य-पाप, वर्तमान निमित्त का संयोग, उसकी रुचि छोड़, स्वान्मुख हो और स्वभाव के सन्मुख हो, यह सर्व शास्त्र का सार है। मुनियों के बीच में कहा, मुनियों को पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं। अचेल है, ऐसा है, वैसा है। देह की नग्नदशा हो जाती है, सब वर्णन भले किया चाहे जितना, कहते हैं। उसका सार तो आत्मा को कैवल्यदशा प्राप्त कर वीतराग हो और उसका कारण वीतरागभाव हो स्वभाव के आश्रय से, यह तात्पर्य है। राग बताया, हीन पर्याय बतायी, निमित्त बताया, सब ज्ञान करने के लिये है। समझ में आया इसमें?

'समस्त शास्त्रों का तात्पर्य तो वीतरागभाव है।' वह तुमको नुकसान करते हैं, ऐसा शास्त्र में आता है। आवे, व्यवहार से आवे। तत्त्वार्थसूत्र में नहीं आता है? तत्त्वार्थसूत्र में भी आता है। जीव, जीव को उपकार करे। जड़ का आत्मा में उपकार है, ऐसा आता है, लो! क्या होता है? आत्मा मरे। मरता है न? शरीर छोड़ता है तो पुद्गल का उपकार हुआ। क्यों? कि आयुष्य पूरा हुआ और कोई मरने की इच्छा करता है। अपने छूटे तो अच्छा। यह मर जाये न? अफीम खाकर या... अफीम मिला तो प्रसन्न होता है। वह पुद्गल का उपकार है। देखो! पुद्गल का उपकार। वह तो कल्पना... उसे उपकार कहा जाता है। उसका सार क्या है कि निमित्त, वह पर है, उपकार की कल्पना वह पर है और स्वभाव ज्ञानानन्द में वह कल्पना भी नहीं है और निमित्त भी नहीं है, ऐसी दृष्टि करके वीतरागपने स्थिर होना, वह सर्व शास्त्र का सार और तात्पर्य है। चाहे जिस शास्त्र की चर्चा करो, चाहे जिस शास्त्र का वाद-विवाद हो, चाहे जिस शास्त्र के तर्क, न्याय और दलील हो। परन्तु जो दलील और न्याय में वस्तुस्वभाव शुद्ध द्रव्य है, उसकी ओर झुकने का निकले तो तात्पर्य है। कहीं अटकने न दे... (अटके) वह शास्त्र को समझता नहीं। दलीचन्दभाई! बात समझ में आती है? लाख करोड़ तर्क करो, चाहे जैसे विकल्प उठाओ, ज्ञान की तरंग, जाल, शास्त्र की वाँचन की चाहे जैसी वाँचना करो। वाँचना करो, वाँचना दो, लो, दो, चाहे जो वाँचन स्वाध्याय करो।

'सर्व का सार ऐसा आना चाहिए (कि) मैं आत्मा एक समय में परिपूर्ण द्रव्य स्वभाव हूँ, इस स्वभाव की अपेक्षा करके उसमें रुचि, ज्ञान और रमणता और पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि, निमित्तबुद्धि छोड़ना, वह सर्व शास्त्र का सार है।' यदि यह सार न निकाले और आड़ा-टेढ़ा करे तो वह शास्त्र को समझता नहीं। वह चाहे जैसे तर्क करे और चाहे जैसी युक्तियाँ निकाले, वे सब कुतर्क और कुयुक्तियाँ हैं। कहो, समझ में आया इसमें? ...भाई! यह सब शास्त्रों में इतना-इतना कहा, ऐसा करना, देखकर चलना, ऐसा आता है न? चार हाथ प्रमाण मुनि को देखकर के चलना चाहिए। परन्तु तात्पर्य क्या? वह जड़ की पर्याय परसन्मुख होने का उसमें तात्पर्य है? राग करने का तात्पर्य है? राग आ जाता है तो तीव्र राग न हो, उसको बतलाना है। तीव्र राग न हो, तीव्र प्रमाद न हो, चलते समय तीव्र प्रमाद पर्याय में न हो, वह बताना है। राग और विकार का अभाव बताने का तात्पर्य है। अभाव बताने का भोजन का तात्पर्य है।

पाँच समिति, तीन गुप्ति, पाँच महाव्रत चाहे जो लो, अचेल इत्यादि, एक समय भोजन खड़े-खड़े (लेना), क्रियाकाण्ड की बात कही जाये इत्यादि चाहे जितनी शास्त्र में, क्रियाकाण्ड के चाहे जितने प्रकार हों, परन्तु उसका-शास्त्र का तात्पर्य क्या? परसन्मुख से उपेक्षा करके, वर्तमान विकार हो, उसकी भी उपेक्षा अर्थात् उससे उदास हो और वर्तमान त्रिकाल ध्रुव स्वभाव चैतन्य नित्यानन्द है, उसकी सन्मुखता करना, वह सर्व शास्त्र का सार है। वह सन्मुखता न समझे और आत्मा से विमुखता की कहीं बात राग, विकार हो, उसे समझावे और विमुखता का आदर करके... देखो! यहाँ कहा है, लो! यहाँ धर्मराग करने को कहा है, व्यवहार को साधन कहा है। वह आ गया। राग को साधन और निश्चय साध्य। तात्पर्य क्या? तात्पर्य तो वीतरागभाव में लीन होना, वह तात्पर्य है। राग को निमित्तरूप साधन कहा जाता है। बड़ी गड़बड़ हो गयी है वर्तमान में। ऐसी गड़बड़... पण्डित ऐसा लठ्ठ लेते हैं। झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा।

चैतन्य वास्तविक पदार्थ को समझे बिना अनन्त काल से कहीं संसार का अन्त नहीं आया, इसलिए तो कहा, भगवान! तुझे मोक्ष की अभिलाषा है? इच्छा है? कि कोई मतार्थी है? या कोई कामार्थी है? समझ में आया? या कोई पैसे का अर्थी है? तीन

हो तो हम तुझे कहते नहीं। विषय का अर्थी, पैसे का अर्थ और पुण्य का अर्थी (होवे तो) वह मोक्ष का अर्थी नहीं है। क्योंकि देखो कहते हैं।

'क्योंकि जिनेन्द्र प्रणीत शज्ञस्त्र की उत्तमता यह है...' क्योंकि वीतराग प्रणीत शास्त्र की उत्तमता तो यह है 'चार पुरुषार्थों में से मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है।' देखो कहा। भगवान ने चारों पुरुषार्थ की व्याख्या करके बतलाया। कौन से चार पुरुषार्थ? मोक्ष पुरुषार्थ; एक धर्म शब्द से पुण्य पुरुषार्थ; एक पैसे का पुरुषार्थ; एक भोग का पुरुषार्थ। चार पुरुषार्थ। समझ में आया? अर्थ, काम, धर्म अर्थात् पुण्य और मोक्ष। इन चार पुरुषार्थ का वर्णन किया। चार में प्रधान मोक्ष पुरुषार्थ है। लक्ष्मी को कमाने का पुरुषार्थ वह अशुभराग है। इस वीतराग शास्त्र में उसकी प्रधानता नहीं है। विषयभोग की वासना, वह काम का, काम का पुरुषार्थ। पुरुषार्थ शब्द से देह की क्रिया की बात नहीं है। अशुभराग होता है न विषय का? वह अशुभराग काम पुरुषार्थ है। उसकी जैनदर्शन में विशेषता नहीं है। अर्थ, काम और धर्म। धर्म अर्थात् पुण्य। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, यह पुण्य परिणाम हैं। यह पुण्य परिणाम का पुरुषार्थ है। इसकी शास्त्र में मुख्यता नहीं है, देखो!

'क्योंकि उस जिनेन्द्र प्रणीत शास्त्र की यह उत्तमता है, चार पुरुषार्थ में से मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है।' बहुत से कहते हैं कि हमारे लक्ष्मी के लिये पुरुषार्थ करना पड़ेगा या नहीं? भाई! राग आवे वह अलग बात है। परन्तु वह राग कहीं तात्पर्य है? वीतराग की आज्ञा है राग करने की? राग आता है... तेरा वीर्य राग में अटकता है। तेरा आत्मबल कमाने में पैसे के लिये, राग के लिये अटकता है। उसे अर्थ पुरुषार्थ कहा। अर्थ अर्थात् पैसा। पैसा प्राप्त करने का पुरुषार्थ। कहीं पुरुषार्थ से पैसा मिलता नहीं। पुरुषार्थ वहाँ अटकता है, इसलिए उसे पैसे का पुरुषार्थ कहा। उसकी शास्त्र में कहीं प्रधानता नहीं है। बहुत पैसा मिले, बहुत होशियार हो तो धर्म पा जाये, यह बात है नहीं।

काम पुरुषार्थ। विषय का पुरुषार्थ। विषय को बहुत लेना जाने। चपल और होशियार, इसलिए वह काम पुरुषार्थ प्रधान है, ऐसा नहीं है। वह धर्म कर सकेगा, ऐसा नहीं है। तथा तीसरा धर्म पुरुषार्थ अर्थात् पुण्य पुरुषार्थ। व्रत का, दान का, भक्ति का वह

पुरुषार्थ शुभराग है। वे दो अशुभ हैं। अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ अशुभराग है और धर्म पुरुषार्थ वह शुभराग है। इन चारों में मोक्ष पुरुषार्थ, इन तीनों को हेय बताकर मोक्ष अर्थात् आत्मस्वभाव में एकाग्र होकर राग से छूटे, उस मोक्ष पुरुषार्थ को भगवान ने प्रधान कहा है। कहो, समझ में आया? लोग तो बहुत पैसेवाले हों, उसकी महिमा करे। ओहोहो! गजब भाई! इसके घर में पाँच-पाँच मिल। और ओहोहो! बादशाही मानो घर में खड़ी की है। स्वर्ण की मोटर-हाथी है। धूल है, कहते हैं, उसमें। उस पुरुषार्थ की यहाँ कहाँ महिमा करते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...शुभराग आता है, उसको स्थापित करते हैं।

'जैनदर्शन के शास्त्र की उत्तमता यह है,...' उत्तमता यह है कि 'चार पुरुषार्थों में से मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है।' आता है पुरुषार्थ तो समझता है कि मेरा पुरुषार्थ दया, दान, भक्ति, पूजा, प्रभावना का राग आता है। वह शुभ है। विषय की ओर का राग, वह तो अशुभ है। लक्ष्मी कमाने का राग अशुभ है। दो अशुभ, एक शुभ, इन तीन से रहित अपने स्वभाव का पुरुषार्थ जैन शास्त्र में, वीतराग प्रणीत शास्त्र में, त्रिलोकनाथ न कहे हुए शास्त्र के तात्पर्य की उत्तमता यह है कि चार पुरुषार्थ में से मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है।

अशुभराग की तो गिनती नहीं। विषय और लक्ष्मी। परन्तु शुभराग की वीतरागमार्ग में प्रधानता नहीं। ... आ जाता है, वीतराग न हो तो आ जाता है। समझ में आया? परन्तु उसमें भी जितना स्वभाव के आश्रय से राग टूटा, उसकी प्रधानता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो? यहाँ आत्मा का पुरुषार्थ करना, आत्मा का पुरुषार्थ करना। कहो, समझ में आया?

'जिनेन्द्र प्रणीत शास्त्र की उत्तमता यह है कि चार पुरुषार्थ में से मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है। उस मोक्ष की सिद्धि का कारण एकमात्र वीतराग प्रणीत शास्त्र ही है।' मोक्ष की सिद्धि का कारण... उन तीन की प्रधानता का तो कहना नहीं। वे तीन तो दूसरे भी कितने ही कहते हैं। यह एक आत्मा को मोक्ष पुरुषार्थ—आत्मा की पवित्रदशा का

पुरुषार्थ, उसकी सिद्धि, उसकी प्राप्ति, उसका निमित्तकारण एकमात्र वीतराग प्रणीत शास्त्र है। वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए शास्त्र एक ही निमित्त है। इसके अतिरिक्त असर्वज्ञ के कहे हुए, अज्ञानी के कहे हुए वे शास्त्र निमित्तरूप भी नहीं हो सकते। क्योंकि उसमें कांटे दूसरे आड़े-टेढ़े बहुत डाल दिया होते हैं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की प्ररूपणा सब विरुद्ध। उसमें किसी प्रकार से शास्त्रपना भी आ नहीं सकता और मोक्ष की सिद्धि भी नहीं कर सकता। एक वीतराग सर्वज्ञ का परम्परा मार्ग है, उस शास्त्र में मोक्ष की सिद्धि उस शास्त्र से होती है। यह निमित्त से बात करते हैं। मोक्ष की सिद्धि तो आत्मा से होती है। परन्तु यह बात करते हैं न कि ऐसे तत्त्व, ऐसे तत्त्व। यह कहेंगे। उसमें से सार लेकर आत्मा की ओर झुकना, यह तात्पर्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोंध - प्रवचन १६ और १७ दोनों समान होने से प्रवचन नं. १७ नहीं लिया गया है।

ज्येष्ठ कृष्ण १३, शुक्रवार, दिनांक - २०-०६-१९५२, गाथा-१७२, प्रवचन-१८

१७२ गाथा, पंचास्तिकाय। यहाँ निश्चय और व्यवहार का अविरोध किस प्रकार है, उसे भले प्रकार से यदि जानने में आवे तो उसे वीतरागता प्रगट होती है। परन्तु निश्चय और व्यवहार की विरुद्धता हो और यथार्थ समझे नहीं तो वीतरागता प्रगट नहीं होती। यह अपने यहाँ आया है।

'तीर्थ क्या है सो दिखाते हैं। जिन जीवों के ऐसे विकल्प होय कि वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य है...' यहाँ आया है। क्या कहते हैं? क्या कहते हैं?—कि आत्मा ज्ञायकस्वरूपी है, ऐसी जिसकी निश्चयदृष्टि तो हो गयी है। यहाँ तो व्यवहारनय का अवलम्बन का कथन है। तो व्यवहारनय किसको होता है? जिसको निश्चय हो, उसको व्यवहार होता है। समझ में आया? निश्चय न हो तो व्यवहार होता ही नहीं। व्यवहारनयावलम्बी कहा, वह चारित्र की अपेक्षा से। सम्यग्दर्शन हुआ, मैं ज्ञायक हूँ, एक रजकण की पर्याय हेरने-फेरनेवाला मैं नहीं। परमाणु। और मेरा राग भी हेरने-फेरनेवाला मैं नहीं। और मैं वर्तमान पर्याय जो ज्ञायक के ऊपर उत्पन्न हुई है, वर्तमान अवस्था, उस प्रकार की उत्पन्न होने की योग्यता थी तो उत्पन्न हुई है। ऐसा जिसका ज्ञाता-दृष्टापना निश्चय से प्रगट हुआ है, वह सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। वह सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में ऐसा विकल्प उठता है और पंचम गुणस्थान में और छठवें गुणस्थान में। यह तीन गुणस्थान की बात है।

यह विकल्प होवे कि यह वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य है। जो भेद उठता है, भेद। अभेद तो आत्मा में है। मैं ज्ञायक हूँ—ऐसी पर्याय, द्रव्य में रुचि करके परिणत हुई है। परन्तु सर्वथा अभेद पर्याय में हुआ नहीं है। इस कारण से उसमें राग आ जाता है। उस राग को विकल्प कहते हैं। तो यह विकल्प ऐसा होता है कि यह वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य है। सर्वज्ञदेव, निर्ग्रन्थ सन्त मुनि और सर्वज्ञ के कहे हुए शास्त्र, यह श्रद्धा करनेयोग्य है। ऐसा विकल्प भेदरूप होता है। उसे यहाँ व्यवहार कहते हैं। करना पड़ता नहीं। सहज ऐसा विकल्प आता है।... ऐसा आ जाता है। ऐसा विकल्प आ जाता है। चौथी भूमिका है सम्यग्दर्शन तो उसमें प्रभावना का विकल्प, बाह्य देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का

विकल्प और बाह्य देव-गुरु-शास्त्र के बहुमान की वृत्ति का उत्थान, राग की वृत्ति का उत्थान आता है। उसको ज्ञानी जानते हैं कि यह राग है, राग व्यवहार है और मेरी स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान जो हुए हैं, वह निश्चय है। दोनों एक साथ में चलते हैं। दोनों एक साथ में हैं।

यह वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य है। सर्वज्ञ की वाणी में जितना जो प्रकार कहा, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, कथानुयोग सब ऐसा ही है। उसमें कुछ फेरफार नहीं है। यहाँ तो विकल्प की बात है। दृष्टि में तो प्रतीति हो गयी है। स्वभाव में तो आत्मा के ज्ञायक के आश्रय से प्रतीति हुई है। परन्तु विकल्प उठता है तो सर्वज्ञ की प्रतीति का ही विकल्प उठता है। अल्पज्ञ परिपूर्ण कह सके, ऐसी ताकत होती नहीं। सर्वज्ञ एक समय में जिसकी तीन काल-तीन लोक जानने की शक्ति है, उसने जो कहा वह वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य है। नव तत्त्व श्रद्धा करनेयोग्य है। आत्मा श्रद्धा करनेयोग्य है, वह तो प्रतीति में आ गया है। परन्तु विकल्प उठता है, नव तत्त्व श्रद्धा करनेयोग्य है, षट्द्रव्य श्रद्धा करनेयोग्य है, पंचास्तिकाय श्रद्धा करनेयोग्य है, ऐसा विकल्प भेद उठता है विचार में। समझ में आता है?

मैं जीव हूँ। परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य हूँ, वह जीवतत्त्व है—ऐसा विकल्प उठता है। विकल्प अर्थात् राग। वह श्रद्धा करनेयोग्य है, ऐसी वृत्ति उठती है। यह जड़ आदि, शरीर आदि अजीव है, कर्म अजीव है। दो द्रव्य भिन्न-भिन्न है। नौ तत्त्व है न? नौ पदार्थ है न? तो नौ कहाँ से रहेगा? नौ पृथक्-पृथक् है। श्रद्धा करनेयोग्य नौ पृथक्-पृथक् है, ऐसा विकल्प समकिती को उठता है। स्वभाव का आश्रय, दृष्टि तो हुई है। परन्तु वीतराग नहीं हुआ है तो उसको विकल्प में, वृत्ति में, उत्थान में, इच्छा में जीव मैं शुद्ध अभेद एकाकार चैतन्यद्रव्य हूँ। वह श्रद्धा करनेयोग्य है, ऐसा विकल्प आया। और आत्मा में दया, दान, भक्ति, व्रत आदि का विकल्प, पूजा का होता है, वह पुण्यतत्त्व है, ऐसी श्रद्धा करनेयोग्य है ऐसा विकल्प आया। वह पुण्यतत्त्व है। पुण्यपर्याय है। और हिंसा, झूठ, चोरी पापपर्याय है। उसकी भी श्रद्धा करनेयोग्य है। और दोनों आस्रवतत्त्व है ऐसा श्रद्धान करनेयोग्य है और पुण्य और पाप आस्रव अजीव से उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि नौ पृथक्-पृथक् हैं।

श्रद्धा करनेयोग्य... सम्यग्दृष्टि को विकल्प आता है कि नौ-नौ पृथक्-पृथक् श्रद्धा करनेयोग्य हैं। अजीव अजीव है। कर्म से यदि राग होता हो अजीव और आस्रव दोनों एक तत्त्व हो जाते हैं। नौ तत्त्व नहीं रहते। सेठ! समझ में आता है? यह तो व्यवहार की बात चलती है। निश्चय में तो आत्मा का आश्रय है। निश्चय में तो आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसकी रुचि और दृष्टि है। व्यवहार में जो विकल्प की वृत्ति आती है, नौ को पृथक्-पृथक् राग से प्रतीति करता है, ऐसा विकल्प सहज आता ही है। यदि सहज विकल्प ऐसा न हो तो निश्चय भी उसमें रहता नहीं। यदि कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की या नौ तत्त्व की एकता का विकल्प आ जाये तो नौ पृथक् नहीं रहते हैं।

जीव जीव है, अजीव अजीव है। अजीव से पुण्य परिणाम नहीं होते। समझे? सुबह विभाव का आया। उसमें आया नौ में। यदि अजीव से पुण्य हो तो पुण्य और अजीवतत्त्व भिन्न नहीं रहते। नौ पृथक् हैं न? नौ हैं न? कि आठ हैं? नौ पदार्थ हैं। नौ पदार्थ हैं। जीव पदार्थ है, अजीव पदार्थ है और मेरी पर्याय में दया, दान, भक्ति आदि के विकल्प उठते हैं, वह पुण्यतत्त्व पुण्यपदार्थ है। हिंसादिक पाप है। वह पाप का परिणाम भी अजीव कर्म से हो तो अजीव और पाप एक हो जाते हैं। तो नौ पृथक् रहते नहीं। और जो पुण्यपरिणाम आता है, उससे संवर हो तो पुण्य और संवर एक हो जाते हैं। विकल्प जो आता है दया, दान, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र, रत्नत्रय की वृत्ति, वृत्ति अर्थात् विकल्प उससे यदि संवर अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता हो तो आस्रव अथवा पुण्य और संवर एक हो जाते हैं। नौ पृथक् नहीं रहते। नौ में नौ पृथक् रहना, ऐसी विचारश्रेणी का विकल्प उठता है, उसको व्यवहार कहते हैं। समझे?

संवर... संवर। आत्मा के अवलम्बन से निर्मल एक समय की वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ वह संवर है। और निर्जरा शुद्धि की वृद्धि है। और बन्ध ज्ञान का राग में रुक जाना, वह बन्ध है। और ज्ञान की एकाग्रता होकर पूर्ण ज्ञान प्रगट हो जाना, वह मोक्ष है। नौ को विकल्प से नौ को नौ अनुसार पृथक् विकल्प से ऐसी श्रद्धा समकिती को आती ही है। स्वभाव की श्रद्धा होती है, उसमें भी राग की विकल्प की वृत्ति उठती है, उसमें यह श्रद्धा करनेयोग्य है, नौ तत्त्व श्रद्धा करनेयोग्य हैं।

अजीव में पाँच द्रव्य हैं, जीव में मैं हूँ और अनन्त जीव है। और सात मेरी विकारी पर्याय है। पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध चार विकारी पर्याय है। संवर, निर्जरा, मोक्ष अविकारी पर्याय है। संवर, निर्जरा शुद्ध अपूर्ण पर्याय है। मोक्ष पूर्ण शुद्ध पर्याय है। नौ को नौरूप पृथक्-पृथक् भेद करके श्रद्धना, उसका नाम व्यवहारश्रद्धा है। समझ में आता है? निश्चय श्रद्धा हो तो। वह तो नौ का भी ठिकाना नहीं है। नौ में भी खिचड़ा कर देते हैं। अजीव से विकार होता है और विकार पुण्य से संवर होता है। नौ तत्त्व की पृथक् श्रद्धा का भी जिसको ठिकाना नहीं है, उसकी तो यहाँ बात करते ही नहीं। उसकी बात यहाँ है ही नहीं। समझ में आता है? सेठ!

देखो! भगवान अमृतचन्द्राचार्य १७२ गाथा में जैनदर्शन का मक्खन ऐसे छाँट डालते हैं। मक्खन समझते हैं न? मक्खन छाँटते हैं, तात्पर्य छाँटते हैं। भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्यद्रव्य विकल्प रहित प्रतीति तो हुई निर्विकल्प ज्ञायक की, परन्तु अभी राग है, पूर्ण वीतराग नहीं है। तो चौथे गुणस्थान में, पंचम गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में मुनियों को, श्रावकों को वह विकल्प उठता है। नौ पृथक्-पृथक् हैं। षट् द्रव्य पृथक्-पृथक् हैं। पंचास्तिकाय-पाँच अस्तिकाय पृथक्-पृथक् हैं, ऐसा विकल्प उठता है, उसका नाम व्यवहार कहा जाता है। उसका नाम व्यवहार है। जड़ की क्रिया करनी पड़े, व्यवहार करना पड़े वह तो मिथ्यात्व हो गया। यहाँ तो कहते हैं कि यों-ऐसे वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य है। ऐसा विकल्प आता ही है।

भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो सर्वज्ञस्वभावी दृष्टि की और जो स्थिरता करके सर्वज्ञपद (प्रगट) किया, उन्होंने जो पदार्थ देखे, ऐसी प्रतीति तो अपने विकल्प रहित हुई है, परन्तु राग है तो, यह श्रद्धा करनेयोग्य है। सन्त मुनि छठवें गुणस्थान में भावलिंगी सन्त हो, उनको भी ऐसा विकल्प आता है कि सन्त-मुनि श्रद्धा करनेयोग्य हैं। छह द्रव्य पृथक्-पृथक् श्रद्धान करनेयोग्य हैं। नौ तत्त्व में खिचड़ा बिना... खिचड़ा समझे? एक-दूसरे में एक-दूसरे को मिलावट किये बिना नौ-नौ है, ऐसी श्रद्धा करनेयोग्य है। ऐसा करना, नहीं करने का कर्ताकर्म का भेद उत्पन्न होता ही है। ऐसा राग चौथे गुणस्थान में, पंचम गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान की पर्याय हीन है, कम है तो ऐसा राग समकिती को आता ही है। परन्तु ज्ञानी समझते हैं कि राग बन्धन का

कारण है। उपचार से उसको साधन कहा है। यथार्थ में तो मेरे ज्ञायकस्वभाव के अवलम्बन से ज्ञाता-दृष्टा की पर्याय प्रगट हुई वही यथार्थ साधन है।

श्रद्धा करनेयोग्य है।...भाई! छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ तत्त्व, देव-गुरु-शास्त्र, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पृथक्-पृथक् हैं। द्रव्य में नैमित्तिक क्रिया होती है, उस समय निमित्त दूसरी चीज़ है। उससे कुछ हुआ नहीं। निमित्त आता है तो होता है और नहीं आता है तो नहीं होता है, ऐसी चीज़ है नहीं। ऐसा तो श्रद्धा करनेयोग्य विकल्प आता है समकिती को। कहो, समझ में आया?

ज्ञायक निश्चय... यदि पूर्ण वीतराग हो जाये, तब तो नय ही नहीं रहता है। यह तो श्रुतज्ञान का भेद है। श्रुतज्ञान तो ज्ञान का उपयोग है। ज्ञान के उपयोग में दो भेद पड़ते हैं। नय ज्ञान का उपयोग है, नय ज्ञान का उपयोग है, ज्ञान का प्रयोग है। वह निश्चय नय तो स्वभाव को स्वीकार करता है कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ। जानने-देखनेवाला। कोई करनेवाला राग का भी फेरफार करनेवाला नहीं, निमित्त में फेरफार करनेवाला नहीं हूँ। वर्तमान में राग होता है तो भविष्य में हो, ऐसी भावना करनेवाला भी नहीं। वर्तमान में वह विकल्प आता है। परन्तु यह विकल्प दूसरे समय में हो, ऐसी भी भावना समकिती को नहीं है। परन्तु कमजोरी से दूसरे समय विकल्प आता है। परन्तु भावना नहीं है। यदि राग की भावना हो तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। स्वभाव की भावना होने पर भी चारित्र की मन्दता के कारण से चौथा गुणस्थान, पंचम गुणस्थान, छठवाँ गुणस्थान... मुख्यपने यह छठवें गुणस्थान की बात है। परन्तु उन सबको ऐसा विकल्प आये बिना रहता ही नहीं। करते-बरते नहीं। आता है, जानता है, है। निमित्त, निमित्त में है; मेरा मेरे स्वभाव में है।

यह वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य है, यह वस्तु करनेयोग्य नहीं है। नौ का एकत्व मानना, जो मानते हैं, वह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। षट् द्रव्य में फेरफार करते हैं, एक द्रव्य भी नहीं मानते हैं कि काल नहीं है, वह भी श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। जितनी सर्वज्ञ की वाणी है, उसमें काल से लेकर सब में पंचास्तिकाय का निरूपण है। षट् द्रव्य में एक भी द्रव्य का कम निरूपण हो वह वीतराग की वाणी नहीं। वह वीतराग की वाणी नहीं। तो यह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। जितने सर्वज्ञ से विरुद्ध है, वह श्रद्धा करनेयोग्य

नहीं है। क्या समझे ? उसको ऐसा विकल्प आता है, ऐसी वृत्ति आती है कि यह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र कोई भी मिथ्यादृष्टि नौ तत्त्व को पृथक्-पृथक् नहीं मानकर एकत्व मानता है तो समकिती विचारता है कि वह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। वह व्यक्ति श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। समझ में आता है ?

सम्यग्दृष्टि ऐसा विचार करता है कि जो कोई भी नौ तत्त्व को पृथक् नहीं मानकर एक मानता हैं तो वह वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। वह पुरुष श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है, वह व्यक्ति श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। जिस शास्त्र में नौ तत्त्व की पृथक्ता नहीं है, वह शास्त्र श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। ऐसा विकल्प ज्ञानी को ज्ञान अवस्था में स्वरूप में चारित्र में शुद्ध उपयोग में नहीं है, शुद्ध उपयोग में नहीं है तब आये बिना रहता नहीं। उसको व्यवहार कहते हैं। व्यवहार करना पड़ता नहीं, आता है, होता है। बड़ी समझ में गड़बड़ हो गयी है। यथार्थ समझण नहीं करते हैं फिर कहते हैं, क्या करना ? करना-धरना कुछ नहीं, समझना ? तो क्या आत्मा का स्वभाव समझना है कि दूसरा करना-धरना है ? करना-धरना है ? समझे ? वह कहते हैं, कुछ करना ? क्या करना भैया ? पहले समझे तो सही पहले चीज़ क्या है ? वस्तु (क्या है) ? समझना, वही अपूर्व पुरुषार्थ है। अपूर्व—अनन्त काल में नहीं किया ऐसा पुरुषार्थ है। समझ के बाद में ऐसा विकल्प आता है, उसको भी समझना।

यह वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और जो शास्त्र एकान्त कहते हैं कि निमित्त से उपादान में कार्य होता है, व्यवहार से निश्चय होता है, समझे ? और पुण्य से धर्म होगा, निमित्त से आत्मा में विकार होगा—ऐसा कहते हैं, वह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है, ऐसा विकल्प अर्थात् वृत्ति सम्यग्दृष्टि को चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में आती है, क्योंकि कमजोरी है तो ऐसा राग आये बिना रहता नहीं। उसको उपचार साधन कहा है।

श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है, तीसरा बोल। यह तो विकल्प है। श्रद्धा करनेयोग्य है, वस्तु श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है, श्रद्धा करनेवाला कोई ऐसा है। जिसको सम्यग्दर्शन हुआ, उसको पर का भी ख्याल आ जाता है कि ओहो! बात की उसको खबर नहीं,

तत्त्व की खबर नहीं। श्रद्धा करनेवाला पुरुष कैसा है? ऐसा विकल्प तो समकिती को भी आता है। श्रद्धा करनेवाला स्वयं कौन है और पर कौन है, दोनों का विकल्प उठता है, उसको व्यवहार कहते हैं। श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है कि जिसको पूरी दुनिया बदल जाये, जगत बदल जाये परन्तु वस्तु की प्रतीति की, वह नष्ट नहीं हो सकती। समझ में आया? पूरी दुनिया बदल जाये, नष्ट हो जाये परन्तु स्वरूप की प्रतीति से खिसकते नहीं। सब झूठ कहे, सब ना कहे, तो उससे क्या है? सत् तो सत् है। सत् कहीं पर से सत् नहीं है। सत् स्वयंसिद्ध सत् है।

कहते हैं कि ऐसी श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है। तीन बोल हुए। श्रद्धा करनेयोग्य, नहीं श्रद्धा करनेयोग्य, श्रद्धा करने उसको ऐसा तो व्यवहार आता है, कहते हैं। जिसको निश्चय का भान है, उसको ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। सब सत्ता और सब एक ही है, वह बात तो मिथ्यादृष्टि मानता है। सब एक है। समन्वय करते हैं न समन्वय। उसका भी सच्चा, उसका भी सच्चा, उसका भी सच्चा ऐसा है नहीं। समकिती को विकल्प में भी ऐसा नहीं आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... स्वयं वस्तु आत्मा कहते हैं। अनन्त गुण का पिण्ड है। एक समय में अनन्त गुण की अनन्त पर्याय हैं। एक-एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है। ऐसे अनन्त आत्मा हैं। उससे अनन्तगुना पुद्गल है। ऐसी जिसको व्यवहार की भी प्रतीति नहीं है, वह श्रद्धा करनेवाला पुरुष होता ही नहीं। वह श्रद्धा करनेवाला है नहीं। विचार करता है समकिती की श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है कि जिसको आत्मा की दृष्टि हुई और नौ तत्त्व आदि पृथक्-पृथक् यथार्थ त्रिकाल प्रतीति हुई है। तीन काल में नौ तत्त्व हैं, ऐसा ही हैं। उसमें फेरफार है नहीं।

यह श्रद्धान है। चौथा बोल। तीन बोल आये न? चौथा। और यह श्रद्धान है। जिसको नौ तत्त्व की, छह द्रव्य की पृथक्-पृथक् श्रद्धा नहीं है, वह श्रद्धा नहीं है। समझ में आया? यह श्रद्धा है कि जिसको आत्मा की श्रद्धापूर्वक नौ का पृथक् श्रद्धान, वह श्रद्धान है। निश्चय अपनी श्रद्धा, विकल्प, वह व्यवहारश्रद्धा, वह श्रद्धान है। इसका नाम

श्रद्धान है। और इससे विरुद्ध कोई मानता है, वह अश्रद्धा है। उसको श्रद्धा तो है न भगवान की? नहीं। नौ तत्त्व, षट् द्रव्य,पंचास्तिकाय पृथक्-पृथक् जिसकी पर्याय में, विकल्प में, भेद में प्रतीति नहीं है, उसका निश्चय और व्यवहार दोनों अश्रद्धान है।... ! कैसे लिया? देखो चार बोल लिये हैं।

इसका नाम अश्रद्धान है। उसका भी ख्याल आता है। अस्ति-नास्ति दोनों आयी न? श्रद्धा करनेयोग्य अस्ति, श्रद्धा करनेयोग्य नहीं नास्ति। श्रद्धान करनेवाला पुरुष ऐसा। श्रद्धान, इसका नाम अश्रद्धान। अनेकान्त किया है। जिसको यथार्थ नव तत्त्व की प्रतीति हुई, स्वभाव की प्रतीति तो है, उसको उससे विरुद्ध की प्रतीति तीन काल में नहीं आती है। तीन काल में उससे विपरीत एक अर्थ भी विपरीत करे तो उसकी मान्यता उसमें आती नहीं। अश्रद्धान है, मिथ्यादृष्टि है। अपने आत्मा का श्रद्धान करने का विकल्प भी करने के योग्य नहीं है। इसका नाम अश्रद्धान है। श्रद्धा के इतने बोल कहे। है न? कितने हुए? पाँच। पाँच बोल लिये। विकल्प की व्यवहार की बात चलती है। ... व्यवहार की बात चलती है। निश्चय तो आत्मा का आश्रय है। पाँच बोल का विकल्प भेद उठता है। नीचे कहेंगे। ऐसे अनेक प्रकार के करने, न करने के कर्ताकर्म के भेद उत्पन्न होते हैं। ऐसा करनेयोग्य है, ऐसा नहीं करनेयोग्य है। विकल्प, हाँ! पर की बात नहीं। वृत्ति में ऐसा भेद उठता है, उसको व्यवहार कहते हैं। अभेद स्वभाव की दृष्टि हुई, जितनी अभेद पर्याय हुई, उसको निश्चय कहते हैं।

निश्चय और व्यवहार दो नय का विषय यथार्थ न जाने, उसको मोक्षमार्ग होता ही नहीं। मुख्य क्या है, गौण क्या है, अनुपचार क्या है, उपचार क्या है, उसका यथार्थ ज्ञान बिना सत्यार्थ वीतरागमार्ग होता नहीं। वह श्रद्धा की बात आयी। अब ज्ञान की।

यहाँ क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन तो अभेद है। परन्तु जो व्यवहार सम्यग्दर्शन है, उसमें विकल्प आता है। व्यवहार सम्यग्दर्शन वह ज्ञान की पर्याय और राग है।... समझ में आता है? व्यवहार सम्यग्दर्शन में ऐसा जो नौ तत्त्व का पृथक्-पृथक् ज्ञान आता है वह राग है। उसमें ज्ञान की पर्याय में विचार आता है। व्यवहार श्रद्धान, वह समकित की पर्याय नहीं है। वह तो ज्ञान में क्षयोपशम ऐसा आता है। जिसको आत्मा की अखण्ड

प्रतीति हुई उसके ज्ञान में नौ तत्त्व का पृथक्-पृथक् ज्ञान आता है और विकल्प भी उठता है। उसको व्यवहार समकित कहते हैं। व्यवहार समकित सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं है। फूलचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सम्यग्दर्शन के साथ में जो ज्ञान खिला है, उसकी वह पर्याय है और उसमें विकल्प उठता है, वह राग है। दर्शन की पर्याय है, वह तो निर्विकल्प स्वभाव के आश्रय से है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह तो, ऐसी श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है, वह सब तो ज्ञान की पर्याय का विचार है और ज्ञान की अवस्था... ज्ञान की अवस्था में ऐसा विचार उत्पन्न होता है। ज्ञान अवस्था में रहनेवाले हैं। चारित्रदशा संयम चारित्र अर्थात्? शुद्ध उपयोग। चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण है, पंचम गुणस्थान है, विशेष शान्ति है, विशेष अंश-अंश से शान्ति बढ़ गयी है। पंचम गुणस्थान। दर्शन प्रतिमा। वह सब प्रतिमा शुद्धि के अंश की वृद्धि है। वह बाह्य की चीज़ नहीं है। अन्तर में ज्ञायक में अवलम्बन करके जितनी शुद्धि की अंश की वृद्धि हुई, उसका नाम प्रतिमा का भेद है। उसमें विकल्प आता है विचार करनेयोग्य कि यह श्रद्धा करनेयोग्य है, यह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। यह श्रद्धान करनेवाला, यह श्रद्धान, यह अश्रद्धान। ऐसा यथार्थ विकल्प आता हो, उसको व्यवहार कहते हैं। समझ में आया? गजराजजी! क्या है? देखो! देखो, यह समझने की बात है। बड़ी बात उसमें ली है।

तत्त्वदृष्टि निश्चय तो है। परन्तु निश्चय निश्चय कहनेवाला ऐसा कहे कि हमको तो व्यवहार का ऐसा विकल्प उठाने की जरूरत नहीं है। कोई भी चीज़ हो श्रद्धा में, वह योग्य है। वह तो उठे ही यथार्थ। वह ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। वह यथार्थ ज्ञेय को विषय करेगा। दर्शन की पर्याय में जिसको आत्मा की प्रातीति हुई, उसमें ज्ञान होता है, उस ज्ञान में यथार्थ दृष्टि का विषय होगा। ऐसा विकल्प आता ही है। उसको व्यवहार कहते हैं। निश्चय है तो व्यवहार कहते हैं। ऐसा व्यवहार न आवे तो मिथ्यादृष्टि है और व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा मानता है (तो भी मिथ्यादृष्टि है)। वस्तु की स्थिति पृथक् पृथक् है।

व्यवहार और निश्चय दोनों पृथक् है। यदि व्यवहार और निश्चय एक हो जाये तो दो रहते नहीं, दो रहते नहीं। पृथक्-पृथक् रहते नहीं। जैसे नौ पृथक् हैं, नौ तत्त्व पृथक् हैं ऐसे दो पृथक् हैं। दो हैं। एक साधन उसका उपचार है। एक स्वभाव के आश्रय से अनुपचार साध्य है। दो हैं। उससे वह हो और निश्चय, व्यवहार से प्रगट हो तो निश्चय, व्यवहार एक हो जाता है। दोनों एक तीन काल में होते नहीं।

तो भगवान आचार्य कहते हैं, इसको ऐसा विचार कर्ताकर्म में भेद पड़ता है। कर्ता आत्मा और कार्य अभेद होना, वह तो निश्चय है। ज्ञायक आत्मा कर्ता और उसका स्वाभाविक कार्य अभेद, कर्म वह तो अभेद है और विकल्प उठता है, उसका नाम भेद है। पहली मूल बात समझने की है, वह करते नहीं। और समझ के पहले सब ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। भैया! हठ से करना, वह वस्तु की स्थिति नहीं है। सेठ! हठ से करना, वह वस्तु की स्थिति नहीं, यह बताते हैं। सहज आता ही है। चौथी गुणस्थान की भूमिका हो, पंचम गुणस्थान की भूमिका हो, छठवीं भूमिका हो, उसमें ऐसा विकल्प आता ही है। आता है परन्तु समझते हैं कि मेरे निर्बलता-कमजोरी चारित्रगुण की है। आओ। मैं उसका जाननेवाला हूँ, मैं उसका करनेवाला नहीं हूँ। वह श्रद्धा के पाँच बोल हुए।

ज्ञान का। 'यह वसतु जाननेयोग्य है...' ज्ञान का भेद उठता है। ज्ञान स्वसंवेदन तो अभेद है। ज्ञान का स्वसंवेदन अभेद निश्चय अंश तो है परन्तु सर्वथा अभेद नहीं हुआ। वह कहा था न ? अनादि काल से लेकर भेदभावकर वासित बुद्धि है। सर्वथा अभेद नहीं हुआ। सम्यग्दर्शनपूर्वक तो अभेद हुआ है। परन्तु पूर्ण अभेद हुआ नहीं। तो उसको यह वस्तु जाननेयोग्य है। ओहोहो! सर्वज्ञ ने एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने। स्वर्ग, नरक, पाताल, जो वस्तु है, उस अनुसार (जाना)। चौदह ब्रह्माण्ड, लोक, अलोक, जितनी चीज़, जितनी संख्या, जितनी पर्याय, जितने गुण, वह सब जाननेलायक है। ऐसा विकल्प समकिती को आता ही है। राग आता है। जाननेयोग्य, यह वस्तु जाननेयोग्य है।

'यह नहीं जाननेयोग्य है...' अप्रयोजनभूत आदि। मेरी शक्ति कम है, इसलिए नहीं जाने। अथवा कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की अपने को क्या पड़ी है ? यह जानन जरूरी नहीं। अथवा 'नहीं जाननेयोग्य है।' यह जाननेयोग्य है और यह नहीं जाननेयोग्य अर्थात्

आदरनेयोग्य नहीं। ऐसा विचार करते हैं, यह विकल्प उठता है। 'यह स्वरूप ज्ञाता का है...' देखो! यह विकल्प उठता है। दृष्टि में तो ज्ञाता समझाया है कि मैं ज्ञाता हूँ, शुद्ध हूँ। मोहनभाई! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात। 'यह स्वरूप ज्ञाता का है...' मैं ज्ञाता हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ। यह स्वरूप श्रद्धा का पुरुष है, ऐसा आया था न उसमें? श्रद्धान करनेवाला पुरुष है। पुरुष अर्थात् आत्मा। श्रद्धा करनेवाला आत्मा तो अखण्ड परिपूर्ण शुद्ध है। पर परन्तु श्रद्धा करनेवाला आत्मा भी अखण्ड परिपूर्ण शुद्ध है। और मैं ज्ञाता हूँ। ज्ञान मैं ऐसा (विचार आता है कि) मैं ज्ञाता ही हूँ। राग का, पर्याय का, निमित्त का सब का ज्ञाता हूँ। ऐसा ज्ञाता का विकल्प, विचार समकिती को चौथे, पाँचवें में, छठवें में ऐसा राग आता ही है।

'यह ज्ञान है...' मेरा स्वभाव ज्ञानगुण में से पर्याय आती है, उसका नाम ज्ञान है। राग ज्ञान नहीं। ज्ञान का राग काम नहीं और राग का ज्ञान काम नहीं। ज्ञान का कार्य राग नहीं और राग का कार्य ज्ञान नहीं। ऐसा विकल्प ज्ञानी को आता है, उसको व्यवहार कहते हैं। 'यह ज्ञान है, यह अज्ञान है...' वह ज्ञान नहीं। जड़ आदि अज्ञान है अथवा विपरीत बुद्धि, वह भी अज्ञान है। ऐसा विकल्प समकिती को आता है। देखो! निश्चय-व्यवहार की सन्धि। कोई ऐसा कह दे कि निश्चय में पीछे ऐसा विकल्प आता ही नहीं। उसको देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का राग होता नहीं। तो भी वह मूढ़ है, वस्तु को जानता नहीं। पर से राग पर के आश्रय से हुआ, वह व्यवहार अपने करते हैं तो वह धर्म है। ...! व्यवहार करते हैं, वह धर्म है। वह कहते हैं कि व्यवहार को धर्म क्यों नहीं कहते हैं? धर्मदास कहते थे। व्यवहार को तुम धर्म नहीं कहते हो। व्यवहार धर्म निश्चय हो तो व्यवहार से कहा जाता है। वास्तव में तो अधर्म है। हाय.. हाय! विवाद (डाले)। व्यवहारधर्म का अर्थ क्या? निश्चय से धर्म नहीं। निश्चय से धर्म नहीं। वह विकल्प आता है, उसको उपचार से धर्म कहो। उपचार से अर्थात् अनुपचार से धर्म नहीं है। बड़ा फेरफार। अरर्र! धर्म नहीं? अधर्म?

जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, वह धर्म नहीं। क्योंकि धर्म से बन्ध होता ही नहीं। धर्म से बन्ध हो तो... होता है। ... बन्धन जिस भाव से हो वह विभाव ही है। तीर्थंकरगोत्र बँधो, षोडशकारण भावना, वह भी विभाव ही है। स्वभाव नहीं है। विभाव

की भावना करने की समकिती भावना नहीं करते। आ जाता है। ऐसा समकिती मानते हैं ? समकिती विभाव मानते हैं तो समकिती इच्छा करते नहीं। राग आता है, प्रशस्त राग आता है। जानते हैं। वह बात है। ज्ञान जानता है, ज्ञान उसको जानता है कि राग है। परन्तु राग आदरणीय (नहीं है)। राग से बंध होता है तो आत्मा का कल्याण—तीर्थंकर गोत्र बँध जायेगा। तो तीर्थंकरगोत्र बँधेगा तो धीरे-धीरे केवलज्ञान का कारण तो है कि नहीं ? झूठ बात है। क्या तीर्थंकरगोत्र केवलज्ञान का कारण है ? वह तो जड़ है। क्या राग कारण है ? जिसके कारण से तीर्थंकरगोत्र बँधा, वह राग कारण है ? वह तो विकार है। स्वभावज्ञान की एकाग्रता से राग का नाश होता है तो केवलज्ञान होता है। ज्ञान से हुआ। वह केवलज्ञान ज्ञान से हुआ है। केवलज्ञान राग से नहीं, केवलज्ञान तीर्थंकरगोत्र से नहीं। ऐसा लगा देते हैं कि तीर्थंकरगोत्र बँध जाये न, तो परम्परा मोक्ष का कारण है, भैया! सब खुशी हो जाये। मिथ्यात्व है। उसकी भ्रान्ति में जीव पड़ गया है।

यहाँ कहते हैं, वह ज्ञान है, कि जिसको राग का भी आदर नहीं। और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं, उसका भी आदर नहीं है। उसका नाम ज्ञान है। ऐसा ज्ञानी को, समकिती को, मुनि को विकल्प आता है। उसको व्यवहार कहते हैं। और विकल्प का निषेध न वर्ते तो व्यवहार और निश्चय दो एक हो जाते हैं। विकल्प का निषेध न वर्ते तो निश्चय और व्यवहार एक हो जाते हैं। व्यवहार का आदर हो जाता हो तो व्यवहार-निश्चय एक हो जाते हैं। व्यवहार का ज्ञान करते हैं, जानते हैं कि ज्ञान राग को जानता है। समझ में आता है ? ऐसी समझ यथार्थ करना वह मुख्य पहली चीज़ है। मुख्य पहली जैनदर्शन की मुख्य चीज़ है। वस्तु कैसी है, उसको जानना।

यह अज्ञान है। आत्मा का ज्ञान से विरुद्ध कोई भी कल्पना करे, सब अज्ञान है। उसकी बात सुनने के योग्य नहीं है। ऐसा विकल्प समकिती को आता ही है। द्वेष नहीं है, वह कि किसी को मानते नहीं, किसी से बनती नहीं, तुम्हारी (बात) झूठी है। वह तो ज्ञान का पर्याय का धर्म है कि अज्ञान को अज्ञान मानता है, ज्ञान को ज्ञान मानता है। और अश्रद्धा को अश्रद्धान मानता है। श्रद्धान को श्रद्धान मानता है। ऐसा ज्ञान की पर्याय का धर्म है। झूठा को झूठा मानना, वह कोई द्वेष नहीं है। सच्चा मानना राग नहीं और झूठ

मानना द्वेष नहीं है। सच्चे-झूठे का विवेक करना, वह तो ज्ञान की पर्याय का धर्म है। वह विकल्प ऐसा आता ही है।

अब चारित्र। देखो! समकिती को ऐसा विचार आता है। 'यह आचरनेयोग्य है..' राग, राग हाँ! विकल्प आता है। आत्मा में समकित आचरनेयोग्य है। नि:शंक, नि:कांक्ष आदि जो विकल्प उठते हैं न, विकल्प उठते हैं। निश्चय समकित तो रागरहित है। परन्तु व्यवहार समकित में नि:शंक आदि जो आचार है न? समकित का आठ आचार। नि:शंक, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़पना आदि। विकल्प उठते हैं कि तो वह समझता है कि वह आचरण में मुझे आता ही है। मेरी दर्शनशुद्धि हुई है, परन्तु मेरी चारित्र की मन्दता से आठ बोल नि:शंक, नि:कांक्ष का विकल्प आता ही है। मैं वीतराग नहीं हूँ तो मुझे आता ही है। आचरनेयोग्य है। इतना तो राग आचरनेयोग्य है अर्थात् ऐसा विकल्प आता है, भेद पड़ता है। वह राग आता है। पंचम गुणस्थान में ऐस विचार आता है कि वर्तमान में मैं पंचम गुणस्थान में हूँ। तो मेरे में बारह व्रतादि का विकल्प आता ही है। उसका आस्रव के परिणाम की हद इतनी है। और छठवें गुणस्थान में मन्द राग है। वह उसकी छठवीं भूमिका है, उसमें वस्त्र, पात्र आदि लेने का विकल्प होता ही नहीं। ऐसा मैं आचरण करूँ, ऐसा मैं आचरण करूँ। उसको अध:कर्मी आदि आहार लेने का विकल्प भी नहीं है। मुनि को छठवें गुणस्थान में 'यह आचरनेयोग्य है...' कि अध:कर्मी आहार बिना मेरा विकल्प हो, वही मेरा व्यवहार है। मेरे कारण से जो कुछ आहारादि हुआ हो, मेरे ख्याल में आवे तो वह राग तोड़ देते हैं। वह लेते नहीं। वह तो निश्चय है, उसकी बात चलती है।

निश्चयचारित्र प्रगट हुआ है तो विचार तो आता है कि ऐसा आचरने योग्य है। पाँच आचार है न? ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, वीर्याचार, तपाचार। वह पाँच प्रकार के विकल्प की बात करते हैं। स्वभाव तो स्वभाव है ही। परन्तु यह ज्ञानाचार है। विनय काल में पढ़ना, विनय से पढ़ना ऐसा आता है न? ऐसा आचरण का विकल्प तो समकिती को आता है, ज्ञान के आधार का, दर्शन के आधार का और चारित्र हो तो चारित्र के आचार का। समिति, गुप्ति, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण। छठवें गुणस्थान में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आचरनेयोग्य मेरी भूमिका ऐसी है कि ऐसा विकल्प

अट्ठाईस प्रकार के मूलगुण का आता ही है। उसको व्यवहार जानते हैं। उसको व्यवहार जानते हैं।

यह वस्तु आचरनेयोग्य नहीं है। मेरी भूमिका में बुरा ध्यान और उसको शोभा न दे, ऐसा राग आचरनेयोग्य नहीं है। ऐसा विकल्प जरूर मुनि को आता है। मुझे वह शोभा नहीं देता। वह सहज आता है। कालक्रम बदलते नहीं। क्रमबद्ध बदलता नहीं। क्रमबद्ध तो क्रमबद्ध से होता है। परन्तु उसमें ऐसा विकल्प सहज आता है। मुझे आचरनेयोग्य सम्यग्दर्शन में दारू, माँस ऐसा खाने का ऐसा राग... मुझे वह न हो। बस, वह तो उसके कारण से ग्रहण त्याग तो पर से है, आत्मा से है नहीं। परन्तु चौथी भूमिका में मुझे दारू, माँस इत्यादि। मद्य आदि है, उसमें त्रस उत्पन्न होते हैं। उसे लेने की वृत्ति सहज नहीं आती, सहज नहीं आती है। वह आचरनेयोग्य नहीं है। वह आठ मूलगुण है। वह आचरनेयोग्य है। जिसमें पाप है नहीं, मेरे विकल्प में कषाय मन्द आता है, वह आचरने योग्य है, ऐसा विकल्प आता है। विकल्प का शुभभाव आता है, उसको व्यवहार कहते हैं। कहो, समझ में आया? मद्य.. मद्य। मद्य और दारू और मक्खन सब बड़े पाप हैं। वह तो परचीज़ है परन्तु उसे खाने की वृत्ति हुई, वह तीव्र राग है। वह तीव्र राग मेरे आचरणयोग्य नहीं है, वह बात करते हैं।

मुमुक्षु : राग परिणाम....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग परिणाम को। पर को नहीं। पर तो पर के कारण से है। परन्तु मेरे में ऐसा तीव्र राग आचरनेयोग्य नहीं है। मन्द राग (आचरनेयोग्य है)। ऐसा विकल्प आता है, सहज आता है। फेरफार करने की बात नहीं है कि आगे-पीछे करने का विचार नहीं है। (है तो) दृष्टि सत्य नहीं रहती। बड़ी बात है। यहाँ तो मोक्षमार्ग तो तलवार की धार है। वह सहज है, सहज है।

यह आचरनेयोग्य है। पंच महाव्रत आदि मुनियों को आचरनेयोग्य है। अर्थात् व्यवहार से विकल्प आता है। आचरनेयोग्य है। उसको शोभा न दे, ऐसा भाव मुनि को कभी आता ही नहीं। वस्त्र लेने का, पात्र लेने का, अधःकर्मी आहार लेने का, भोग लेने का, ऐसा विकल्प छठवें गुणस्थान में कभी आता ही नहीं। ऐसी भूमिका की यह दशा

है। कोई मुनि ऐसा मान ले कि हम तो दिगम्बर हो गये बाहर से और बाह्य दिगम्बर है तो अभ्यन्त दिगम्बर हो गया, वह झूठ बात है। और अभ्यन्तर भाव आ गया दिगम्बर का निर्ग्रन्थदशा का (फिर) बाहर में कुछ भी हो, उसके साथ हमें सम्बन्ध नहीं है—वह भी बात समझते नहीं। जिसको छठवी भूमिका हो, उसको सहज पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का ही विकल्प आता है। उसकी नग्नदशा दिगम्बर सहज हो जाती है। उसकी पर्याय का कर्ता नहीं, उसकी पर्याय का कर्ता नहीं। उसको विकल्प उठा, विकल्प उठा तो मैं वस्त्र छोड़ देता हूँ, तो वस्त्र छूटा, वह कार्य और विकल्प कर्ता—ऐसा है नहीं, ऐसा है नहीं। समझे? वह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा है कि वस्त्र छूटने की योग्यता से छूटा। विकल्प उसको निमित्त कहते हैं। होता है, ऐसा विचार छठवें गुणस्थान में आये बिना रहता नहीं। परन्तु वह छठवें गुणस्थान का कारण नहीं है। कारण तो द्रव्य के आश्रय से जो स्वभाव उत्पन्न हुआ, वह मुनिपद है, भाव मुनिपद तो यही है। वर्तमान में तो ऐसी गड़बड़ हो गयी कि व्यवहार का यथार्थ ठिकाना नहीं। नौ में भी गड़बड़ करे। समझे? कर्म से विकार (हो) ते विकार पुण्य-पाप और कर्म दो एक चीज़ हो गयी। कहो फूलचन्दजी! सुबह प्रश्न था न? पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध विभाव है या नहीं? तो विभाव ... पृथक् और अजीव कर्म पृथक्। ... एक से दूसरा होगा (तो) नौ नहीं रहेगा। वह तो व्यवहारश्रद्धा से भी भ्रष्ट है। तो उसकी निश्चयश्रद्धा तो भ्रष्ट है ही। समझ में आता है? बात किसी के घर की नहीं है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ करो, सरलपने मानो, पहचानो, विचार करो। किसी के घर की बात नहीं है। वस्तुस्थिति ऐसी है।

अभेद दृष्टि हुई परन्तु अभेद चारित्र नहीं हुआ। अभी राग की वासना है। तो राग की वासना में ऐसा विचार आये बिना रहता ही नहीं। वह ज्ञान का धर्म है कि जैसा राग आता है, उसको ज्ञान जाने। जैसा राग आये, उसको ज्ञान जाने। ज्ञान राग को करता नहीं। परन्तु जैसा राग आता है, उसको ज्ञान जाने कि राग ऐसा आया। बस, उसको जानना व्यवहार कहते हैं। और निश्चय, स्व को जानना, उसको निश्चय कहते हैं।

वह कहते हैं, मुनि को... यहाँ मुनि की प्रधानता है, परन्तु समकिती को, पंचम

गुणस्थान योग्य जिसकी जितनी भूमिका शुद्ध आश्रय से प्रगट हुई, उतना उतना उसका राग का प्रकार का भेद आता ही है। उसको व्यवहार कहते हैं। कहो, समझ में आया? दलीचन्दभाई! लोगों ने बाह्य चीज़ के ग्रहण-त्याग से अन्दर धर्म होता है, ऐसा मान लिया है। परन्तु यह चीज़ है नहीं। राग को छोड़ूँ, यह भी वस्तु में नहीं। यह सवेरे कहा था। राग आता है न? राग। राग को क्या छोड़े? उत्पाद हो गया, उसको क्या छोड़े? उत्पाद हुआ तो दूसरे समय व्यय होगा ही। छोड़ना क्या? मैं ज्ञायक हूँ—ऐसी दृष्टि हुई और ज्ञायक-सन्मुख जितना एकाग्र चौथे गुणस्थान में भी होता है, उतने राग की उत्पत्ति उस समय नहीं होती है, उसको राग छोड़ा ऐसा कहा जाता है। वस्तु के स्वभाव में छोड़ना-बोड़ना है नहीं। ऐसा विकल्प धर्मी को आता ही है। समझ में आता है? आहाहा! समझे?

पर को तो छोड़ जाता ही नहीं। अपने में राग, विचार करता है कि वह आचार आचरनेयोग्य नहीं है। मेरे में राग आता है, वह छोड़नेयोग्य है। वह विकल्प आता है। परन्तु विकल्प का ख्याल है कि मैं छोड़ सकता हूँ, ऐसा नहीं। क्योंकि जिसका उत्पाद हुआ, उसका व्यय तो उस समय होता नहीं। और दूसरे समय तो मिथ्यादृष्टि का (उत्पाद) भी व्यय तो हो जाता ही है। तो क्या करता है?

मुमुक्षु : छोड़नेयोग्य है, छोड़ सकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़नेयोग्य जानते हैं। विकल्प आता है तो। दिशा बदल जाती है। बस, वह बात है। विकार एक समय की पर्याय है। किसको छोड़े? मैं छोड़ूँ, ऐसी बुद्धि हो तो वह तो पर्यायबुद्धि—मिथ्याबुद्धि हो जाती है। क्योंकि जिस समय उत्पन्न हुआ उस समय छूटता है, ऐसा मानता है तो मिथ्यादृष्टि हो जाती है। परन्तु स्वभाव... स्वभाव ज्ञायक है, उसकी रुचि हुई उसमें स्थिरता जितना स्वभाव में उद्यम हुआ, उतना वर्तमान पर्याय में राग की उत्पत्ति नहीं होती। पहले समय तीव्र हो, दूसरे समय मन्द। उसको राग छोड़ा, ऐसा शास्त्र में कहते हैं। कहते हैं। वस्तु ऐसी नहीं है। कथन की पद्धति है। शास्त्र की इतनी पद्धति है, उसका ख्याल न करे तो गड़बड़ उठे, ऐसा है। शास्त्र तो ऐसा कहे कि कषाय छोड़ो। क्या छोड़े? पर्याय हुई, उसको छोड़ना क्या?

नहीं हुई, उसको छोड़ना क्या? है नहीं। उत्पाद हुआ उसको उस समय में व्यय करना? उसी समय में उत्पाद का व्यय होता नहीं। नहीं हुई, उसका व्यय करना क्या? बस, उसका अर्थ ऐसा है कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ। विकल्प आता है कि छोड़नेयोग्य है। राग छोड़नेयोग्य है, ऐसा विकल्प आता है। भेद है न? आता है। प्रतीति में है कि स्वभाव में एकाग्र होऊँ तो वह राग छूट जायेगा।

ज्ञानी का पुरुषार्थ स्वभाव के उद्यम में है। ज्ञानी का पुरुषार्थ निमित्त को छोड़ने में, ग्रहण में नहीं है और यदि राग छोड़ा तो राग ग्रहण करने का भाव चिपका। परवस्तु मैं छोड़ूँ तो पर को ग्रही है, ऐसी मिथ्याबुद्धि हुई। और राग छोड़ूँ तो मैंने राग को ग्रहण किया था द्रव्य में, ऐसी बुद्धि हुई। परन्तु विकल्प ऐसा ज्ञानपर्याय में आता है कि राग छोड़ूँ, छोड़नेयोग्य है। दृष्टि में है कि ऐसा छूटता नहीं। स्वभाव सन्मुख हो तो राग छूट जाता है। जितने अंश में स्वभाव सन्मुख हो (उतना छूटता है)।

ज्ञानी का पुरुषार्थ स्वभाव के उद्यम में है। बस, वही पुरुषार्थ है। उस पुरुषार्थ में कमी से ऐसा आता है कि यह आचरनेयोग्य नहीं है। मुझे राग आचरनेयोग्य नहीं है। मैं तो स्वभाव का आचरण करनेवाला हूँ। मेरे में राग आता है, वह आचरनेयोग्य नहीं है, ऐसा विकल्प आता है। कहो, समझ में आया? ओहोहो! मार्ग की बलिहारी है परन्तु लोग मार्ग अपनी दृष्टि से मानते हैं।

वस्तुस्थिति सत्समागम बिना, उसकी पात्रता बिना वस्तु समझे ऐसी नहीं है। सत्समागम हो परन्तु पात्रता न हो तो समझे नहीं। और सर्वज्ञ के पास अनन्त बार गया। अनन्त बार गया न? अनन्त बार गया भगवान के पास, तो उसमें क्या है? भगवान कर देते हैं? तो सत्समागम निमित्त है, उपादान की अपनी योग्यता। दोनों होना चाहिए। दोनों में कमी हो तो वस्तु नहीं मिलती है। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। अपनी कल्पना से शास्त्र पढ़ ले और अपनी कल्पना से शास्त्र का अर्थ कर दे, जैनदर्शन की ऐसी रीति नहीं है। जैनदर्शन परम्परा से मिला हो, उसका पूर्व में संस्कार मिला हो तो इस भव में परन्तु वह संस्कार हो तो कर सकता है। अपनी स्वच्छन्दता से करे, वह वस्तु की दृष्टि नहीं है।

मुमुक्षु : गुरुकृपा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरुकृपा तो उसकी पात्रता हो तो कहा जाता है। कहा जाता है। उपचार है। वह तो स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न? ओहो! हमारे गुरु का हम पर अनुग्रह हुआ। वह तो कथन की पद्धति है। हमारी पात्रता थी, ऐसा न बोले। निर्मानी सन्त है। परन्तु हम पर हमारे गुरु की कृपा हुई कि हमें शुद्धात्मा को उपदेश दिया। वह पाँचवीं गाथा में है। पाँचवीं गाथा है न? पाँचवीं गाथा में है। पाँचवीं गाथा। मैं मेरा वैभाव कहूँगा। उस समय कहा है। मेरा वैभव कहूँगा। वैभव—स्वभाव का वैभव कहूँगा। उसमें कहते हैं कि मेरा वैभव किस प्रकार से प्रगट हुआ? मेरा गुरु महा शुद्ध है। उन्होंने मेरे पर कृपा करके मुझे शुद्ध उपदेश दिया। उसका अर्थ? कथन है ऐसा तो। उसका अर्थ मैं योग्य था तो मुझे निमित्त मिल गया। ऐसा उसका अर्थ है। कथनशैली ऐसी है। समझ में आता है? तो शास्त्र की पद्धति कथन पद्धति अनेक प्रकार की होती है। उसका मर्म तो है सो है।

ऐसा कहा कि मेरा वैभव गुरुगम से प्रगट हुआ है। ऐसा कहा। तो उससे प्रगट हुआ? तो कहते हैं, मेरी दशा मेरे में प्रगट होने की योग्यता हुई तो सत्य गुरु मिले बिना रहते ही नहीं। ऐसा सिद्ध किया है, पाँचवीं गाथा में सिद्ध किया है। समझ में आता है? देखो! ५३वीं गाथा उसमें सिद्ध हो गयी। नियमसार की ५३वीं गाथा। उसमें आता है न? मेरे गुरु-प्रसाद से ऐसा मुझे मिला है। देखो!

अन्तर्निमग्न परमगुरु—सर्वज्ञदेव और अपरगुरु—गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यंत, उनसे प्रसादरूप से प्राप्त जो शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश, उससे जिसका जन्म है,... यह निमित्त से कथन किया। मेरी योग्यता से तो ऐसे गुरु मिले बिना रहे ही नहीं। ऐसा सिद्धान्त है। जैसे-तैसे गुरु मिले और मुझे सम्यग्ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं लिखा है, पाँचवीं गाथा में। समझ में आता है? द्रव्यलिंगी से मिला, ऐसा नहीं। परम्परा यथार्थ तत्त्वज्ञानी सन्त छठवें गुणस्थानवाले मुनि थे। उनके गुरु। कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु भी भावलिंगी सन्त थे। ऐसा पाठ कहता है, पुकार करते हैं।

मुमुक्षु : सिद्ध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, साबित करते हैं, वह सिद्ध करते हैं। उसने हमारे पर

अनुग्रह करके शुद्धात्मा का उपदेश दिया। फिर ऐसा कहा कि नौ तत्त्व का नहीं, शुद्धात्मा का उपदेश दिया। क्योंकि नौ में से साररूप शुद्धात्मा का उपदेश दिया। मैं शुद्धात्मा को समझने के योग्य था। तो उसमें शुद्धात्मा जिसको (प्राप्त हुआ) है, उसको नौ तत्त्व का भेद का विकल्प तो आता है। केवलज्ञान न हो तो उसकी बात करते हैं। कहो, समझ में आया?

'**यह वस्तु आचरनेयोग्य नहीं...**' मेरी पर्याय के योग्य चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबनधी का अभाव है तो उसके योग्य माँस, शराब, शहद खानेयोग्य नहीं है, ऐसा विकल्प आता है। पंचम गुणस्थान योग्य। पंचम में जितना बारह व्रतादि लिया है, सहज दशा में मेरी प्रतिज्ञा है, स्वभाव के आश्रय से जितनी ... उसमें अमुक आचरनेयोग्य होता है। और छठवें गुणस्थान के अमुक आचरण मुझे अध:कर्मी आहार इत्यादि होता नहीं। ऐसा विकल्प मुनि को आता है। समकिती को ऐसा विचार आये बिना रहता नहीं और विकल्प से धर्म होता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनात्म भाव है। कहो, समझ में आता है? वह धर्म है। आचरनेयोग्य नहीं। '**यह आचारमय भाव है...**' विचार करता है। आत्मा के आश्रय से जो चारित्र हुआ, वह आचारमय भाव है। मेरा स्वभाव तो अरागी, वीतरागी जितनी द्रव्य में से वीतरागपर्याय प्रगटी, वह आचारमय भाव है। विकल्प आता है। विकल्प आया तो राग है। परन्तु मेरा आचारमय भाव स्वभाव के अवलम्बन से हुआ, वह मेरा आचारमय भाव है। मेरा आचार मेरे से दूर नहीं। और दूर हो, वह मेरा आचार नहीं। जड़ की पर्याय आचारयोग्य है, ऐसा नहीं। समझे?

यह तो आचरनेयोग्य नहीं। जड़ की पर्याय मैं आचर सकता हूँ, छोड़ सकता हूँ—ऐसा नहीं। मेरा राग में तीव्र राग आचरनेयोग्य नहीं है। मेरी भूमिका योग्य मुझे राग आता है, ऐसा विचार करता है। कहो, समझ में आया? ऐसा जितना सच्चा देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम, उसे विकल्प चौथे, पाँचवें, छठवें उसकी भूमिका है, इसलिए उसे प्रेम आये बिना रहता नहीं, उल्लस जाता है। अपने कारण से, हों! पर के कारण से नहीं।

देव-गुरु-शास्त्र है, इसलिए नहीं। देव-गुरु-शास्त्र है तो भक्ति आती है—ऐसा नहीं। अपने कारण से (आती है)। देव-गुरु-शास्त्र के कारण से भक्ति आती हो तो केवली को भी आनी चाहिए। तो अज्ञानी को भी आनी चाहिए। अपनी राग की भूमिका है, साधक है और ज्ञान अवस्था में विचार की श्रेणी करते हैं तो ऐसा आता है कि अहो! सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर। महाविदेहक्षेत्र देखो, स्वर्ग में से देव जाते हैं न? समकिती देव है, वह जाते हैं न महाविदेहक्षेत्र में। तो विचार करते हैं कि अहो! मैं पूर्व में आत्मा में ज्ञान, श्रद्धा था। महाविदेह तीर्थंकर गणधरदेव ... वहाँ से प्रत्यक्ष देव लोक से जाते हैं। भाते हैं, अहो! यह तीर्थंकर, यह गणधर, यह सभा, यह उपदेश, बारह प्रकार की सभा। यह प्रतीति में परोक्ष लिया था, यह ज्ञान में प्रत्यक्ष भासता है। देव आते हैं न? वह आया है। पंचास्तिकाय में आया है। पण्डित जयचन्द में आता है कि पूर्व में शुद्धात्मा का आराधन किया था, शुद्धात्मा का आराधन। राग तो बाकी रह गया था, जितना शुभ है तो। तो शुभ का पुण्य बँध जाता है। पुण्य का फल तो स्वर्ग है। मुनि जानते हैं कि हम पंचम काल में है, केवलज्ञान नहीं है। राग का पुण्य बँध जायेगा और स्वर्ग में जायेगा। हेय है, हेय है, हेय है। उपादेय तो एक ही स्वभाव है। ... विचार करते हैं, ओहो! कहाँ से आया? विचार करते हैं। उसको भी विकल्प आता है। ओहो! भगवान त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। चलो दर्शन कर आवे। ऐसा राग समकिती को, क्षायिक समकिती हो, क्षायिक समकिती हो, उसको भी ऐसा विकल्प तो आता है। वह प्रत्यक्ष देखते हैं, अहो! भगवान! समवसरण, तीर्थंकर, गणधर, साधु सन्त, शास्त्र में से परोक्ष रीति से प्रतीति अन्तर में किया था, वह बराबर प्रत्यक्ष देखने में आता है। ऐसे देव भी भगवान के दर्शन करने जायें, वहाँ प्रत्यक्ष दिखता है। उन्हें भी ऐसा विकल्प आता है। मेरे आचरनेयोग्य यही भाव होते हैं। मेरी दशा में अभी चारित्र नहीं। चौथे गुणस्थान के चारित्र को अंश स्वरूपाचरण है। विशेष चारित्र नहीं; इसलिए आठ प्रकार के समकित के आचार, ज्ञान के अमुक आचार इत्यादि-इत्यादि उसे आते हैं। पाँचवें में पाँचवें के योग्य। छठवें की भूमिका की मुख्य बात है।

'यह आचारमय भाव है, यह आचरण करनेवाला है...' परन्तु आचरण करनेवाला तो मैं हूँ। कोई देहक्रिया आचरण करनेवाली नहीं है। राग आता है, विचार करता है

आचरण करनेवाला आत्मा है। श्रद्धा करनेवाला आत्मा, ज्ञाता आत्मा और आचरण करनेवाला आत्मा। वस्तु जो है आचरण करनेवाली। अपनी पर्याय का आचरण, अपनी पर्याय अपने आश्रय से होती है, दूसरे से होती नहीं। कहो, समझ में आया? देखो! ऐसा तो विकल्प उठते है—राग। तथापि वह मोक्षमार्ग व्यवहार से उपचार से कहा है। निश्चय से तो स्वभाव का अवलम्बन निश्चयनय है, उसे मुख्य कहा है। दो नय साथ में रहे हैं न! निश्चयनय है और व्यवहारनय नहीं, तब तो केवल हो जाये। और व्यवहार अकेला हो और निश्चय न हो तो व्यवहाराभास हो जाये। ऐसा हुए बिना रहता नहीं।

आचरण करनेवाला है। हुआ? यह चारित्र है। ऐसा... है। यह चारित्र है। वीतरागीभाव, यह चारित्र है। स्वभाव के आश्रय से हुआ, वह चारित्र है। उसमें विरुद्ध अचारित्र है। एक शब्द उसमें रह गया है। छपने में रह गया है न? भाई! छपना रह गया है। पाठ में है, टीका में है। यह चारित्र है। अन्तर वीतरागता स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई, वही चारित्र है। दूसरा कोई राग या देह की क्रिया-चारित्र नहीं है। लोग तो ऐसा मानते हैं। उसने चारित्र पाला। दो रोटी खाता है और दूध पीता है। बड़ा चारित्र। चारित्र जड़ में है? दो रोटी खाता है, उसमें है?

कहते हैं, समकिती को यह विचार जरूर आता है, अहो! स्वभाव, स्वभाव उसके आश्रय से प्रगट हुआ यह निर्मल चारित्र है। और यह अचारित्र है। दो शब्द है। एक शब्द पड़ा रहा। अचारित्र पड़ा रहा है। यह अचारित्र है। ऐसा शब्द पड़ा रहा है। जैसा चारित्र का (आया, ऐसे) अचारित्र है। ... वह चारित्र है और जितना राग है, वह अचारित्र है। नीचे से पाँचवीं पंक्ति है। चारित्र है न? बाद में एक शब्द आना चाहिए। यह अचारित्र है। दोनों का विवेक ज्ञानी को है। जितना राग आता है, उतना अचारित्र है; वीतराग है, वह चारित्र है। दोनों का विवेक ज्ञानी को होता है। समझ में आया?

चारित्र कोई वस्त्र में नहीं कि चारित्र वस्त्र के त्याग में नहीं। चारित्र हो तो वस्त्र का भाव रहता नहीं। ... दोनों भाव है। लुगड़ा अर्थात् वस्त्र। हमारे में लुगड़ा कहते हैं। कपड़ा, कपड़ा। कपड़े के त्याग में मुनिपद नहीं और मुनिपद आता है तो कपड़ा रहता भी नहीं। गजब अटपटी बात। कपड़ा उतार दो। क्या उतार दे कपड़ा? छोड़ दो कपड़ा।

एक लंगोटी छोड़ दो। छठवाँ गुणस्थान हो जायेगा। एक यहाँ कहते थे। लंगोटी हो तो पंचम गुणस्थान था, लंगोटी छोड़ दी तो छठवाँ गुणस्थान हो गया। लंगोटी में गुणस्थान आ गया। ऐसी प्ररूपणा की थी। एक आया था। लंगोटी छोड़ दी थी पालीताणा में। वह कहते हैं न? लंगोटीवाले कहते हैं। समझे? क्षुल्लक? क्या? ऐलक ऐलक थे। ऐलक को साधुपद दे दिया। फिर आया। लंगोटी थी तो उसको पंचम गुणस्थान था। लंगोटी छूट गयी तो छठवाँ गुणस्थान हो गया। अभी व्यवहार की भी खबर नहीं है। कैसा व्यवहार किसको कहते हैं। लंगोटी छूट गई तो छठवाँ गुणस्थान हो गया।

व्यवहार छठवाँ गुणस्थान किसको कहते हैं? आत्मा का स्वभाव का चारित्र वीतराग है। और विकल्प उठता है अट्ठाईस मूलगुण का, वह छठवाँ गुणस्थान का व्यवहार है। देह की क्रिया व्यवहार-फ्यवहार नहीं। अपनी पर्याय का व्यवहार पर में आता है? और पर का व्यवहार अपने में घुस जाता है? ऐसा तीन काल में है नहीं। देखो! सुबह कहते थे छोटेलाल, नग्नपना चारित्र हो गया। चारित्र था तो नग्नपना हो जाता है, वह बात पड़ी रही। चारित्र होता है स्वभाव में स्वभाव चारित्र। अभी दृष्टि की खबर नहीं। ... नग्न हुआ तो मुनि हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बराबर है। परन्तु यह तो बदल गया। जैसी-जैसी अभ्यन्तर दशा वीतराग हो गयी वस्त्र-पात्र रहता नहीं। तीन काल—तीन लोक में जैनदर्शन में वह नहीं रहते। छठवीं भूमिका का स्वभाव है। परन्तु वस्त्र छूट गया तो छठवाँ गुणस्थान हो गया, ऐसा तीन काल में है नहीं।

धर्मी विचारते हैं। छठवें गुणस्थान में मुनि विचार (करते हैं)। विकल्प भी आता है, गणधर को भी आता है। गणधर भी छठवें गुणस्थान में आते हैं तो विचार करते हैं, बारह अंग की रचना करते हैं, चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करते हैं। वह सब विकल्प है। छठवें गुणस्थान में विकल्प है। भगवान महावीर भी बारह वर्ष छद्मस्थ थे तो वहाँ भी छठवें गुणस्थान में विकल्प आता है। विकल्प न हो तो अप्रमत्तदशा हो। आओ अलग चीज़ है, और उसको धर्म समझना दूसरी चीज़ है। व्यवहार है। निश्चय

होता है तो ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। स्वभाव चारित्र है। जितना छठवें गुणस्थान में अट्ठाईस मूलगुण भी आता है, वह परमार्थ से तो अचारित्र है। जितना अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आता है, वह परमार्थ से अचारित्र है। तो जिसको अभी अट्ठाईस मूलगुण दृष्टिपूर्वक का ठिकाना नहीं है, अट्ठाईस में भी ठिकाना नहीं है।

बापू! ऐसा तो जैनदर्शन में है नहीं। जैनदर्शन में ऐसा दण्ड भी नहीं है कि विशेष पर्याय ग्रहण न करे तो उसको दण्ड है। जिसकी भूमिका है, उतनी न पाले तो दण्ड है। क्यों? वच्छराजजी! जिसकी जितनी भूमिका है, उसमें गड़बड़ करे तो दण्ड है। परन्तु वह विशेष भूमिका न ले तो दण्ड है? ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आता है? जिसकी जो दशा है, उसके प्रमाणमात्र को विकल्प उसे होता है। उसकी दशा से विरुद्ध जो जाये चौथे गुणस्थानवाला कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को माने... समझ में आया? प्ररूपणा जिसकी सीधी झूठी लगती हो, उसे देव माने, गुरु माने और ऐसे शास्त्र को (माने) तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। यह वस्तु रहती नहीं। तब उसे दण्ड है, ऐसे विरुद्ध करे तो। परन्तु चौथे गुणस्थानवाला व्रत नहीं ले तो दण्ड है, ऐसा कहाँ से लाया? समकिती समझता है कि मेरा राग है, वह अचारित्र है। स्वभाव का अंश है, वह चारित्र है। ऐसा विकल्प चौथे, पाँचवें, छठवें में आये बिना रहता नहीं।

ऐसे... लो, इतने बोल कहे। '**अनेक प्रकार के करने, न करने के कर्ताकर्म के भेद उपजते हैं।**' उसका नाम व्यवहार है। करने, न करने का विकल्प, हाँ! होता है पर में पर से। इतना करनेयोग्य है, इतना नहीं करना, इतना राग (होता है), करने, न करने का कर्ताकर्म भेद, कर्ताकर्म अभेद होता है, आत्मा कर्ता और वीतरागी पर्याय अभेद, वह तो निश्चय में गया। परन्तु कर्ता जितना विकल्प से भेद उत्पन्न करता है, वह व्यवहार में जाता है। निश्चय-व्यवहार की सन्धि, वह प्रमाणज्ञान का विषय, उसको सच्चा ज्ञान और सच्चा श्रुतज्ञान और नय कहते हैं। वह मोक्षमार्ग का साधक है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १४, शनिवार, दिनांक - २१-०६-१९५२, गाथा-१७२, प्रवचन-१९

पंचास्तिकाय की १७२वीं गाथा है। निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की सन्धि का स्वरूप है। व्यवहारमार्ग किसे कहते हैं? उसे समझाते हैं। देखो, यहाँ तक आया है। 'ऐसे अनेक प्रकार के करने, न करने के कर्ताकर्म के भेद उपजते हैं।' यहाँ तक आया है न? भेद उपजते हैं। कर्ताकर्म के भेद उपजते हैं, यहाँ तक आया है। देखो! कहाँ है? क्या कहते हैं?

आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, त्रिकाल ध्रुव, वह भूतार्थ वस्तु है, विद्यमान पदार्थ है। एक समय की पर्याय है, राग है, उसे निश्चयनय की दृष्टि से, द्रव्यदृष्टि से तो अभूतार्थ गिना है। क्या कहा है? ऐसे आत्मा वस्तु त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है, ऐसी अपेक्षा से वह ज्ञायकस्वरूप ध्रुव, भूतार्थ है। जो सम्यग्दर्शन का विषय है, वह शुद्धनय का विषय है। समझ में आता है? और एक समय की पर्याय और राग जो विकल्प है, वह अभूतार्थ है। निश्चय की मुख्य दृष्टि की अपेक्षा से वह पर्याय वर्तमान है, राग है, पुण्य है, वह सब अभूतार्थ है। क्योंकि एक समय की पर्याय त्रिकाल रहती नहीं। उस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के विषय में '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहारनय अभूतार्थ है। अर्थात् कि त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि करने से वर्तमान पर्याय स्वभाव में अभेद होने से वह व्यवहारनय का विषय पृथक् नहीं रहता; इसलिए उसे भूतार्थ गिना है।

यहाँ उसे प्रमाण-नय के विषय में भूतार्थ गिना है। ...भाई! समझ में आता है? ११वीं गाथा है न समयसार में?

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो॥१॥

सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? कैसे हो सकता है? समझे न भाषा? सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? कि '**ववहारोऽभूदत्थो**' आत्मा में वर्तमान राग, पुण्य विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय का जो राग आता है, वह अभूतार्थ है। अभूतार्थ अर्थात् वह कायम की चीज़ नहीं है। कायम की चीज़ नहीं है, रहनेवाली नहीं है। और एक समय का

क्षयोपशमज्ञान भी चलता है, विकासरूप, वह भी कायम की चीज़ नहीं है। उस अपेक्षा से व्यवहार को अभूतार्थ कहा है। और स्वभाव भूतार्थ है। त्रिकाल ज्ञायक। **'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्था देसिदो दु सुद्धणओ।'** शुद्धनय का विषय त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकस्वरूप कारणपरमात्मा, वह भूतार्थ अर्थात् विद्यमान पदार्थ है। उसकी अन्तर्मुख दृष्टि होना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन होने पर भी, जो व्यवहार अभूतार्थ कहा था, उसे यहाँ प्रमाण-नय के विषय में व्यवहार भूतार्थ पर्याय से है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? जो वहाँ अभूतार्थ कहा था, वह यहाँ व्यवहारनय से भूतार्थ है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वभाव की दृष्टि हुई, वह भूतार्थ है। पर्याय प्रगट हुई और राग है, उसको ध्येयदृष्टि से तो अभूतार्थ कहा था।

यहाँ कहते हैं कि जिसको सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, आत्मा के आश्रय से भूतार्थ दृष्टि से हुआ, उसको जो चौथी भूमिका हो तो भी अष्ट नि:शंक, नि:कांक्ष आदि समकिती के आठ आचार के विकल्प आते हैं। उसको यहाँ व्यवहार कहते हैं। सम्यग्दर्शन के विषय में उसे अभूतार्थ कहा था। उसे यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को व्यवहारनय का विषय आता है। आवे छे, समझे न? आता है, आता है। सम्यग्दर्शन का ध्येय तो ध्रुव पर है। अन्तर रुचि तो ध्रुव पर नित्यानन्द भूतार्थ पर है। परन्तु वह पूर्ण वीतराग न हो तो चौथे गुणस्थान में समकित का आचार, ज्ञान का आचार, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, ऐसा राग आता है। उसको यहाँ व्यवहार कहा है।

पंचम गुणस्थान में उसकी दशा—भूमिका प्रमाण में बारह व्रत का विकल्प, प्रतिमा का विकल्प आदि उसकी भूमिकायोग्य राग आता है, उसको व्यवहार कहते हैं। दृष्टि तो ज्ञानी की **'ववहारोऽभूदत्थो'**। व्यवहार अभूतार्थ ही है। अ=नहीं, भूतार्थ—विद्यमान पदार्थ। त्रिकाली, वह व्यवहार का विषय नहीं। वर्तमान ध्रुव चिदानन्दस्वरूप, वह सम्यक् का विषय है ऐसा भान करने के पश्चात् जो राग आता है व्यवहाररत्नत्रय, उसे यहाँ व्यवहारनय का विषय कहा है। यदि वह बिल्कुल व्यवहार को न माने तो उसे निश्चय भी सच्चा रहता नहीं; और व्यवहार से निश्चय माने तो भी निश्चय सच्चा रहता नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! यह बात जरा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों दृष्टिकोण से वह 'है', इतना मानना। उससे होता है, वह प्रश्न यहाँ है नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि 'अनेक प्रकार के करने, न करने के कर्ताकर्म के भेद उपजते हैं।' भूतार्थ दृष्टि होने पर भी और उपयोग में उपयोग आत्मा है। उपयोग चिदानन्द त्रिकाल ध्रुव स्वरूप है, वह आत्मा, वह सम्यग्दर्शन का विषय है, ध्येय है। और व्यवहाररत्नत्रय है, वह उपयोग अर्थात् आत्मा में नहीं है। किस अपेक्षा से? त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से। परन्तु उसकी पर्याय में कर्ताकर्म के भेद उपजते हैं। मौजूद है। समझ में आया? पर्याय में वर्तमान में चारित्रदोष के कारण से, चारित्रगुण की कमजोरी—निर्बलता के कारण, क्या करनेयोग्य है? क्या नहीं करनेयोग्य? क्या आचरनेयोग्य है? क्या नहीं आचरनेयोग्य है? क्या श्रद्धा करनेयोग्य है? क्या श्रद्धा नहीं करनेयोग्य है? क्या अश्रद्धान? क्या श्रद्धान? क्या अज्ञान? क्या ज्ञान? क्या चारित्र? ऐसे विकल्प का भेद सहज ज्ञानी को चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में आ जाता है। वह भेद उपजता है, उसको व्यवहार कहते हैं। समझे? जिसे समयसार संवर अधिकार में कहा है कि उपयोग में उपयोग है, क्रोध में उपयोग नहीं। आता है न? उसका क्या अर्थ है? क्रोध में उपयोग नहीं क्यों कहा? कि वह ज्ञानानन्द ध्रुव स्वभाव है ज्ञायक, उसकी रुचि हुई, वह आत्मा। जिसको ज्ञायक रुचि न हुई और व्यवहाररत्नत्रय की रुचि जम गयी और निश्चय की रुचि छूट गयी, तो उसको क्रोध आया। आत्मा के स्वभाव के प्रति क्रोध आया। समझ में आता है? क्रोधादि में आत्मा नहीं, ऐसा कहा न? तो क्रोध का अर्थ क्या? मैं ज्ञायक चैतन्य हूँ, दृष्टा ध्रुव हूँ। भूतार्थ पदार्थ त्रिकाल शुद्ध हूँ—ऐसी दृष्टि हुई तब तो उसको क्रोध नहीं आता। क्रोध नहीं आता अर्थात्? उसको स्वभाव सन्मुख की अणगमा—अरुचि नहीं होती है। पर, स्वभा की रुचि छूटे और व्यवहाररत्नत्रय से लाभ माने तो उसको भगवान कहते हैं कि उसे स्वभाव के प्रति क्रोध आया है। वह स्वभाव का अनादर करता है। फूलचन्दजी!

सम्यग्दृष्टि स्वभाव ज्ञायक है, उसका आदर करते हैं। राग आता है, उसका आदर

नहीं, ज्ञान करते हैं परन्तु राग का आदर करते हैं कि राग से लाभ, तो उसको भगवान कहते हैं कि अनन्तानुबन्धी क्रोध आया। क्योंकि स्वभाव की अरुचि हुई। और राग की रुचि हुई, उसको अनन्तानुबन्धी क्रोध कहते हैं।

मुमुक्षु : राग का राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का राग है, राग का रंग है, राग की रुचि है, राग में जम गया है। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी रुचि नहीं रहीं। ऐसा करना, ऐसा करना, ऐसा करना। आकुल... आकुल... आकुल... राग... राग... राग... दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ऐसा विकल्प आता है। उस विकल्प का आदर और त्रिकाल निर्विकल्पस्वरूप का अनादर, उसको कहते हैं कि उस विकल्प में आत्मा नहीं है। वह विकल्प क्रोध है, स्वभाव की अरुचि है, उसमें आत्मा है नहीं। समझ में आया? यह बात किस अपेक्षा से है?

उसमें कहा था कि चिदानन्द भगवान ज्ञायकस्वरूप ध्रुव भूतार्थ है, उसकी रुचि जिसे छूट गयी है और व्यवहार की अकेली रुचि रही तो भगवान कहते हैं कि उसे स्वभाव का अनादर है। स्वभाव का अनुत्साह है। स्वभाव का सत्कार अंगीकार उसमें नहीं है। उसको अन्तर में व्यवहार का आदर हो गया है। तो उसको भगवान क्रोध कहते हैं। क्रोध अर्थात् स्वभाव की अरुचि। स्वभाव का अणगमा, स्वभाव का अप्रेम, स्वभाव का असत्कार, स्वभाव का अनादर। उसको मिथ्यादृष्टि का क्रोध कहते हैं।

यहाँ भगवान दूसरी बात कहते हैं। जो वहाँ स्वभाव की अरुचि कहते हैं, तो वह स्वभाव की रुचि तो यहाँ हो गयी है। स्वभाव की अरुचि ज्ञानी को है नहीं। तो स्वभाव की अरुचि नहीं है, स्वभाव का सत्कार है, आदर है। तो भी वर्तमान में राग चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान की भूमिका प्रमाण में उसको भेदाभेद का राग आ जाता है। जिसका वह आदर करते नहीं, जानते हैं। जानने का विषय है। समझ में आया? सेठ! जरा सूक्ष्म बात है। जानने का विषय है। बिल्कुल व्यवहारनय का विषय छोड़ दे तो मिथ्यादृष्टि है। और व्यवहारनय का आदर करके निश्चय को छोड़ दे तो मिथ्यादृष्टि है। वस्तु के स्वरूप को वह समझता नहीं।

इसलिए कहते हैं कि 'कर्ताकर्म के भेद उपजते हैं।' अभेददृष्टि होने पर भी

वर्तमान सम्यग्दर्शन की पर्याय का द्रव्य सन्मुख का अभेदपना होने पर भी चारित्रगुण की पर्याय के मन्दता के कारण से ऐसे भेदों के विकल्प चौथे, पाँचवें, छठवें में क्षायिक समकिती को भी उत्पन्न होते हैं। क्षायिक समकित चौथे में हो, पाँचवें में हो और छठे में भी क्षायिक समकित मुनि को होता है। उसे ऐसे भेद उपजते हैं। क्योंकि सर्वथा अभेद वीतरागपना प्रगट नहीं हुआ, तो भेदवासना जो अनादि काल से चली आती है, उसमें से इतना भेद रह गया है। दृष्टि में भेदवासना नहीं परन्तु अस्थिरता में भेद की वासना का इतना चारित्र का दोष रह गया है। चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में ऐसा भेद उपजता है।

'उन विकल्पों के होते हुए...' यह विकल्प चौथे गुणस्थान का, पाँचवें का और छठवें गुणस्थान का। 'होते हुए उन पुरुष तीर्थों को बारम्बार उपरोक्त गुणों को देखने से प्रगट... तात्पर्य है।' ... मूल पाठ में नहीं है। यहाँ तो यह लिया है कि चौथे, पाँचवें, छठवें में भूतार्थदृष्टि तो है। भूतार्थदृष्टि है, परन्तु चारित्र की कमी के कारण जो राग आता है, उसे सम्यग्ज्ञानी ज्ञानी को देखकर अपनी कमजोरी से उत्साह आ जाता है कि अहो! ज्ञानी है, वह धर्मात्मा है, वह तीर्थंकर है, वह केवली है, भगवान की प्रतिमा है—ऐसा राग अपनी कमजोरी के कारण से 'विकल्प के होते हुए उन पुरुष तीर्थों को...' तीर्थों को अर्थात् चौथी भूमिका, पाँचवीं भूमिका, छठवीं भूमिका यह सब तीर्थ कहलाते हैं। पर्याय पर्यायतीर्थ की यहाँ बात है। उसे सुदृष्टि के भाव से। बराबर सम्यग्ज्ञान से देखता है कि यह सम्यक्त्व चौथा गुणस्थान है, यह पाँचवाँ है, यह छठवाँ है, यह केवली है, यह केवली की स्थापना निक्षेप है। जैसी-जैसी जिसकी जितनी हद है, उतनी सम्यग्ज्ञान द्वारा देखता है।

'बारम्बार उन पूर्वोक्त गुणों को देखने से...' ज्ञान में विवेक है, सम्यग्ज्ञान में विवेक है। राग मैं नहीं और पर से मुझे लाभ नहीं होता। उपचार करते हैं। प्रगट उल्लास... अशुभराग टलता है और शुभराग बढ़ता है। तो स्वभाव के आश्रय से दृष्टि है तो अराग परिणति भी बढ़ती है। समझ में आया? स्वभाव के आश्रय से दृष्टि है तो अराग परिणति भी बढ़ती है और अशुभराग न होकर शुभराग होता है। उत्साह बढ़े चार

तीर्थ को देखकर। साधु, आर्यिका, श्रावक, श्राविका अथवा चौथा, पाँचवाँ और छठवीं भूमिका। जहाँ-जहाँ जिसकी योग्यता हो, वहाँ-वहाँ उसे ज्ञान का बहुमान आता है। समकिती को। वह विकल्प उठता है इसलिए। अभेददृष्टि होने पर भी शुभराग आता है, उत्साह बढ़ता है।

'जैसे द्वितीया के चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है...' देखो, दृष्टान्त लिया अमृतचन्द्राचार्य ने। चन्द्रमा है न चन्द्रमा? उगा है न? उगे को क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? समझे? देखो! सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हो, पंचम गुणस्थान हो, छठवें गुणस्थान में हो, उसके योग्य जो मुनि आदि को देखते हैं तो उन पर उसको प्रेम आता है। उनके कारण से नहीं। मुनि हैं तो... अपनी कमजोरी से है, पर के कारण से नहीं। यह केवली है तो मुझे मान आया, वह तो पर्यायबुद्धि हो गयी। वह पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। यहाँ तो अपनी निर्बलता के कारण ज्ञानी को व्यवहार से उल्लास आता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, प्रभावना इत्यादि शुभराग का उत्साह ज्ञानी को आता है। ज्ञानी जानता है कि यह मेरी निर्बलता है। परन्तु वह व्यवहार, निश्चय पूर्ण वीतराग न हो, तब तक आये बिना रहता नहीं। तथापि उसका आदर नहीं करता। जिसे समयसार में कहा... भाई! कि राग जो विकार व्यवहाररत्नत्रय है, वह व्याप्य है और पुद्गल व्यापक है। दृष्टि के विषय की अपेक्षा ले न! देखो! यह विवाद लोग यह करते हैं न कि वहाँ तो विकार को व्याप्यव्यापक पुद्गल का कहा है। समझ में आता है?

समयसार में... जितना विकार उत्पन्न होता है न, व्यवहाररत्नत्रय का। राग है न? तो राग तो पुद्गल व्यापक और व्याप्य पुद्गल की दशा कही है। किस अपेक्षा से? किस अपेक्षा से? वह तो (त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से) पुद्गल व्यापक। वह पुद्गल की पर्याय है द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से। यहाँ कहते हैं कि वही पर्याय तेरी है। फूलचन्दजी! देखो! इस कथन में लोग इतना विवाद करते हैं। वहाँ तो ऐसा कहा है कि विकार तो पुद्गलजन्य है, उसका पुद्गल स्वामी है। द्रव्यदृष्टि में तो ऐसा लिया है। वस्तुदृष्टि दृष्टि अभेद में है। उस अपेक्षा से तो जितना राग उत्पन्न होता है, देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण सब पुद्गल का परिणाम है, चैतन्य

का नहीं। किस अपेक्षा से ? स्वभाव की दृष्टि के जोर में जरा कमजोरी जो आ जाती है, वह पुद्गल का परिणाम है, ऐसा कह दिया है। समझ में आया ? यहाँ कहते हैं कि वह पुद्गल का परिणाम नहीं। वह तेरी पर्याय में कमजोरी से तुझमें आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। तो मूढ़ है। सांख्य कहता है कि वह प्रकृति का परिणाम है, प्रकृति का परिणाम है। अपने में राग-विकार आता है, वह तो प्रकृति का है। अरे! क्या प्रकृति का है ? वह तो अपेक्षा से बात कही है। भूतार्थ दृष्टि करने को चिदानन्द द्रव्यस्वभाव कारणप्रभु चिदानन्द शक्तिरूप है, उसकी दृष्टि में जितना भेद आता है, वह सब पुद्गल का परिणाम है। उसकी तू दृष्टि छोड़। उस अपेक्षा से कहा है। परन्तु सर्वथा कह दे कि मुझमें राग आता है, वह कर्म से उत्पन्न होता है, कर्म से राग होता है, तो वर्तमान स्वतन्त्र पर्याय को भी वह जानता नहीं। जानता नहीं।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में जो विकल्प व्यवहाररत्नत्रय का पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत को पुद्गल के परिणाम कहा है समयसार में (कहा है)। दृष्टि के अभेद विषय की अपेक्षा से। उसको यहाँ कहा कि तेरा परिणाम है। यहाँ तक कहा कि उस परिणाम से उत्साह बढ़े। ...भाई! भाषा देखो, एक कथन शैली। वहाँ कहा था कि स्वभाव की दृष्टि में व्यवहार अभूतार्थ है, वह पुद्गल के परिणाम है। चैतन्य को नुकसान करनेवाले हैं। वह जड़ की कृति है। पुद्गल उसका स्वामी है। छठवें गुणस्थान में व्यवहाररत्नत्रय सच्चा होता है। सच्चा व्यवहार होता है। अज्ञानी को तो व्यवहाररत्नत्रय है ही नहीं। व्यवहाररत्नत्रय पंच महाव्रत का परिणाम, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह सब जड़ का परिणाम है, वह जड़ है। आत्मा है ही नहीं। वह तो स्वभाव की दृष्टि जोर की अपेक्षा से कहा है।

और यहाँ कहा, खड़ा रह, धीर हो। तुझे कहते हैं कि तेरी पर्याय में, तेरी दशा में वीतरागता जितनी मन्द है, उतना जो राग आता है, उसमें अशुभ से बचता है तो शुभ से उत्साह बढ़े, ऐसा कहते हैं। वहाँ कहा था, वह पुद्गल का परिणाम है, यहाँ कहा कि शुभभाव से उत्साह बढ़ता है। ऐसा कहा। ...भाई! क्या कहा, समझ में आया ? यह तो

इतनी अपेक्षा भेद है, वस्तु की दृष्टि न हो तो उसमें गड़बड़ हो जाती है। ऐसा नहीं है अनेकान्त। जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा मानना चाहिए।

यहाँ कहते हैं, मुनि को, पंचम गुणस्थान में, चौथे में जो राग आता है, उसमें उत्साह तीर्थ के प्रति, सर्वज्ञ के प्रति, मुनियों के प्रति उसे शुभभाव से उत्साह आता है, ऐसा कहा। वहाँ कहा था कि शुभभाव पुद्गल के परिणाम हैं। व्याप्यव्यापक, वह चैतन्य के हैं ही नहीं। चैतन्य के व्याप्यव्यापक विकार हो तो कभी चैतन्य से कभी पृथक् पड़े नहीं। वह दृष्टि के अभेद की अपेक्षा से कहा था। यहाँ कहते हैं, तेरी पर्याय में तेरा अपराध है। राग आता है, वह तेरा अपराध है। यहाँ तो अपराध नहीं लेते हैं, परन्तु शुभभाव आता है, देव-गुरु-शास्त्र पर भक्ति, उत्साह, प्रेम, तीर्थभक्ति इत्यादि आता है तो उससे अशुभ घटकर, स्वभाव के आश्रय से अराग तो हुआ परन्तु शुभ में उत्साह आता है। ऐसा बताते हैं। समझ में आया?

जैसे द्वितीया के चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है। देखो! चन्द्रमा लिया, चन्द्रमा लिया, हों! चन्द्रमा है। दृष्टि में तो अभेद है। ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, एक भूतार्थ तीन काल में सहजस्वरूप कारणपरमात्मा, वह मैं ऐसी दृष्टि हुई। तो चन्द्रमा द्वितीया का हुआ। चन्द्रमा है। वह कोई पत्थर नहीं है, वह कोई लकड़ी नहीं है। चन्द्रमा है न? चन्द्रमा। चन्द्रमा की द्वितीया चन्द्रमा का अंश है न? चन्द्रमा की द्वितीया... बीज-दूज। वह चन्द्रमा की दूज है न? कोई तवे का टुकड़ा नहीं है न? तावड़ी समझते हैं? वह रोटी-रोटी बनती है न? तवा। मिट्टी की नहीं बनती है चूल्हे पर रखने को? तवा के माफिक होता है, मिट्टी की। मिट्टी की काली होती है न? तो उसका टुकड़ा है तो काला है। और चन्द्रमा का टुकड़ा तो उजला है। ऐसे द्वितीया के चन्द्रमा की कला। ज्ञायक चन्द्रमा मैं हूँ। मैं शुद्ध अखण्ड अभेद अखण्डानन्द शुद्ध हूँ। ऐसी दृष्टि हुई, उसे चन्द्रमा की द्वितीया कहा। चन्द्र—आत्मा, उसकी पर्याय खिली वह कला खिली है। स्वभाव चन्द्रमा। ज्ञायक मैं हूँ, शुद्ध हूँ, अभेद हूँ—ऐसा चन्द्रस्वभावस्वरूप आत्मा, उसकी दृष्टि तो अभेद है परन्तु उसको अभी शुभराग आता है। चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है। क्रम-क्रम से चौथा गुणस्थान छोड़कर पाँचवाँ, पाँचवाँ छोड़कर छठा, छठा छोड़कर सातवाँ। छोडीने समझे? छोड़कर के, छोड़कर के। समझ में आया?

द्वितीया के चन्द्रमा की कला बढ़ गयी। व्यवहार से बढ़ती जाती है, वह उपचार से कथन है। तेरा व्यवहार बतलाने को। छूट जाती है। क्रम.. क्रम.. क्रम से चौथे गुणस्थान में अमुक परिणाम हो, पाँचवें से बारह व्रत के हों, छठवें से पंच महाव्रत के हों। वहाँ उतना राग मन्द पड़ गया है। राग मन्द हो गया है। यद्यपि राग मन्द होता है वह तो स्वभाव के आश्रय से होता है परन्तु यहाँ व्यवहारनय का कथन है तो उसको कहते हैं कि राग तेरा तीर्थ में जैसे आगे बढ़ेगा, चौथे, पाँचवें, छठवें में, वैसे राग मन्द होता है। स्वभाव में उत्साह विशेष होता है।

द्वितीया के चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है। वैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र अमृतचन्द्रमा की कलाओं का कर्तव्य, अकर्तव्य भेदों से उन जीवों की बढ़वारी होती है। चन्द्रमा समान शीतल चिदानन्द का दर्शन, ज्ञान, चारित्र अभेद स्वरूप दृष्टि, ज्ञान, रमणता हुई है, फिर आगे जैसे-जैसे बढ़ता है चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, वैसे-वैसे उसके चारित्र के अंश बढ़ते जाते हैं। कर्ताकर्म भेदों से। यह तो भेदों से बढ़ता जाता है, ऐसा कहा है। यह तो निमित्त से कथन किया है। वास्तव में तो अभेद के आश्रय से वृद्धि होती है। गुणस्थान चढ़ने की दशा तो स्वभाव के आश्रय से ही होती है।

एक बार कहा था कि जो आत्मा कारण शुद्ध द्रव्य है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन टिक रहा है। उसके आश्रय से ज्ञानादि, चारित्र की वृद्धि होती है। कोई राग या निमित्त के आश्रय से धर्म उत्पन्न होता हो, धर्म टिकता हो, बढ़ता हो, वह तीन काल में है नहीं। यहाँ दूसरी अपेक्षा से कथन है। भेद बताना है। कोई कहे, सर्वथा अभेद वस्तु है तो ऐसा नहीं है। उसमें तीर्थ का भेद पड़ता है। चौथी, पाँचवीं, छठवीं (भूमिका)। पंचम गुणस्थान में भी असंख्य भेद हैं। असंख्य भेद हैं। पंचम गुणस्थान में भी असंख्य पर्याय निर्मलता का भेद है। छठवें गुणस्थान में भी तारतम्यता परिणाम की निर्मलता के अनेक भेद हैं। तो सब भेद यथार्थ हैं। वस्तु पर्याय में यथार्थ है। वस्तु अभेद है दृष्टि की अपेक्षा से। तो उसमें पर्याय का भेद बिल्कुल नहीं है, ऐसा नहीं है।

कहते हैं, जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, चौथे, पाँचवें, छठवें, छठवें में भी जैसे

निर्मलता बढ़ती है। वैसे-वैसे उसकी निर्मलता की पर्यायें, भेदों में उसमें बढ़वारी होती है। भेद क्या लिया? ... समयसार में १२वीं गाथा में कहा है न? निश्चय का विषय तो अभेद ही है, भूतार्थ है। परन्तु फिर १२वीं गाथा में लिया कि एक-एक करके अनेक पर्यायों का लक्ष्य करना, वह व्यवहारनय है। एक-एक भाव करते कि चौथा, यह पाँचवाँ, यह छठवाँ। पर्याय निर्मल हुई। पहले थोड़ी थी, बाद में निर्मल हुई। थोड़ी निर्मल, फिर निर्मल, वह सब निर्मल के अंशों का विषय करना, वह व्यवहारनय है। और अभेद का विषय करना, वह निश्चयनय है।

कहते हैं, भेदों। ज्ञानी को अभेद की अन्तर्दृष्टि हुई, तो भी चौथे से पाँचवें में कैसे आया? पाँचवें से छठवें में कितनी निर्मलता हुई? पाँचवें में भी पहली प्रतिमा से दूसरी में, तीसरी में जितनी-जितनी निर्मलता के अनेक अंश उघड़ते हैं। उसे व्यवहारनय बराबर जानता है। एक स्वरूप वह निश्चय का विषय है। गुण की पर्याय के अनेक भेदों के अंश निर्मल होते जाते हैं और उनका ज्ञान करना, वह व्यवहार का विषय है। समझ में आया? सर्वथा एक ही विषय हो और अनेकपने के अंश का ख्याल न रखे कि पहले की अपेक्षा वर्तमान निर्मलता कितनी बढ़ी, फिर निर्मलता कितनी बढ़ी? यह कम करते हुए बढ़ी, उसका ख्याल करना, वह व्यवहारनय का विषय है। क्योंकि अनेकान्त आती है। अनेकता निश्चय का विषय नहीं। एकता स्वरूप में अभेद हुआ, वह निश्चय का विषय है। उसमें निर्मल की पर्याय का अनेकता का विषय लक्ष्य करना, वह भेद का विषय, व्यवहारनय का विषय है। वह बतलाते हैं, बराबर ख्याल आता है कि व्यवहारनय का विषय कितना बढ़ता है, निर्मलता के अंश कितनी अनेकता बढ़ती है, वह भी वस्तु का पर्याय धर्म है। सर्वथा अभेद-अभेद है, ऐसी वस्तु नहीं। ...समझे? यह १२वीं गाथा में आया था न?

सुद्धो सुद्धा देसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

जो उत्कृष्ट भाव में नहीं है, उसे निर्मल पर्यायें पहले की अपेक्षा बढ़ी कितनी? बढ़ती है स्वभाव के आश्रय से। निर्मलता बढ़ती है द्रव्य कारण कारणशक्ति के आश्रय

से परन्तु अभेद, वह तो निश्चय का विषय हुआ। परन्तु पहले की अपेक्षा फिर अंश बढ़ा, उसका विचार, उसका ज्ञान करना। अनेक पर्यायों का ज्ञान, वह व्यवहार का विषय है। समझ में आया? पण्डितजी! सूक्ष्म बात है। सूक्ष्म नहीं वही सत्य है। सूक्ष्म नहीं वही है। परन्तु लोग बाहर से मान लेते हैं, तो सच्ची समझ तो करो कि क्या चीज़ है? क्या चीज़ है? अभेद चीज़ हुई कि अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड है, मैं द्रव्यस्वभाव हूँ, ऐसी प्रतीति हुई। परन्तु प्रतीति होने के बाद जितना ज्ञान-चारित्र का अंश निर्मल होता है, उसका ज्ञान करना, वह यथार्थ है या अयथार्थ है? ज्ञान करना तो यथार्थ है। उसका आदर करना नहीं। दूसरी चीज़ है।

वह कहते हैं, भेदों से ... बढ़वारी होती है। पहले से चौथे से पाँचवें, पाँचवें के अंश जितने निर्मल भेद पड़े, उन्हें व्यवहारनय बराबर जानता है कि इतनी मेरी भूमिका है। चौथे गुणस्थानवाला ऐसा मान न ले कि मैं वीतराग हो गया। दृष्टि का विषय तो भूतार्थ है, अभेद है, कारणपरमात्मा पूर्ण है तो पर्याय में ऐसा मान ले कि मैं वीतराग हो गया? नहीं। पर्याय में मानते हैं कि मैं पामर हूँ। द्रव्य से प्रभु हूँ, पर्याय में पामर हूँ। समझ में आता है? यह स्वामी कार्तिकेय में है। आगे आयेगा। अनन्तानुबन्धी गयी और द्रव्यदृष्टि हुई तो... स्वभाव में प्रभुता भरी है, प्रतीति हुई कि प्रभु अभेद अखण्ड हूँ। परन्तु पर्याय निर्बल है तो अनन्तानुबन्धी गयी... तृण जैसा हूँ, पामर हूँ। प्रभु के समक्ष मैं पामर हूँ। सन्तों के समक्ष मैं पामर हूँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...सम्यग्ज्ञान है।

मुमुक्षु : ....पर्याय को भूल जाये तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल जाये तो मिथ्याज्ञान हो गया। दृष्टि का विषय तो अभेद ही है। विकार-फिकार सब पुद्गल का है, ऐसा कहते हैं। क्या पुद्गल का है? तेरी पर्याय में जितना तेरा अपराध है और निर्मलता जितनी खिली और जितना अपराध है, उसका बराबर ज्ञान करना, बराबर ज्ञान करना। प्रभुता तत्त्व में मानना और पर्याय में कमजोरी हो तो कमजोरी में पामरता जानना। ओहो! धन्य सन्तों की चारित्रदशा, पूर्ण दशा! तीन

कषाय का नाश होकर पुरुषार्थ उग्र हुआ है। जिसका शुक्लध्यान होकर केवलज्ञान हो गया। तो उसकी पर्याय के समक्ष मेरी पर्याय पामर है। अनन्त केवलज्ञान, दर्शन, आनन्द परिपूर्ण व्यक्त प्रगट परिपूर्ण जिसकी दशा प्रगट हुई। परिपूर्ण दृष्टि का विषय परिपूर्ण द्रव्य है। परन्तु पर्याय परिपूर्ण जब तक न हो, तब तक ज्ञानी व्यवहारनय से भेद को बराबर अवलोकता है। समझ में आया? और चौथे गुणस्थानवाला, पाँचवें गुणस्थानवाला, अरे..! छठवाँ गुणस्थानवाला भी जब तक अपने केवलज्ञान न हो, (तब तक) मैं पामर हूँ। मन्द पुरुषार्थ, मन्द पुरुषार्थ, पुरुषार्थ बहुत मन्द है। समझ में आया? वह कर्म का दोष नहीं निकालते कि मेरे कर्म है, क्या करें भैया? हमारी कमजोरी है, हमारी पामरता है कि स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता हूँ। स्वरूप में स्थिर होकर मैं राग तोड़ नहीं सकता हूँ। राग तो उसके कारण से टूटता है। परन्तु स्वरूप में पुरुषार्थ करूँ परन्तु मेरा पुरुषार्थ बहुत मन्द है। मेरा पुरुषार्थ मन्द है। तो मन्द और जितना उग्र हुआ, सब भेदों को जानना, उसका नाम व्यवहारनय का विषय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण-फारण स्वयंसिद्ध है। कौन रोके? धूल रोके। कोई रोकता नहीं। उग्र पुरुषार्थ नहीं, अपने प्रमाद के कारण से नहीं होता। कर्म के कारण से नहीं होता, कहते हैं न? चौथे गुणस्थानवाला व्रत क्यों नहीं ले सकता है? चारित्रमोह का उदय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म के ऊपर पटकना, महा मूढ़ दृष्टि है। वह तो कथन की शैली। चारित्रमोह के उदय के कारण समकिती व्रत नहीं ले सकता। यह तो निमित्त की प्रधानता का कथन है। वस्तु में प्रधानता ऐसी है ही नहीं।

कहते हैं, भेदों से ... बढ़वारी होती है। ज्ञानी जानते हैं कि अहो! पर्याय में प्रभुता प्रगट होनी चाहिए। मैं प्रभु भूतार्थ प्रभुत्व... मेरी प्रभुत्वशक्ति है। ४७ शक्तियाँ आती है, समयसार में आती है। ४७ शक्तियाँ आती हैं। आत्मा प्रभु है। तीन काल प्रभु है, तीन काल प्रभु है। स्वभाव में पूर्ण प्रभु है। उसकी प्रभुत्वशक्ति आती है, ४७ शक्ति में। मैं

पूर्ण प्रभु हूँ अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु हूँ—ऐसी प्रतीति हुई परन्तु प्रभुता प्रगट पर्याय में जब तक न हो, उसको जानते हैं... मेरा अपराध है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। नीच नहीं परन्तु कायर, कायर, कायर। पामर नहीं आता है? क्या है हिन्दी भाषा में? रंक, रंक। मैं मेरी पर्याय में रंक हूँ। परन्तु वह इस अपेक्षा से कहा। मेरी पर्याय पुरुषार्थ में उग्रता नहीं है तो मेरी पर्याय का अपराध है। मैं रंक हूँ ऐसा। हमारी भाषा में पामर कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न! विकल्प है, उससे कहीं उग्र पुरुषार्थ होता है? विकल्प तो राग है। विकल्प हुआ, वह तो राग है। राग से पुरुषार्थ होता नहीं। स्वभाव के अवलम्बन से सहज जितना होता है, उतना जानते हैं। नहीं होता है, उतना अपना प्रमाद है, ऐसा भी जानते हैं। उसका नाम व्यवहार का विषय है। यह व्यवहार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग आया कि मैं उग्र पुरुषार्थ करूँ। राग से उग्र पुरुषार्थ होता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। राग से नहीं होती। यहाँ तो दूसरी बात कहते हैं। वर्तमान कमजोरी है। नबळाई समझते हो। कमजोरी। पामरता अर्थात् कमजोरी। हमारी भाषा में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निर्बल। मैं निर्बल हूँ। कर्म के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। मेरी पर्याय की निर्बलता, निर्बलता, कमजोरी है। प्रभुता द्रव्य में है। पर्याय में निर्बलता है। दोनों का ज्ञान ज्ञानी को एक समय में साथ में प्रमाणज्ञान है। द्रव्य का ज्ञान भूले तो मूढ़ है और पर्याय की जितनी दशा है, उससे ज्यादा मान ले तो भी दृष्टि

सच्ची रहती नहीं। 'ज्यां-ज्यां जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' जैसा है, वैसा उसे ज्ञान यथार्थ करना चाहिए।

भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि कर्ताकर्म भेदों से उन जीवों को बढ़वारी होती है। पहले जो निर्मलता थोड़ी थी, फिर बढ़ी, थोड़ी और बढ़ी, यह तो भेद हो गयो। समझे? वह व्यवहार हो गया। पहले चौथा, बाद में पाँचवाँ आया, वह तो व्यवहार हो गया। पाँचवें से छठवें में आया, वह व्यवहार हो गया। अभेद जितना एकाकार हुआ, उतना निश्चय है। भेद का ज्ञान रखना और अभेद का ज्ञान रखना, वह दोनों प्रमाणज्ञान का विषय है।

'फिर उन जीवों के शनै-शनै...' धीरे-धीरे। धीरे कहते हैं न? धीरे-धीरे। 'मोहरूप महामल्ल का मूल सत्ता से विनाश होता है।' देखो! धर्मी जीव को क्रम-क्रम से स्वभाव के अवलम्बन से राग की तीव्रता हो, उसका नाश होता है। चारित्रमोह में कुछ दोष था, उसका नाश होता है। स्वभाव के अवलम्बन से जो स्थिर न रह सके तो उतना शुभभाव आता है। शुभभाव आने पर निर्मल ज्ञान की पर्यायें जो पहले की अपेक्षा विशेष हुई, उन सबका विवेक करता जाता है और स्वभाव का आश्रय छोड़ता नहीं। धीरे-धीरे चारित्र निर्मल होता जाता है और चारित्रमोह का नाश होता जाता है। यहाँ चारित्र निर्मल हुआ, ऐसे चारित्रमोह निमित्तरूप से जो कर्म था, वह कर्म के कारण से नाश होता जाता है। चारित्रमोह कहा है। मिथ्यात्व नहीं। महामोह शब्द प्रयोग किया है, वह चारित्र की अपेक्षा से है, मिथ्यात्व की अपेक्षा से नहीं। क्योंकि व्यवहारनयावलम्बी अर्थात् निश्चयनय तो अन्दर है। क्योंकि व्यवहारनय किसे है? कि जिसे निश्चय हो उसे है। इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव तो है परन्तु स्वरूप की रमणता में कचास है। उस कचास की जितनी निर्मलता बढ़ती जाती है, उसमें बराबर विवेक करता जाता है। करते... करते... करते... करते राग घटता जाता है। समझ में आया? अमुक चीज़ छोड़ी, इसलिए राग घटता जाता है, ऐसी वस्तु नहीं है। ऐसी चीज़ छोड़ दो तो राग घट जायेगा। क्या घट जायेगा? मिथ्यात्व हो जायेगा। पण्डितजी! ऐसी वस्तु छोड़ो। जिसके ऊपर राग है, वह वस्तु छोड़ो। क्या धूल छोड़े। आत्मा में परवस्तु का ग्रहण-त्याग तीन काल में है नहीं। तीन काल तीन लोक में आत्मा में परवस्तु का ग्रहण-त्याग है ही नहीं।

राग का भी त्याग मैं करूँ, ऐसा वस्तु का स्वभाव है नहीं। वस्तु के स्वभाव में प्रयत्न करते-करते राग घट जाता है। राग घटता है तो उस प्रकार के राग का जो निमित्त है, उसका अवलम्बन छूट जाता है। उसका अवलम्बन छूट जाता है।

कहते हैं, महामोहमल्ल का मूल सत्ता में से विनाश होता है। स्वभाव की दृष्टि रखकर शुभ आया और निर्मलता जितनी बढ़ी, दोनों का विवेक चला, राग घटता जाता है। उसके राग की बढ़वारी होती नहीं। समझ में आता है? पर की चीज़ से नहीं। ऐसा खाना, ऐसा पीना। वह तो सम्यग्दृष्टि हुआ, बाद में उसको जो निमित्त मिलता है, वह पूर्व के पुण्य से मिलता है। उसको ऐसा विकल्प नहीं करना पड़ता। कैसा होगा? क्या मिलेगा? कैसे मिलेगा? कब मिलेगा? सम्यग्दर्शन में वर्तमान विकल्प उठता है, उसकी दूसरे समय में समकिती की भावना नहीं है। जो राग आता है व्यवहाररत्नत्रय का, वह दूसरे समय हो, ऐसी भावना नहीं है। क्योंकि वह तो आस्रव की भावना है। समकित दृष्टि आस्रव की भावना नहीं करते। तो फिर आस्रव का निमित्त परचीज़, ऐसा कल मिलेगा, परसों मिलेगा, ऐसा मिलेगा, ऐसी मैं तैयारी करूँ। तू किसकी तैयारी करेगा? सब परद्रव्य की पर्याय की कर्तृत्वबुद्धि है। सेठ!

बात है यह मूल विसर गयी है। मूल बात विसर गयी और बाहर के कृत्रिम खोखा रहे खोखा। खाली खोखा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, खोखला। लो, तुम्हारे काकाजी कहते हैं, खोखला रहे खोखला। खोखला रहे।

भाई! यह तो चैतन्यदल सनातन वस्तु है। जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन, वस्तुधर्म, विश्वधर्म। विश्वधर्म का अर्थ वस्तु का जो स्वभाव, वह धर्म। ऐसे चैतन्य को जो अनन्त गुण के पिण्ड को अवलम्बन किया, उसकी पर्याय के जितने निर्मल भेद बढ़े और भेद जितने बढ़े उनके प्रमाण में राग की मन्दता के प्रकार भी घटते गये। अशुभराग की उग्रता के प्रकार घटते गये और शुभराग की मन्दता का प्रकार आने लगा। पाँचवें (गुणस्थान में) बारह व्रत का राग था, तब छठवें में पंच महाव्रत का राग। अर्थात् राग की मन्दता

में फेरफार होने लगा, निर्मलता बढ़ने लगी, ऐसे व्यवहारनय से यथार्थ ज्ञान करता है। पश्चात् उसे अचारित्र के राग का बहुत नाश हो जाता है।

'किसी एक काल में...' यह अभी जीव की बात करते हैं। कहीं अभी प्रमाद रह जाये। अभी प्रमाद है, मुनि है। 'अज्ञानता के आवेश से...' अज्ञान शब्द से अज्ञान, मिथ्यात्व की बात नहीं। वह अज्ञान है, देखो! छोटेलालजी! अज्ञान के साथ आवेश, ऐसा शब्द पड़ा है। २४८ पृष्ठ है। किसी एक काल में क्यों लिया? है तो सम्यग्दृष्टि। महामोह की सत्ता का मूल से विनाश हुआ। सर्वथा चारित्रमोह का नाश नहीं हुआ है। समझ में आया? शब्द में अन्तर है जरा। सर्वथा चारित्रमोह का नाश हो गया हो तो 'किसी एक काल में अज्ञानता के आवेश से प्रमाद की आधीनता से उन्हीं जीवों के आत्मधर्म की शिथिलता है?' सम्यक् छठवीं भूमिका मुनि की हो तो भी कभी उसको प्रमाद आता है। अज्ञानता अर्थात् अजानपना। अज्ञान माने मिथ्यात्व नहीं। मिथ्यात्व की बात नहीं है। चारित्र तो निर्मल हुआ है, छठवीं भूमिका हुई है। अल्प प्रमाद के कारण से, प्रमाद के आवेश के कारण, प्रमाद की आधीनता से उन्हीं जीवों के आत्मधर्म की शिथिलता है। जरा प्रमाद परिणाम छठवें गुणस्थान में रह गये।

'फिर आत्मा को न्यायमार्ग में चलाने के लिये आपको प्रचण्ड दण्ड देते हैं।' देखो! यह व्यवहारनय के कथन। क्रम बदलता नहीं, हों! वह तो क्रमपूर्वक पर्याय होती है, परन्तु उसको ऐसा विकल्प आता है कि अरे! मेरी भूमिका में ऐसा प्रमाद नहीं होना चाहिए। ऐसा प्रमाद नहीं होना चाहिए। उसको (आपको) दण्ड देते हैं। २४८ पृष्ठ पर है। २४८ में ऊपर से तीसरी पंक्ति। २४८ पृष्ठ पर ऊपर से तीसरी पंक्ति, नीचे से नहीं। हिन्दी। देखो! उस शब्द... शब्द में बड़ा न्याय पड़ा है।

'किसी काल में अज्ञानता के आवेश से प्रमाद के आधीनता से...' ऐसा नहीं लिया कि मुनि को कोई कर्म का ऐसा उदय आया कि उसकी आधीनता से उसको राग आया। ऐसा नहीं है। अपनी प्रमाद परिणति है तो उससे राग आ जाता है। अपनी प्रमाद परिणति से। 'तो उन्हीं जीवों को आत्मधर्म की शिथिलता है।' उस समय आत्मधर्म की उग्रता नहीं है। उग्रता नहीं, शिथिलता है। उस शिथिलता का कारण प्रमाद के आधीनपना। कर्म ने उसको आधीन किया है, ऐसी बात तीन काल में है नहीं। ऐसा कोई कर्म का

निद्धत, निकाचित उदय आ गया तो मुनि को भी नीचे... ऐसा नहीं है। कोई कहते हैं न, ग्यारहवीं भूमिका है न? ग्यारहवाँ गुणस्थान, ग्यारहवाँ गुणस्थान से गिरता है तो कर्म का ऐसा जोर आता है, इसलिए गिरते हैं। सब झूठ बात है। अपनी पर्याय के कारण से नीचे उतरते हैं। कर्म के कारण से नहीं। पण्डितजी!

मुमुक्षु : उपशान्त मोह....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपशान्त मोह ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे गिर जाते हैं। क्या कारण है? कोई कहता है कि भैया, उसका तो पुरुषार्थ था, वीतराग था, कर्म का ऐसा उदय आया तो नीचे गिरा। झूठ बात है। क्या कर्म का उदय? आत्मा की पर्याय में छूता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहते हैं मूढ़ अज्ञानी। अज्ञानी ऐसा कहते हैं, वस्तु में ऐसा नहीं है। वह तो कहते हैं। यहाँ कहा, क्या कहा? 'आत्मधर्म की शिथिलता है।' अपने कारण से शिथिलता है, छठवें गुणस्थान में। तो ग्यारहवें से गिरता है, वह अपनी पर्याय के कारण गिरता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अपने स्वरूप से... थोड़ा प्रमाद...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन चढ़ाता है? कोई चढ़ाता नहीं, कोई गिराता नहीं। अपनी पर्याय में उग्रता होती थी, वह मन्द हो गयी, अपने कारण से। कर्म को निमित्त कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने कारण से।

मुमुक्षु : जोर आत्मा का रहता है, कभी....

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठ बात है। कहते हैं, अज्ञानी कहते हैं। परद्रव्य का कभी आत्मा में जोर और कभी आत्मा का आत्मा में जोर—ऐसा कहाँ से लाया? सब मूल में

भूल है, मूल में भूल है। पूरी बात ही बदल गयी है। ग्यारहवें गुणस्थान से क्यों गिरा? भैया! वह तो वीतराग था, उपशान्त मोह था। परन्तु कर्म का ऐसा उदय आया तो नीचे गिर आया, दसवें में आ गया। ऐसा नहीं है। उपशान्त मोह की पर्याय की उतनी ही पर्याय की अपनी योग्यता थी। और ... पहले मन्द पुरुषार्थ से ऊपर चढ़ा है। तो मन्द की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। प्रमाद हुआ तो दसवें में आ गया। कर्म के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ की कमजोरी रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ की कमजोरी रही। यह बात है। और कर्म के सिर पर डालते हैं। अनादि से अज्ञानी को परद्रव्य में आरोप करने की आदत पड़ गयी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो अपने पुरुषार्थ की कमजोरी थी, उग्र पुरुषार्थ नहीं था। उग्र पुरुषार्थ नहीं था तो नीचे गिरता है। वह भी तुमको समझाने की बात है। व्यवहार है। वास्तव में तो यह है कि नीचे से पुरुषार्थ मन्द था तो ऊपर से गिरा, वह भी नहीं। वह भी व्यवहार है। वह पर्याय उतनी स्वतन्त्र है। समझ में आता है? छोटालाल! नीचे पुरुषार्थ मन्द था, इसलिए नीचे गिरा। वह भी एक पूर्वापर पर्याय का अपेक्षित कथन है। स्वतन्त्र पर्याय होने की योग्यता थी तो ग्यारहवें से दसवें में आया। पूर्व का मन्द था, वह भी व्यवहार का अपेक्षित कथन है। निरपेक्ष कथन तो वर्तमान पर्याय की योग्यता से आ गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समय-समय की। वही बात है। वस्तुस्थिति ऐसी है। वस्तुस्थिति के बिना गड़बड़ हो गयी है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे ही कहते हैं, बहुत लोग कहते हैं। वह प्रश्न चला था। यहाँ बहुत आते हैं, यहाँ ऐसा कहते हैं, फलाना ऐसा कहते हैं, फलाना महाराज ऐसा कहते हैं। तुम कहते हो कि अपराध, अपराध। ग्यारहवें में तो वीतराग हुआ। वहाँ तो उदय भी नहीं है तो अपराध कहाँ से हुआ? वीतराग तो अन्तर्मुहूर्त हुआ। दूसरे समय

की पर्याय अपने कारण से हुई या पर के कारण से हुई? अपने कारण से नीचे आता है। आत्मधर्म की शिथिलता है।

यहाँ कहते हैं। छठवें गुणस्थान की बात चलती है। आत्मधर्म की शिथिलता है। गोम्मटसार में ऐसा आता है, गोम्मटसार में। चारित्रमोह का तीव्र उदय हो तो छठवाँ, मन्द उदय हो तो सप्तम। गोम्मटसार करणानुयोग। वह तो निमित्त का कथन है। अपनी उग्रता तो सप्तम और मन्दता तो छठवाँ।

मुमुक्षु : ....कमजोरी क्यों हो रही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने कारण से कमजोरी (होती है)। वह सत् हुआ उसका कारण क्या? है पर्याय उसका कारण क्या? अहेतुक पर्याय है। समझने की बात है। अपनी पर्याय सत्रूप हीन हुई उसका कारण क्या? कारण का कारण क्या? वह तो स्वतन्त्र है। कारण-फारण पर का क्या है? वह सब बहुत घोटाला है। वह कहते हैं कि अपनी शिथिलता है तो कर्म का निमित्त है। कर्म का निमित्त का आश्रय क्यों किया? अपने पुरुषार्थ की कमजोरी से। कमजोरी क्यों हुई? अपने कारण से। फिर कुछ लोग कहते हैं, चक्र दोष आया है। क्या कहते हैं? ... दोष। ... यहाँ तो समय-समय की अपनी पर्याय की कमजोरी से-कारण से, उग्रता के कारण से... है। कोई दूसरा कारण कहते हैं, वह अपेक्षित कथन है, अपेक्षित व्यवहारनय का कथन है। वस्तु की निरपेक्ष स्थिति के बाद से अपेक्षित कथन समझ जाता है।

यहाँ कहते हैं, देखो! अमृतचन्द्राचार्य क्या कहते हैं? ऐसा नहीं लिया। 'अज्ञानता के आवेश से प्रमाद के आधीनता से उन्हीं जीवों को आत्मधर्म में शिथिलता है।' कर्म का उदय तीव्र आया तो शिथिलता है, ऐसा है नहीं। कठिन बात भाई! जगत को समय-समय का स्वतन्त्र रुचता नहीं है। गोठता नहीं समझे? गोठता नहीं—रुचता नहीं। हमारी काठियावाड़ी में गोठतुं नहीं। समय-समय की स्वतन्त्र वर्तमान और त्रिकाल दोनों की साथ में सन्धि है। वर्तमान और त्रिकाल, वर्तमान और त्रिकाल, वर्तमान और त्रिकाल। उसके साथ सन्धि है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। भूत, भविष्य की बात करना, वह तो अपेक्षित व्यवहारनय का कथन है। वस्तुस्थिति ऐसी है।

भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, मुनि को भी आत्मा की दृष्टि होने पर भी चारित्र-मोह का बहुत नाश स्वभाव की उग्रता से किया होने पर भी थोड़े प्रमाद के कारण आत्मधर्म की शिथिलता हो जाती है। अभी श्रेणी मांडकर स्थिर हुआ नहीं। देखो! अपना अपराध है। समय-समय का अपराध भी अपना और समय-समय का निरपराध भी अपना। यह समझे बिना इसकी स्वतन्त्र दृष्टि कभी होती नहीं। समझे? गोम्मटसार में तो बड़ी बात आती है। आत्मा में विकार होता है, निमित्त चीज़ कौन है, उसका ख्याल कराने को बात कही है। कोई ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुक जाता है, ऐसा पाठ आता है उसमें। नहीं आता है? ज्ञानावरणीय का अर्थ करो तो। ज्ञानावरणीय—ज्ञान को रोके, रोके उसका नाम ज्ञानावरणीय। क्या? आत्मा के ज्ञान को परद्रव्य रोकता है? परद्रव्य स्वद्रव्य को रोकता है? तीन काल में नहीं बनता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थ लिखा है। ज्ञानावरणीय क्यों कहा? किस अपेक्षा से कहा, वह वह समझने की बात है। अपने ज्ञान की परिणति अपनी कमजोरी से हीनरूप परिणमी तो उसमें ज्ञानावरणीय को निमित्त कहा। निमित्त, नैमित्तिक का ज्ञान कराने को है। निमित्त किस प्रकार का था, उसका ज्ञान कराने को है। नहीं कि उस चीज़ से आत्मा में कुछ हुआ है, तो फिर एक द्रव्य हो जाता है। ऐसा कोई कहे कि ईश्वर परद्रव्य को करता है। ऐसे कोई जैन कहे कि कर्म परद्रव्य ने मुझमें काम किया। सब एक हो जाता है। ईश्वर परद्रव्य का कर्ता कहो, और तुम कहते हो कि मैंने शरीर को हिलाया, मैंने परजीव की दया पालन की। दोनों मिथ्यादृष्टि एक समान हैं। दोनों की एक ही मान्यता है। कुछ अन्तर नहीं है। जैन में रहकर ऐसा मानता है कि जड़ की पर्याय मैं करता हूँ। मैं निमित्त हूँ तो जड़ की पर्याय होती है। ईश्वरकर्ता (माननेवाला) कहता है कि ईश्वर है तो उसने जगत की रचना की। यह कहता है, पर्याय की रचना का कर्ता मैं। वह कहता है, त्रिकाल द्रव्य का रचनाकर्ता मैं। त्रिकाली द्रव्य और पर्याय किसी में भी रचनाकर्ता बनो, दोनों की एक दृष्टि है। समझ में आया?

त्रिकाली द्रव्य स्वतन्त्र है, सत् है। इसी प्रकार उसकी वर्तमान पर्याय भी स्वतन्त्र

सत् है। उसका दूसरा द्रव्य कर्ता कहो, कोई त्रिकाली द्रव्य का कर्ता कहे तो मूढ़ है। वैसे ही वर्तमान परद्रव्य की पर्याय का कर्ता परद्रव्य कर्ता कहे तो वह मूढ़ है। मिथ्यादृष्टि है। उसे जैनदर्शन क्या है, वस्तुदर्शन, जैनदर्शन अर्थात् (वस्तुदर्शन) उसकी उसे खबर नहीं है। समझ में आता है?

यहाँ कहते हैं कि जो मुनि है, उसको भी आत्मधर्म की शिथिलता हो जाती है, अपने प्रमाद के कारण से। दूसरे के कारण से नहीं। कथन तो अपेक्षा का बहुत (आता है)। उसका मर्म क्या है? वीतरागता तो ... है। शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। तो वह करवाता है, वह करवाता है, तो वह छूटे तो छूटेगा। अपने हाथ की बात रही नहीं। ऐसा है नहीं। पण्डित लोग ऐसा कहते हैं, सुनो! पण्डित लोग ऐसा कहते हैं। स्फटिक है न? स्फटिक, स्फटिक। देखो भैया! जैसा काला-लाल डंक लगता है, उसमें पर्याय हो जाती है। ऐसा कर्म का निमित्त जैसा आया वैसा आत्मा में रंग हो जाता है। झूठ बात है। उस स्फटिक की वर्तमान योग्यता से रंग की लाली देखी जाती है। डंक के कारण से नहीं। डंक के कारण से हो तो डंक लकड़ी के नीचे रखो। ....

लकड़ी का दृष्टान्त आया है, जयसेनाचार्य का। यदि लकड़ी में डंक रखो तो नहीं होता है। क्योंकि उसकी योग्यता नहीं है। स्फटिक की वर्तमान लाल, हरी आदि पर्याय होने की योग्यता है और डंक को निमित्त कहा जाता है। डंक से हरी पर्याय हुई नहीं, काली पर्याय तीन काल में हुई नहीं। वह तो स्फटिक की वर्तमान परिणति की योग्यता से हुई है। उसी प्रकार आत्मा में (वह) डंक निमित्त को हटा दो, स्फटिक से निमित्त को हटा दो। ऐसे कर्म के निमित्त को हटा दो। क्या हटावे? निमित्त हटाना-जोड़ना तेरे अधिकार की बात है? निमित्त को हटाना, वह मिथ्यादृष्टि है। निमित्त को जुटाना, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। परद्रव्य को कोई जुटा सकता है, तीन काल में?

अपने द्रव्य स्वभाव में जितनी शिथिलता हुई, उतनी राग की परिणति हुई। उसमें कर्म का डंक का निमित्त कहा जाता है। परन्तु निमित्त है तो हुआ तो निमित्त को हटाओ। परद्रव्य को हटाओ। तेरी ताकत है? राग को हटाओ तेरी ताकत नहीं, तेरे राग को हटाने की तेरी ताकत नहीं। वह तो स्वभाव का प्रयत्न करते हैं तो राग हट जाता है, पर्याय में

से व्यय हो जाता है। वर्णीजी! ऐसा है। अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है तो उत्पन्न का व्यय कौन कर सकता है? वह तो स्वभाव का प्रयत्न होता है तो व्यय हो जाता है। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। निमित्त से हुआ तो निमित्त को हटाओ। बड़ी एकत्वबुद्धि। द्रव्य की एक समय की पर्याय के साथ पर की एकत्वबुद्धि। तो पृथक् विभक्त नहीं रहता। निमित्त से पृथक् है और राग से भी पृथक् है। ऐसी स्वभाव की दृष्टि बिना सम्यग्दर्शन कभी तीन काल में होता नहीं। ब्रह्मचारीजी! बात ऐसी है। लो, कोई भी न्याय लो, चर्चा करो। ऐसा का ऐसा मान लेना अन्ध श्रद्धा से, ऐसी चीज़ है जैनदर्शन? हमको मालूम नहीं पड़ता, भैया! ... भगवान कहे वह सच्चा। क्या भगवान कहे वह सच्चा? ऐसा कितने ही कहते हैं न? हमको तो तो कुछ समझ नहीं पड़ती। भगवान कहे वह (सच्चा)। भगवान कहे परन्तु तेरे ख्याल में न आवे तो भगवान कहाँ सच्चे तेरे लिये हुए? भगवान तो उनके घर के सच्चे रहे। तुझे कोई भगवान दे देते हैं? त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ परमात्मा की सभा में अनन्त बार गया। दे देते हैं? किसी के पास है? तेरा आत्मा उनके पास है? क्या देते हैं? तेरे ख्याल में आया तो फिर निमित्त में ऐसा कहा जाता है कि तिन्नाणं, तारयाणं... हे नाथ! आप तिरे और हमें तिराया। यह तो आरोप का कथन है। ....!

यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, देखो! यह मुनि सन्त जंगल में रहकर विकल्प उठा था। ध्यान में मस्त आनन्द में अमृत का अनुभव करते थे। छठवीं भूमिका का अमृत अनुभव। सहजानन्द शान्त उपशान्त रस। छठवीं भूमिका का उपशान्त रस, निर्विकल्प आनन्द रस का अनुभव करते-करते विकल्प उठा। यह मार्ग... यह मार्ग... यह मार्ग। समझ में आया? इसलिए भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, एक बात भी सत्य पकड़ने में आवे तो सत्य जगे बिना रहे नहीं। परन्तु गड़बड़-गड़बड़। एक असत्य भी घुस गया कहीं, सब खोटा। एक भी अंक सच्चा नहीं हो सकता।

भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, स्वभाव की दृष्टि हुई, स्वभाव में पुरुषार्थ की उग्रता कुछ आयी परन्तु प्रमाद होता है। व्यवहार बताते हैं न? तो फिर आत्मा को प्रायश्चित्त लेते हैं, ऐसा बताते हैं। वह क्रिया तो जड़ की है। विकल्प उठता है। एक समय पहले जो अशुभभाव आया था, वह भाव तो व्यय हो गया। किसका प्रायश्चित्त?

समझ में आया ? क्या कहते हैं ? व्यवहार बताते हैं। ... मुझे प्रमाद हुआ। प्रमाद तो व्यय हो गया। परन्तु उग्र पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख करते हैं तो विकल्प ऐसा आ जाता है। गुरु के पास कहने का विकल्प आ जाता है। सरलता से कहने का विकल्प आ जाता है। बस इतनी बात है। समझ में आया ? यह इसका नाम दण्ड कहते हैं। स्वभाव ऊपर—ज्ञायक ऊपर दृष्टि है। क्रमबद्ध विकल्प होता है, आड़ा-टेढ़ा नहीं होता, आगे-पीछे। तो प्रमाद पहले आया तो कहते हैं कि आत्मा को न्यायमार्ग चलाने के लिये अपने आपको प्रचण्ड दण्ड देते हैं। गुरु के पास जाते हैं। जड़ की क्रिया जड़ से होती है। विकल्प जो आया था तीव्र, वह तो गया। वर्तमान में है नहीं। क्या कहते हैं ?

स्वभाव में जितनी भूमिका में जितना प्रमाद हुआ, मैं उग्र पुरुषार्थ करने का कामी हूँ। वह आया तो सहज स्वभाव की दृष्टि करते हैं और विकल्प से बोला जाता है कि मुझे प्रायश्चित्त दो। जिसका प्रायश्चित्त (लेना है), वह पर्याय तो चली गयी है। परन्तु वह व्यवहार समझाते हैं। राग गया न, जितना तीव्र था, उससे मन्द हुआ। गुरु कहते हैं कि इतने उपवास करना, ऐसा करना। स्वभाव सन्मुख दृष्टि है, द्रव्य का आश्रय छूटता नहीं। विकल्प क्रमसर आता है। परन्तु सरलता से हम कहते हैं तो राग मन्द हो जाता है। उसका नाम प्रायश्चित्त है। समझ में आया ? गजब बात भाई!

वीतराग तत्त्वदर्शन है, वह ऐसा है, अगम्य है। और गम्य हुआ, इसलिए उसकी मुक्ति हुए बिना रहती नहीं। ज्ञान में वह तत्त्व यथार्थ बैठा, उसकी मुक्ति हुए बिना रहती नहीं। अनन्त काल चला गया, अनन्त काल, परन्तु वास्तविक पदार्थ क्या है ? पदार्थ का स्वभाव जानने में न आवे और दूसरा अनन्त-अनन्त प्रयत्न किया जाये, व्यर्थ जाता है। यह कहते हैं, भगवान। देखो!

कितना अधिकार १७२ में लिया। आत्मा को न्यायमार्ग में चलाने के लिये आपको प्रचण्ड (दण्ड देते हैं)। अरे! शिथिलता। शिथिलता इतनी ? ऐसा करके स्वभाव सन्मुख उग्रता करते हैं। उसका ऐसा अर्थ है। स्वभाव सन्मुख उग्रता करते हैं तो उसको न्यायमार्ग से दण्ड दिया, ऐसा कहा जाता है। देखो! यह व्यवहारनय का विषय। शास्त्रन्याय से फिर वही जिनमार्गी बारम्बार कुछ रत्नत्रय में दोष लगा, उसी प्रकार

प्रायश्चित्त करते हैं। बहुत संक्षिप्त में ले लिया है। मुनिपद है। निर्ग्रन्थ दिगम्बर है, भावलिंगी सन्त है। वस्त्र का एक ताना-बाना नहीं है। एक मोरपिच्छी कमण्डल निमित्तरूप से है। निस्पृही अन्तर दशा है। अन्तर भावचिह्न लिंग तो चैतन्य के अवलम्बन से लिंग—चिह्न प्रगट हुआ है। आनन्द, शान्ति, चारित्र वह भावलिंग। द्रव्य के आश्रय से लिंग-चिह्न प्रगट हुआ है। उसे द्रव्य बाह्य द्रव्य शरीर की पर्याय है। उसमें कहते हैं, शास्त्रन्याय से... भगवान! मेरी भूमिका प्रमाण में मुझे ऐसा भाव आ गया, ऐसा आर्तध्यान हो गया, ऐसा कोई स्वप्न आदि में कुछ लग गया। ऐसा भाव आया। तब दृष्टि तो स्वभाव पर है। द्रव्य का आश्रय, रुचि छूटती नहीं। परन्तु पुरुषार्थ में कमी की वजह से, स्वभाव पर उग्रता करते हैं तो शास्त्रन्याय से जिनमार्गी, जिनमार्गी अर्थात् वीतराग मार्ग में अन्तर में चलनेवाला, अन्तर में, बारम्बार कुछ रत्नत्रय में दोष लगा हो। पहले एक बार कहा, फिर बारम्बार कहते हैं। जब-जब कभी कोई भी ऐसा प्रमाद आता है तो बारम्बार दर्शन में, ज्ञान में... व्यवहाररत्नत्रय में, हों! व्यवहार दर्शन में, व्यवहार ज्ञान में और व्यवहार चारित्र में। निश्चय में तो अन्दर अभेद है। व्यवहाररत्नत्रय में दोष लगा हो, उसी प्रकार प्रायश्चित्त (लेते हैं)। उसी प्रकार। वह प्रकार... स्वभाव का आश्रय छूटता नहीं और पर्याय में जितनी कमजोरी, उग्रता उसका ज्ञान में ख्याल आ जाता है। उसका नाम व्यवहारनय का विषय कहते हैं। ... भूमिका में इतना तो होना चाहिए। मुझे ऐसी कल्पना हो गयी कि मैं ऐसा आहार लूँ, या ऐसा लूँ, वह मुझे नहीं चाहिए। कल्पना तो गयी। कल्पना तो एक समय ही रहती है। दूसरे समय वह रहती नहीं। परन्तु स्वभाव की उग्रता करते-करते कहते हैं कि उसमें सरलता है। सरलता से बारम्बार दोष का प्रायश्चित्त लेते हैं, ऐसा कहा जाता है। उसको निर्मलता होती है।

'फिर निरन्तर उद्यमी रहकर अपनी आत्मा को...' जो आत्मस्वरूप से भिन्न स्वरूप श्रद्धा, ज्ञान, चारित्ररूप व्यवहाररत्नत्रय शुद्धता करते हैं। विशेष व्यवहाररत्नत्रय में जितना दोष लगता है, वह स्वभाव के आश्रय से निर्मल करता जाता है। ऐसा व्यवहार समझे, उसे सच्चा व्यवहार हो सकता है। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १, सोमवार, दिनांक - २३-०६-१९५२, गाथा-१७२, प्रवचन-२०

देखो! व्यवहार, एकान्त व्यवहार को माननेवाले मिथ्यादृष्टि कैसे होते हैं, उसका अधिकार चलता है। ज्ञायकस्वभाव निरुपाधिस्वरूप है, ऐसी दृष्टि जिसे नहीं और उपाधि जो विकार की होती है, वह क्षणिक एक समय की पर्याय है। इन दो के बीच जिसे विवेक नहीं और निमित्त और विकार के बीच जिसे भिन्नता का ज्ञान नहीं। ऐसे मिथ्यादृष्टि व्यवहार क्रियाकाण्ड में लवलीन रहकर उसे धर्म मान रहे हैं। कहो, समझ में आता है? देखो! यह बात चलती है।

'एकान्त व्यवहार खेदखिन्न...' मैं ज्ञायक हूँ और रागादि विकार क्षणिक उपाधि है। त्रिकाल स्वभा में विकार नहीं और विकार पर से नहीं। ऐसा जिसको अन्तरंग श्रद्धा और ज्ञान नहीं है, अकेले व्यवहार से खेदखिन्न होता है। दृष्टि विपरीत के कारण उसको आत्मा में आकुलता ही उत्पन्न होती है। दो बोल कहे। बारम्बार धर्मादिक पदार्थों में श्रद्धान आदि अनेक प्रकार की बुद्धि करता है। देखो! अनेक प्रकार की बुद्धि करता है।

धर्मीजीव को ज्ञायकस्वरूप निरूपाधि तत्त्व हूँ, ऐसी मुख्य दृष्टि होने से छह द्रव्य का कदाचित् समकिती विचार करे, तो भी उस विकल्प को ज्ञाता-दृष्टारूप से जानता हुआ उत्पन्न होता है। राग उत्पन्न होता है षट्द्रव्य के विचार का, परन्तु जाननेवाला-देखनेवाला हूँ और यह राग की मन्दता हुई, वह मेरी पर्याय में अपराध है—ऐसा दोनों का विवेक करके षट्द्रव्य का विचार ज्ञानी करता है।

अज्ञानी छह द्रव्य के विचार में ही रुककर स्वद्रव्य को भूलता है। समझ में आता है? छह द्रव्य का विचार, विकल्प करके चैतन्य ज्ञायक हूँ, यह राग क्षणिक है और निमित्त तो पर है, ऐसे स्वभाव की दृष्टि किये बिना व्रत लो, व्रत लो। ऐसा कहते हैं न? वर्तमान में बहुत कहते हैं? भगवान का भी उसमें लिया न? भगवान ने ब्रह्मचर्य व्रत पालन किया। तो व्रत लो। परन्तु व्रत किसको होता है? जिसको दृष्टि का विषय क्या चीज़ है, वह जँचे नहीं, रुचे नहीं, परिणति अन्दर में अन्तरंग हुई नहीं तो उसमें लीनता का चारित्र का आचरण कहाँ से आयेगा?

वह कहते हैं भगवान अमृतचन्द्राचार्य कि द्रव्यश्रुत के पठन-पाठन में रुक जाता है। यह दो बोल अपने कल आ गये हैं। अब तीसरा बोल। 'अनेक प्रकार यति का द्रव्यलिंग...' व्यवहार अकेला माननेवाला। द्रव्यलिंग यति का नग्न दिगम्बर। बस, यह मैं नग्न दिगम्बर धारण किया। हमने वस्त्र छोड़ दिये, हम नग्न हो गये, लंगोटी छोड़ दी। क्या छोड़े? परद्रव्य तो छूटा ही है। तेरी दृष्टि तो निमित्त पर, राग पर, पर्याय पर, क्षणिक पर है। ध्रुव स्वभाव चैतन्य की दृष्टि नहीं करके अकेला यति का लिंग अनेक प्रकार का (धारण करता है)। अनेक प्रकार का यति का द्रव्यलिंग। शरीर की चेष्टायें अनेक प्रकार से होती हैं, सब द्रव्यलिंग है। उसको धारण कर, जिन बहिरंग व्रत, तपस्यादि कर्मकाण्ड द्वारा होता है। बहिरंग व्रत, तपस्या। खाना, नहीं खाना, अपवास, ऊनोदरी इत्यादि। कर्मकाण्ड अर्थात् राग की क्रियाकाण्ड का कर्तव्य जो करता है 'उनका ही अवलम्बन कर स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है...' स्वरूप से भ्रष्ट। उनका ही, वजन देते हैं। वह बड़ा शब्द है। 'उनका ही अवलम्बन कर...' ज्ञानी को राग विकल्प—व्रत का आता है, परन्तु उनका ही अवलम्बन नहीं। मैं ज्ञाता-दृष्टा, ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरा हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्य हूँ। निरुपाधि (स्वरूप हूँ)। मेरी वस्तु में उपाधि नहीं है, त्रिकाल में। पर्याय में क्षणिक उपाधि है, वह पर्याय की रुचि तो छूट गयी है। तो स्वभाव में स्थिरता न रहने के कारण व्रत का विकल्प आता है तो उसका ही अवलम्बन सम्यग्दृष्टि को नहीं है। मिथ्यादृष्टि तो उनका ही अवलम्बन कर... उनका ही। ऐसे दया पालना, ऐसे सच बोलना, ऐसे यह करना, ऐसे यह करना। वह तो सब विकल्प है, राग है, क्षणिक है, वर्तमान है। उसकी बुद्धि रुक गयी उसमें और स्वभाव ध्रुव क्या है, उसकी रुचि करता नहीं, तो उसको व्रत सच्चा होता ही नहीं।

दृष्टान्त देते हैं कि भगवान ने ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत लिया। परन्तु भगवान को तो समकित था, उसमें ज्ञान था, उसमें लीनता हुई, उसका नाम व्रत है। अज्ञानी तत्त्व दृष्टि समझे नहीं, पर को छोड़े। राग को पृथक् करो, राग को पृथक् करो। क्या राग को पृथक् करे? राग पृथक् किया जाता है? राग को पृथक् करो, व्रत ले लो। उनका व्यवहार का ही अवलम्बन करते हैं। स्वभाव ज्ञायक चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द हूँ। उस ओर का झुकाव, प्रयत्न का एकाग्र भाव होने पर राग की उत्पत्ति जितने अंश में होती नहीं, उतने अंश में

राग का त्याग होता है। इसलिए अंश में निमित्त की रुचि और आसक्ति घट जाती है। ऐसी अज्ञानी को खबर नहीं होती। तो अज्ञानी, मात्र करो कर्मकाण्ड, तपस्या, बाह्य व्रत, अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग अर्थात् दूध नहीं खाना, शक्कर नहीं खाना, ऐसा नहीं खाना, आम नहीं खाना, रस नहीं खाना। कौन खाता है और कौन पीता है? उस ओर के राग को छोड़ना, वह तो स्वभाव के प्रयत्न से छूटता है। तो स्वभाव एक समय में पिण्ड—चैतन्यपिण्ड है। ज्ञायक ध्रुव है, आनन्दकन्द है, उसकी ओर तो रुचि जमी नहीं। और व्रत और कर्मकाण्ड द्वारा होते उनका ही अवलम्बन कर स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है।

ज्ञायकस्वरूप चैतन्य हूँ। जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। जो राग हुआ, उसका भी मैं जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। निमित्त की क्रिया शरीर से होती है, उसके काल में, उसके काल में। जड़ की पर्याय जड़ के काल में (होती है)। हिलना, चलना, पानी आना-जाना, आहार आना-जाना, आहार के कारण से मुझमें शुद्धि नहीं होती और मेरे राग के कारण से आहार नहीं आता। ऐसा जिसे विवेक नहीं, वे उसमें स्वरूप से भ्रष्ट होकर उसमें रुक गये हैं। समझ में आता है? देखो!

द्रव्यलिंग धारण कर... मुख्य मुनि की बात है। गौणरूप से समकिती, श्रावक आदि ले लेना। मुनि द्रव्यलिंग (धारण करके) नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। उसकी दृष्टि बाह्य पर है। सब शरीराश्रित क्रिया। हम ऐसी क्रिया करते हैं, हम ऐसा छोड़ देते हैं, ऐसा नहीं खाते हैं, ऐसा नहीं पीते हैं, ऐसा खाते हैं। चौबीस घण्टे में चार-छह-दस घण्टे तो उसकी चर्चा। जड़ की चर्चा।

मुमुक्षु : संसार खाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार खाया। ऐसा खाया, ऐसा पीया, ऐसा निर्दोष मिला, उसको सदोष मिला, उसको नहीं मिला, उसको मिला। कौन मिला और कौन नहीं मिला?

कहते हैं, अज्ञानी द्रव्यलिंग यति का धारण करके जिन बहिरंग व्रत, तपस्या आदि कर्मकाण्डों के द्वारा होता है, उनका ही अवलम्बन कर स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है।

फिर बात करते हैं अब। 'अपने मिथ्या अभिप्राय के कारण से...' ऐसा लिया। दर्शनमोह के उदय से। अपने मिथ्या अभिप्राय के कारण से व्यवहार धर्मराग की... किसी काल पुण्यक्रिया में रुचि करता है। अज्ञानी अपनी मिथ्याश्रद्धा के कारण से व्यवहारधर्म का जो राग जो पुण्य का, दया, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का जो विकल्प शुभराग, उसे व्यवहार से धर्मराग कहते हैं। ऐसा अंश कर किसी काल पुण्यक्रिया में रुचि करता है कि अहो! राग भला आया। राग ठीक किया, आज अच्छा राग किया। ऐसी मिथ्यादृष्टि पुण्य की रुचि करते हैं। परन्तु पुण्यरहित मैं स्वभाव भिन्न हूँ, उसकी रुचि कभी नहीं करते।

'धर्मराग अंश कर किसी काल पुण्यक्रिया में रुचि करता है।' कोई कहे कि क्या करे? हमें तो दर्शनमोह का ऐसा उदय आता है तो हमें पुण्य में धर्मरुचि हो ही जाती है। ऐसा है नहीं। अपनी विपरीत अभिप्राय दृष्टि से पुण्य में उसको रुचि होती है। पुण्य धर्म है, उसमें धर्म हो जायेगा, क्रम-क्रम से हो जायेगा। व्रत लो। साधन करो, भाई! साधन करो, साधन करो और साधन से फिर साध्य हो जायेगा। वह साधन है नहीं। साधन है नहीं। कषाय का साधन है। राग का साधन करता है। साधन तो स्वभाव का साधन प्रगट हुआ, पश्चात् राग आया, उसको व्यवहारसाधन का आरोप आता है। उसकी तो खबर भी नहीं। राग तो पर से कराया, पर से कराया। पर से कराया तो रुचि भी पर से करायी। राग में धर्म मनाया, वह पर से। और पुण्य हुआ भी पर से। ऐसी चीज़ है नहीं। अज्ञानी उसमें लवलीन चौबीस घण्टे। ऐसा किया, ऐसा खाया, ऐसा पीया।

धर्मराग के अंश कर किसी काल में। किसी काल में, क्यों कहते हैं? उसे क्रम-क्रम से अलग-अलग प्रकार का राग अज्ञानी को होता है। धर्मी को एकरूप भाव होता है। एक ज्ञायक हूँ, उसकी एकता छूटती नहीं। मैं ज्ञायक हूँ, उसकी एकता की मुख्यता छूटती नहीं। समय-समय निर्मलता के अनेक अंश आने पर भी, अनेक अंशों की मुख्यता नहीं। स्वभाव ज्ञायक सन्मुख की एकता की मुख्यता है। इसलिए उसे किसी काल में रागादि भिन्न-भिन्न प्रकार के आते हैं, तथापि उसकी मुख्यता नहीं है। मिथ्यादृष्टि को किसी काल में—किसी काल में पुण्य में धर्म माने, किसी काल में पठन-पाठन में धर्म माने, किसी काल में छह द्रव्य के विकल्प के विचार में धर्म माने, किसी काल में

व्रत, तपस्या में धर्म माने। ऐसे विविध प्रकार के मिथ्या अभिप्राय क्षण-क्षण में अलग-अलग होते हैं। कहो, समझ में आया?

'किसी काल में...' संयोग और राग में एकत्वबुद्धि करे, इसलिए दुःखी होता है। तो जो विपरीत अभिप्राय से दुःखी हुआ, वह विपरीत अभिप्राय छोड़े तो सुखी होता है। दूसरा कहे कि हम उसका दुःख छुड़ा दें, दुःखी की अनुकम्प करें, पर की हम दया पालते हैं। वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझे? छोटालालजी! क्योंकि अपने में राग आता है, वह किसी पर के कारण से तो आता नहीं है। कर्म के कारण से नहीं और निमित्त के कारण से भी नहीं। तो कहते हैं, मिथ्यादृष्टि का लक्षण किसी काल में दया, अनुकम्पा। ओहो! मानो दया-अनुकम्पा वर्तती है। इसे दुनिया की दया बहुत आती है। दुनिया की दया। इसकी (स्वयं की) दया नहीं आती।

मैं ज्ञायक हूँ। मुझमें राग आया, वह भी मेरी हिंसा है। वह पर के कारण से आया नहीं और पर को दुःखमुक्त करने की तीन काल तीन लोक में किसी की सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि जिसने दुःख उत्पन्न किया है, उसमें दुःख टालने की शक्ति है। मुझमें है नहीं। दुःख तो आनन्द की उल्टी अवस्था है। आनन्द की उल्टी अवस्था दुःख। तो इसके आनन्द की उल्टी अवस्था करके यह दुःखी होता है। तो यह तो आनन्द की रुचि करे तो दुःख से मुक्त हो। पर को दुःखमुक्त करने का मेरा आधार है नहीं। कहो, समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ कहते हैं कि अज्ञानी आत्मा के ज्ञान बिना किसी पर की दया पालूँ, दया पालूँ, अनुकम्पा करूँ—ऐसी बुद्धि करके मिथ्यात्वभाव को सेवन करता है। यह जरा सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। और पर की पर्याय मैं बदल दूँ। पर की पर्याय मैं बदल दूँ। पर की पर्याय वह बदल सकता है। दूसरा कोई पर की पर्याय बदल नहीं सकता। तो व्यवहाराभासी अकेला मिथ्यादृष्टि व्यवहार क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवाला, आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसका भान जिसे नहीं है। वह किसी काल में दयावन्त होता है, पर को देखकर, भैया! मुझे दया आ गयी पर के कारण से। पर के कारण से दया आयी या तेरे

प्रमाद से आयी ? इसका भी जिसको विवेक नहीं, वह मिथ्यादृष्टि का व्यवहाराभास है। भले उसको दया आती हो, अनुकम्पा आती हो, सब मिथ्यात्व में जाता है। पण्डितजी! व्यवहाराभास की बात चलती है।

'किसी काल में दया...' किसी काल में। किसी समय और वैराग्य बतावे। बाद में आयेगा। किसी काल में फिर दया बतावे। परन्तु भगवन्त! तेरा ज्ञायकस्वरूप है। तेरी वर्तमान होनेवाली पर्याय के ऊपर भी तेरी रुचि नहीं होनी चाहिए। रुचि तो स्वभाव ध्रुव पर होनी चाहिए। उसके बदले पर की पर्याय बदलने का विचार और उसे देखकर मुझे अनुकम्पा आती है। व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि है। तुझे स्वरूप की खबर नहीं है। ...मिथ्यादृष्टि है। समझ में आता है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दया आत्मा की। आत्मा ज्ञायकस्वरूप अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड है। और राग क्षणिक उपाधि मेरे त्रिकाल स्वभाव में नहीं है। मेरे ध्रुव स्वभाव में नहीं है। ऐसा अभिप्राय करना, वह अपनी दया है और स्वरूप में स्थिरता करना, वह अपनी दया है। पर की दया तो कोई कर नहीं सकता, तीन काल में। परपदार्थ स्वतन्त्र है। जो पदार्थ है, उसका वर्तमान, उसका वर्तमान उसके कारण से है। जो है, उसका वर्तमान उसके कारण से है। तो वह वर्तमान मेरे कारण से बदल दूँ, उसको पलट दूँ, वह मिथ्याबुद्धि है। ...भाई! कहो, समझ में आया ?

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव कहते हैं कि जैन में वाड़ा में रहा त्यागी नाम धरानेवाले, व्रती नाम धरानेवाले भी मिथ्यादृष्टि को खबर नहीं कि यह अनुकम्पा मैं किसकी करता हूँ। मेरी अनुकम्पा चली जाती है और पर की अनुकम्पा करता हूँ तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि स्वतन्त्र परपदार्थ है। वह दुःखी हो या सुखी हो, उसके अभिप्राय और चारित्र और अचारित्र के कारण से है। दुःखी होता है तो मिथ्या अभिप्राय (और) अचारित्र के कारण से। सुखी होता है तो सम्यक् अभिप्राय और चारित्र के कारण से। कहीं बाहर के कारण से कोई सुखी-दुःखी तीन काल में नहीं होता। परन्तु अज्ञानी को भास होता है कि आहाहा! यह मनुष्य संयोग से दुःखी है। ऐसा संयोग इसलिए दुःखी

है। उसका अभिप्राय ही मिथ्या है। क्षुधा लगी तो यह दु:खी है, तृषा लगी तो यह दु:खी है। समझ में आया? यह बात ही झूठी है। क्षुधा, तृषा तो जड़ की पर्याय है। उस जड़ की पर्याय के कारण यह दु:खी है, ऐसी कल्पना करना मिथ्या अभिप्राय है। फूलचन्दजी! छोटेलालजी!

मूल विषय वह है, विषयवस्तु वही है। जो क्षुधा, तृषा लगती है, वह तो जड़ की पर्याय है, वह तो मिट्टी की, पुद्गल की है। आत्मा को जड़ की पर्याय से दु:ख हुआ पर को, ऐसा मानना ही विपरीत अभिप्राय है। और फिर अनुकम्पा करना, वह मिथ्यात्व सहित दया का रागभाव मिथ्यात्व—जहरसहित राग है। मिथ्या अभिप्रायसहित शुभ परिणाम है। भगवान जिसको व्यवहाराभास मिथ्यादृष्टि कहते हैं। उसे वीतराग क्या कहते हैं, इसकी उसे खबर नहीं। तत्त्व—छह द्रव्य स्वतन्त्र हैं। नौ तत्त्व जैसे पृथक् हैं, वैसे छह द्रव्य, छह द्रव्य (भिन्न-भिन्न हैं)। तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के कारण नहीं और एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य के कारण हो तो छह द्रव्य पृथक् नहीं रहते। नौ (तत्त्व) जैसे पृथक् हैं, वैसे छह (द्रव्य) पृथक् हैं। छह के छह अपने कारण से अपनी पर्याय-कार्य कर रहे हैं। उसके बदले परद्रव्य की पर्याय मुझसे होती है और वह पर्याय देखकर मुझे पर्याय होती है तो उसके अस्तित्व के कारण अनुकम्पा का अस्तित्व आया। उस दु:खी प्राणी के अस्तित्व की पर्याय के कारण अनुकम्पा का राग का अस्तित्व आया। तो पर के अस्तित्व के कारण यह अस्तित्व, यह एकत्वबुद्धि मिथ्याबुद्धि है। कहो, समझ में आया?

व्यवहारावलम्बी अज्ञानी को खबर नहीं है कि मैं ज्ञायक हूँ। पर की पर्याय पर से (होती है)। मुझमें राग आया, वह तो मेरी कमजोरी से। मेरे बल के साधन की अपेक्षा कर मैं स्वभाव से सबल हूँ; राग आया है, वह सबल की अपेक्षा से नहीं है। निर्बलता से आया है। पर से आया नहीं। अज्ञानी पर से अनुकम्पा आयी, ऐसा मान लेता है। क्या करूँ, ऐसा-ऐसा प्रसंग बन जाता है तो मेरा परिणाम ठीक नहीं रहता। मैं अनुकम्पा में जुड़ जाता हूँ। ऐसा ही संयोग आता है। तो संयोग के कारण से हुआ, उसको भगवान कहते हैं, मिथ्यादर्शन के कारण अनुकम्पा हुई। छोटेलालजी! वस्तु का तो ऐसा स्वभाव है।

तीन काल-तीन लोक के अन्दर जो वस्तु है, वह इस प्रमाण है। यह किसी के घर की कोई तीर्थंकर के अतिरिक्त करने चाहे अज्ञानी, वह कहीं वस्तु का फेरफार होता नहीं। मोहनभाई! यहाँ भगवान सर्वज्ञदेव का आशय कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। आत्मा ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द के भान बिना अकेली अनुकम्पा पर के कारण हो, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादर्शन के अभिप्राय से मान रहा है। उसे व्यवहार और निश्चय के विवेक की खबर नहीं है। निमित्त और व्यवहार के विवेक की खबर नहीं है, दु:खी का अस्तित्व निमित्त है, अनुकम्पा का अस्तित्व मुझमें है। उस निमित्त के कारण अनुकम्पा हुई नहीं है। इसका जिसे विवेक नहीं, उसे अनुकम्पा के राग और स्वभाव के बीच विवेक है ही नहीं। समझ में आया? उसे पर से विवेक भिन्नता की खबर नहीं, उसे स्व में हुए राग से चैतन्य भिन्न है, ऐसे विवेक की उसे खबर हो सकती ही नहीं। इसलिए उसे भगवान 'व्यवहाराभासी' कहते हैं। कहो, समझ में आया?

'किसी काल में दयावन्त होते हैं और किसी काल में अनेक विकल्प को उपजाता है।' शास्त्र पठन आदि विकल्प किया करे। मैं प्रभावना करूँ, मैं दूसरे को धर्म प्राप्त कराऊँ, अब दूसरे को धर्म प्राप्त करने को ऐसा हो... परन्तु धर्म पावे, न पावे, वह तो उसकी पर्याय की योग्यता होगी, तब पायेगा। तेरी ताकत नहीं। तेरे अध्यवसाय का यह कार्य है कि पर धर्म पा जाये?

मुमुक्षु : विचार तो करे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं, विचार तूने किसका किया है? मुझे विकल्प आया है, वह भी मेरा दोष है। तो दोष के कारण से दूसरा धर्म पा जाये, यह विचार की एकता, वह मिथ्याबुद्धि है। अभी तो अपना विकल्प आया, वह भी दोष है। तो दोष से कोई धर्म पा जाये, दूसरे को आत्मा का ज्ञान विकल्प से हो, यह तीन काल में होता नहीं। जरा बात तो गहरी और गूढ़ है। स्पष्ट है, प्रगट है, व्यक्त है, निश्चित है। तीन काल तीन लोक में सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्व ही यह है। आज माने, कल माने, बाद में माने, चाहे जब माने। वस्तुस्थिति यह है। उसमें फेरफार तीन काल—तीन लोक में होता नहीं।

भगवान कहते हैं, अज्ञानी अनेक विकल्प करता है, कि इसे करूँ। परन्तु तू कौन है, इसका पुरुषार्थ छोड़कर ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव है, अन्तर की रुचि का प्रयत्न छोड़कर अकेला पर को समझाना ऐसे जो राग की वृत्तियों की कलंकित वृत्ति, उससे दूसरे को धर्म होगा, यह मान्यता अनेक विकल्पों को उपजाती है। पर में तो कुछ करता नहीं, परन्तु अपने परिणाम में मिथ्या अभिप्राय करता है। बंधोवा, मोकखोवा आता है न? पर का बन्ध या मुक्ति कहीं तेरे अध्यवसाय के आधार से नहीं है। वह तो उसकी योग्यता के आधार से है। तू अध्यवसाय कर और वह यदि वीतराग न हो तो उसकी मुक्ति नहीं होगी। तू अध्यवसाय कर और वह सरागपना न करे तो वह बँधेगा नहीं। उसके परिणाम से वह बँधता है और उसके परिणाम से वह मुक्ति पाता है। उसके बदले उसे ऐसा कर दूँ, उसे ऐसा कर दूँ। ऐसा कहते हैं कि आप का कल्याण हो, ऐसा मुझे बहुत विकल्प आता है। क्या है? सुखी करूँ, तुमको सुखी करूँ अथवा तुमको ठीक (करूँ)। तुम्हारा कल्याण हो जाये ऐसा अज्ञानी व्यवहार का मात्र विकल्प करता है। निमित्त से मेरा विकल्पना-रागपना भिन्न है। इतना विवेक जिसे पर से न आया उसे राग क्षणिक से नित्यानन्द स्वभाव-सन्मुख होने पर राग भी भिन्न है, उसका विवेक उसे नहीं आता। इसलिए भगवान अमृतचन्द्राचार्य (कहते) हैं कि व्यवहाराभासी है। उसे निश्चय स्वभाव क्या है, इसकी उसे खबर नहीं। कहो, समझ में आया?

'किसी काल में कुछ आचरण करता है।' आचरण करे। ज्ञान का, दर्शन का, चारित्र का। ऐसा आचरण करो, ऐसा आचरण करो। बराबर आहार शुद्धि करो, पानी शुद्धि करो, जैसा-जैसा आहार... अन्न ऊपर... कहते हैं न? क्या कहते हैं? जैसा अन्न वैसा मन। और जैसा पानी वैसी वाणी। पानी को और वाणी को क्या है? वाणी जड़ है, पानी भिन्न है। अन्न भिन्न है, तेरी पर्याय भिन्न है। आहार निर्दोष हो तो आत्मा के परिणाम सुधर जायें—बड़ा मिथ्यादृष्टि है। कड़क बात तो है, हों! दुलीचन्दजी! कड़क बात है। कड़क नहीं, सत्य है, यथार्थ है। वही यथार्थ है। किसी काल में अज्ञानी आत्मा ऐसा आचरण करो, ऐसा आचरण करो, ऐसा आचरण करो। ज्ञान का, दर्शन का, चारित्र का विकल्प का। ऐसा आचरण करके वहाँ रुक जाते हैं। परन्तु मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विवेक नहीं करते।

'किसी काल दर्शन के आचरण निमित्त समताभाव धारण करते हैं...' देखो! सम आता है न? सम। समता रखो, भाई! समता रखो। भाई! भगवान का मार्ग समता है। परन्तु समता, वह आत्मा के भान बिना की समता ही झूठी है। आत्मा ज्ञायक है, उस बिना की कषाय की मन्दता अभव्य को भी ऐसी समता आती है। अभव्य भी शरीर के खण्ड-खण्ड करो, शुक्ललेश्या से उसको क्रोध नहीं आता है। द्रव्यलिंग के शरीर का खण्ड-खण्ड करे, परन्तु उसकी दृष्टि पर के ऊपर है। अभ्यन्तर कुछ व्यवहार का पक्ष उसको रह जाता है। अनादि द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि अभव्य या भव्य, उसमें व्यवहार का पक्ष गहरे... गहरे... गहरे राग, निमित्त अनुकूल हो तो आत्मस्वभाव प्राप्त होगा, ऐसा व्यवहार का मिथ्यात्व का पक्ष रह जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। स्वभाव की दृष्टि नहीं हुई। तो कहते हैं कि 'किसी काल दर्शन के आचरण निमित्त समता...' शान्ति। परन्तु वह भी विकल्प-राग है, वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं है। यह समता, वह राग है। राग की बात चलती है। समता तो ज्ञायक में रहना। समकिती को तो कोई क्रोध भी आता है। युद्ध के भाव में भी होता है। तब भी दृष्टि भिन्न है। राग से भिन्न और क्रिया से (भिन्न है)। तो युद्ध क्यों करते हैं? कौन करता है युद्ध? सुन तो सही! युद्ध के समय भी समकिती की संयोग पर दृष्टि नहीं है, राग पर दृष्टि नहीं है, पर्याय पर दृष्टि नहीं है; स्वभाव से दृष्टि हटती नहीं।

स्वभाव ध्रुव.. ध्रुव नित्यानन्द स्वभाव ज्ञायक भगवान हूँ—ऐसी दृष्टि युद्ध के समय भी समकिती की छूटती नहीं है। यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी समता रखता है। समता। पर्यायबुद्धि में मैंने बहुत क्रोध कम किया, भाई! पहले की अपेक्षा मैंने क्रोध कम किया, हों! मेरी प्रकृति अभी पलटी है। खुद का खुद कहे। मेरी प्रकृति अभी सुधरी है। पहले मेरा स्वभाव कड़क था, कठिन था। अभी मैंने सुधारा है। परन्तु किस प्रकार सुधारा? राग मन्द किया, उसमें सुधरा? उसे ही धर्म मान बैठा है। धर्म, वह राग के भान, राग से पृथक्स्वरूप है। वह चैतन्य द्रव्यस्वभाव के कारण ही राग पृथक् पड़ता है। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि और लीनता बिना राग कभी तीन काल में छूटता नहीं। स्वभाव

की अन्तर रुचि बिना तीन काल तीन लोक में विकार और दर्शनमोह जाते नहीं। ऐसी दृष्टि की जिसे खबर नहीं। समता करो, कषाय मन्द करो, उपशान्त होओ, उपशान्त होओ, उपशान्त होओ। प्रकृति धीमी बनाओ। प्रकृति अर्थात् राग धीमा बनाओ। प्रकृति धीमी बनाओ या स्वभाव में कुछ प्रयत्न करो; उसकी खबर नहीं और प्रकृति धीरी करो, शान्त करो। दो-पाँच गालियाँ कोई दे तो सहन करो। उसमें क्या है सहन करना?

मैं आत्मा हूँ। सहन करने की चीज़ ही मेरे में नहीं है। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। राग की मन्दता आयी, वह भी मेरा अपराध है। पर के कारण से वह भी राग मन्द होता नहीं। समता करते हैं कि बड़ी समता की, भाई! समता होगी तो क्रम-क्रम से कभी धर्म प्राप्त करेगा, यह बात सच्ची नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गर्दन में सर्प डाला और समता रखे तो भी कुछ नहीं, यहाँ तो कहते हैं। यहाँ तो स्वभाव में राग का सर्प घुसा डाला है। राग का सर्प घुसा दिया है और पर से राग होता है, ऐसा मिथ्यात्व का सर्प घुसा दिया है। वह जहर निकाले नहीं तो शान्ति कभी नहीं आती। जहर तो पर से मुझमें विकार होता है और पुण्य से मुझमें धर्म होता है, यह महा सर्प, जहर है। मिथ्या अभिप्राय का बड़ा जहर है। स्वभाव की तो खबर नहीं, निमित्त को जुटाओ। वह कहते हैं, देखो!

समताभाव रखे, भाई! अथवा अच्छी समतावाले के पास जाकर तो समता मिले, शान्ति कुछ मिले। ऐसा शास्त्र में लेख भी आता है। प्रवचनसार में आता है। सच्चे सत्संग से। वह तो निमित्त का कथन है। सच्चे सत्संग के पास जाये तो। वह तो उसकी योग्यता बताते हैं। सच्चे सत्संग से मिलती नहीं। मिलती तो है उसकी पर्याय में से। परन्तु उसकी योग्यता बताते हैं। तो यह कहता है, समता रखो, भाई! अपने सच्चे समागम में रहो। परन्तु समता किस प्रकार की? समता तो शुक्ललेश्या अभव्य को भी अनन्त बार हुई। क्रोध मन्द। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने आवे तो ब्रह्मचर्य से मिथ्यादृष्टि च्युत न हो। देवी, दूसरे देवलोक की देवी आवे तो चलायमान न हो, ऐसा तो शुभभाव जिसका था, और अहिंसा। भिक्षा लेने को जाये। एक थोड़ा भी अन्तराय में से

एक कोई दोष दिखे तो आहार ले नहीं। ऐसी कषाय की मन्दता थी। वह कोई चीज़ नहीं है, वह कोई चीज़ नहीं है।

ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायकस्वभाव एक समय में परिपूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरा हुआ, ऐसा अव्यक्त द्रव्य। जिसको व्यक्त रागादि के विवेक की खबर नहीं, उसका अव्यक्त द्रव्यस्वभाव ज्ञायक कारणशुद्ध जीव परमात्मा मैं हूँ—ऐसी दृष्टि जिसे नहीं, वह रागादि से एकातन्त धर्म मान बैठा है। कहो, समझ में आया? धर्म कहाँ रखा, उसको ख्याल नहीं। लोग तत्त्वदृष्टि बिना जल्दबाजी बहुत करते हैं, बहुत जल्दबाजी करते हैं। ऐसा ले लो, ऐसी प्रतिमा ले लो, ऐसा शान्त करो, त्याग करो, व्रत ले लो, ब्रह्मचर्य ले लो। क्या? परन्तु क्या है? ब्रह्मानन्द प्रभु चैतन्य है, उसकी दृष्टि बिना तेरा ब्रह्मचर्य कहाँ से आयेगा? कहाँ से ब्रह्मचर्य आयेगा? ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्मानन्द एक समय में भगवान सहजानन्दमूर्ति परिपूर्ण हूँ। एक राग आया वह भी मेरा स्वरूप नहीं। पर का तो मेरे में अभाव है। ऐसी दृष्टि जमी नहीं, कहाँ से ब्रह्मचर्य आयेगा? ऊपर से आयेगा? शरीर की विषय की क्रिया नहीं हुई तो ब्रह्मचर्य हो गया। तो शरीर की क्रिया न हुई विषय की। शरीर की क्रिया न हुई तो ब्रह्मचर्य आ गया? जड़ की पर्याय प्रवृत्ति न हुई तो ब्रह्मचर्य की प्रवृत्ति आ गयी तुझमें? कहाँ से आया? उपशमभाव है। अपने ब्रह्मचारी हैं। अपने को कोई साथ में नहीं। स्त्री से डरे, स्त्री से भागे। ...भाई! कहते हैं कि यह नहीं।

ज्ञायक चैतन्य की जिसे स्वभाव रुचि हुई नहीं और परद्रव्य से डरता है, परद्रव्य से डरता है। भगवान ने नौ वाड़ कही न पुरुष को? नौ वाड़ कही है न, वह तो स्वभाव सन्मुख से उद्यम कराने को कहा है। परद्रव्य से तुझको को राग होता है, ऐसा कहने को वह बात नहीं है। भागो, भाई! आहार ऐसा खावे नहीं। तीव्र (गरिष्ठ) आहार हो तो वीर्य की वृत्ति हो जायेगी, गरिष्ठ आहार होगा तो विषय की वासना हो जायेगी। सब मिथ्याबुद्धि है। कथन तो बहुत आते हैं शास्त्र में। यह मिथ्याबुद्धि अज्ञानी को परद्रव्य के प्रति रुचि हटती नहीं। फिर किसी काल में समताभाव धारण करे। यह किसी काल में प्रगट दशा धारण करे। प्रगट दशा का अर्थ कदाचित्... वैराग्य। ...भाई! वैराग्य है, संवेग है। संवेग। ऐसी बात करे संवेग की। ओहोहो! अपने तो भाई मोक्ष जाने की इच्छा है। अपने को कोई इच्छा है नहीं। ऐसा संवेग ऐसे बतावे। परन्तु वह मिथ्यादृष्टि व्यवहाराभासी है।

पर में ही सब मान बैठा है। पर के त्याग-ग्रहण में यह त्यागो और यह छोड़ो, ऐसी दृष्टिवाला पर में ही सर्वस्व मानता है, उसे मिथ्यादृष्टि कहा है। कहो, समझ में आया?

'किसी काल में प्रगट दशा...' प्रगट अर्थात् ऐसे वैराग्य दिखाता हो। ओहो! शान्तमूर्ति। कषाय शान्त है। उसमें क्या आया? वह संवेग स्वभाव की दृष्टि बिना, सम्यक् अनुभव की दृष्टि बिना और स्वभाव की दशा बिना उस वैराग्य को भगवान यथार्थ वैराग्य कहते नहीं। तो वैराग्य आभासी है। वैराग्य नहीं। 'किसी काल में आस्तिक्य भाव को धारण करता है।' किसी काल में कहे, भगवान ने छह द्रव्य कहे हैं, वह बराबर है। भगवान ने कहा वह सत्य है। परन्तु भगवान कहे वह सत्य। किन्तु तेरा सत् है, यह खबर पड़ी है या नहीं? भगवान कहे तो भगवान के पास रहा। सर्वज्ञ ने देखा तीन काल में बदले नहीं। परन्तु वह बदले नहीं किन्तु तेरा ज्ञान कभी तीन काल में बदलता नहीं। ऐसी ज्ञान की रुचि हुई है या नहीं? मेरा ज्ञान ही ज्ञाता है। कुछ फेरफार करने की मेरी ताकत नहीं है। मेरा ज्ञानस्वभाव जाननेवाला है।

जिस प्रकार जिस समय जिस प्रकार का राग, द्वेष, क्रोध, मान जिस प्रकार का आयेगा, उस प्रकार के ज्ञान की पर्याय में स्वपरप्रकाश विकास होता है। मैं ज्ञाता हूँ, ऐसी दृष्टि करके जिस प्रकार ज्ञान में स्व-परप्रकाश ज्ञान हुआ, उसी प्रकार का राग का भान होता है। राग आया तो ज्ञान नहीं हुआ। अपने ज्ञानगुण से स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय खिल जाती है। उसके कारण से राग का ज्ञान होता है। राग के कारण से नहीं, निमित्त के कारण से नहीं। ऐसी ज्ञानगुण की जिसने... ज्ञाता जैसे सर्वज्ञ परिपूर्ण हैं, मैं अल्पज्ञ हूँ पर्याय में। स्वभाव में सर्वज्ञ हूँ। ऐसी दृष्टि नहीं, वह बाहर में से आस्तिक्यता बताते हैं, परन्तु अन्तर आस्तिक नहीं। स्वभाव की आस्तिक्यता उसे है नहीं। वह बाहर की छह द्रव्य की, भगवान की आस्था वह तो राग है। परद्रव्य की आस्था रखना, वह तो शुभभाव है। वह कहीं स्वभावभाव नहीं है। व्यवहारावलम्बी अकेला पर में ही आस्तिक्यता मान रहा है।

'शुभोपयोग प्रवृत्ति से शंका...' समकित के आचार थे न? आठ आचार। भगवान के मार्ग में शंका नहीं करना। शंका नहीं करना परन्तु शंका नहीं करना, यह तो राग का भाव है, वह कहीं समभाव नहीं है। उसमें सब मान लेते हैं।

मुमुक्षु : ....तो शंका ही नहीं होवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... तो बड़ा मिथ्यात्व हो गया। वह तो बराबर है। भगवान क्या कहते हैं, षट् द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या। वह समझना नहीं। समझे नहीं उसको शंका भी नहीं होती। इसलिए पूरा-पूरा मूढ में पड़ा है। मूढ़ता में है। समझे नहीं तो शंका भी न करे। यहाँ कहते हैं, 'शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़ दशा आदि भावों के ... सावधान होकर प्रवर्ते...' देखो! सावधान। पर में सावधान ऐसा शब्द प्रयोग किया है। पर में सावधान। शंका न हो। अन्यमति की इच्छा न हो। विचिकित्सा—मुनि आदि को देखकर ग्लानि न हो और मूढ़दृष्टि न हो। यह तो राग है, यह तो विकल्प का उत्थान है। समकित के आठ आचार जो व्यवहार है, वह तो विकल्प की वृत्ति का उत्थान है। उत्थान वह स्वभाव में नहीं। और वृत्ति उठती है, वह तो विकार है। वह वृत्ति का उत्थान होता है। उत्थान, वह तो राग है। ज्ञायक है, उसमें विषय पलटता है ... ज्ञानस्वरूप है। आशंका नहीं पर की। वह विकल्प है। उसमें ज्ञान एकरूप नहीं रहता। और उसमें ही धर्म मान लेना, वह मिथ्यादृष्टि है।

तब कोई कहे, शास्त्र में आता है न? सुनो। ऐसा प्रश्न है। णमो अरिहंताणं में अंजन चोर। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है, सुनो! शंका न की तो अनुक्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। तुम तो ना कहते हो कि ऐसा व्यवहार अनन्त बार किया। छोटेलालजी! क्या है? स्वामी समन्तभद्राचार्य ने... अंजन चोर को समकित तो नहीं था, समकित नहीं था। निश्चय समकित नहीं था तो व्यवहार समकित का भी ठिकाना नहीं था। एक शंका नहीं की। तो उसको मैं निःशंक डालकर समकित या मोक्ष होगा ऐसा चरणानुयोग में कह दिया है। नहीं है? यहाँ तो ना कहते हैं। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। सर्वज्ञ की वाणी ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा। उसमें शंका नहीं। पर में शंका नहीं। स्वभाव का भान नहीं। तभी तो अनादि मिथ्यादृष्टि रह गया और अंजन चोर ने शंका नहीं की तो समकित हो गया। यह क्या विरोध हो गया? फूलचन्दजी! वह पूछते थे? भजन मण्डली आयी थी न? भजन मण्डली अजमेर से आती है न? अजमेर से आयी थी। मूलचन्दजी नाचते हैं। तो सौभाग्यभाई है। ... बराबर भक्ति करते-करते पूछा। कहा, भाई! यह भक्ति तो शुभराग है। तुम समझो कि इस राग में से धर्म होता है,

ऐसा मान लो तो स्वभाव को समझने का अवसर ही नहीं रहता। महाराज! अंजन चोर ने नवकार में शंका नहीं की तो तिर गया। समन्तभद्राचार्य के रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है।

यहाँ कहते हैं कि अनन्त बार भगवान के वचन में शंका नहीं की। उसने तो नवकार में नहीं की। यहाँ तो कहते हैं, व्यवहाराभासवाला ग्यारह अंग बराबर पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा। उसमें शंका नहीं की। स्वभाव का भान नहीं इतना। ये दो में तो विरोध आया। विरोध नहीं है। सुनो! चरणानुयोग के कथन में भविष्य में जो सम्यग्दर्शन उसको हुआ, उसका वर्तमान में आरोप करके ऐसा कहा है। जिसको सम्यग्दर्शन हुआ है, उसको शंका नहीं की, ऐसा आरोप किया है। ऐसी निःशंकता तो अनन्त बार की है। वह कोई नवीन चीज़ नहीं है। समझ में आया?

फिर से। यहाँ कहते हैं कि शंका नहीं करना, वह कहीं आत्मा का धर्म नहीं है। वह तो शुभराग है। उससे कल्याण-फल्याण होता नहीं। तो वहाँ क्यों कहा अंजन चोर ने शंका नहीं तो उसको समकिती कह दिया? ऐसा नहीं है। वह तो जिस जीव ने समकित प्राप्त कर लिया आत्मा से, भविष्य में आत्मा के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उसका पूर्व का निःशंक में आरोप करके चरणानुयोग में कथन है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, दुलीचन्दजी! समझे?

यहाँ कहते हैं, भगवान के मार्ग में शंका न करे। तो भी शुभ वृत्ति कलंकित मिथ्यादृष्टि है, उसमें धर्म मान बैठा है और वहाँ कहा कि निःशंक हुआ। मोक्ष गया अंजन चोर। इतना अधिक विरोध? ... दो शास्त्रों में? ऐसा नहीं है, विरोध है नहीं। भगवान सर्वज्ञदेव ने जिसने देखा और शास्त्र में लिखा कि यह सम्यग्दर्शन आत्मा के अवलम्बन से भविष्य में प्राप्त करेगा। आत्मा का अवलम्बन लेकर प्राप्त कर लिया। उसने पूर्व में जो निःशंकता की थी, उसमें आरोप दे दिया। परन्तु जो सम्यग्दर्शन आत्मा से प्राप्त नहीं करते, सहज स्वभाव के अवलम्बन से वह पूर्व में चाहे जितनी शंका टाले, निःशंक हो, उसकी गिनती नहीं होती। समझ में आया? भारी गड़बड़ करते हैं लोग, भाई! चरणानुयोग में ऐसा कहा है। भाई, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग में विरोध है?

द्रव्यानुयोग में तो यहाँ कहते हैं, अनादि-अनन्त काल में नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, व्यवहाराभासी शंका बिल्कुल नहीं थी। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा थी। नौ तत्त्व की व्यवहार श्रद्धा बराबर थी। बन्ध अधिकार में आता है। अभव्य आदि को नौ तत्त्व की बराबर श्रद्धा होती है। पृथक... पृथक... पृथक... वहाँ वर्तमान में तो पृथक् का ठिकाना नहीं। उसको तो नौ की पृथक्-पृथक् श्रद्धा बराबर थी। परन्तु एक चीज़ मैं अखण्डानन्द ज्ञायक हूँ। अपने स्वभाव के प्रयत्न से ही मुक्ति होती है और राग का पृथक् करना, वह मेरे स्वरूप में है नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि की नहीं। तो उसने शंका, कांक्षा चाहे जितनी न की, उसकी कोई गिनती नहीं।

और जिसने आत्मज्ञान किया। जितने दृष्टान्त लिये हैं शास्त्र में—चरणानुयोग में, आठ आचार के इत्यादि, वह सब भविष्य में आत्मज्ञान प्राप्त किया था। उसकी पूर्व की नि:शंकता में आरोप करके कथन किया है। परन्तु इस नि:शंकता से भविष्य में आत्मज्ञान प्राप्त किया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? .... समझ में आया? समन्तभद्राचार्य, रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है। बहुत दृष्टान्त आते हैं। लाते हैं, बहुत विवाद करते हैं। भाई! शान्त होओ, शान्त होओ। यह सब क्या है, किस अपेक्षा से कथन है? वह चरणानुयोग का कथन तत्त्वज्ञान भविष्य में हो गया, उसका दृष्टान्त है। वर्तमान में शंका नहीं की और भविष्य में समकित नहीं पाया, इससे नहीं, स्वभाव से, स्वभाव का अवलम्बन लेकर समकित प्राप्त नहीं किया, उसकी तो पूर्व की नि:शंकता मींडा—शून्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपचार किया। निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उसमें व्यवहार में आरोप किया। और व्यवहार सम्यग्दर्शन के अंश में पूरे व्यवहार का आरोप किया। समझ में आता है? ... समझ में आता है? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है, उसका ... तुम तो व्यवहार से कुछ धर्म नहीं होता, (ऐसा कहते हो)। तो अंजन चोर को व्यवहार क्रिया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आठ प्रसिद्ध हुए हैं। नि:शंक में, नि:कांक्ष में। उसमें

व्यवहार करने का लाभ हुआ या नहीं ? और तुम कहते हो कि व्यवहार से लाभ नहीं है। एकान्त हो जाता है। किसी को निश्चय से लाभ हो, किसी को व्यवहार से हो। ऐसा अनेकान्त करो, अज्ञानी ऐसा कहते हैं। सब झूठ है। वस्तु को समझते नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आरोप कब कहलाता है कि भविष्य में उसने प्राप्त कर लिया था। उसका दृष्टान्त है। इस कारण से नहीं। भविष्य में ज्ञान पकड़ लिया आत्मा से, पूर्व में निःशंकता रखी, उस कारण से नहीं। ज्ञानस्वभाव। मैं ज्ञायक हूँ। राग भी नहीं, निमित्त भी नहीं। ऐसे ज्ञान पकड़ लिया, इस कारण से समकित प्राप्त किया था। तो उस जीव का दृष्टान्त पूर्व का लेकर दिया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह अपने कारण से, वर्तमान कारण से, पूर्व के कारण से नहीं। पूर्व में निःशंकता की थी तो उस कारण से भविष्य में सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा नहीं है, ऐसा है नहीं। पर्याय की स्वतन्त्रता तो है, परन्तु ऐसी निःशंकता तो नौवें ग्रैवेयक गया तब अनन्त बार हुई। वह आरोप नहीं आता। आरोप तो जिसको स्वभाव की दृष्टि से अनारोपता भविष्य में हुई उसका भूतकाल में आरोप दिया। वह निःशंकता प्राप्त करके समकित की प्राप्ति की, ऐसा आरोप करके कथन है। बाद में आरोप दिया। ऐसा एक भी दृष्टान्त लाओ शास्त्र में कि भविष्य में समकित प्राप्त नहीं किया हो और उसका वर्तमान में दृष्टान्त दिया हो। ऐसा हो सकता ही नहीं। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। शंका, कंखा... कहा नहीं ?

'शंका, कंखा, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि आदि भावों को... सावधान होकर प्रवर्ते। अनन्त बार प्रवर्ता। तो क्यों आरोप नहीं आया उसको ? कहाँ से आवे झूठा ? ज्ञायक चैतन्य अहो ! शुद्ध वस्तु निर्मल विकाररहित है और विकार क्षणिक है। वह मेरी पर्याय में मेरा अपरोध है। निमित्त से उपाधि, निमित्त से उपाधि हुई, ऐसा आरोप करके समझ लेते हैं। निमित्त से उपाधि हुई, ऐसा आरोप करके समझ ले। उपाधि निमित्त से हुई ही नहीं है। परन्तु उपाधि छोड़ने को (कहा)। क्योंकि उपाधि का एक अंश है। मेरा

त्रिकाल तो निरुपाधि स्वभाव है। निरुपाधि स्वभाव का जोर देने को उपाधि निमित्त से हुई है, मेरी नहीं। ऐसा विवेक जिसने किया, उसे पूर्व का नि:शंक का आरोप आया कि नि:शंक था तो तिर गया। समझ में आया? यह आठों बोल में ऐसा ले लेना। नि:कांक्ष। इच्छा नहीं की। दृष्टान्त आता है न? अंजन, दूसरा क्या आता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। वारिषेण (मुनि) उन सबका ऐसा समझना। इस कारण से किसी ने समकित प्राप्त नहीं किया है। अपनी वर्तमान समय में जो चैतन्य को पकड़ने की योग्यता से पकड़ लिया, उसमें शास्त्र ने पूर्व का आरोप दिया। यह चरणानुयोग की कथन की पद्धति है। चरणुनयोग की कथन की पद्धति है। जो प्राप्त कर गये, उन्हें पूर्व का आरोप दे, ऐसी पद्धति है। परन्तु वर्तमान के कारण से भविष्य में प्राप्त करेगा, ऐसा वस्तु का स्वरूप है नहीं।

पर्याय तो स्वतन्त्र तो ठीक, परन्तु यहाँ तो दूसरी बात है। शंका, कंखा तो अनन्त बार छोड़ी। तो क्यों भविष्य में समकित नहीं प्राप्त किया? इस कारण से यदि प्राप्त होता हो तो। प्राप्त तो जब-जब सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तो द्रव्यस्वभाव अखण्डानन्द परिपूर्ण के लक्ष्य से ही प्राप्त करता है। तीन काल में कोई जीव पर्याय के अवलम्बन से, राग के अवलम्बन से, निमित्त के अवलम्बन से कोई प्राप्त नहीं करता। यह सिद्धान्त तो अकाटय है। कहो, समझ में आया? आठ दृष्टान्त तो शास्त्र में दिये। ऐसा जहाँ-जहाँ आवे, वहाँ यह दे सबके। अमुक को ऐसा हुआ, अमुक को ऐसा हुआ। अमुक ने प्रभावना की, रानी न्र प्रभावना की, उसने ऐसा किया। वह तो राग के अंश की मन्दता हुई, उससे भविष्य में लाभ हुआ, ऐसा तीन काल में नहीं है। चरणानुयोग का कथन कहने का यह आशय ही नहीं है। भविष्य में प्राप्त है, उसका यहाँ भूत में आरोप करके कथन किया है। यह चरणानुयोग की पद्धति की विधि है। नहीं तो सिद्धान्त दो हो जाये कि समकित कोई द्रव्य के आश्रय से पाता है और कोई राग मन्द करे, शंका न करे, कांक्षा न करे, मूढ़ता न करे, ऐसा शुभभाव करे तो भी भविष्य में क्रम-क्रम से पा जाता है। तो दो सिद्धान्त हो गये। एक नियम रहा नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा तीन काल में है नहीं।

इसलिए यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं कि सुन भाई शान्ति से! और अकेली शंका टाले पर के ओर की, कांक्षा न करे, विचिकित्सा—मुनियों को देखकर ग्लानि न करे और अमूढ़ता रखे अजैन में या जैन के अतिरिक्त दूसरे में मूढ़ता न करे इतने रागमात्र से तो हम उसे व्यवहाराभास कहते हैं। व्यवहाराभास कहते हैं। और उसके कारण से तीन काल में कोई परम्परा से भी जीव को धर्म हो, ऐसा तीन काल में होता नहीं। कहो, समझ में आया? चरणानुयोग की पद्धति की रीति न समझे, आशय न समझे। फिर वह डॉक्टर कहे, महाराज! अंजन चोर ने देखो, ऐसी निःशंकता की। रस्सी काट दी न। तो उससे लाभ हुआ। हम तो बहुत भक्ति करते हैं। भैया! सुनो, सुनो, सुनो। सब अनुयोग में सब अनुयोग का सार तो वीतरागता है। तो चारों अनुयोग का सार शास्त्र तात्पर्य तो वीतरागता है। आत्मद्रव्य वही वीतरागस्वरूप है। तो द्रव्य की दृष्टि जिसको नहीं, उसका पूर्व का आरोप आता है कहाँ से? अनन्त बार किया। नौवें ग्रैवेयक गया तो अनन्त बार किया। वह आया न छहढाला में?

'(मुनिव्रत) अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' कहाँ से? यह कहते हैं ऐसा व्यवहाराभास तो अनन्त बार हो गया। नौवें ग्रैवेयक क्या पहली बार गया है? अनन्त बार मुनि हुआ, अनन्त बार मनुष्य हुआ, अनन्त बार त्यागी, व्रतधारी, क्रियाकाण्ड अनन्त बार हो गया, एक बार नहीं। अनन्त बार हुआ, उससे समकित प्राप्त नहीं किया और वह एक बार निःशंका हुआ तो समकित प्राप्त कर लिया, विरुद्ध तत्त्व है। ऐसा है नहीं। भगवान के मार्ग में विरोध भी तीन काल में हो नहीं सकता। उसने किस कथन की अपेक्षा से कहा है, उसे समझना चाहिए। बड़ी गड़बड़ मची है। ऐसी गड़बड़ मचा दी। फिर क्या हुआ?

अपनी ताकत नहीं और बहुत व्रतादि ले लेते हैं। फिर उसका पोषण करने को, दृढ़ करने को, ऐसी दृष्टि हो जाती है, शास्त्र में पढ़ने से। अपना पोषण करने की दृष्टि हो जाती है। देखो, उसमें यह आया, देखो! उसमें वह आया। व्रत में भी दृष्टान्त आता है। अहिंसाव्रत, दत्तव्रत, सत्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत। उसका भी दृष्टान्त आता है पाँचों का। परन्तु उस व्रत से नहीं। व्रत तो आस्रव है। व्रत तो पुण्यास्रव है। पुण्यास्रव करते-करते धर्म हो जायेगा? तीन काल में नहीं। परन्तु पहले किया, भविष्य में प्राप्त किया तो शास्त्र

ने दृष्टान्त क्यों दिये? पाँच व्रत के पाँच दृष्टान्त। आता है न? उसमें आता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। भाई! यह दूसरे प्रकार से है, भगवान! शान्त हो। आग्रह छोड़कर सत्य को सत्य देख।

यह तो जीव भविष्य में स्वरूप की प्रतीति करके चारित्र रमणता स्वभाव के अवलम्बन से की, उसका दृष्टान्त (देकर कहा कि) पूर्व में यह व्रत पालन किये, इसलिए हुआ। इस समय व्रत भी कहाँ है? समकित बिना के व्रत कैसे? समझ में आया? भील ने माँस नहीं खाया। वह भील आता है न भील? भील ने माँस नहीं खाया तो श्रेणिक राजा का जीव... माँस नहीं खाया। फिर देवलोक में गया। बाद में ऐसा हुआ। क्या हुआ? अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठाया मिथ्यादृष्टि ने, उससे कुछ न हुआ। माँस नहीं खाया उसमें श्रेणिक राजा (हुआ), और उसमें से समकित प्राप्त कर लेता है? अज्ञानी वस्तु की दृष्टि विपरीत मानता है और विपरीत प्ररूपित करता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भविष्य में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की तैयारी थी। पूर्व के कारण से नहीं। वर्तमान पुरुषार्थ, नया पुरुषार्थ किया था तब पूर्व का कहा कि जो, इससे ऐसा है और इससे ऐसा है। एक फूल की पूजा। भगवान के निकट मेंढ़क गया। आता है न सब? सब दृष्टान्त है। दृष्टान्त में क्या है? समझना चाहिए न। उसको ऐसा हो गया।

अनन्त बार फूलपूजा भगवान की की है। अनन्त बार माँस नहीं खाया, निर्दोष पैंतालीस, सैंतालीस, तीस अन्तरायदोष रहित आहार लिया। ऐसा शुभराग किया। उससे कुछ नहीं हुआ (और) ऐसे एक में से हो जायेगा? तो शास्त्र में विरुद्ध है? एक शास्त्र में कुछ, दूसरे शास्त्र में कुछ? ऐसा है? ऐसा कभी है नहीं। सब शास्त्र यथार्थ कहते हैं। कथन की पद्धति क्या है, वह समझना चाहिए।

भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, अहो! अनादि का अज्ञानी जीव ज्ञायक को पकड़े बिना, रुचि किये बिना अकेला शंका, कांक्षा, निर्विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि को उत्थापने के लिये शुभभाव में जुड़ जाता है। व्यवहाराभासी है। उसे उस व्यवहार से निश्चय तीन

काल में नहीं आता। कहो, समझ में आया? 'मूढ़ आदि ... भावों में...' बराबर ऐसे उलझे नहीं। सबकी अन्य मति की बहुत प्रशंसा हो, बड़ी कीर्ति हो, ओहो! अपने त्यागी हुए और अपनी इतनी इज्जत नहीं। भले उलझन में नहीं परन्तु शुभराग है। वह तो शुभ विकल्प है। निर्विकल्प ज्ञायक है। ऐसे स्वभाव की रुचि बिना राग को व्यवहाराभास कह दिया है। उससे आत्मा को कुछ लाभ नहीं। दृष्टि पर के ऊपर है। आत्मा के स्वद्रव्य पर दृष्टि नहीं। कहो, समझ में आया? यह किसका अधिकार चलता है?

भगवान अमृतचन्द्राचर्य कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि एकान्त व्यवहार से धर्म मान रहे हैं, वह व्यवहाराभासी है। वह व्यवहारनय उसे लागू नहीं पड़ता। कथन भी ऐसे आते हैं। सब व्रती को इकट्ठी करके सुनावे तो। व्रती सम्मेलन करके यहाँ सुनाये तो हाय... हाय! यह तो यह कहते हैं। उत्साह किसको आयेगा? वह तो उत्साहप्रेरक होता है। एकदम कोई सात प्रतिमा, कोई दस प्रतिमा, कोई ग्यारह प्रतिमा लो.. लो। क्या ले? धूल ले परन्तु? कहाँ से आयेगी? लो। मेरे पास तो कुछ आया नहीं। आये कहाँ से? लेकिन वह एक उभरा है, उभरा। उभरा समझते हो? दूध का उफान नहीं आता है? उफान। दूध का उफान आता है न? दूध में ऐसा एक उफान आ जाता है जगत में। परन्तु चैतन्य क्या है? मुझे क्या हुआ? मैं कितना कर सकूँ? मेरी ताकत कितनी? विचारने का अवसर उसको मिलता नहीं।

भगवान अमृतचन्द्राचार्य महा सन्त मुनि थे। उन्होंने टीका बनायी है। वीतराग तात्पर्य बतावे, उसकी टीका है। भगवन कुन्दकुन्दाचार्य कहे, सर्व जैनशासन का सार वीतरागता है। कब? यह व्यवहाराभासी को वीतरागता की खबर नहीं। व्यवहार के क्रियाकाण्ड में ही मात्र धर्म मान बैठा है। और उफान-उत्साह आ जाये तो, ले लो, ऐसा ले लो। कहाँ से ले लो? बाहर से आता है? स्वभाव ज्ञायक हूँ, उसकी अभी जड़ तो जमी नहीं। मैं स्वभाव क्या हूँ? राग क्या है? राग विकार में भी क्षण-क्षण में... भैया! कर्म ऐसा आ गया, ऐसा उदय मुझमें आ गया। जो आ गया वह तो आ गया कर्म के कारण से। अभी कर्म के कारण से तो विकार मानते हैं। उसे आत्मा के कारण से समकित मानना तो दूर रह गया। जयचन्दभाई!

इसलिए भगवान आचार्य कहते हैं कि भाई! चार बोल जो समकित के—शंका

न करे, कांक्षा न करे, मूढ़ता न सेवन करे और ग्लानि न करे, वह शुभभाव है। उनमें सावधान होकर प्रवर्ते। सावधान अर्थात्? उस शुभभाव में ही सावधानी है, पर्याय में सावधानी है, राग में सावधानी है। स्वभाव में सावधानी की उसे खबर नहीं। कहो, समझमें आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...एक पड़ा रहा। मुख्य एक पड़ा रहा, शून्य लगावे।

'केवल व्यवहारनय रूपी उपबृहण...' अकेला उपबृहण भाई! बढ़ाओ, बढ़ाओ। शुभभाव बढ़ाओ। करते रहो भैया, एक दिन पार हो जायेगा। क्या करते रहें? क्या धूल करते रहें? एक दिन पार हो जाओगे। स्वभाव जैसा है, ऐसा ज्ञान में न पकड़े तो क्या? लाख, करोड़, अनन्त बार राग करो, विकल्प उठाओ, उससे कुछ आत्मा का ज्ञान होता नहीं। तो कहते हैं कि 'केवल व्यवहारनय रूपी उपबृहण...' गुण की वृद्धि करो, गुण की अभिवृद्धि करो। गुण, परन्तु अभी गुणी का तो भान नहीं है। किसकी वृद्धि करना? शुभभाव? शुभभाव पकड़ लो। ऐसा शुभभाव पकड़ो कि जिससे... क्या? शुभभाव तो एक समय है। एक समय की पर्याय है। भले उपयोग में असंख्य समय में आता है। उपयोग में। परन्तु वह तो एक समय की पर्याय है। तो शुभ को क्या पकड़ना? स्वभाव को पकड़ना या शुभ को पकड़ना? वह तो एक समय की पर्याय है।

कहते हैं कि 'व्यवहारनयरूप उपबृहण...' बढ़ाओ, गुण को बढ़ाओ। 'स्थितिकरण...' अपने में राग होता है। स्थितिकरण करो। स्थितिकरण किसे कहते हैं उसकी भी खबर नहीं। मिथ्यादृष्टि हो, उसको उसमें स्थिर करना, वह स्थितिकरण है? वह धर्म प्राप्त नहीं किया। वह तो धर्म अपने सम्यग्दर्शन में भान होकर स्थिर न हो तो राग आता है। उसको व्यवहार स्थितिकरण कहते हैं। और पर की पर्याय में स्थिर हो, वह तो उसके कारण से होता है, अपने कारण से नहीं। तो स्थितिकरण में भी ऐसा मान लेते हैं कि हम पर का स्थितिकरण करते हैं। भैया! परन्तु तेरे स्वरूप की दृष्टि की तो खबर नहीं। उस स्थितिकरण के राग में धर्म मान लेता है, वह मिथ्यादृष्टि है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र शुक्ल ५, रविवार, दिनांक - २३-०३-१९६९, गाथा-१६३, प्रवचन-२१
(वेबसाईट अनुसार ८०८)

यह एक पंचास्तिकाय नाम का शास्त्र है। इसकी १६३ गाथा।

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभवियसत्तो ण सद्दहदि।।१६३।।

जाने-देखे सर्व जिससे हो सुखानुभव उसी से।
यह जानता है भव्य ही श्रद्धा करे ना अभव्य जिय।।१६३।।

क्या कहना चाहते हैं? अर्थ में आयेगा। आत्मा पूर्ण सर्वज्ञ और पूर्ण आनन्दस्वभाव है। उसकी शक्ति की व्यक्तता अर्थात् प्रगटता पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द जिसे होता है, उसे ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण अनुभव होता है। ऐसा ही आत्मा का द्रव्यस्वरूप, वस्तु का स्वरूप है। ऐसा ही उसका आश्रय करके प्रगट होती पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा में पूर्ण ज्ञान होने पर उसे पूर्ण आनन्द का अनुभव होता है। ऐसी बात को जो श्रद्धा करता है, वह भव्य प्राणी है। योग्य है, अनुभव से श्रद्धा करता है, ऐसा यहाँ कहना है।

एक समय में जीव का ज्ञानस्वभाव जो वस्तुस्वभाव है, उस स्वभाव को मर्यादा—हद क्या हो? बेहद जिसका ज्ञान और दर्शन उसका स्वभाव है। ऐसा ही स्वभाव अस्तिरूप से, सत्तारूप से, अस्तिपने भगवान आत्मा का स्वभाव है। ऐसा स्वभाव है, वह है, ऐसा अनुभव करके जिसे अन्दर प्रगट हुआ है, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द, ऐसी अस्ति की श्रद्धा भव्य प्राणी को होती है। अभव्य अर्थात् जो पर्याय में समझने के योग्य नहीं। वस्तु से समान है। वर्तमान दशा में ऐसी पूर्ण आनन्द और ज्ञान की अवस्था एक समय में सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा को होती है। होती है, होती है, अस्ति है। ऐसा जिसे अन्तर में ज्ञान हो, उसे अन्तर सर्वज्ञ आत्मस्वभावी, सर्वदर्शिस्वभावी और आनन्दस्वभावी का अनुभव होने पर उसे सर्वज्ञ की प्रतीति और आनन्द का साथ में अनुभव होता है। तब उसने सर्वज्ञ को पूर्ण आनन्द है, ऐसी अस्ति जगत में है, ऐसी उसे प्रतीति अनुभव, होने पर होती है। १६३वीं... कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा इस देह में विराजमान तत्त्व है। अस्ति सत्ता है। और वह सत्ता अस्तिरूप से जो सत् है, उसका सत्त्व, सत् का सत्त्व अस्तिरूप से अखण्ड ज्ञान और एक अखण्ड द्रव्य होने से उसका ज्ञान और आनन्द सामर्थ्य भी शक्तिरूप से उसका पूर्ण है। और ऐसा पूर्ण ज्ञान और आनन्द होने से जिसने अन्तर का आश्रय करके और शक्ति की व्यक्तता प्रगट दशा में पूर्ण ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय सुख हुआ है, ऐसे परमात्मा को श्रद्धा करनेवाला भव्य जीव होता है। समझ में आया? यह भाषा के रूप की बात नहीं है, हों! भाव के रूप से बात है। यह बात यहाँ जरा कहते हैं, देखो! पहले शब्दार्थ-अन्वयार्थ करते हैं।

अन्वयार्थ :- जिससे (आत्मा मुक्त होने पर),... आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा प्रगट होना और पूर्ण ज्ञानदशा प्रगट होना, उसका नाम मुक्तदशा कहा जाता है। **(आत्मा मुक्त होने पर), 'सर्वं विजानाति' सर्व को जानता है और देखता है,....** कोई उसे जानना और देखना परिमित और हदवाला उसे रहता नहीं। सब बेहद जानते हैं। ऐसा भगवान आत्मा एक समय की दशा में पूर्ण जानना और पूर्ण देखना, ऐसा ही उसका स्वभाव है। **उससे, वह, सौख्य का अनुभव करता है;...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा के अस्तित्व में ज्ञान और आनन्द जिसका पूर्ण स्वभाव है, उसकी प्राप्ति जिसे शक्ति में से व्यक्तता प्रगट दशा अन्तर अनुभव से आश्रय से की है, वह आनन्द को अनुभवता है। समझ में आया? वह अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन परमात्मा को अथवा आत्मा की पूर्ण दशा में होता है।

ऐसा भव्य जीव जानता है,... जिसे अपनी योग्यता सर्वज्ञ, सर्वदर्शि पूर्णानन्द परमात्मा है, उस आनन्द को अनुभवता है, ऐसी जिसे प्रतीति होती है, किसे? कैसे? भव्य को? अर्थात्? जो दशा प्रगट हुई, वह दशा स्वभाव में से आयी है और मेरा स्वभाव अन्तर सर्वज्ञ, सर्वदर्शि और पूर्ण आनन्द है, ऐसे अस्तित्व के अन्तर आश्रय के अवलम्बन में जाता है, तब उसे पूर्ण सर्वज्ञ, सर्वदर्शि और पूर्ण आनन्द की प्रगटता जिसे है, उसकी उसे अपनी प्रगटता में भान होता है। समझ में आया? यहाँ तो विशेष विषय प्रतिबद्ध की व्याख्या... यह तो ऊपर से शब्दार्थ होता है।

टीका :- यह, सर्व संसारी आत्मा मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण (निषेध) है। क्या कहते हैं ? सब आत्मायें मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु मुक्तस्वरूप है उसका, उसकी मुक्ति की पर्याय की यहाँ प्रतीति करना, वह सब कर सकते हैं, ऐसा नहीं है। ऐसी जो जीव की जाति... है। ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? **मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण...** सब जीव 'सर्व जीव है सिद्धसम' यह वस्तुस्थिति से बराबर है परन्तु प्रगटरूप से सब कर सकें, ऐसी आत्मा की योग्यता और अयोग्यता ऐसे दो प्रकार जीव के हैं। समझ में आया ? अब इसका अर्थ करते हैं। ...

वास्तव में सौख्य का कारण... अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा के पूर्ण आनन्द की दशा का कारण... जिसका स्वभाव अस्तिरूप स्वभाव ज्ञान और आनन्द की जाति से पूरा प्रभु आत्मा है, उसकी दशा की सुख की दशा का कारण, पूर्ण आनन्द की दशा का कारण **स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** क्या कहते हैं ? धीरे से समझने की बात है। यहाँ तो सूक्ष्म बात माँगते हैं। चुनीभाई और रतिभाई है सही न। कहो, समझ में आया ? ... हमारे १६३ सुननी है।

प्रभु क्या कहते हैं ? वास्तव में पूर्ण आनन्द की दशा की प्राप्ति आत्मा में होना, उसका कारण **स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** यह एक शब्द पड़ा है। स्वभाव की विरुद्धता का अभाव, वह पूर्ण आनन्द का कारण है। अर्थात् क्या कहते हैं ? **सौख्य का कारण...** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप तो है। परन्तु उसकी दशा में पूर्ण आनन्द के सुख का कारण स्वभाव की विरुद्धता का अभाव है। स्वभाव की विपरीतता के उल्टे का अभाव है। क्या कहते हैं, समझ में आया ? अटपटा था तब पूछते होंगे न ? नहीं तो किसलिए पूछें ? ...भाई !

पर्याय में... पर्याय अर्थात् आत्मा की आनन्द, ज्ञान आदि दशा में स्वभाव की विरुद्धता का अभाव है। जो स्वभाव ज्ञान और आनन्द पूर्ण है, उससे विरुद्ध भाव का उसमें अभाव है। उसे अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञान के साथ प्रगट होता है। धीरे-धीरे अर्थ करेंगे, हों ! धीरे-धीरे। ...कहते हैं, वास्तव में आनन्द का कारण। प्रगट आनन्द के कारण की बात है, हों ! शक्तिरूप से तो आनन्दस्वरूप ही है प्रभु। भगवान आत्मा

अस्तिरूप से तो आनन्दमूर्ति है। उसका आनन्द पर में नहीं है। समझ में आया? उसमें विषयानन्द और भोगानन्द और वृतिआनन्द, वह आनन्द, आनन्द नहीं है। भगवान! वह तो दु:ख-जहर है। समझ में आया?

आनन्द तो भगवान आत्मा का सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् आनन्द और ज्ञान उसका स्वरूप है। उसकी प्रगटता में आनन्द के कारण में प्रतिकूलता के अभाव के कारण वह प्रगट आनन्द होता है। अब स्वभाव की प्रतिकूलता अर्थात् क्या? स्वभाव की प्रतिकूलता, विरुद्धता, उल्टापन अर्थात् क्या? समझ में आया? धीरे से समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये ऐसी बात नहीं है। **आत्मा का 'स्वभाव' वास्तव में...** स्वभाव के प्रतिकूलता का अभाव। अब इसका स्वभाव क्या है, उसकी व्याख्या करते हैं। भगवान आत्मा देह में विराजमान प्रभु प्रत्येक—हर आत्मा। उसका स्वभाव तो वास्तव में देखना और जानना है। राग का करना, राग का छोड़ना, अपने अतिरिक्त परपदार्थ का कुछ भी पलटाना या उसे मदद करके कुछ सहाय करके पर में कुछ अपने से हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है।

भगवान आत्मा दृशि, ज्ञानस्वभाव है उसका। जानना और देखना उसका स्व... स्व... स्व अपना भाव है। और **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है।** यह प्रतिकूलता की व्याख्या। अर्थात् क्या? **उन दोनों को...** भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन जिसका स्वभाव है। स्वभाव वस्तु है। वस्तु है, पदार्थ है तो उसका स्वभाव जानना, देखना त्रिकाली उसका स्वभाव है। अब उस स्वभाव का प्रगट होना, उसके प्रतिकूलता का अभाव है। अब उस स्वभाव की प्रतिकूलता अर्थात् क्या? **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध...** विषय में रुकावट अर्थात् मर्यादितपना। अर्थात् क्या कहते हैं? भगवान आत्मा... ज्ञानपर्याय है, उसकी दर्शनपर्याय है, उसका मर्यादित विषय जो है, जानने-देखने का विषय मर्यादित थोड़ा है, इसलिए उसकी विषय जानने की पर्याय वहाँ रुक गयी है। अर्थात्?

दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है। क्या कहा? भगवान आत्मा... ज्ञान और दर्शन तो उसका त्रिकाली स्वभाव है और पर्याय में पूर्ण जानना, ऐसा उसका

स्वभाव है। उस जानने में मर्यादित विषय उत्पन्न होता है, थोड़ा विषय रहता है, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है, कहते हैं। अर्थात् क्या? कि भगवान आत्मा अपना ज्ञान और दर्शन जो स्वभावस्वरूप है, उसका आश्रय पूर्ण किया नहीं। यह उसे स्वभाव की पूर्णता के प्रगटता का अभाव है। आश्रय किया नहीं, ऐसा कहते हैं। विषय तो ऐसा है। ...भाई! ....

कहते हैं, उसमें कितने सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। वस्तु स्वयं भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शनस्वरूप है। स्वभाव ही उसका अखण्ड है, इसलिए उसके ज्ञान, दर्शन अखण्ड है, अभेद है, एकरूप है। उसकी दशा में अखण्डता, अभेदता, पूर्ण ज्ञान-दर्शन प्रगट होना चाहिए, ऐसे पूर्ण स्वभाव में आनन्द आना चाहिए। ऐसे पूर्ण स्वभाव में आनन्द में स्वभाव में प्रतिकूलता का अभाव। प्रतिकूलता अर्थात्? दोनों को जानने-देखने की मर्यादा में रुक गयी है दशा। मर्यादित में रुक गयी है। अर्थात्? जिसे जानना-देखना ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव है, ऐसा पूर्ण आश्रय उसने किया नहीं। समझ में आया? यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी स्थान में यह बात हो नहीं सकती। द्रव्य, गुण और पर्याय। पर्याय में रुकावट का कारण कौन और खिलावट का कारण कौन? समझ में आया?

अरे! देह छूट जायेगी। यह रजकण मिट्टी धूल है, भाई! यह आत्मा के होकर बनकर नहीं रहे। ये रजकण तो रजकण के होकर रहे हैं, अजीव होकर रहे हैं। वाणी अजीव होकर रही है... राग, राग होकर रहा, आत्मा होकर राग रहा नहीं। परन्तु कहते हैं कि उसके विषय में जानने की न्यूनता है, उसे जानने-देखने की विषय में न्यूनता है, मर्यादा है, वह उसे अनन्त आनन्द प्राप्त होने में रुकावट है। अर्थात्? १७० में आता है न? भाई! प्रभुशक्ति पूर्ण खिली नहीं इसलिए। १७० में आता है, इसमें—पंचास्तिकाय में। पंचास्तिकाय, १७० है न? **प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से... परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से, पींजण को चिपकी हुई रुई के न्याय से...** १७० गाथा। है? पींजण, पींजण होती है न? पींजण यह रुई की। **पींजण को चिपकी हुई रुई के न्याय से...** अर्थात्? जिसने आत्मा में प्रभुत्वशक्ति पूर्ण है, ऐसी जिसने प्रगट की नहीं, प्रगट की नहीं, उसे नव तत्त्व और देव-गुरु-धर्म की

श्रद्धा का विकल्प रह जाता है। समझ में आया? वह सच्चे देव-गुरु-शास्त्र। मिथ्या है, उनकी तो बात भी नहीं। आहाहा! भाई! तेरे रास्ते निराले, प्रभु!

कहते हैं कि पिंजण में जैसे वह डोरा होता है न? क्या कहलाता है वह? ... रुई को ऐसे-ऐसे करे वह। ... कहलाता है। ... रुई चिपक जाती है। इसी प्रकार आत्मा में भगवान आत्मा पूर्णानन्द शक्ति का भण्डार पूर्ण प्रभुशक्ति का भण्डार है। परन्तु जिसकी शक्ति और स्वभाव है, उसे अपूर्णता और मर्यादा कैसे हो सकती है? जिसका स्वभाव ही भगवान ज्ञान और आनन्द और वस्तु पूर्ण है। प्रत्येक गुण की प्रभुत्वशक्ति पूर्ण है। जिसने उस पूर्ण शक्ति को अपने पुरुषार्थ से प्रगट किया नहीं, उसके कारण बीच में नौ तत्त्व और देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा में उसे रुकावट होती है। ...भाई! समझ में आया? धीरे से समझना, बापू! समय चला जाता है। आहाहा! यह मनुष्य का देह, इसका एक-एक समय चला जाता है। जो करने का है, वह न करे, क्या करेगा? चला जायेगा भाई! यह सब बिखर जायेगा, वह कहाँ इसका था, वह रहे? आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा पूरे में प्रभुशक्ति परमात्मशक्ति परमेश्वरशक्ति पूरी पड़ी है। उसका आश्रय उसे कम है, जिससे उसने प्रभुशक्ति को पूर्ण प्रगट किया नहीं। भाई! १७० में यह है। न्याय पूरा लिया है। उसे बीच में... क्या कहते हैं? है न? ... नौ पदार्थ की श्रद्धा का विकल्प रहता है। भगवान ने कहे हुए नौ, हों! आहाहा! १७० पाठ। **'सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।'** है न? आहाहा! **संयमतपसंयुक्त होने पर भी, नव पदार्थों और तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का जुड़ान वर्तता है...** आहाहा! सच्चे सर्वज्ञ तीन लोक के नाथ परमेश्वर परमात्मा, जिन्हें एक समय में पूर्ण ज्ञान, आनन्द प्रगट हुआ है। उनके प्रति भी जिसका अभी झुकाव रह जाता है, उसने प्रभुत्वशक्ति का विकास किया नहीं, इसे। समझ में आया? आहाहा! है? उपरोक्त रीति से। देखा! भगवान कथित सर्वज्ञ परमेश्वर के मुख में से दिव्यध्वनि आयी। ऐसे सूत्रों के प्रति जीव को श्रद्धा रहती है, **उसे निर्वाण दूरतर (विशेष दूर) है।** इसका अर्थ फिर आचार्य ने किया है। भाई! तुझमें परमेश्वरता पूर्ण है न, प्रभु! उसका आश्रय तूने पूर्ण किया नहीं और उस प्रभुत्वशक्ति का पूर्ण विकास नहीं, इसलिए तेरी नौ पदार्थ में, सच्चे

देव-गुरु-शास्त्र के झुकाव में विकल्प की श्रद्धा रह जाती है। समझ में आया? खोटे देव-गुरु-शास्त्र की बात ही कहाँ है। वह तो मिथ्यात्वभाव है।

जिसे ऐसे सर्वज्ञदेव परमात्मा जिन्हें एक समय में पूर्ण ज्ञान और आनन्द प्रगट हुए हैं, ऐसा ही आत्मा का स्वभाव है। ऐसे प्रगट हुए परमात्मा अनन्त हुए हैं। ऐसे परमेश्वर और उनके कहे हुए शास्त्र और उनके कहे हुए तत्त्व। तीनों आये न भाई इसमें? आहाहा! भगवान! साक्षात् भगवानरूप से कहते हैं, हों! प्रभु भगवान है, भाई! यह प्रभु है। इसकी इसे खबर नहीं है। इसकी इसे कीमत नहीं है। पर की कीमत करनेवाला अपनी कीमत नहीं करता।

कहते हैं, भगवान! तेरी प्रभुत्वशक्ति का पूर्ण विकास नहीं न, इसलिए तेरा रुकना हो गया है। अब वहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर में यह कथन वीतराग में होता है। मुख के सामने ग्रास किसे बुरा लगे? हमको पूजो, हमको मानो, हमारी ओर देखो तो तुम्हें लाभ होगा। भगवान कहते हैं, भाई! तुझमें कहाँ कचास और अपूर्णता और अधूरापन है कि जिससे पर का आश्रय लेने का विकल्प उसे हो? समझ में आया? समझ में आये ऐसा है, हों! आत्मा में... बाल बच्चे के शरीर में भगवान बसता है, वह तो ऐसा का ऐसा है। वह नहीं हुआ शरीररूप, नहीं हुआ कर्मरूप, नहीं हुआ रागरूप और अल्प पर्यायरूप हो, वह भी उसका वास्तविक स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, वह प्रभुत्वशक्ति में... उस पिंजण में जैसे थोड़ी रुई रह जाती है न! भगवान आत्मा... उसने स्वआश्रय पूरा किया, ऐसा कहते हैं। स्वआश्रय पूर्ण प्रगट किया नहीं, इसलिए रुई की पिंजण जैसे रह जाती है, वैसे इसे नौ तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प रह जाता है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा के प्रति भक्ति आदि की श्रद्धा की विकल्प दशा, वह विकल्प उसके कारण से रहता है। कर्म के कारण से रहता है, ऐसा इसमें नहीं कहा। उसे चारित्रमोह का उदय है, इसलिए वह रहता है, ऐसा नहीं है। भगवान! ऐसा नहीं है। समझ में आया? तेरी प्रभुत्वशक्ति के पूर्ण सामर्थ्य के आश्रय बिना यह भाव रह जाता है। कहो, समझ में आया?

यह तो अस्तित्व त्रिकाल परमसत्य है। जगत में अनेक प्रकार से अभी मिथ्या चलते हैं। बाहर के विषयानन्दी जीवों को, बाहर की प्रीतिवाले जीव को प्रेम लगता है, उसमें मोह। अरे... भगवान! तुझमें एक शुभ विकल्प उठे यह देव-गुरु-शास्त्र, नौ पदार्थ का, कहते हैं कि वह जहर है, राग है। तेरी प्रभुत्वशक्ति रुक गयी है, इसलिए यह हुआ है। विकास नहीं किया, इसलिए यह हुआ है। आहाहा! यह अशुभभाव की तो बात क्या करना! विषय में आनन्द है, पर में आनन्द है। भगवान! यह तो महा जहरदृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, यहाँ रुकावट कैसे हुई? प्रभुत्वशक्ति अपना स्वभाव पूर्ण जो प्रगट करना चाहिए, उसे प्रगट नहीं करता, इसलिए उसे इस प्रकार के नौ पदार्थ और शास्त्र की—सच्चे शास्त्र की, सच्चे कहे हुए नौ पदार्थ के भेद की श्रद्धा का राग रह जाता है। उसने शक्ति का विकास पूर्ण किया नहीं इसलिए। कर्म के कारण से नहीं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं **दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है।** अब अपने यहाँ चलते विषय में। अर्थात् क्या कहते हैं? बात ऐसी करते हैं। बात दूसरी है अन्दर में। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की पूर्ण दशा की पर्याय में अथवा इसमें ज्ञान और दर्शन की बात है, वह अनन्त आनन्द साथ में लेना है न? ज्ञान और दर्शन की पूर्ण विषय पर्याय नहीं तो वह थोड़े में रुक गया है। पूर्ण नहीं। अर्थात् कि उसे ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा का जो पूर्ण आश्रय करना चाहिए, उतना आश्रय हुआ नहीं। इसलिए उसे ज्ञान, दर्शन की विषय की प्रतिबद्धता रुक गयी है। थोड़े में उसके ज्ञान, दर्शन काम करते हैं। अमर्यादित काम करते नहीं।

फिर से। यह महासिद्धान्त है, महासिद्धान्त। वस्तु के स्वरूप की स्थिति ही ऐसी है। यह किसी ने की नहीं। है, ऐसी जानी है और सुनी है—कही है। कहते हैं, भगवान! तेरा स्वभाव तो जानना-देखना है न! और जानना-देखना, वह तो दशा में पूर्ण प्रगट होना चाहिए। जानना-देखना, वह पूर्ण होना चाहिए। जैसा पूर्ण स्वभाव है, वैसी दशा में पूर्णता... पूर्णता, सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता आनी चाहिए। ऐसा नहीं, उसका कारण विषय का प्रतिबन्ध है। **दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है।** अर्थात्? जानने-

देखने की मर्यादा रह गयी है। पूर्ण अमर्यादित दशा हुई नहीं। मर्यादित कैसे रही है? कि भगवान ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द का विषय जो पूर्ण है, वह पूर्ण आश्रय किया नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े परन्तु बापू! वस्तु तो यह है, भाई! समझ में आया? भगवान आत्मा ऐसे मनुष्यदेह के काल में ऐसा समझेगा नहीं, करेगा (नहीं) तो प्रभु कब करेगा यह? बाकी सब तो... अनन्त बार किये हैं। समझ में आया?

कहते हैं, ... आता है न? हमारे दलपतराय का आता था। हम पढ़ते थे तब। 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी', दलपतराय थे न? दलपतराम। दौलतराम तो अपने छहढालावाले। दलपतराय ने उस समय यह बनाया है। 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी, मुजरो मुझ रोग ले हरि।' ऐसा आता था पहले, भाई! 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी' तू प्रभु है न! भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु है। तेरी प्रभुता तो तब हुई कहलाये कि 'मुजरो..' मुजरो अर्थात् मेरी विनती। 'मुझ रोग ले हरि' स्व का आश्रय करके अज्ञान और राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं, वह मुजरो आत्मा ने लिया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

कहते हैं, यह आत्मा का जानने-देखने का स्वभाव है। क्या इसका पुण्य-पाप करने का स्वभाव है? भाई! व्यवहार करने का स्वभाव है? अभी तो लोग ऐसा कहते हैं, व्यवहार करे तो निश्चय होता है। अरे... भगवान! सुन प्रभु! बहुत बड़ी उलझन में पड़ा है। उसका स्वरूप तो जानना-देखना ही है। व्यवहार के जितने विकल्प आवें, उन्हें करना या टालना, वह उसके स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? ऐसी सत्तावाला यह तत्त्व भगवान आत्मा है। अस्तिवाला भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान, पूर्ण ज्ञान और दर्शन स्वभाव ही उसका है। उसकी दशा में वर्तमान प्रगट में पूर्णता का अभाव है, क्यों?—कि उसके ज्ञान और दर्शन के विषय में मर्यादित विषय हो गया है। अमर्यादित विषय है नहीं। और अमर्यादित नहीं, इसका कारण? समझ में आया? कि भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु अखण्डानन्द है, उसका पूर्ण आश्रय नहीं लिया; इसलिए पूर्ण पर्याय प्रगट हुई नहीं। इसलिए उसे पूर्ण विषय प्रगट हुआ नहीं। समझ में आया? यह और ऐसी धर्मकथा कैसी? ऐ... ...भाई! ... देते हैं न उसमें? ... समझ में आया? यह पीने का तो प्रभु तुझमें है, कहते हैं। आहाहा! इसके अतिरिक्त विकल्प में भी नहीं और

उसकी एक समय की पर्याय में पूर्ण पर्याय प्रगटे तो भी उस पर्याय का सामर्थ्य प्रगटाने का कारण तो द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

प्रभुत्वशक्ति है न उसमें? गुण है न? अपने ४७ आ गये हैं। प्रभुत्व नाम का गुण है। अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभायमान। जिसकी वर्तमान पर्याय में जिसका गुण प्रभुत्व है भगवान इस देह में रहा हुआ प्रभु, उस प्रभुत्वगुण का स्वरूप और सामर्थ्य क्या है? अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभे, उसे प्रभुत्वशक्ति कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं न, विकल्प छोड़ो, राग छोड़ो। परन्तु क्या छोड़ना? छोड़ना किसके आश्रय से? यह चीज़ है कोई? यहाँ तो विषय की मर्यादा जो है, उसे टालना किस प्रकार? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? राग घटाओ, राग तोड़ो। परन्तु किसके आश्रय से? किस चीज़ के आश्रय से? अस्तिपने की सत्ता क्या है उसकी? इससे सिद्ध करते हैं।

भगवान! तू सत् है न! और सत् है, उसका सत्त्व, सत् का सत्त्व है या नहीं? तत्त्वपना है या नहीं? तो उसके पने में तो ज्ञान, दर्शन की पूर्णता, वह उसका पना है। समझ में आया? वह पूर्ण परमात्मा स्वभाव से भरपूर, उसका पूर्ण आश्रय किया नहीं, इसलिए उसके ज्ञान, दर्शन में मर्यादित रुकावट हो गयी है। समझ में आया? नवरंगभाई! यह गजब! ऐसा विषय भगवान! तेरे लिये सूक्ष्म होगा? प्रभु! एक समय में तीन काल तीन लोक को हस्तामलवत रूप से जाने, ऐसा नाथ चैतन्यप्रभु अन्दर है। उसे न्यूनता कहने से उसे कलंक लगता है। यहाँ यह कहते हैं। आहाहा!

भगवान! कहते हैं कि तेरे ज्ञान और दर्शन की दशा में विषय अर्थात् जानने की हद हो गयी है, मर्यादित जानना रह गया, मर्यादित देखना (रह गया है)। यह रुकावट है, पूर्ण दशा प्रगट होने में (रुकावट है)। समझ में आया? ऐसा मार्ग कैसा होगा? भाई! मार्ग तो यह ही है, प्रभु! आहाहा! देखो न! जवान-जवान चले जाते हैं। ३०-३० वर्ष के, ३५ वर्ष के चले जाते हैं। एक रजकण काम करे नहीं इसका विचारा हुआ। वह स्वतन्त्र पदार्थ है। वह तेरे आधार से कहाँ है? तुझमें रहा है वह? यह स्वतन्त्रता तो तब मानी कहलाये कि उससे भिन्न पड़कर अपनी सत्ता पूर्ण है, ऐसा माने तब। समझ में

आया? और मेरी दशा में पूर्णता नहीं, जानने-देखने की दशा मर्यादित है, इसलिए उसका जानने का विषय भी मर्यादित थोड़ा हो गया है। उसका कारण **विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है।** भाषा ऐसी की है, भाई! **विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है।** ... भगवान! तेरा स्वरूप तो प्रभु चैतन्यमूर्ति ज्ञानज्योति है न! ज्ञान और दर्शन के स्वभाव का भण्डार अस्तिपने, सत्तापने, होनेपने है। ऐसा ही पूर्ण प्रगट न हो, उसमें तेरा पूर्ण वस्तु के आश्रय का अभाव है। ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! ऐसा है इसमें यह। सीधे पूछा था तुमने। ... कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं, वास्तव में आनन्द का कारण तो स्वभाव की विरुद्धता का अभाव। यह पहले कहा था। अब स्वभाव क्या है? **आत्मा का 'स्वभाव' वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति (दर्शन और ज्ञान) है।** यह प्रवचनसार में ६१-६२ में ... उतारा है। प्रवचनसार में यही बोल है। ६१-६२ गाथा। ज्ञान अधिकार। समझ में आया? इसलिए भव्य-अभव्य बोल लिये हैं। भव्य श्रद्धा करता है और अभव्य श्रद्धा नहीं करता, वह यही बात है। ६१-६२ में ली है, प्रवचनसार। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का रचा हुआ प्रवचनसार, उसमें ६१-६२ (गाथा)। समझ में आया?

कहते हैं, थोड़ा भले समझे परन्तु सच्चा समझे न तो इसका रास्ता निकले। बहुत भंगभेद समझ जाये। ग्यारह अंग और नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ गया। ग्यारह अंग और नौ पूर्व, उसे भगवान ज्ञान नहीं कहते। समझ में आया? जो आत्मा के उपयोग में देव-गुरु-शास्त्र की वाणी के अवलम्बन से जो ज्ञान प्रगटे, उसे भगवान ज्ञान कहते ही नहीं। उसे आत्मा का उपयोग कहते ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा का उपयोग जानना-देखना। दृष्टि विपरीत है न? जानना-देखना जो उपयोग, उस उपयोग में ज्ञेयों के अवलम्बन से जितना अन्दर उघाड़ हो, वह ज्ञान ही नहीं है, अज्ञान है। क्योंकि जो ज्ञान हो, उसके साथ आनन्द आना चाहिए। ज्ञान, दर्शन की परिपूर्णता में आनन्द आवे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? धीरे-धीरे समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ आये ऐसा नहीं है। ऐसे मनुष्यदेह में ऐसा काल मिला, ऐसी सत्य समझने जैसी योग्यता मिली। उस समय नहीं समझे तो कब समझेगा? समझ में आया? वे ... आये थे न? सेठ वहाँ के। इन्दौरवाले। राजकुमारसिंह वहाँ आये थे। ... अन्तिम व्याख्यान हुआ। मैंने कहा,

कुछ समझ में आता है ? ... यहाँ नहीं समझे तब फिर कहाँ समझेगा ? ऐसे ... आठ हजार ... गाँव तीन हजार का। चौदह हजार लोग बाहर के। ... सुनते थे। क्या कहते हैं यह ? बापू ! यह सत्य है, भाई ! यह सम्प्रदाय की रीति नहीं है। यह तो स्वभाव की रीति है। समझ में आया ? बड़ा पत्र था। मैंने तो थोड़ा पढ़ा। ... हमारे से कहाँ हुआ है ? ऐसा हुआ, वहाँ हुआ, होने का हुआ। ... इसलिए ऐसा हुआ है वहाँ ? आहाहा ! इन बेचारों को ऐसा कि ... उसमें ऐसी जाहोजहाली। इतने-इतने लोग और... ओहो ! बापू ! किसी का शुभ विकल्प है, इसलिए वहाँ होता है, ऐसा नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, शुभ विकल्प तो नहीं... आहाहा ! वह तो विरुद्ध है परन्तु ज्ञान और दर्शन की पर्याय में पूर्ण विकास नहीं, वह उसका विरोध है। आहाहा ! भगवान ! तू तो परिपूर्ण है न। एक बार वडोदरा में नाटक आया था। अनुसूया का नाटक आया था। अनुसूया-नर्मदा। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६५-६६ की। यह झूले में लड़के को सुलाते हैं। फिर उसकी माँ... 'शुद्धोसि, बुद्धोसि, ब्रह्मासि' ऐसा बोलती थी। ६५-६६ की बात है। वडोदरा में नाटक था। उस समय तो वैराग्य के नाटक (आते थे)। अभी तो यह सब फिल्म-बिल्म चल निकला है 'शुद्धोसि, बुद्धोसि, ब्रह्मासि'। शुद्ध हो, बुद्ध हो प्रभु ! बालक को उसकी माँ ... ननिहाल में गया था और खारेक भरकर लाया। ऐसा विकार और विषय... वैराग्य के नाटक... सुलाती थी न ... इतने दोहे नाटक में... और ऐसा गाये। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि बापू ! ज्ञान और दर्शन से परिपूर्ण भरा हुआ भगवान तू है। और पर्याय में परिपूर्णता की दशा में व्यक्तता नहीं, उसका कारण... आहाहा ! ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय का उदय है, इसलिए यह परिपूर्णता नहीं है, ऐसा कहा नहीं है। आहाहा ! किस शैली से बात की है ! तेरी प्रभुता पूर्ण प्रगट नहीं हुई और तुझमें जानने-देखने की दशा मर्यादित है और इसका विषय भी मर्यादित है। लोकालोक तीन काल-तीन लोक एक समय में जाने, ऐसा तो अनन्तपने परिणमना, ऐसा तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। किसका जानना यह प्रश्न बाद में। व्यवहार हो गया। समझ में आया ? तीन काल-तीन लोक को एक समय में ज्ञानरूप परिणमन हो जाये, ऐसा तो उसका स्वरूप है। परिणमन हो गया ऐसा। अनन्त को अनन्तरूप जानने का परिणमन हो गया। क्यों नहीं ?

उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है। यह इसका अर्थ है। चन्दुभाई! आहाहा! जानने-देखने की दशा परिपूर्ण होनी चाहिए। क्योंकि परिपूर्ण स्वभाव है तो स्वभाव व्यक्तपना परिपूर्ण होना चाहिए। परिपूर्ण नहीं, इसका कारण कि विषय में मर्यादित रुकावट हो गयी है। विषयप्रतिबन्ध का अर्थ यह ... विषय में रुकावट, मर्यादितपना। (दर्शन और ज्ञान के विषय में मर्यादितपना होना, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है)। अर्थ तो यहाँ से लिया है। नहीं, ऐसा है। तब अर्थ किया था। वहाँ कहा था। तुम्हारा आया न आज? ऐसा अर्थ है इसमें। आहाहा! भाई! तूने तेरे प्रभुत्वस्वभाव का पूर्ण आश्रय किया नहीं, यह पूर्णता प्रगट होने में प्रतिकूलता-रुकावट है। समझ में आया? अर्थ तो जैसा हो, वैसा समझना चाहिए न! समझ में आया? यह वर्तमान पूरा विवाद उठा है न अभी! अर्थ के अनर्थ। जो कुछ वस्तु शास्त्र को कहनी है अथवा कहनेवाले के अभिप्राय में जो था, ऐसा अर्थ न करे तो वह तो अर्थ के अनर्थ होते हैं। समझ में आया?

दृष्टान्त दिया था न? अभी आया था न? एक सासु ने बहू को कहा। जूठन डालना हो न? जूठन। बहू को कहा कि अच्छे लोग देखकर डालना। अच्छे लोग देखकर डालना इसका अर्थ क्या किया उसने? कि अच्छा व्यक्ति आवे तो उसके ऊपर डालो। सासु ने कहा बहू को कि लोगों को देखकर जूठन डालना। लोगों को देखकर डालना। थोड़ी देर खड़ी रही। दस मिनिट, पाँच-सात मिनिट कोई व्यक्ति निकले नहीं, तब तक खड़ी रही, सासु को ऐसा, क्यों अभी आयी नहीं। क्यों खड़ी है? तुमने कहा नहीं कि लोगों को देखकर डालना। परन्तु लोगों को देखकर डालना अर्थात्? लोग हों, तब डालना नहीं, ऐसा उसका अर्थ है। चन्दुभाई! लोगों को देखकर डालना अर्थात् लोगों के ऊपर डालना, ऐसा कहा था? तब तीन अर्थ आये थे न। एक ऐसा अर्थ आया था और दूसरा दूसरा अर्थ आया था। ... आया था।

कन्या थी उसका विवाह किया। ...सन्दूक को सम्हालकर ले जाना। बहिन के घर में। श्रावण महीने का समय। सन्दूक को सम्हाल कर ले जाना। ऐ... रतिभाई! सन्दूक उठाकर निकला वहाँ... अब? सन्दूक खोली। सन्दूक न डूबे, इसलिए अन्दर से पाँच सौ-हजार की साड़ी थी, उसे लपेटा। सन्दूक को सम्हालकर ले जानी थी न?

मूर्ख। सन्दूक को सम्हालकर ले जाने का अर्थ क्या है ? वह पाँच सौ की साड़ी निकाली, लपेटी और सन्दूक सम्हाली। सन्दूक सम्हाल डाली। तुम कहते थे। परन्तु सम्हाली का अर्थ क्या ? ऐई ! यह विषयप्रतिबन्धता। समझ में आया ? इसका अर्थ कि सन्दूक को... ले जाना। यह तो उसमें से कपड़ा निकालकर लपेटकर। सन्दूक व्यवस्थित की।

तीसरा एक किसान था, किसान। दाने बोता था। किसी ने पूछा, भाई ! क्या बोते हो ? दूर जा। हमारे नहीं कहना। नहीं तू कहे तो उगेगा तब कहेंगे यह। वह कहता है। तू न कहे तो उगेंगे तब कहेंगे। तब कहता है, भगवान करे और बरसात न बरसे और न उगे तो अच्छा। परन्तु क्या करता है तू यह ? ...भाई ! बोया हुआ न उगे। उल्टा बोले। ...परन्तु तू नहीं करे तो उगेंगे, तब हमको खबर पड़ेगी की कि तू क्या बोता है। भगवान करे और न उगे, वर्षा न आवे। परन्तु किसे क्या कहता है तू यह ? ऐसे के ऐसे मूर्खाई से भरपूर शास्त्र के अर्थ करते हैं। समझ में आया ? आता है न उसमें ? देवचन्दजी में आता है। 'जातिअन्ध का दोष नहीं आकरो, जे जाणे नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि तेथी रे आकरो, करे अर्थना रे अनर्थ।' जो हेतु है, जो सिद्ध करना है सत्य स्वतन्त्र, ऐसा अर्थ न समझे और विपरीतता करे, बापू ! तेरी विपरीतता तुझे बाधक होगी, भाई ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं परमात्मा, सन्त कहते हैं, वह परमात्मा कहते हैं या आत्मा कहे, सब एक ही बात है। आत्मा होकर आत्मा कहता है। कहते हैं कि तेरे जानने-देखने की दशा में अल्पता क्यों ? उसका विषय थोड़ा क्यों ? उसका विषय थोड़ा, इसलिए यहाँ जानना देखना, ऐसा हुआ न ? पाठ ऐसा है—विषयप्रतिबन्ध। विषय का प्रतिबन्ध। शब्द तो ऐसा है, लो। ऐ... चन्दुभाई ! इसका प्रतिबन्ध का अर्थ कि यहाँ जो विषय थोड़ा है, वह तूने यहाँ विषय पूर्ण किया नहीं। थोड़ा आश्रय किया, पूर्ण किया नहीं, इसलिए यह प्रतिकूलता रह गयी है। आहाहा ! कर्म का नाम भी यहाँ तो नहीं दिया। आहाहा ! भाई ! परद्रव्य तुझे क्या करे ? परद्रव्य परद्रव्यरूप से रहा है। तुझे स्पर्शा भी नहीं। तू उसे स्पर्शा भी नहीं तीन काल में कर्म को, पर को। भाई ! तेरे अस्तित्व में उसका अस्तित्व कैसे एक समय की दशा में आवे ? द्रव्य-गुण में तो न आवे, द्रव्य और गुण तो त्रिकाली वस्तु है, उसमें तो न आवे, परन्तु प्रगट पर्याय में पर का अस्तित्व कैसे आवे ? पर के अस्तित्व

का पर्याय के अस्तित्व में उसका अभाव है। तब कहते हैं, पूर्णता क्यों नहीं? विषय का प्रतिबन्ध है। अर्थात् कि उसका मर्यादित विषय है। अर्थात् कि मर्यादित ज्ञान है। विषय प्रतिबन्ध ऐसे लिया है। ज्ञान मर्यादित है। अर्थात् कि द्रव्य का उसने मर्यादित आश्रय लिया है। अमर्यादित आश्रय पूरा किया नहीं। आहाहा! ... समझ में आया?

प्रभु! तूने तेरी प्रभुता की पूर्ण पड़ी है न, नाथ! उसका आश्रय पूर्ण किया नहीं, हों! उसके कारण यह मर्यादित विषय और उन्हें जानने का ज्ञान कम रह गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो! तीन टुकड़े में तो कितना डाला। **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** पूर्णानन्द दशा आत्मा को हो, ऐसे भाव में प्रतिकूलता का अभाव, वह पूर्णानन्द का कारण है। और वह आत्मा का स्वभाव वास्तव में जानना-देखना है। आहाहा! सब निकाल डाला। जानने-देखने के अतिरिक्त कोई चीज़ ही तेरी नहीं। समझ में आया? और उन दोनों को अर्थात् जानना-देखना दोनों को विषय प्रतिबन्ध होना। जानने-देखने का विषय प्रतिबन्ध होना, ऐसा कहा है। देखने का विषय थोड़ा रहना। अर्थात् कि जानने-देखने की दशा थोड़ी रही। अर्थात् कि जानने-देखनेवाले का आश्रय पूर्ण नहीं रहना। समझ में आया? यह सब समझना पड़ेगा, हों! रतिभाई! बाहर में धूल भी नहीं। खबर नहीं पड़ी? वह कुछ हुआ था, नहीं? पड़ा रहा था महीना-महीना। वह तो जड़ है, भगवान! मिट्टी है, भाई! रजकण-रजकण स्वतन्त्र परिणमने के योग्य है। तेरा उसमें एक जरा भी अधिकार नहीं है। आहाहा!

अरे! भगवान! तेरे पूर्ण आनन्द में कारण कौन? पूर्ण आनन्द का कारण प्रतिकूलता का अभाव। स्वभाव में प्रतिकूलता का अभाव। स्वभाव जानना और देखना है। वह स्वभाव विषय का प्रतिबन्ध प्रतिकूलता का कारण है। अर्थात् भगवान आत्मा ने अपना विषय या ध्येय पूर्ण नहीं किया। पूर्ण किया नहीं, इसलिए विषय को जानने की दशा अल्प रह गयी है और जानने का विषय थोड़ा रहा गया है। आहाहा! कितनी बात करते हैं स्वतन्त्रता की। एक समय की पर्याय में स्वआश्रय पूर्ण कर तब पूर्ण होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह मोक्ष में क्या है, अब वह बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

चैत्र शुक्ल ६, सोमवार, दिनांक - २४-०३-१९६९, गाथा-१६३, प्रवचन-२२
(वेबसाईट अनुसार ८०९)

पंचास्तिकाय, १६३ गाथा। कहते हैं कि संसारी आत्मा अन्दर, जो अनन्त आत्मायें हैं सत्तारूप से, अस्तित्वरूप से, उसमें सब कुछ मोक्ष के लायक हैं, ऐसा नहीं है। यह बताते हैं। मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण है। क्यों?

वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है। जो भगवान आत्मा अकेला जानने और देखने के स्वभाववाला वह तत्त्व है। ऐसे स्वभाव को प्रतिकूलता, उसका अभाव, वह आनन्द का कारण है। अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। अर्थात्? आत्मा का स्वभाव वास्तव में दर्शन और ज्ञान है। भगवान आत्मा दृष्टा और ज्ञाता, यह उसका स्वभाव है। उस स्वभाव को विषय प्रतिबन्ध होना, वह प्रतिकूलता है। अर्थात्? उसका जानना-देखना पूरा होना चाहिए, पूर्ण जानना-देखना होना चाहिए। तो उसे अतीन्द्रिय सुख हो। समझ में आया?

भगवान आत्मा, वह पर का कर्ता है या पर में है, यह तो वस्तु नहीं। वह पुण्य-पाप के विकल्प राग हैं, उनका कर्ता है, भोक्ता है या राग में आत्मा है, ऐसा नहीं। आत्मा अर्थात् कि जानने-देखने के स्वभाव की मूर्ति प्रभु। ज्ञ—स्वभाव और दृष्टस्वभाव, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके स्वभाव की परिपूर्णता की प्राप्ति में उसकी मर्यादित विषय का भाव होने से पूर्ण ज्ञान, दर्शन की प्राप्ति का उसे अभाव है, इसलिए उसे अतीन्द्रिय आनन्द का भी अभाव है। **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है।** अर्थात् कि एक न्याय से जहाँ अल्प जानना-देखना है, वहाँ विशेष जानने की आकांक्षा और न ज्ञात हो तो द्वेष (होता है), ऐसी भाव उत्पत्ति होती है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण जानना और देखना, यह उसकी शक्ति है और यह उसकी पर्याय में परिपूर्णता होना, यह उसका स्वभाव है। ऐसा न होकर जानने-देखने की हदवाली रुकावट हो जाना, विषय उसका जानने का थोड़ा रहना, जिससे उसे विशेष जानने के लिये विकल्प उत्पन्न हो, न ज्ञात हो कुछ विशेष, तब कलुषित और अरुचि

उत्पन्न हो, ऐसी वृत्ति खड़ी होती है, उसने आत्मा का पूर्ण आश्रय लिया नहीं। समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द मूर्ति प्रभु ऐसा जो ज्ञ-स्वभाव और आनन्दस्वभाव, उसका जिसने आश्रय अर्थात् शरण लिया नहीं। यदि पूर्ण आश्रय और शरण ले तो अल्प ज्ञान-दर्शन में विषय की मर्यादा रहती नहीं और उसमें जानने की आकांक्षा और द्वेष है, वह भाव भी उसे रहता नहीं। अर्थात् उस प्रतिकूलता का अभाव होना, वह अतीन्द्रिय आनन्द का परिपूर्ण ज्ञान और दर्शन, वह कारण है। समझ में आया?

मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से... मोक्ष अर्थात् कि भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन का पिण्ड चैतन्यबिम्ब है। परिपूर्ण जिसका जानना-देखना स्वभाव, स्वभाव, स्वरूप, सत् सत् का सत्त्व है, ऐसा जो अस्तिरूप से है, उसकी प्रगटता हो पूर्ण ज्ञान और दर्शन दशा की, उसे मोक्ष कहते हैं। अटकाव से रुका हुआ ज्ञान, उसे छूटकर पूर्ण विकासवाला ज्ञान और दर्शन हो, उसे मोक्ष कहते हैं। वह मोक्ष **वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से...** वजन यहाँ है। **उसका अभाव होता है...** किसका? प्रतिकूलता जानने-देखने की मर्यादावाला जो ज्ञान विषय जिसका थोड़ा है, ऐसी जो दशा उसे मोक्ष में आत्मा सब जाने-देखे, ऐसा होने के कारण विषय की मर्यादा जो अल्पता थी, उसका उसे अभाव होता है। कठिन बात भाई! बहुत बात सिद्ध करते हैं इसमें।

पर्याय में—अवस्था में—दशा में भगवान आत्मा परिपूर्ण दर्शन, ज्ञानस्वभावी वस्तु होने पर भी दशा में जिसकी शक्ति की व्यक्तता परिपूर्ण प्रगट नहीं है, इसलिए उसे विषय को जानने की मर्यादा-हदवाला वह ज्ञान रुक गया है और उसके कारण अतीन्द्रिय आनन्द के कारण का जो भाव, उसका उसे अभाव है। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण देखना, इसका उसे अभाव है। अल्प जानना और देखना, वह प्रतिकूलता है। उसमें तो यह क्रिया करना तो यह होगा, ऐसा कुछ नहीं आता इसमें। भगवान ज्ञानस्वरूप है, भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आत्म अर्थात्? जानने-देखने के स्वभाव की मूर्ति। यह तो सब पर है, मिट्टी है।

यहाँ तो कहते हैं, मर्यादित जिसका ज्ञान है, उसकी भी रुचि रहे, उसे अविनाशी की रुचि नहीं रहती। समझ में आया? भगवान अविनाशी ज्ञान, दर्शन परिपूर्ण प्रभु की

जिसे रुचि है, उसे अल्प ज्ञान-दर्शन की मर्यादावाले ज्ञान की रुचि उसे होती नहीं। राग की रुचि तो नहीं, भाई! यह तो मार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर का आत्मा का मार्ग है। आहाहा! निराधार अशरण है यह। पिल्ले की तरह केंचुआ मरे, मनुष्य मरे आत्मा के भान बिना। यह कहीं निश्चिन्त है? यह कहीं इसने जय किया है? अज्ञान की मृत्यु इसने की है? अज्ञान की और राग-द्वेष की मृत्यु करके ज्ञान की वीतरागपर्याय की प्राप्ति होना, इसका नाम सत् समाधि मृत्यु है। वह किसे आयेगी? पहले से जिसे संयोग की रुचि छूट गयी है। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, उसकी रुचि का जहाँ अभाव है। विकल्प उठता हे पुण्य-पाप का, उसका भी जहाँ दृष्टि में अभाव है। ज्ञान और दर्शन की दशा की अल्पता है, उसकी भी रुचि का जिसे अभाव है। आहाहा!

वस्तु महँगी पड़े परन्तु वस्तु तो यह है। समझ में आया? और जिस प्रकार से वस्तु है, उस प्रकार से इसके ख्याल में न आवे और विपरीत आवे तो वह तो मिथ्यात्वभाव है। और उस मिथ्यात्वभाव में अनन्त जन्म-मरण करने की ताकत है। निगोद के, एकेन्द्रियादि के भव करने की मिथ्यात्व में सामर्थ्य है। उस मिथ्यात्व का त्याग, पहला त्याग। त्याग कहते हैं न? त्याग करो। परन्तु किसका? है न। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, ये पाँच बन्ध के कारण हैं। इनमें से पहला मिथ्यात्व का त्याग हो तो उसे आत्मा के स्वभाव की परिपूर्णता का आदर और अनुभव की दृष्टि होती है। अभी जिसे मिथ्यात्व का त्याग नहीं, उसे बाह्य के त्याग हुए और यह व्रतधारी है, ऐसा मानना, वह दृष्टि की मिथ्यादशा है, विपरीत दृष्टि है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा... अरे! बेहद जिसका स्वभाव, बेहद जिसकी दृष्टि और ज्ञान और दर्शन। ऐसी शक्ति की बेहदता अपरिमितता प्रगट नहीं, उसे हदवाला ज्ञान विषयवाला, थोड़ी मर्यादावाला और वहाँ यदि अटका है, और इतना ही यदि इसने माना है तो उसे आत्मा के अविनाशी स्वभाव की दृष्टि नहीं है। वह तो नाशवान की दृष्टि हुई। अल्प ज्ञान का उघाड़ और अल्प दर्शन का उघाड़, उसकी रुचि, वह तो स्वभाव के परिपूर्ण का उसे अनादर हुआ। आहाहा! यहाँ थोड़ा जहाँ जानना हो, वहाँ इसे ऐसा हो जाता है कि आहा! हमने बहुत जाना। भगवान! बापू! वस्तु की

वस्तुगत से ज्ञान और भान हुए बिना उसकी जितनी रुचि राग में और अल्पज्ञ में रहे, वह मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्व के कारण उसकी ज्ञान की मर्यादित दशा टलती नहीं। समझ में आया?

जब भगवान आत्मा अन्तर्मुख प्रभु आत्मा है, उसे देखता है, दृष्टि करता है। अविनाशी त्रिकाली ध्रुव की दृष्टि होने पर नाशवान मर्यादित ज्ञान और राग की रुचि उसकी टल जाती है। समझ में आया? इसका नाम प्रथम में मिथ्यात्व का त्याग और समकित का ग्रहण होना। यह दशा जहाँ नहीं, उसमें जो कुछ किया जाता है, वह सब मिथ्यात्व की भूमिका में मिथ्यात्व को घोंटता है। उसमें कहीं आत्मा को जरा भी लाभ नहीं है परन्तु अनन्त अलाभ है। चन्दुभाई! भारी सूक्ष्म, भाई! अरे! परन्तु अभी ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता उसे कहते हैं कि बड़ा वह। ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता क्यों परन्तु? समझ में आया? जहाँ है वहाँ खोजना चाहिए न! जहाँ नहीं वहाँ खोजे तो? समझ में आया?

वह दृष्टान्त नहीं दिया था? वृद्धा का। एक वृद्धा थी तो उसकी सुई खो गयी अन्धेरे में। अन्धेरे में सुई खो गयी। खोजने पर नहीं मिली। उजाले में खोजने गयी। वहाँ मिलती नहीं। खोई अन्धेरे में, खोजने गयी उजाले में। कोई पूछता है, माँ! क्या करती हो? सुई खोजते हैं। कहाँ खोई है? अन्धेरे में। यहाँ (क्यों) खोजती हो? परन्तु अन्धेरे में मिलती नहीं। जहाँ खोई है वहाँ मिलती नहीं तो यहाँ खोजती हूँ। परन्तु यहाँ हाथ नहीं आयेगी। जहाँ खोई है, वहाँ खोजो तो हाथ आवे। चन्दुभाई! खोजने का प्रयत्न तो है उसका। परन्तु जहाँ नहीं, वहाँ खोजे और खोई है, वहाँ खोजता नहीं, इसकी तो उसे खबर नहीं।

इसी प्रकार पुण्य और पाप तथा अल्प ज्ञान में खो गया है दृष्टि की रुचि में। जहाँ-तहाँ खोजा करता है कि उसमें से मुझे कुछ लाभ होगा। खोया है मिथ्याश्रद्धा में। परिपूर्ण प्रभु। अनन्त ज्ञान और दर्शन का धारक ऐसा भगवान, उसकी विपरीत मान्यता से खो गया है वह। तो उसकी विपरीत मान्यता टालकर स्वभाव को खोजना चाहिए। समझ में आया?

कहते हैं, उसका स्वभाव तो परिपूर्ण जानना-देखना है। वह मोक्ष है। ऐसा कहा

न? **मोक्ष में वास्तव...** मोक्ष की व्याख्या की। मोक्ष अर्थात् कोई लटकना या कोई ऐसा होना, ऐसा नहीं है। मोक्ष अर्थात् भगवान आत्मा... लैसे छोटी पीपर में चौसठ पहरी चरपरा रस और हरा रंग है, ऐसा उसे प्रगटरूप से शक्ति में से व्यक्तरूप से पूर्ण रंग और रस प्रगट होता है, रंग और रस प्रगट हो, वह पीपर की दशा की परिपूर्णता है। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा, जैसे उसमें चौंसठ पहरा चरापरा रस और हरा रंग पूरा-पूरा पड़ा है, उसी प्रकार भगवान आत्मा में देखना और जानना जिसकी बेहद अपरिमित शक्ति का सत्त्व उसमें अपरिमित दशा पड़ी है—शक्ति पड़ी है। उसकी व्यक्तता वहाँ एकाग्र होकर प्रगट जहाँ दशा हुई, वहाँ पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन। एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानने की अपनी पर्याय का अनन्त परिणमन हो गया।

ऐसा जो **मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से...** कुछ अब जानना बाकी रहा नहीं। जानना-देखना बाकी रहा नहीं। परिपूर्ण जानना-देखना हो जाता है, इसका नाम मोक्ष। और वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द होता है। पूर्ण जानना-देखना, वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द है। अल्प जानना-देखना, वहाँ तो दुःख है। विकल्प उठे, आकांक्षा उठती है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा **मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से...** मोक्ष की व्याख्या हुई इस प्रकार की, देखो! श्रीमद् में ऐसा कहा,

मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पन्थ,
समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ॥

परमात्मा की वाणी में निर्ग्रन्थ, जो राग में से निकल गये हैं और अस्थिरता में से निकल गये हैं। अर्थात् जिनकी दृष्टि परिपूर्ण हो गयी है और स्थिरता परिपूर्ण वीतराग हो गयी है, ऐसे परमात्मा की वाणी में जो आया, ऐसी दशा जिसे प्रगट पूर्ण हुई, वह मोक्ष। शुद्ध जैसी शक्ति ज्ञान और दर्शन की परिपूर्ण है। उसकी शक्ति की पूर्णता पूर्ण का आश्रय लेकर प्रभु परिपूर्ण है, प्रभु परिपूर्ण अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्र शोभायमान परमात्मा स्वयं है। ईश्वर का अंश नहीं। समझ में आया? उसे ऐसा है, टुकड़ा होऊँ कोई परिपूर्ण परमात्मा का। टुकड़ा एक भाग। एक भाग नहीं, भगवान! तू परिपूर्ण भगवान है। आहाहा!

भग का अर्थ होता है ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी। भग का अर्थ होता है ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी। वान अर्थात् वाला, रूप। जिसका ज्ञान और आनन्दरूप है, उसे यहाँ भगवान कहा जाता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म महँगा बहुत। कुछ करने का हो तो... यहाँ तो कहते हैं, करने की जितनी बुद्धि होती है, कर्तृत्व वह सब मिथ्यात्वभाव है। यह भी करने का तो है। यह करने का है ज्ञान, दर्शन और आनन्द। ऐसी जो दशा पूर्ण हुई, सर्व को जानना-देखना। ओहोहो! यह उस एक समय की दशा में सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा सर्व को जाने-देखे कैसी प्रतीति, कितनी प्रतीति, कितना आत्मा! द्रव्य-गुण से तो परिपूर्ण परन्तु पर्याय में सर्व को जाने-देखे, ऐसा जो आत्मा होता है, उसे **उसका अभाव होता है...** किसका? प्रतिबन्ध—अल्प मर्यादा विषय की थी, उसका उसे अभाव हो जाता है। अल्पज्ञता का अभाव होकर सर्वज्ञ—ज्ञान होता है। पर्याय के भी प्रकार किये ऐस। द्रव्य और गुण से परिपूर्ण है। वस्तु भगवान आत्मा शक्तिवान और शक्ति से परिपूर्ण है। शक्तिवान और शक्ति अर्थात् गुण और शक्तिवान अर्थात् द्रव्य। परिपूर्ण है परन्तु उसकी पर्याय में अल्पज्ञता जो थी, उस परिपूर्णता का आश्रय परिपूर्ण लिया, इसलिए पर्याय में भी जैसी शक्ति परिपूर्ण है, वैसी अवस्था में एक समय में परिपूर्ण हो गया है। ऐसा आत्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक को, पर को न जाने परन्तु अपनी पर्याय इतनी हुई है, वह अनन्त जितना द्रव्य का स्वरूप, गुण का और लोकालोक का, इस प्रकार से जिसकी दशा में सर्व जानना-देखना परिणम गया है। समझ में आया?

आत्मा मोक्ष में... यह मोक्ष की व्याख्या की, भाई! आहाहा! किसी को और मोक्ष में विवाद उठता हो न! मोक्ष में क्या होगा? मोक्ष में अर्थात् क्या? भगवान! अल्प विषय और राग में दशा अटकती थी, वह पूर्ण दशा होकर राग का अभाव और सर्वज्ञशक्ति की व्यक्तता पूर्ण हो गयी, इसका नाम मोक्ष। आहाहा! अरे..! इसकी इसे महिमा, इसकी प्रभुता इसे भासित नहीं होती। पूर्ण स्वभाव की महिमा और अधिकता के अतिरिक्त कहीं भी यदि इसने महत्ता और अधिकता मानी, स्वभाव के अनादर का मिथ्यात्व का महा स्वभाव का खून है। बड़ी हिंसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह इसे ख्याल में नहीं आता। कोई जीव मरे और यह बचाया और यह किया। धूल में भी नहीं।

जीव बचता है उसके कारण से। तुझसे कुछ है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, धीमे-धीमे निगलने जैसी बात है। सूक्ष्म पड़े परन्तु... यहाँ तो कहते हैं, वास्तव में मोक्ष में पूर्ण जानना-देखना हो जाता है, इससे उसे अपूर्ण जानने-देखने में जो आकांक्षा आदि थी, वह अपूर्ण जानना-देखना रहा नहीं और राग-द्वेष भी रहे नहीं। समझ में आया? कहते हैं, **सर्व को जानता और देखता होने से...** ऐसा। इस कारण से। कारण दिया। **सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है...** उसका अर्थात्? विषय की प्रतिबन्धता, वह जो प्रतिकूलता, उसका वहाँ अभाव होता है। वह भगवान आत्मा... यह तो वस्तु सिद्ध हो गयी है। सर्वज्ञ से सिद्ध है, अनुभव में आ सकती है, ऐसी है। युक्ति से सिद्ध करते हैं और आगम से यह बताते हैं।

कहते हैं, सर्व को जानना-देखना मोक्ष में, इससे कम जानने-देखने का वहाँ अभाव हो गया। रुकावट जो विषय में थी, वह सर्व जानना-देखन हो गया। वहाँ रुकावट का अभाव हो गया। **(मोक्ष में स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव होता है)।** यह तो स्पष्टीकरण किया है कोष्ठक में। **इसलिए उसका अभाव जिसका कारण है,...** है न ऐकड़ा? किसका कारण? सुख की व्याख्या है। 'पारमार्थिक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।' पारमार्थिक सुख का कारण। परमानन्द मूर्ति प्रभु आत्मा, जैसा नित्यानन्द प्रभु है, ऐसी दशा में अतीन्द्रिय आनन्द का परिपूर्ण प्रगट हो जाना, उसके कारणरूप से विषय की मर्यादा की रुकावट, उसका अभाव, वह कारण है। भाषा संक्षिप्त की है। 'पारमार्थिक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।' है न? नोट में है। उसका अभाव होना। कर्म का अभाव होना, ऐसा इसमें कुछ नहीं लिया। वह ऐसा कहते हैं न? तुम ऐसा लो कि केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय का अभाव हो इसलिए केवलज्ञान को सर्व जानना-देखना होता है, ऐसा लो। तुम कहते हो कि ऐसे आत्मा अपने केवलज्ञान, दर्शन को पाता है, तब उसके कारण से केवलज्ञान, दर्शन के जो आवरण हैं, वह उसके कारण से उसकी दशा की योग्यता से टल जाते हैं। टल जाते हैं अर्थात् जो कर्मरूपी अवस्था थी, उसकी दूसरे समय अकर्म अवस्था होती है। वह इसके कारण से नहीं। और उसमें कर्म अवस्था थी, इसलिए रुका हुआ था और

अभाव हुआ—अकर्म (हुआ) इसलिए यहाँ ज्ञान खिला है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? क्या कहा?

उसका अभाव होता है... उसका अभाव, उसका कारण। भाई! ऐसा कहा। है? उसका अभाव अर्थात् पारमार्थिक भगवान आनन्दस्वरूप व्यक्त प्रगट दशा होना, वह स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव उसका कारण है। समझ में आया? केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय का अभाव, वह इस अतीन्द्रिय आनन्द का कारण है, ऐसा नहीं लिया। अरे! पण्डित अर्थ ऐसे करते हैं। भाई! ऐसा नहीं होता। तेरी स्वतन्त्रता लुटती है। उल्टे में भी तू स्वतन्त्र है और सुलटे में भी तू स्वतन्त्र है। पर के कारण तुझे कोई सम्बन्ध नहीं है, प्रभु! कर्म, कर्म की पर्यायरूप परिणमे, तू तेरी पर्यायरूप परिणमे, उसमें एक-दूसरे को कुछ (नहीं है)। एक-दूसरे में तो अभाव है। समझ में आया? यहाँ अपने कहे, हम तो कर्म को माननेवाले हैं। कर्म अपने को रोके और कर्म टले तो आत्मा को लाभ हो। ऐसा किसने कहा? प्रभु! ऐसा माननेवाला है, ऐसा किसने कहा? यहाँ तो आत्मा आनन्द और ज्ञान, दर्शन से परिपूर्ण है, उसे माननेवाला है, ऐसा कहते हैं। और ऐसी दशा प्रगट करता नहीं, इसलिए उसका अभाव नहीं होता। इसलिए परिपूर्णता उसे प्रगट नहीं होती। चन्दुभाई!

अरे.. भगवान! शरीर में आबाल-गोपाल में प्रभु विराजता है, हों सब। आहाहा! तू शरीर को न देख। तुझे भी शरीररूप न देख, रागरूप न देख, अल्पज्ञतारूप न देख। तो दूसरे आत्मा में भी उसका शरीर, राग और अल्पज्ञता को न देख। यह भगवान है, परिपूर्ण प्रभु है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, मोक्ष में उसका अभाव अर्थात् जानने-देखने की मर्यादा जो रुकावट थी, उसका अभाव जिसका कारण है। जिसका अर्थात्? **ऐसे अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है।** आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधिसुख में।' भगवान आत्मा अनादि से दुःख की दशा में है। परलक्षी वृत्तियाँ, बहिरात्मबुद्धि, अल्पज्ञ, राग और निमित्त को अपना मानना, सर्वज्ञस्वभावी अपने को भूल जाना, ऐसी जो दुःखी की दशा में भटक रहा है, भटक रहा है, कोई उसे शरण नहीं

है। उसमें शरणभूत भगवान आत्मा परिपूर्ण ज्ञान, दर्शन का कन्द प्रभु है, उसका शरण लेने से, कहते हैं कि जहाँ परिपूर्णता प्रगट हो गयी है, ज्ञान और दर्शन, उसमें रुकावट के अभाव के कारण, वह अभाव जिसका कारण है, **ऐसे अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की...** लो, यह सुख की व्याख्या की। इन्द्रिय में सुख, विषय में सुख, वह सब दुःख और जहर है। समझ में आया?

लोग कहते हैं न, भाई हमको स्त्रियों में प्रेम आवे। इतना एक-दूसरे का प्रेम आवे तो अन्दर में आत्मा का आनन्द आवे। भगवान! क्या कहता है तू यह? समझ में आया? एक-दूसरे की अर्पणता आवे। एक-दूसरा भूल जाये कि मैं और तू पृथक् हैं, ऐसा भूल जाये। ऐसे प्रेम में जो आनन्द आवे। अरे.. भगवान! वह आनन्द नहीं, भाई! वह तो जहर... जहर... जहर है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **उसका अभाव जिसका कारण है, ऐसे अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में...** देखो! परिपूर्ण जानना-देखना होने से, यहाँ से लिया है। उसका अभाव अर्थात् अल्पज्ञ और मर्यादित ज्ञान का अभाव है। इसलिए उसका अभाव जिसका कारण है, ऐसा अनाकुलता लक्षणवाला परमार्थसुख उसकी मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है। वह आनन्द की अचलित-चलित न हो, ऐसा अनुभव ज्ञान परमात्मा की दशा होती है। मोक्षदशा में च्युत नहीं हो, ऐसी अनुभूति—आनन्द की परिपूर्णता होती है। जानना और देखना पूर्ण हो गया। और वहाँ अल्पज्ञान मर्यादित नहीं रहा। उसका अभाव हो गया। इसलिए पारमार्थिक अनाकुल लक्षणवाला सुख, उसकी अनुभूति वहाँ अचलित होती है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव मोक्ष में समय-समय में अनन्त होता है। लो, इसे मोक्ष कहते हैं, मोक्ष। आत्मा और उसका अनुभव, यह तो दो हो गये। दो हैं, ऐसा कहते हैं। वस्तु त्रिकाल और उसकी परिपूर्ण शक्ति का विकास जहाँ ज्ञान, दर्शन का हुआ, वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव उस क्षण में उसे परिपूर्ण होता है। अनुभव पर्याय का होता है, अनुभव द्रव्य-गुण का होता नहीं। देखो! यह तीन सिद्ध करते हैं—द्रव्य, गुण और पर्याय। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त वस्तु की स्थिति की ऐसी मर्यादा अन्यत्र कहीं हो नहीं सकती। समझ में आया? ऊपरी तौर से लगे।

पानी हो तालाब का ऐसा। किनारे से ऐसे सब समान लगे। परन्तु उसका गहरा माप करने जाओ तो किनारे के पानी और मध्य के पानी में बड़ा अन्तर (होता है)। समझ में आया? इसी प्रकार परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में जिनकी शक्ति की... ऐसे देव, ऐसे देव की वाणी, उसमें यह आया, परिपूर्ण उसका स्वरूप। ऐसी बात अन्यत्र हो नहीं सकती। दूसरे के साथ मिलान करने जाये। अभी तो समन्वय का बहुत धन्धा है। समन्वय... समन्वय सबको अच्छा लगाना। बापू! समन्वय किसके साथ हो? खोटा और सच्चा है। 'है' की अपेक्षा से समन्वय सही, परन्तु दोनों सच्चे हैं, इस अपेक्षा से समन्वय नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो एक समय की दशा में पर्याय पलटकर अपूर्णता थी, वह पूर्ण हो गयी ज्ञान, दर्शन की, इसलिए उसके मर्यादित विषय के कारण का अभाव होने से अनाकुल लक्षण पारमार्थिक सुख का, उसे अचलित अनुभव होता है। उसे मोक्ष कहते हैं। **इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से जानता है,...** अब इसमें आया बड़ा। **इस प्रकार भव्य जीव ही...** वापस ऐसा। 'ही' डाला है। भव्य अर्थात् अकेला भव्य, ऐसा नहीं। **भाव से जानता है,....** ऐसी भाषा है न, भाई! एक समय में पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन ऐसा होने से जिसे अनन्त पारमार्थिक आनन्द की सुख की दशा है। उसे मोक्षदशा कहते हैं। ऐसी अनुभूति की मोक्षदशा को भव्य ही भाव से जानता है। तीन शब्द लेंगे। समझ में आया? जानता है। **इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है;...** समझ में आया? क्या कहते हैं? भव्य जीव सम्यग्दर्शन की योग्यता से जहाँ प्रगट दशा हुई है। स्वरूप पूर्णानन्द प्रभु आत्मा शक्ति से प्रगट पड़ा है परमात्मा। चौंसठ पहरी पीपर की भाँति।

इसी प्रकार चौंसठ अर्थात् रुपया-रुपया सोलह आना परिपूर्ण... पीपर का कद छोटा और रंग से काली, ऐसा नहीं देखना। समझ में आया? सफेद गाय का दूध तो मीठा होता है और काली गाय का दूध भी मीठा होता है। दूध में कहीं अन्तर पड़ता है? कि काली गाय के दूध में कुछ अन्तर और सफेद गाय के दूध में मिठास अधिक—ऐसा होगा? इसी प्रकार काली पीपर रंग से, इसलिए उसमें रस की परिपूर्णता नहीं है और रंग से तथा रस से परिपूर्णता नहीं है, ऐसा नहीं है। भले काली हो। समझ में आया? और

कद में छोटी हो। कद में छोटी है न? कद तो इतना है। आहाहा! ऐसे कद में छोटा भगवान शरीरप्रमाण और पुण्य-पाप के काले मैल जैसी दशा भले हो उसकी, वस्तु में वह नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे मोक्ष की श्रद्धा किसे होती है? कि मिथ्यात्व से छूटे और समकित हो, उसे श्रद्धा होती है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! जिसे अन्तर भगवान आत्मा परिपूर्ण शक्ति का प्रकाश जिसे परिपूर्ण हुआ, ऐसा ज्ञान, दर्शन और अनन्त आनन्दवाली दशा, उसकी श्रद्धा समकिती को होती है, ऐसा कहते हैं। भव्य में भी समकिती। भव्य अर्थात् लायक और योग्य। जिसे आत्मा भगवान... भले गृहस्थाश्रम में हो, राजपाट में हो। राजपाट में हो, ऐसा कहना—ऐसा भी नहीं है। सम्यग्दृष्टि राजपाट में नहीं है, राग में नहीं है, अल्पज्ञता में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु बाहर से संयोग को देखकर, ऐसा कहे, इसे यह राज है, इसे यह स्त्री है, इसे यह पुत्र है, इसे यह है। बापू! उसे कुछ नहीं। वह तो परिपूर्ण आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है, उसमें रहा हुआ है। अल्पज्ञता में रहना, वह भी उसकी स्थिति नहीं। भगवान परिपूर्ण चैतन्य आनन्द और ज्ञान का कन्द है।

अरे! एकेन्द्रिय निगोद से निकलकर मुश्किल से मनुष्य हुआ। उसमें और यह झंझट, ऐसे झगड़े। एक तो संसार की प्रवृत्ति के कारण निवृत्ति नहीं। उसमें से छूटे तो धर्म के बहाने कदाग्रह और उल्टी श्रद्धायें। आहा! अरे! भगवान! क्या करे बापू? काल चला जाता है, भाई! वह समय-समय का कीमती काल है यह।

कहते हैं, ऐसी पूर्ण ज्ञान और दर्शन की प्रगटता और उसके साथ अनन्त आनन्द का अनुभव अचलित दशा, ऐसी मोक्ष की श्रद्धा किसे होती है? भव्य जीव को होती है। भव्य जीव ही। परन्तु भाव से, हों! धारणा करे, ऐसा नहीं। इसलिए 'भाव से' शब्द लिया है। है अन्दर? है न? 'अनन्त सुख को भव्य जीव जानता है, उपादेयरूप से...' देखो! जयसेनाचार्य के तीनों बोल लिये। तीन बोल लिये हैं। 'अनन्त सुख को भव्य जीव जानता है,...' अर्थात्? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अनुभव होता है समकिती को। अर्थात् आनन्द है, यह दुःख है नहीं, विकल्प नहीं। परिपूर्ण प्रभु हूँ ऐसा उसे सम्यग्दर्शन में आनन्द का अनुभव होता है। इससे आत्मा अनन्त आनन्दमय है, ऐसा

वह जानता है, ऐसा वह 'श्रद्धा करता है...' देखो! तीन बोल लेते हैं। 'जानता है, उपादेयरूप से श्रद्धा करता है...' मेरा आत्मा अनन्त आनन्द की मूर्ति कन्द नित्यानन्द प्रभु है। ऐसा यह अंगीकार करनेयोग्य है, ऐसी वह श्रद्धा करता है। समकिती पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर आदि और बाहर की क्रिया मेरी है और मैं करता हूँ, ऐसा उसे होता नहीं। समझ में आया? तीसरी बात 'अपने-अपने गुणस्थान अनुसार अनुभव करता है।' भाई! चारित्र लिया वापस यहाँ। तीनों लिये। नीचे, नीचे नोट है न उसमें?

लायक प्राणी उसे कहते हैं, जिसमें आनन्द और ज्ञान ऐसा परिपूर्ण आत्मा का स्वभाव है, उसे दृष्टि ने स्पर्श किया है। उसे यह अतीन्द्रिय आनन्दमय है, ऐसा जाना है। अतीन्द्रिय आनन्दमय अंगीकार करनेयोग्य यह है, ऐसी श्रद्धा की है और उसकी शक्ति की व्यक्तता की गुणस्थान की दशा प्रमाण उसे आनन्द का उपादेयपने अनुभव चारित्र में आनन्द का अनुभव भी होता है। कहो, इसमें भाई चौथेवाला आता होगा या नहीं? विवाद उठाते हैं ने बहुत। ... ले, प्रभु! अभी कलकलाहट नहीं होती। भाई! आहा! भगवान आत्मा... उसे अभी चौथे गुणस्थान में कैसी दशा होती है, इसका विवाद।

अरे... प्रभु! सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा एक एक शक्ति अननत सामर्थ्यवाली। ऐसी अनन्त शक्ति का रसकन्द वह प्रभु, उसके सन्मुख होकर प्रतीति होने पर जितने गुणों की शक्ति की संख्या गिनती में है, उन सबका अंश व्यक्तपने पर्याय में प्रगट नहीं होता। तो उसकी द्रव्यदृष्टि और सम्यग्दृष्टि नहीं है। समझ में आया? लक्ष्य में तो ले बात को। सब झंझट छोड़ दे। दुनिया के वाद और विवाद और झगड़। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।'

भगवान आत्मा...! कहते हैं कि ऐसे मोक्ष की पर्याय की श्रद्धा किसे होती है? ऐसा कहते हैं। आहा! अल्पज्ञता में सर्वज्ञता की प्रतीति करना। परन्तु वहाँ करनी है न। सर्वज्ञस्वभाव में प्रतीति करनी है? स्वभाव तो त्रिकाल है। अल्पज्ञ में सर्वज्ञ की श्रद्धा, अल्पज्ञ में पूर्ण आनन्द की श्रद्धा और अल्पज्ञ में सर्वदर्शी की श्रद्धा। यह अल्पज्ञ का भाव भगवान सर्वज्ञ और सर्वदर्शि स्वभावसन्मुख जब ढलता है, तब उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अनन्त आनन्दमय है, ऐसी मोक्ष की श्रद्धा तब उसे होती है। जिसका एक अंश

स्वाद में आया है। दूज उगी है, वह सब बताते हैं। चन्द्र की दूज है, वह पूर्ण को बताती है, दूज, दूज को बताती है और आड़ कितनी रही, उसे भी बताती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! गजब बातें, भाई! परन्तु हमारे यह सब करना। हमारे स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा करना या यह करना? किसका कर सकता है?

प्रभु! आँख की पलक फिरा नहीं सकता। आहाहा! श्वास भी तेरा सगा नहीं, ऐसा नहीं कहते लोग? अन्तिम घड़ी में कहते हैं, इसकी अपेक्षा पहले से कर न, अन्त में कहते हैं, उसकी अपेक्षा। ऐसी श्वास चले। ख्याल भी आ जाये कि नाभि से श्वास ने स्थान छोड़ा है। अपने नहीं आया था? श्वास का घर छूट गया। यह देह जब छूट जाती है न? अन्तिम काल हो तब यहाँ श्वास चलती है। इस क्रिया की खबर पड़ती है कि यह श्वास नाभि से जरा धागे जितनी आगे नीचे से नहीं जाती। ख्याल आने पर भी नहीं छोड़ सकता। क्योंकि वह तेरी क्रिया नहीं है। श्वास जहाँ नीचे से ऊँचा हुआ, एक धागे जितनी से नीचे छोड़ने की क्रिया तेरी नहीं, तो कौन सी क्रिया अब तेरी मानना है तुझे? आहाहा! ऐसे हम बोले और ऐसे हमने समझाया और ऐसा हमने कहा। अरे...! भगवान! तू यह क्या कहता है? भाई! श्वास तेरा सगा नहीं, यह तो साधारण अपने देश में चलता है। इसकी व्याख्या क्या? कि यह श्वास की क्रिया तेरे अधिकार की नहीं है। तेरे कारण से होती नहीं और तेरे कारण से रुकती नहीं और तेरे कारण से अन्दर श्वास ऊँची चलती नहीं। आहाहा! रतिभाई! क्या होग तेरे यह सब मशीन चलाते हैं न? अरे... भगवान! तू देख तो सही भाई! यह इसके कारण चलती है या तेरे कारण चलती है? श्वास भी श्वास के कारण चलती है, तेरे कारण नहीं। और श्वास नीचे गया और ऊँचा हुआ, वह ऊँचा उसके कारण से रहा, तेरे कारण से नीचे आता नहीं। अरे! ऐसी क्रिया भी तेरे अधिकार की बात नहीं। उसे पूरी दुनिया का भार सिर पर उठाना है। डॉक्टर!... नीचे से ऊँचा करो, खेंचो। कौन खींचे? आहाहा! अरे... भगवान! रजकण रजकण श्वास के (स्वतन्त्र है)। अनन्त रजकण का पिण्ड श्वास है। वह अनन्त रजकण की पर्याय एक-एक परमाणु की उसके कारण से होती है, ऊँचे जाये, नीचे आवे। भगवान आत्मा का अधिकार उसमें नहीं है।

ऐसा भगवान श्वास से भिन्न, राग से भिन्न और अल्पज्ञ में पूर्ण ज्ञान की श्रद्धा

जिसे करनी है, मोक्ष की श्रद्धा जिसे परमात्मा ऐसे होते हैं, मेरी मोक्षदशा होगी तब भी ऐसा मैं होऊँ, ऐसी उसे श्रद्धा करनी है। वह **भाव से जानता है,...** कहते हैं। आत्मा ज्ञानानन्द है, उसे राग के विकल्प से और श्वास की क्रिया से भिन्न करके आत्मा को स्वसंवेदनरूप से आत्मा स्वयं स्व अर्थात् अपने से सं अर्थात् प्रत्यक्षरूप से। स्व अर्थात् अपने से स्वसंवेदन। जानने की व्याख्या की है यह, हों! **भाव से जानता है...** इसकी व्याख्या इतनी है। ... है न, भाई! भाव से अर्थात् अन्तर दशा से जानता है। आत्मा ज्ञान से ज्ञान को जानता है अन्दर में। विकल्प और राग और निमित्त से नहीं। ऐसी श्रद्धा करता है कि यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसका स्वाद आया है, इसलिए पूरा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, उस स्वाद के अंश से—नमूने से पूरा आत्मा अतीन्द्रिय है, ऐसा श्रद्धा में आता है। भारी सूक्ष्म आया वापस। भाई! यह करना पड़ेगा। करना पड़ेगा अर्थात्? क्या करें, ऐसा नहीं। वस्तु की जाति ही ऐसी है न, प्रभु! आहा! उसे पहले श्रद्धा में तो पक्का करे। इस प्रकार अनुभव होता है, तब उसे आत्मा जाना और श्रद्धा की, कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से...** अन्तर वेदन से गुणस्थान के प्रमाण में। गुणस्थान अर्थात्? जैसी आत्मा की शक्ति परिपूर्ण है, उसका भान हुआ और पश्चात् भी शक्ति में विशेष एकाग्र होकर विशेष स्थिरता हुई, ऐसी स्थिरता के अंश, चौथे, पाँचवें, छठवीं भूमिका-दशायें हैं। जैसे सीढ़ियाँ निसरणी चढ़ने की होती है, वैसे शुद्धता के अंशों की वृद्धि की दशा के सोपान हैं। कहते हैं कि उस-उस गुणस्थान अर्थात् दशा के योग्य वहाँ-वहाँ उस-उस प्रकार के अतीन्द्रिय आनन्द का उसे अनुभव होता है। आहाहा! धर्म ऐसा नहीं कि धर्म हम करते हैं। परन्तु हमको आनन्द नहीं आता। ऐसा नहीं होता, भाई! हमें अधर्म टला है परन्तु हमें धर्म नहीं हुआ, ऐसा नहीं होता। हमको दुःख टला है परन्तु आनन्द नहीं आता, ऐसा नहीं होता। दुःख का व्यय, आनन्द की उत्पत्ति और त्रिकाली ध्रुव का शरण—आश्रय एक समय में होता है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! भगवान भारी है न, बड़ा है न कितना, देखो न! एक समय में तीन काल तीन लोक को सुई में ले लेवे इतना बड़ा है।

सर्व को जाने, देखे। बस, सर्वचक्षु। सर्वचक्षु भगवान आत्मा। ऐसे परमात्मा को

अचलित अनन्त आनन्द होता है। ऐसी श्रद्धा और जानना कौन करता है ? **भव्य जीव ही भाव से जानता है,...** बहुत डाला है इसमें। अन्तर दशा द्वारा दशावान को पहिचानकर जानता है, ऐसा कहते हैं, रास्ता यह है, भाई! दूसरा रास्ता कोई कहता हो तो वह सब घर के स्वच्छन्द के हैं। समझ में आया ? कषाय को दु:ख जाने। कषाय का दु:ख इसे लगता नहीं। क्यों ? कि जो आनन्दस्वरूप है, उसका माहात्म्य इसे दृष्टि में आता नहीं। किसके साथ तुलना करे कि कषाय दु:खरूप है ? आत्मा आनन्दरूप है ? कषाय में तो पुण्य और पाप दोनों विकल्पों में कषाय कहा जाता है। ऐसी अग्नि-भट्ठी पुण्य-पाप की उसकी रुचि छोड़कर जिसने भगवान शीतल छाया, आनन्द कल्पतरु वृक्ष आत्मा है, उसे अन्तर शरण में उसमें आरूढ़ होकर अन्तर में आत्मा को जानता है, वह भव्य ही जान सकता है, अभव्य नहीं जान सकता। अभव्य शब्द से जहाँ तक न जाने, वहाँ तक भी वह अभव्य है। आता है न प्रवचनसार में ? भाई! भव्य उसकी श्रद्धा करता है। प्रवचनसार। ... हिम्मतभाई ने... ६१ में यह है, देखो! **सुख का कारण स्वभावप्रतिघात का अभाव है।** यह प्रवचनसार की ६१ गाथा। सुख का कारण—अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का कारण **स्वभावप्रतिघात का अभाव है।** यह ६१वीं गाथा। **आत्मा का स्वभाव दर्शन-ज्ञान है; (केवलदशा में) उनके (—दर्शनज्ञान के) प्रतिघात का अभाव है,...** केवलज्ञान में उनके प्रतिघात का अभाव है। **क्योंकि दर्शन लोकलोक में विस्तृत होने से...** दर्शन है, वह लोकालोक को जानने की शक्ति की प्रगटता हुई होने से **ज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त होने से वे (दर्शन-ज्ञान) स्वच्छन्दरूप से...** देखो! यहाँ स्वच्छन्द शब्द प्रयोग किया है। स्वतन्त्रता के अर्थ में यहाँ स्वच्छन्दता प्रयोग किया है। अपनी दशा पूर्णानन्द के आश्रय से जहाँ पूर्ण ज्ञान और दर्शन हुआ, कहते हैं कि स्वच्छन्दता से, स्वच्छन्दरूप से अब अर्थात् **(—स्वतन्त्रता से, अंकुश बिना, किसी से दबाये बिना) खिले हुए हैं।** जैसे कली खिल जाती है, वैसे भगवान शक्तिरूप से ज्ञान और दर्शन था, इस वर्तमान दशा में वह कली ज्ञान-दर्शन की खिल जाती है। आहाहा! उसके गीत भी सुने नहीं इसने।

'आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे रटण करूँ गुणधामा।' उसकी पर्याय में ऐसा आता है, ऐसे गुणधाम का रटन करना। कहते हैं, जिसे ऐसी दशा प्रगट है, **(दर्शनज्ञानस्वरूप**

स्वभाव के प्रतिघात का अभाव है) इसलिए स्वभाव के प्रतिघात का अभाव जिसका कारण है... इसमें यह आया, देखो! **ऐसा सुख अभेदविवक्षा में...** अभेद कथन में ज्ञान है। ज्ञान और आनन्द दोनों एक हैं इस हिसाब से। केवली का सुख है। समझ में आया? ६२ में ऐसा कहा है। अरे! **मोहनीयादिकर्मजालवालों को स्वभावप्रतिघात के कारण...** यह ६२ में आता है। **और आकुलता के कारण सुखाभास...** अज्ञानी को सुखाभास है। हम पैसेवाले हैं, निरोगी हैं, हम भोग में आनन्द लेते हैं। दुःख, दुःख और दुःख—जहर है। ऐसे (सुखाभास को) **'सुख' कहने की अपारमार्थिक रूढ़ी है,...** यह देखो! सुखी, ऐसा कहते हैं, वह तो अपारमार्थिक—मूढ़ की रूढ़ी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी संख्या अनादि की। निगोद की मिथ्यादृष्टि की संख्या बड़ी अनादि की होती है। इससे वे बड़े हो गये? संख्या अधिक है इसलिए बड़े हो गये? भाव से बड़े उसे बड़ा कहा जाता है।

कहते हैं, **केवलीभगवान के, स्वभावप्रतिघात के अभाव के कारण और अनाकुलता के कारण सुख के यथोक्त कारण का और लक्षण का सद्भाव होने से...** यहाँ अभाव कहा। पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ होने से **पारमार्थिक सुख है - ऐसी श्रद्धा करने योग्य है। जिन्हें ऐसी श्रद्धा नहीं है, वे मोक्षसुख के सुधापान से दूर रहनेवाले अभव्य...** है। आहाहा! कठिन बात, भाई! भगवान परिपूर्ण परमात्मदशा हो, तब परिपूर्ण आनन्द है, परिपूर्ण ज्ञान और दर्शन है। ऐसी श्रद्धा सुधापान से, मोक्षरूपी सुधापान, अमृत का पान है वह। उससे दूरवर्ती है। **मृगतृष्णा के जलसमूह को ही देखते (अनुभव करते) हैं;...** मृगतृष्णा के जलसमूह को। खारी जमीन में सूर्य की किरण पड़ने से जो दिखती है, ऐसे अज्ञानी शुभ-अशुभभाव में सुखी हैं, ऐसा अज्ञानी मूढ़ मृगतृष्णा के जल में मानो पानी में हैं, ऐसा मानते हैं। **और जो उस वचन को इसी समय स्वीकार (श्रद्धा) करते हैं, वे शिवश्री के (मोक्षलक्ष्मी के) भाजन-आसन्नभव्य हैं...** शिवश्री—मोक्षरूपी लक्ष्मी के भाजन हैं। आसन्नभव्य हैं। **और जो आगे जाकर स्वीकार करेंगे वे दूरभव्य हैं।** अभी स्वीकार करेंगे, वे आसन्नभव्य हैं। बाद में करेंगे वे दूर भव्य हैं, बिल्कुल नहीं करे, वे अभव्य हैं।

यह यहाँ कहते हैं, **भव्य जीव ही भाव से जानता है,...** जिसे पूर्ण आनन्द की दशा प्रगट हुई, ऐसे मोक्ष की श्रद्धा, उसका नमूना जिसे आत्मा के—द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुआ है, वह मोक्ष को बराबर जानता और श्रद्धा करता है। इस अतिरिक्त अभव्य को अन्तर्मुख हुए बिना उस दशा और मोक्ष की क्या स्थिति है, ऐसा नहीं जानता। **इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है;...** ऐसा जाननेवाला मोक्षमार्ग के योग्य है। **अभव्य जीव इस प्रकार श्रद्धा नहीं करता, इसलिए वह मोक्षमार्ग के अयोग्य ही है।** अभव्य यह नहीं मानता, इसलिए मोक्ष के मार्ग की श्रद्धा सन्मुख होने के योग्य वह नहीं है। जो स्वभाव सन्मुख होकर मानता है, वह मोक्षमार्ग के लिये योग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रकाशक
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई